श्रीनेमि-अमृत-खान्ति-निरंजन-ग्रंथमाला ग्रथांक ३९ *

श्री मनमोहनपार्श्वनाथाय नमो नम

शासनसम्राट् पू. पाद आचार्य श्रीविजयनेमिसूरीश्वराय नमः

श्री उपदेशरत्नाकर, अध्यात्मकल्पद्रुम, संतिकर स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थ प्रणेता 'कृष्णसरस्वती' बिरुदधारक परमपूज्य जैनाचार्य श्री मुनिसुंदरसूरीश्वरजी महाराज सा. के शिष्य

पू. पंन्यासजी श्री शुभशीलगणि कृत

संवतप्रवर्तक-महाराजा
विक्रम
भाग दूसरा और तीसरा

हिन्दी भाषा संयोजकः-शासनसम्राट् पूज्यपाद जैनाचार्य श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज साहब के पट्टधर शास्त्रविशारद पू. श्री विजयामृतसूरीश्वरजी म. सा. के शिष्य

पूज्य मुनिराज श्री खान्तिविजयजी म. के शिष्य
साहित्यप्रेमी पू. मुनिराज निरंजनविजयजी महाराज

विक्रम संवत् २०१५] मूल्य आठ रुपये [वीर संवत २४८५

प्रकाशक :—
श्रीनेमि-अमृत-खान्ति-निरंजन-ग्रन्थमाला की
ओर से जशवंतलाल गिरधरलाल शाह
कल्याणभुवन रीलीफ रोड रूम नं. ११४, अमदावाद

बहुत से चित्रों के चित्रकारः-दलसुख नी. शाह

— प्राप्तिस्थान —
(१) जैन प्रकाशन मन्दिर
३०९/४ डोशीवाडानी पोळ,
अमदावाद

(२) पंडित भूरालाल कालीदास
सरस्वती पुस्तकभंडार, हाथीखाना रतनपोल, अमदावाद

(३) सोमचंद डी. शाह पालीताणा, सौराष्ट्र.

(४) श्री मेघराज जैन पुस्तक भंडार,
ठि. पायधुनी, गोडीजी की चाल, मुंबई २

मुद्रक :
भाग २ पृ १ से २२२ तक वीरपुत्र प्रिन्टिंग प्रेस, अजमेर
,, २ पृ २२३ से ३१० तक हरिहर प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद
भाग ३ पृ ३११ से ६६२ + ६२=७२४ तक स्वहायता मुद्रण
कला मन्दिर पीकांटा अमदावाद.

प्रस्तावना

यह पुस्तक के लिये लिखं तो क्या लिखु ? जिस पुस्तक में प्रातःस्मरणीय परदु खभंजन महाराजा विक्रम का जीवन निरुपण किया गया है, और उस को साहित्यरसिक जनता को परमपूज्य मुनिराज श्री निरञ्जनविजयजी महाराज साहेब संस्कृतमें से भावानुवाद करके भेट दे रहे हैं. अतः मेरे लिये लिखने का रहा ही क्या ? तथापि मेरी क्षुद्रबुद्धि की मर्यादा में रहकर दो चार शब्द लिख रहा हूँ

यह पुस्तक में जिन्हों का जीवन निरुपण किया गया है वे महान विभूति के लिये साक्षरोंने अनेकविध मत प्रदर्शित किये है, कीसीने महाराजा विक्रम को पार्थियन राजा अझिझ कहा है तो कीसीने वसिष्ट पुत्र शातकर्णी कहा है, तो कीसीने अग्निमित्र वसुमित्र या कनिष्क कहा हैं कीसीने गर्दभिल्ल का राजकुमार था अथवा कहा तो कीसीने भरोंच –भरुच का राजा बलमित्र कहा

विद्वानों को जो कुछ कहना हो सो स वत्प्रवर्तक महाराजा विक्रमादित्य के लिये कहे, किन्तु मैं तो परदु खभंजन अवंतीपति महाराजा विक्रमादित्ये मानवशक्ति से भी पर ऐसे कार्यो अनाथों–दु खीयों के लिये किये हैं जिस से यावच्चन्द्रदिवाकरौ उनकी सुवास रहेगी यही कहना चाहता हूँ

महाराजा विक्रमादित्य के कार्यो का निरुपण करते हुवे मानवजीवन के लिये महत्वपूर्ण शिक्षाओं भी इस में दी गई है, व्यवहारकुशलता क्या हैं, नीति किसी को कही जाती है, बुद्धि का सदुपयोग कयसे हो सकता है, दु ख के समय मानव का

क्या करना चाहिये ये सब ये पुस्तक के पृष्ट में दिखाई देता है. इस पुस्तक मे सब से अधिक बात तो यह है कि, महाराजा विक्रम जैन होते हुए भी प्रत्येक धर्मों का सन्मान करते थे, उनके लिये आन की भी परवा न करते उनका कार्य करने को तैयार हो जाते थे. जीवदया का और समानता का महान सूत्र इस से प्रत्येक वाचक को मिल सकता है.

यह पुस्तक अमूल्य रत्न है. किन्तु पहेचाननेवाले के लिये. अज्ञानी के पास में रत्न हो किन्तु वह तो काच समजेगा, इस तरह इस पुस्तक का मूल्यांकन सुज्ञ वाचक ही कर सकता है।

परम पूज्य महाराजश्रीने इस पुस्तक को सरल और सु वाच्य बनाने के लिये जो परिश्रम लिया है वह तो उस को पढते ही समजा जाता है मैं तो मानता हूँ, आबालवृद्ध प्रत्येक को यह पुस्तक आनद–ज्ञान प्रदान करेगा.

वार्ता के अनुरूप इस पुस्तक में चित्रो होने से प्रत्येक वाचक आकर्षित होगा और साथ ही साथ पढने की जिज्ञासा भी होगी

हंस जैसे नीरक्षीर में से क्षीर ही को ग्रहण करता है वैसे वाचक इस पुस्तक में से गुण ग्रहण करेंगे, अंतमें इस पुस्तक पढने से ये भी जान पडता है, गुर्जर लोककवि श्री शामळ भट्टने 'बत्रीस पूतळी' मे जो दिया है इस से भी ज्यादा इस पुस्तक मैं से उपलब्ध होता है. साथ ही साथ जैनाचार्यो की बुद्धिका भी परिचय मिलता है.

वाचक इस पुस्तक को पढकर भाषांतरकार का श्रम सफल करे यह ही इति

— श्री कृष्णप्रसाद भट्ट बी.ए.

प्रौढप्रतापी
शासन सम्राट् परम गुरुदेव

प्रातःस्मरणीय पू. आ. श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी म. सा

सिद्धान्त वाचस्पति, न्याय विशारद
पू. आ. श्री विजयोदयसूरीश्वरजी महाराज

न्याय वाचस्पति, शास्त्र विशारद
पू. आ. श्री विजयनंदनसूरीश्वरजी महाराज

— वालीनिवासी शेठ श्री हजारीमलजी अमीचंदजी के सुपुत्रो —
शा मुलचद हजारीमलजी
C/o राठोड अेन्ड सन्स (फर्म)
ठि मझगाव, मुबई न १०
शा उमेदमल हजारीमलजी
C/o वालीवाला स्टोर्स (फर्म)
ठि मझगाव, मुबई न १०

श्रीयुत् हजारीमलजी अमीचंदजी

बाली–मारवाड

बालीनिवासी धर्मप्रेमी शाह हजारीमलजी अमीचंदजी वे न्याय नीतिप्रिय एवं यथाशक्ति धर्माराधना के साथ साथ बंबई मझगांव में व्यापार कर जिवन व्यतीत कर रहे थे, आप को श्री नवपदजी–आयंबिल की ओलीजी की आराधना के प्रति अधिक प्रेम था, उस की आराधना जीवन तक करते रहे, जीवन में करीब ८० ओलीजी की और उसमें अवसर पर द्रव्य व्यय भी उदारतापूर्वक ठीक तोर से किया. आप को संतान में चार पुत्रः श्री मुलचंदजी, श्री खेमराजजी, श्री उमेद-मलजी और चौथे श्री नवलमलजी. वे भी आपके गुणों को अनुसरण करनेवाले धर्मप्रेमी है.

आपके दूसरे पुत्र श्री खेमराजजी, पूज्य गुरुदेवों के संसर्ग से वैराग्यवान होकर पू. आ. श्री विजयअमृतसूरीश्वरजी म. सा. के पास वि. सं. १९८६ में उल्लास भाव से दीक्षा ली, गुरुदेवने उन्हों का शुभ नाम मुनिश्री खान्तिविजयजी रखा. पांच वर्ष के बाद आपके चौथे पुत्र श्री नवलमलजी को श्री कद-म्बगीरि महातीर्थ में शासनसम्राट् परम पूज्य गुरुदेव श्री विजय-नेमिसूरीश्वरजी म. सा. के पवित्र करकमलों से वि. सं. १९९१ के चैत्र वदी बीज के शुभ दिन में आप श्री हजारीमलजी और श्री उमेदमलजी की हाजरी में-संमतिपूर्वक उत्सव सहित बडी

राजसे दीक्षा हुई और इस अवसर पर आपने अट्ठाई महोत्सव तथा नौकी वा संघ्य में द्रव्य व्यय भी ठीक किया उन्हीं को बडे भाई पू मुनिवर्य श्री खान्तिविजजी महाराज के शिष्य बनाये गये और मुनिश्री निरञ्जनविजयजी के नाम से प्रसिद्ध किये

आपका धर्मप्रेम और सरलता को लोक आज भी याद करते हैं आपका देहान्त वि स १९९४ में हुआ है, आपने पीछे आप विशाल पुत्र परिवार को योग्य धार्मिक संस्कारोंका वारसा देते गये हैं

श्री मुलचंदजी और श्री उमेदमलजी मझगांव (बम्बई) में कपडे का व्यापार कर रहे है, और गृहस्थी धर्म पालन करते हुए यथाशक्ति धर्म और दान कार्य में भी रत रहते है दोनों भाईओ संतान और धन से सुखी है तब पूज्य मुनिश्री खान्ति विजयजी म सा और मुनिश्री निरञ्जनविजयजी म साहब स्व और परकल्याण के लिये उन्नत है साथ ही मुनिश्री निरञ्जन विजयजी म सा साहित्य की भी सेवा करते है, उन्होंने आज तक छोटे-बडे कम से कम ४५-५० ग्रंथो नये उनसे संपादन व लिखे है आपके दोनों पुत्र श्री मुलचंदजी और श्री उमेदमलजीने पुस्तक छपवाने में इस 'ग्रथमाला" को सहायता की है धर्मप्रेम व उदारता के लिये धन्यवाद।

— प्रकाशक

श्री शंखेश्वरपार्श्वनाथाय नमो नमः

प्रकाशकीय निवेदन

शासनसम्राट् तपोगच्छाधिपति प्राचीन अने तीर्थोद्धारक प्रातःस्मरणीय आदि चार पूज्य गुरुवरों के पुनित नामों से अंकित यह ग्रंथमाला, आज इस विक्रमचरित्र का दूसरा और तीसरा भाग छपकर वाचकों के समक्ष प्रस्तुत करती है. जिससे हमे आनंद का अनुभव होता है.

जैन साहित्यमेसे सैंकडो नहीं, किन्तु हजारों जैन ग्रंथों का सरल व बोधक हिन्दी भाषा मे अनुवाद करने की-होने की अति आवश्यकता है. ऐसे ग्रंथों में श्री विक्रमचरित्र भी आबाल वृद्ध सर्वजनोपयोगी ग्रंथ है. जो पढनेसे अपूर्व रसास्वाद का अनुभव होगा, यह चरित्र आश्चर्यकारी एव अद्भुत अनेक रोचक प्रसंगो से भरापूरा है.

यह मूलग्रंथ विक्रम संवत् १४९९ की सालमे स्थभनपुर-स्थभात में श्री अध्यात्म कल्पद्रुम, श्री उपदेशरत्नाकर ग्रंथ श्री संतिकर स्तोत्र आदि अनेक ग्रंथों के प्रणेता, कृष्ण सरस्वती विरुद्धारक सहस्त्रावधानि परमपूज्य जैनाचार्य श्री मुनिसुंदरसूरीश्वरजी महाराज साहब के विद्वान शिष्यरत्न पूज्य पन्यास श्री शुभशीलगणिवर्य हैं, जिन्होंने श्री भरतेश्वरबाहुबली वृत्ति आदि कई ग्रंथो को संस्कृत में संकलित किये है, प्रस्तुत मूल विक्रमचरित्र के बारह सर्ग है और कुल श्लोक संख्या ६९५१ की है, इस मूलग्रंथ का यह भावानुवाद है.

भावानुवाद के संयोजक, परमपूज्य साहित्यप्रेमी मुनिवर्य श्री निरंजनविजयजी महाराज, वे शासनसम्राट् सूरिचक्र चक्रवर्ति श्री कदम्ब-

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमो नमः

संयोजक का निवेदन

परम तारक देव और गुरुवरकी असीम कृपाके फल स्वरूप आज अतीव आनंद का अनुभव हो रहा है, विक्रम संवत् २००३ का आरंभित कार्य आज-पूर्ण होकर प्रगट हो रहा है. जगत में हरेक प्राणी मनोकामना के अनुसार कार्य का आरंभ तो करता ही है किन्तु आरंभित कार्य पूर्ण होना-पुण्यबल, पुरुषार्थ एवं भवितव्यता पर ही निर्भर रहता है.

मनमन्दिर विराजीत सर्वसमीहीतपूरक श्री शंखेश्वरपार्श्व-नाथप्रभु की तथा पूज्यपाद् शासनसम्राट् गुरुदेव की पुण्य कृपा से आज मेरे द्वारा संयोजित यह विक्रमचरित्र प्रकाशक की ओर से प्रकाशित हो रहा है. मैं यथामति इस पुस्तक को सुचारु रूपसे तैयार कर पाठकों के सम्मुख रख रहा हूँ. प्राचीन महर्षि के रचित ग्रंथों का अनुवाद करना कोई सामान्य बात नहीं है, क्यों कि, उन महापुरुषों का ज्ञान-अनुभव विशाल-समुद्र सा है हमारा ज्ञान-एवं अनुभव एक बिन्दु सा है.

इस ग्रंथका अनुवाद कोई विद्वान मुनिपुंगव के द्वारा हुआ होता तो श्रेष्ठत्तम कार्य होता. ऐसा मैं मानता हूँ, मैं अनुवाद करनेके लिये पूर्ण योग्य नहीं हूँ, किन्तु जब तक हमारे

गिरि, शेरीसा, कापरडाजी आदि अनेक प्राचीन तीर्थोद्धारक जैनाचार्य श्रीमद् **विजयनेमिसूरीश्वरजी** म. सा के पट्टालकार शास्त्रविशारद कविरत्न पू आचार्य श्री **विजयअमृतसूरीश्वरजी** म. सा के शिष्यरत्न परम सेवाभावी पू **मुनिवरश्री खान्तिविजयजी** महाराज के शिष्य है, उन्होंने अत्यंत दिल चस्पी से मूलचरित्र ग्रथ के भाव को स्पष्टता के साथ सरल एव बोधक शैली में अनुवादित किया है.

पठन, पाठन, व्याख्यान-कथनादि अन्य साहित्यविषयक अनेकानेक प्रवृत्ति में नीरत रहनेवाले पूज्य महाराजश्रीने इस पुस्तक के लिये अविश्रान्त परिश्रम लेकर संशोधन करके 'श्री श्रुतज्ञान' की भक्ति स्वरूप से बहुत श्रम उठाया है. य मुनिवर्य जैन समाज के परम श्रद्धेय हैं, उन्होंने आज तक सर्व जनउपयोगी छोटे बड़े उनचालीस ३९ मनोहर रोचक पुस्तके जैन समाजको अति परिश्रम द्वारा तैयार कर समर्पित किये है, उन पुस्तकों के अवलोकन से उन्हीका अविश्रान्त साहित्यप्रेम का अपूर्व परिचय प्राप्त होता हैं

इस पुस्तक को सुदर और सुशोभित बनाने के लिये चित्रों रक्खे गये हैं, इन से खर्च ना ज्यादा हुआ है फिर भी पुस्तक के सुशोभन के लिये आवश्यक माना गया है.

इस पुस्तक को शुद्ध बनाने के लिये शक्य प्रयत्न किया है, तथापि मुद्रण दोष आदि कोई क्षति रह गई हो तो उसके लिये क्षन्तव्य समझ कर पाठकगण दरगुजर करेंगे

एसे शासन प्रभावक कई ग्रथों का प्रकाशन करने का सौभाग्य अवसर मिले यही शुभेच्छा

अंत में प्रास्ताविक वचन शास्त्र श्री कृष्णप्रसाद भट्ट बी. ए ने लिख दिया है और जो जो महानुभावने यह पुस्तक छपवाने में यथाशक्ति -भेट की हैं उन्हीं का आभार मानता हूँ

श्री नेमि-अमृत-खान्ति-निरञ्जन-ग्रन्थमाला की और से

जसवंतलाल गिरधरलाल शाह

(वि. सं. २०१५ अषाढ सुद १३ शनिवार)

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमो नमः

संयोजक का निवेदन

परम तारक देव और गुरुवरकी असीम कृपाके फल स्वरूप आज अतीव आनंदका अनुभव हो रहा है, विक्रम संवत् २००३ का आरंभित कार्य आज-पूर्ण होकर प्रगट हो रहा है. जगत में हरेक प्राणी मनोकामना के अनुसार कार्य का आरंभ तो करता है किन्तु आरंभित कार्य पूर्ण होना-पुण्यबल, पुरुषार्थ व भवितव्यता पर ही निर्भर रहता है.

मनमन्दिर विराजीत सर्व समीहीतपूरक श्री शंखेश्वरपार्श्व-नाथप्रभु की तथा पूज्यपाद् शासनसम्राट् गुरुदेव की पुण्य कृपा से आज मेरे द्वारा संयोजित यह विक्रमचरित्र प्रकाशक की ओर से प्रकाशित हो रहा है. मैं यथामति इस पुस्तक को सुधार करके तैयार कर पाठकों के सन्मुख रख रहा हूँ. प्राचीन महर्षि के रचित ग्रंथों का अनुवाद करना कोई सामान्य बात नहीं है, क्यों कि, उन महापुरुषों का ज्ञान-अनुभव विशाल-समुद्र सा है हमारा ज्ञान-एवं अनुभव एक बिन्दु सा है.

इस ग्रंथका अनुवाद कोई विद्वान मुनिपुंगव के द्वारा हुआ होता तो श्रेष्ठत्तम कार्य होता. ऐसा मैं मानता हूँ, मैं अनुवाद करनेके लिये पूर्ण योग्य नहीं हूँ, किन्तु जब तक हमारे

विद्वानगणमे से कोई प्रतिभाशाली लेखक इस ओर ध्यान न दें और इस ग्रंथका विवेचनात्मक अनुवाद तैयार न करें तब तक साहित्यक्षेत्र में यह पुस्तक बहुत उपयोगी होगा यह मेरा विश्वास है

संस्कृत मूल ग्रंथ के साथ पुरा संबंध रखा गया है, तथापि इस भावानुवाद मे सिर्फ शब्दश: अर्थ सभी जगह दिखाई नहीं पडेगा, फिर भी मूलचरित्र-ग्रंथका परिशीलन करनेकी इच्छा रखनेवालों को, इसमें से जरूरी उपयोगी जानकारी अवश्यमेव प्राप्त होगी, मूलभूत वस्तु को केवल हिन्दी भाषा में भावानुवाद करने की आकाक्षा से ही मैंने यथामति प्रयत्न किया है.

अनुवाद करने को अभिलाषा कब हुई ?

विक्रम सवत् १९९० मे जो अखिल भारतीय श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि सम्मेलन राजनगर–अमदावाद में समारोहपूर्वक अच्छी तरह समाप्त हुआ था उस में श्री जैन समाज के लिये लाभप्रद अनेक शुभ प्रस्ताव किये गये थे, उस में से एक प्रस्तावके फलस्वरूप "श्री जैनधर्मसाहित्यप्रकाशकसमिति" का प्रादुर्भाव हुआ और क्रमशः उस समिति द्वारा "श्रीजैनसत्यप्रकाश" नामक मासिक पत्र प्रकाशित होने लगा, उस 'मासिकका' क्रमांक १०० को विक्रमविशेषाक के रूप में तैयार करने का समितिने *निर्णय किया था, उस निर्णय के अनुसार सम्राट् विक्रमादित्य का* चलाया हुआ विक्रम संवत् के २००० वर्ष पूर्ण होते थे, उस समय संवत्की दूसरी सहस्राब्दी के पूर्णाहुति और तीसरि सहस्राब्दीके आरंभ काल में विक्रम विशेषाक प्रगट करने की जाहेरात

मेवाड, मालवा, पंजाब, बंगाल तथा कच्छ, गुजरात, बिहार, मध्यप्रान्त, यु पी आदि सभी प्रान्तों की जनता हिन्दी भाषा को बोल या समझ सकती है, इसी आशय से ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद करने की आवश्यकता हमको लगी परन्तु अनेक प्रकार की अन्य प्रवृत्तियों के कारण अभिलाषा मन मे ही रही

समयका आगे बढनेके साथ जावाल श्री संघ की अत्याग्रह पूर्वक विनति से पूज्य मुनिवर्य श्री शिवानंदविजयजी महाराज के साथ विक्रम संवत २००३ का चातुर्मास गुरुदेव की आज्ञानुसार जावालमे हुआ इस चातुर्मास में श्रीसंघ के आगेवानोने शासन प्रभावना के अनेक शुभ कार्य उत्साहपूर्वक किये. उपरोक्त चातुर्मास मे विक्रमचरित्र को हिन्दी भाषा मे अनुवाद करने की दीर्घकाल से मन मे अभिलपित जो इच्छा हृदय-घट मे स्थित थी, इस इच्छा को शास्त्राध्ययन मे सना उदार, गुप्त दानवीर श्रीमान् ताराचंदजी मोतीजीकी सत्प्रेरणा मिली और जावाल में विक्रम संवत् २००३ के चातुर्मास मे इस ग्रंथको लिखने का आरंभ किया. विक्रम सं २००८ की सालमे प्रथम से सात सर्गों तक प्रथम भाग छपवा कर प्रकाशित किया, बाद विश्वविख्यात श्री राणकपुर की प्रतिष्ठा प्रसंग पर जाने के लिये पूज्यपाद आचार्य श्री विजयोदयसूरीश्वरजी, पूज्यपाद आचार्य श्री विजयनंदनसूरीश्वरजी अमदावाद से विशाल साधुसमुदाय के साथ मारवाड के प्रति विहार हुआ, प्रतिष्ठाका कार्य बहुत अच्छी तरह संपन्न हुआ, और सादडी श्री संघ की अति आग्रहभरी विनति से वि सं २००९ का चातुर्मास पूज्य गुरुदेवो के साथ वहाँ ही हुआ. बाद मेरा दूसरा चातुर्मास गुरुदेव की आज्ञा से वि सं २०१०

का शिवगंज हुआ, शिवगंज–मारवाड से विहार कर सिरोही, जावाल, जीरावळाजी, आबु, भिलडीआजी, चारुप, पाटण आदि तीर्थो की यात्रा करते करते श्री शंखेश्वरजी होकर वि. सं. २०११ की साल मेरा पू. गुरुदेव की निश्रामें अमदावाद आना हुआ, साहित्य संबंधी अनेकानेक प्रवृत्तियोंके कारण समय बितता गया और यह विक्रमचरित्र छपवाने का कार्य में विलंब होता ही रहा.

यकायक वि. सं. २०१२ की साल में शरीर मे "लो प्रेशर" की बिमारीने आक्रमण किया उस से औषध उपचार करते रहे और इसी बिच विक्रमचरित्र का अधुरा कार्य हाथमे लेने का निर्णय कर आगे का कार्य आरंभ किया और देवगुरुकी असीम कृपासे निर्विघ्नरूप से वह कार्य आज पूर्ण हुआ और यह ग्रंथ सुचारु रूपमे छपवाकर प्रकाशकने वाचक के करकमल में रसास्वादके लिये सादर प्रस्तुत किया.

श्री जिनाज्ञा को शिरोमान्य एवं पापभीरु मनोवृत्ति रख कर इस पुस्तक का संयोजन कार्य किया है, मूलग्रन्थ में कहां कहां श्लोकों की पुनरुक्ति है; वहां पर थोडा सा संक्षिप्त जरूर किया है, प्राकृत गाथा भी बहुत आती है, उसी का भावदर्शक अनुवाद के लिये कहीं कहीं संस्कृत श्लोक भी पुनः अवतरित है, इसी कारण कोई जगह पर उसका अनुवाद छोड दिया गया है, सभी प्रकार से मूल ग्रन्थ के साथ पूर्ण लक्ष रखा गया है, ऐसा होते हुए भी छद्मस्थ शुलभ मतिभ्रमसे या तो मेरा–अल्पाभ्यास के कारण अनजान में किसी भी प्रकार के कुछ

अर्थ लिखने मे ग्रन्थकार के आशयसे या जिनाज्ञा विरुद्ध क्षति –भूल हो गई हो और सज्जन महानुभावों को दिखाई देवे तो वे मेधावी मेरे पर कृपा कर मेरी स्खलना को सुधार कर योग्य मार्गदर्शन प्रदान करेंगे

आजतक यह ग्रन्थ शीघ्र छपवानेके लिये अनेक सज्जनोंने प्रेरणा की थी, उन प्रेरणाओंके फल स्वरूप ही इस समय यह ग्रन्थ पाठकों के करकमल में रखने का अवसर पाया हूँ और इस महाग्रन्थ में अनेक हाथ मुझे सहायक हुए हैं, उन्होंका मैं ऋणी हूँ

विक्रम सं २०१४
श्री नमि सं १०
अषाड शुक्ल त्रयोदशी शनिवार

— मुनि निरञ्जनविजयजी

इस पुस्तककी विशेषताएँ

* आबाल वृद्ध सर्व जनोपयोगी अपनी राष्ट्रभाषा
* सरल बोधक रोमाञ्चकारी शैली
* स्थान स्थान पर प्रसंग के अनुरूप मनोहर सुरेख और भाववाही चित्र
* हिन्दी भाषामें बोधदायी दोहे
* नीति, उपदेश आदि का वर्णन करते हुए संस्कृत सुभाषित
* पुस्तक के अंतिम भाग में परिशिष्ट के रूप मे 'जैन साहित्य और विक्रमादित्य' लेख है जिस से संक्षिप्त रूप मे विक्रम संबंधी जैन साहित्य की जानकारी मिलती है.
* अनुक्रमणिका के रूप में पुस्तक के अग्रिम भाग में सारे पुस्तक का टुंक सार दिया है, जो व्याख्यानकार पूज्य मुनि भगवंतादि को बहुत उपयोगी बने.
* चित्रोंकी विस्तृत सूची
* इस तरह इस पुस्तक से बोध मिले और धर्म-भावना की वृद्धि हो यह इस प्रकाशन की सफलता है.

संवत् प्रवर्तक महाराजा विक्रम

दूसरे भाग की-चित्रसूचीः-

आठवाँ सर्गः—

मंगलमूर्ति श्री पार्श्वनाथ

नवम सर्गः—

मंगलमूर्ति श्री पार्श्वनाथ

दशम सर्गः—तृतीय भाग—

मंगलमूर्ति श्री पार्श्वनाथ

ग्यारवॉ सर्गः—

मगलमूर्ति श्री पार्श्वनाथ

-बारवाँ सर्गः—

मगलमूर्ति श्री पार्श्वनाथ

ॐ

श्री नेमि-अमृत-खान्ति सद्गुरुभ्यो नमः

संवत् प्रवर्तक महाराजा विक्रम-

द्वितीयभाग का टूंक सार

सर्ग आठवाँ

मृगध्वज का नगर प्रवेश करना, कमलमाला को पट्टरानी बनाना, पट्टरानी को शुभ स्वप्न आना, पुत्र जन्म होना, शुकराज नामकरन करना, उद्यान में राजा का आना, राजपुत्र शुकराज का यकायक मूर्छित होना, शीतोपचार द्वारा शुद्धि में आना, शुद्धि मे आने पर भी अवाक् होना और उसके लिये अनेक उपचार करने पर भी शुकराज अवाक् ही रहता है.

शुकराज और राजा जितारि

प्रजाके आग्रह से मृगध्वज राजा का कौमुदी महोत्सव के कारण उद्यान में जाना, उस वृक्ष को दूर से टालना और उस वृक्ष के निचे देवदुंदुभि नाद होना, सेवक द्वारा उसकी खोज करने पर मालुम होता है की श्रीदत्तमुनिवर को वहाँ केवल ज्ञान प्राप्त हुआ है और देवो द्वारा केवल ज्ञान महोत्सव मनाया जा रहा है पट्टरानी की प्रेरणा से केवली मुनिवर के पास जाना और केवली मुनिवर से शुकराज के विषय मे प्रश्न पूछना, ज्ञानीमुनि द्वारा शुकराज का सविस्तार पूर्वभव कथन उस में जितारी राजा का जीवन, तार्थ महिमा, सर्वश्रेष्ठ धर्म का ग्रहण, तीर्थयात्रा के लिये दृढ प्रतिज्ञा, स्वप्न में गोमुख यक्ष का कथन, श्री सिद्धाचलजीकी स्थापना जितारी राजा का देहान्त, हंसी-सारसी दोनो राणी की दीक्षा व स्वर्गगमन, शुक पक्षी को प्रतिबोध और अनशन व स्वर्ग गमन.

केवली भगवान से प्रश्न व निर्णय और शुकराज द्वारा गुरुवंदना और बोलना.

श्रीदत्त केवली का पूर्वचरित्र

संसार की असार लीला पर केवली भगवन्त श्रीदत्तमुनिवरने मृगध्वज राजा—शुकराज व सभा के आगे अपना रोमांचकारी जीवन वृत्तान्त

प्राप्त होगा ?" मुनीश्वरने फरमाया कि, "चन्द्रावती के पुत्र को देखोगे तब" मुनीश्वरने वहां से विहार किया, सभाजन आदि नगर में आये.

चंद्रशेखर

मृगध्वज राजा गुरुदेव द्वारा धर्मोपदेश सुनकर सदा मन में धर्म रखते थे और सोचते रहते थे कि, यह असारसंसार में मेरा कब छुटकारा होगा ? ऋषिपुत्री कमलमालाने दूसरे पुत्र हंसराज को जन्म दिया, एक दिन गागलि ऋषि का राजसभा में आगमन, शुकराज का उनकी साथ आश्रममें जाना, गौमुख यक्ष के साथ ऋषि का श्री सिद्धाचलजी की यात्राको जाना, शुकराज द्वारा जिनमन्दिर व आश्रम की देखभाल करनी, एक रात को रात्रि में कोई स्त्रीका करुण रुदन सुनना, उसकी तलास करने जाना, कारण जान कर पद्मावती राजपुत्री का वन में खोज करने जाना, विद्याधर वायुवेग की मुलाकात, वायुवेग को लेकर जिनमन्दिर में दर्शन करने जाना, वहां पद्मावती की भेंट होनी, दोनों को आश्रम में लाकर स्वागत सन्मान करना, वायुवेग की आकाशगामिनी विद्याका विस्मरण होना, वह विद्या—शुकराज द्वारा पुन. पाठ कराना, वायुवेगद्वारा शुकराज को भी आकाश-गामिनी विद्या पढाना—सिखाना.

ऋषि का तीर्थयात्रा से आश्रममें लोटना, शुकराज को विद्या प्राप्ति हुई है यह जानना-आशीर्वाद देना, वहां से विमान में बैठकर वायुवेग और पद्मावती को चंपापुरी जाना, अरिमर्दन राजा द्वारा शुकराज और पद्मावती के लग्न होना, वहां से वायुवेग विद्याधर के साथ शाश्वत तीर्थों की यात्रा करने जाना, और वायुवेग के आग्रह से उसके 'गगनवल्लभनगर' में जाना, वहां वायुवेगा के साथ शुकराज का दूसरा लग्न होना, और वहां से श्रीअष्टापदजी महातीर्थ की यात्रा को जाना, मार्ग में चक्रेश्वरी द्वारा पुकारना और उस से मिलन, शुकराज का देवी के साथ अपने माता को संदेशा भेजना, तीर्थ-

यात्राकर के अपने नगर प्रति जाना और उत्सव के साथ नगर प्रवेश करना. दिनों के बाद यकायक सारगपुर के वीरागद राजा का पुत्र सुरकुमार को हंसराज के साथ युद्ध करने आना उस युद्ध में सुर का बेहोस होना और हंसराज उस की शीतवायु आदि द्वारा शुश्रुषा करता है. युद्ध कारण पूर्व का वैरभाव जानना और परस्पर क्षमा प्रदान करना.

प्रकरण ३७ . . . . पृ. १०० से ११६

श्रीदत्त केवली के द्वारा सुर का पूर्वजन्म कथन

श्रीदत्त केवली द्वारा सुना हुआ गत जन्म का कथन, सुरकुमार सबके आगे कहता है, हंसकुमार और सुरकुमार का द्वेषका कारण सब जन जानने पाते है, गत जन्म में सिंह मंत्री द्वारा चरक सेवक को पीटा जाना, चरक का जीवका श्रीजिन पूजा के प्रभाव से सुरकुमार होना, इत्यादि वृत्तान्त सुनकर लोग विस्मय हुए, उतने में वहा एक बालक का आना, मृगध्वज राजा को प्रणाम करना, उस से राजा पूछते है, तुम कौन हो ? इसी बिच आकाशवाणी होती है, बालक के साथ राजा मृगध्वज का कदली वन में योगिनी के पास जाना, उस के द्वारा चन्द्रावती के पुत्र का परिचय पाना, चन्द्रशेखर को कामदेव का वरदान, वैसे मिला और चन्द्रावती का दुष्कृत्य और यशामती का परिचय, .चन्द्राक से यशोमती की कामाभिलाप, उस का योगिनी होना, यह सब वृत्तान्त जानकर मृगध्वज का मन उदास होना, शीघ्र ही दीक्षा का अभिलाप होना तथापि मंत्रीयों के आग्रह से नगर में जाना, शुकराज को उत्सवसहित राज्य–आरोहन करा देना. गृहस्थ–अवस्था में ही शुभ भावना के योग से मृगध्वज राजा को रात्री में केवल ज्ञान प्राप्त होना, देवतादि के द्वारा केवल ज्ञान का महोत्सव करना, राणी कमलमाला, हंसराज और चन्द्राक आदि का दीक्षा ग्रहण करना, चन्द्रावती का राज्याधिष्ठायीका को प्रसन्न करना और चन्द्रशेखर के लिये शुकराज का सारा राज्य मांगना, देवी द्वारा समय की राह देखने के लिये कहना.

प्राप्त होगा ?" मुनीश्वरने फरमाया कि, "चन्द्रावती के पुत्र को देखोगे तब" मुनीश्वरने वहा से विहार किया, सभाजन आदि नगर मे आये.

चंद्रशेखर

मृगध्वज राजा गुरुदेव द्वारा धर्मोपदेश सुनकर सदा मन में धर्म रखते थे और सोचते रहते थे कि, यह असारसंसार मे मेरा कब छुटकारा होगा ? ऋषिपुत्री कमलमालाने दूसरे पुत्र हंसराज को जन्म दिया, एक दिन गागलि ऋषि का राजसभा मे आगमन, शुकराज का उनकी साथ आश्रममें जाना, गौमुख यक्ष के साथ ऋषि का श्री सिद्धाचलजी की यात्रार्थ जाना, शुकराज द्वारा जिनमन्दिर व आश्रम की देखभाल करनी, एक रात को रात्रि में कोई स्त्रीका करुण रुदन सुनना, उसकी तलास करने जाना, कारण जान कर पद्मावती राजपुत्री का वन मे खोज करने जाना, विद्याधर वायुवेग की मुलाकात, वायुवेग को लेकर जिनमन्दिर मे दर्शन करने जाना, वहा पद्मावती की भेंट होनी. दोनों को आश्रम में लाकर स्वागत सन्मान करना, वायुवेग को आकाशगामिनी विद्याका विस्मरण होना, वह विद्या-शुकराज द्वारा पुन पाठ कराना, वायुवेगद्वारा शुकराज की भी आकाश-गामिनी विद्या पढाना-सिखाना.

ऋषि का तीर्थयात्रा से आश्रममें लौटना, शुकराज को विद्या प्राप्ति हुई है यह जानना-आशीर्वाद देना, वहा से विमान में बैठकर वायुवेग और पद्मावती को चंपापुरी जाना, अरिमर्दन राजा द्वारा शुकराज और पद्मावती के लग्न होना, वहां से वायुवेग विद्याधर के साथ शाश्वत तीर्थों की यात्रा करने जाना, और वायुवेग के आग्रह से उसके 'गगनवल्लभनगर' में जाना, वहां वायुवेगा के साथ शुकराज का दूसरा लग्न होना, और वहां से श्रीअष्टापदजी महातीर्थ की यात्रा का जाना, मार्ग में चक्रेश्वरी द्वारा पुकारना और उस से मिलन, शुकराज का देवी के साथ अपने माता को संदेशा भेजना, तीर्थ-

सातारर से अपने नगर प्रति आना और उत्सव के साथ नगर प्रवेश करना. दिनों के बाद [illegible] शत्रु के वीरांगद राजा का पुत्र सुरकुमार को हंसराज के साथ युद्ध करने आना, उस युद्ध में सुर का बेहोश होना और हंसराज उस की शीतल [illegible] आदि द्वारा शुश्रूषा करता है. युद्ध कारण पूर्व का वैरभाव जानना और परस्पर क्षमा प्रदान करना.

प्रकरण ३७ . . . . पृ. १०० से ११६

श्रीदत्त केवली के द्वारा सुर का पूर्वजन्म कथन

श्रीदत्त केवली द्वारा सुना हुआ पूर्व जन्म का कथन, सुरकुमार राजके आगे कहना है, हंसकुमार और सुरकुमार का द्वेषका कारण सब जन जानते रहते हैं, एक जन्म में सिद्ध मन्त्री द्वारा चोर [illegible] को पीटा जाना, चोर का अंतिम श्रीजिन पूजा के प्रभाव से सुरकुमार होना, इत्यादि वृत्तान्त सुनकर सब विस्मय हुए, उतने में वहां एक बालक का आना, मृगध्वज राजा को प्रणाम करना, उस से राजा पूछते हैं, तुम कौन हो ? इसी बीच आकाशवाणी होती है, बालक के साथ राजा मृगध्वज का कदली वन में योगिनी के पास जाना, उस के द्वारा चन्द्रवती के पुत्र का परिचय पाना, चन्द्रशेखर को कामदेव का वरदान, कैसे मिला और चन्द्रवती का दुष्कृत्य और यशोमती का परिचय, चन्द्रांक से यशोमती की कामाभिलाष, उस का योगिनी होना, यह सब वृत्तान्त जान कर मृगध्वज का मन उदास होना, शीघ्र ही दीक्षा का अभिलाष होना तथापि मंत्रियों के आग्रह से नगर में जाना, शुकराज को उत्सवसहित राज्य-आरोहण करा देना. गृहस्थ-अवस्था में ही शुभ भावना के योग से मृगध्वज राजा को क्षणी में केवल ज्ञान प्राप्त होना, देवतादि के द्वारा केवल ज्ञान का महोत्सव करना, राणी कमलमाला, हंसराज और चन्द्रांक आदि का दीक्षा ग्रहण करना, चन्द्रवती का राज्य-धिष्ठायीका को प्रसन्न करना और चन्द्रशेखर के लिये शुकराज का राज्य मांगना, देवी द्वारा समय की राह देखने के लिये कहना

प्रकरण ३८ . . . . पृ. ११७ से १२३

शुकराज का यात्रा के लिये गमन

मृगध्वज केवली 'क्षितिप्रतिष्ठित' नगर से विहार कर गये, शुकराजका न्याय से राज्यपालन करते समय पसार होता है, कोई एक दिन महाराजा शुकराज का अपनी दोनों पत्नी के साथ शाश्वत तीर्थो की यात्रा के लिये गमन करना, चन्द्रावती की सूचनानुसार चन्द्रशेखर का शुकराज के सदृश रूप धारण करके आना और कपट जाल फैलाना, शुकराज के रूपमें राजपुरा हाथ करना, चारण मुनिवर से अष्टापदजी पर धर्मदेशना सुन कर देव और गुरुवर को नमस्कार कर शुकराजका अपने नगर के उद्यान में आना.

तीर्थयात्रा करके उन शुकराजका अपनी पत्नीयां सह वापस आया देखा, तब कपटी चन्द्रशेखर द्वारा मंत्री को असली शुकराज को वापस जाने के लिये कहेने भेजना शुकराज और मंत्री का वार्तालाप-भाग्य-कर्म की विचित्रता मानकर, शुकराज अपनी पत्नीयां सह वहां से रवाना होता है, और आकाश में विमान रुक जाता है वहां मार्ग में केवली भगवान-पिता मुनि का मिलन होता, केवली मुनिकी धर्मदेशना, श्री विमलाचल महा तीर्थ की गुफा में छ मास तक नमस्कार महामंत्र का जाप-साधना करने जाने के लिये कहना, श्री केवली मुनि के कथनानुसार महातीर्थ पर जाप करते गुफा में प्रकाश होना शुकराज का पुण्य प्रगट होना, चन्द्रशेखर को देवीने कहा, 'आज से तुमारा शुकराज रूप चला जायगा,' यह सुनकर चन्द्रशेखर का भयभीत होना और वहां से चले जाना असली शुकराज का आना मंत्रीयों द्वारा सन्मानित होना, अपना राज्य सम्भालना दिना के बाद अनेक विद्याधर आदि चतुर्विध के साथ उत्सव सहित महातीर्थ श्री विमलाचल पर यात्रार्थ आना उस महातीर्थ का 'श्री शत्रुंजय' नया नाम जाहेर करना

भटकत भटकते चन्द्रशेखर का तीर्थ पर आना पापका पश्चात्ताप होना, वैराग्य प्राप्त कर श्री महोदयमुनि के पास दीक्षा ग्रहण करनी और

र्म क्षय होने पर चन्द्रशेखर को केवलज्ञान प्राप्त होना. श्री महोदयमुनि से शुकराज का प्रश्न पुनः मुनि संदेह निवारण करते हैं. उस ज्ञानीमुनि द्वारा पूर्व भव कथन और श्री चन्द्रशेखर मुनिवर से परस्पर क्षमा याचना.

शुकराज को पुत्र प्राप्ति

शुकराज के वहां पुत्र जन्म, उस पुत्र का नाम चन्द्र रखा जाता है, एक रोज श्री कमलाचार्य नामक धर्माचार्य से मिलन-वन्दना करना, उनके द्वारा कर्म और उद्योग की शक्ति जाननी. मुनिवर द्वारा धीर वणिक और धनगर्वित भीम एवं अरिमर्दन राजा का वृत्तान्त तथा भीम और श्रीदत्त वणिक का रोचक उदाहरण देकर बोध प्रदान करना

मंत्री द्वारा रत्नकेतुपुर नगर ढुंढने के लिये जाना

अरिमर्दन का मेहीकदोई की स्त्री द्वारा मंत्री के साथ रत्नकेतुपुर जाना वेश परिवर्तन करना, अरिमर्दन का राजकुमारी से मिलना. पश्चात् अपने नगर में जाकर सैन्य साथ कदोई की स्त्री की सहाय से रत्नकेतुपुर आना वहां के राजा से मुलाकात, पुरुषद्वेषिणी राजपुत्री सौभाग्य सुंदरी में परिवर्तन लाकर लग्न करना. सौभाग्यसुंदरी का माता होना पुत्र का नाम मेघकुमार रखना. वरसों जाने पर मेघवती के साथ मेघकुमार का लग्न.

एक दिन श्री आदिनाथजी की पूजा के लिए राजा अरिमर्दन परिवार लेकर जाता है. श्री आदिनाथजी की मूर्ति देखते ही मेघकुमार और मेघवती का मूर्छित होना. उपचार करने से शुद्धि में आते है पर बोलते नहीं सकल प्रयत्न वृथा होते है. आखिर गुरुदेव श्रीगुणसुरिजी महाराज के पास जाना सुरिवर के द्वारा मेघकुमार और मेघवती का पूर्वजन्म जानना. वृत्तान्त संपूर्ण

होते दोनों दीक्षा ग्रहण करते हैं. अरिमर्दन का सम्यक्त्व व्रत ग्रहण करना. ये वृत्तान्त सुनकर वैराग्य होना और शुकराज का अपने पुत्र को राज देकर दीक्षा ग्रहण करना.

अरिमर्दन राजा का नारीद्वेष

महाराजा विक्रम श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी की साथ श्री शत्रुंजय गिरिराज की यात्रा करते है, वहां मंदिर का जीर्णोद्धार कराना, ओर अवंती आना. दरबार में एक गरीब मनुष्य का आना. उसको द्रव्य देना. वो गरीब मनुष्य नंदराजा की कथा सुनाता है, जिस से राजा प्रसन्न होकर बहुतसा धन देता है.

विक्रमादित्य का वेशपरिवर्तन कर नगर निरीक्षण

महाराजा विक्रम का प्रजाके सुख दुःख जानने के लिये रात्रिभ्रमण, जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि का अनुभव होना. राजा व्यसनोको नगरसे निकालते है फीर चोरों के साथ भ्रमण कर राजमहल में चोरी करवानी तथा उनकी शक्ति का परिचय और उनको पकड कर सच्चा राह दीखाना. महाराजाका बुद्धिकौशल्यता का अपूर्व नमूना

सर्ग नवमा

देवदमनी

महाराजा विक्रम एक दिन आनंद विनोद करने को गये थे, वापस आते समय देवदमनी के शब्द सुन कर महाराजा शोच में पड गये. राजसभा में

मारीको भेजा, राजकुमारी तीर लेकर वापस आई और आगे प्रयाण किया, वे लक्ष्मीपुर के उद्यान में पहुँचे महाराजा वनमें ही राजकुमारी और रत्नपेटी को छोड कर भोजन सामग्री लेने को नगर में गये उसी समय रुपश्री वेश्या वहा आई, कपट कर राजकुमारी और रत्नपेटी को अपने घर ले गई, उस को वेश्या जीवन जीने को कहा, बाद में कोटवाल के पुत्र को सौंप दी, राजकुमारी झरुखे मे बैठी थी उस समय बिल्ली चुहे का ले जा रही थी, उस को कोटवाल पुत्रने मीट्टी को ढेला मारा और अपनी बहादुरी का गुणगान गाने लगा राजकुमारी का उस पर नफरत आई, और जल कर मर जाने का निर्णय किया, रुपश्री महाराज के पास दौडी, राजकुमारी जलने जा रही थी, वहा महाराज आये उसको समझाने लगे, वहा महाराजा विक्रम आ पहुँचे, राजकुमारी और महाराजा विक्रम का मिलन हुआ, परिचय-लग्न वेश्या को अभयदान देकर रत्नपेटी लेना और अवंतीगमन.

उमादेवी

नागदमनी के कहने से महाराजा 'सोपारक' नगर में सोमशर्मा के वहा छद्म रूप में रहने लगे, और सोमशर्मा की पत्नी उमादेवी का चरित्र देखने लगे उमादेवी के पास 'सर्वरस दड' होने से वह दगमभा म जाती थी.

महाराजा विक्रमने अग्निवैताल की सहायता से उसके पीछे जाकर सब कुछ सुना-देखा, दुसरे दिन गुरु से वहा और गुप्त रूप में वृक्ष में दिखाया सोमशर्माने भी सब कुछ देखा-सुना और आगे क्या करना उस की मन्त्रणा महाराजा विक्रम के साथ की, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन क्षेत्रपालने जयमा वहा था वयमा उमादेवीने किया बलिदान देनेकी तैयारी की महाराजा विक्रम सर्वरस दड को लेकर भागे, उन के पीछे सब कोई भागे.

उमादेवी का समाचार मंगवाया.
वस्तुमती द्रव्य देकर संतुष्ट किये.
साथ महाराजा अवंती पहुँचे.

प्रकरण ४६ . . . . पृष्ठ २८६ से ३१०

मंत्रीश्वरका देशनिकाल व महाराजा का पाताल प्रवेश

नागदमनी के कहेने से महाराजा मंत्री मतिसार के कुटुंब कानगरी से दूर करते हैं, किन्तु मंत्रीकी छोटी पुत्रवधू अपनी होशियारी से दुःख के समय में आश्वासनरूप होती हैं, फिर भी भाग्य अपना रंग जमाता है, दुःखी को दुःख ही मिलता है

एक दिन नागदमनी के कहेने से महाराजा विक्रम मतिसार मंत्री का बुलाने का जाते हैं. वहां पर पटह का शब्द सुन कर मंत्री को स्वर्ग दर्शन को कहेना, और इन्द्रजालिक की बनाई हुई वाटिका को पुन: युक्त करना ए देख कर राजा अपनी पुत्री विश्वलोचना का लग्न महाराजा

विक्रम से करता है जनता उस पर कुछ न कुछ बोलती है मंत्री मति सार महाराजा का परिचय देता है

अग्निवैताल की सहायता से सदा फल देनेवाला आमका बीज लेकर मन्त्री के साथ महाराजा अवंती गये नागदमनीने महाराजा का सुवर्ण दान देने को कहा महाराजाने वैसा ही किया

एक दिन महाराजा घुमते घुमते पुरोहित के घरके पास आये वहा हरताली और नेत्रुवा संवाद सुना महाराजाने उस का चरित्र देखनेको बटुकका रूप लिया हरतालीका और सखीओं का भार अपने मस्तक पर लेकर उनके पीछे पीछे महाराजा चले सखियाँ वसुधा स्फोटक दंड से पृथ्वी फोड पाताल में गई वहा विषनाशक दंड से सर्प को दूर करते सरोवर में स्नान करने गई दंड और पुष्पछाब बटुक महाराजा विक्रम को देकर जलक्रीडा करने लगी

महाराजा विक्रम अग्निवैताल की सहायतासे लग्न करने को तैयार हुवे नागकुमार को अदृश्य कर नागकुमार जैसा अपना रूप बनाकर श्रीदकी पुत्री से पाणीग्रहण किया

वह तीनों सखियाँ वहाँ जब आई तब विक्रम महाराजाने अपना बटुक का रूप बनाया उन्होंने दंड मांगा महाराजाने अपना रूप प्रगट किया ये देख कर वह ताज्जुब हुई शादी करने को तैयार हुई महाराजाने उनहीं की साथ शादी की बाद में नागकुमारों को प्रगट किये नागकुमारोंने सुरसुंदरी नामक कन्या और मणिदंड महाराजा को दिया चंद्रचूड नाग कुमारकी कन्या कमला का लग्न नागकुमार से करके दंड और कन्याओं के साथ महाराजा अवंती को आये नवमा सर्ग समाप्त

तृतीय भागः—सर्ग दसवाँ

पृष्ठ ३११ से ४५५ .... प्रकरण ४७ से ५५

प्रकरण ४७ . . . . पृष्ठ ३११ से ३३३

कवि कालिदास का इतिहास :

परंतु शुभ जन न्यायी महाराजा विक्रमादित्य को प्रियगुमजरी नामक पुत्री थी उस को वेदगर्भ नामक विद्वान पढाते थे, एक दिन वेदगर्भ दूर से आ रहे थे उस समय प्रियगुमजरीने उनका उपहास किया. वेदगर्भ से यह सहन न हुवा, और शाप दिया, वह शाप विधिने उन्हों के हाथों से पूर्ण करना निर्मित किया था.

पुत्री के लग्न विषय में चिन्तित महाराजाने वेदगर्भ को सुदर वर की खोज करने को कहा, वेदगर्भने वह मजुर किया, प्रस्थान किया, कई दिनों के बाद एक ग्वाला के परिचय में आये, उन को वे लेकर आये और उनको राजसभा मे उठते बोलना, चलना, बैठना वगैरेह शिखाया

एक दिन उसको लेकर वेदगर्भ सभा में आया. वह ग्वाला स्वस्ति कहेना भूल गया और उपरट बोल गया. वेदगर्भने उसका अर्थ-रहस्य समजाया, महाराजा बहुत प्रसन्न हुवे-आखिर में वह ग्वाला की साथ राजकुमारी का लग्न हुवा

दिनो के बाद अपना पति मूर्ख है वह राजकुमारी जान गई. ग्वाला को भी अपनी मूर्खता के लिये दुःख हुवा और काली माता की उपासना करने चला, उपासना करने पर देवी प्रसन्न न हुई. राजाने चिन्तित होकर देवी को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया. किन्तु परिणाम शुभ नहि

आया अत में काली नामक दासीको वहां भेज कर वरदान के शब्द कहलाये. वह सुनकर कालिदास प्रसन्न हुए. वहां राजकुमारी आयी, देवी कालिकाने प्रत्यक्ष होकर कालिदासी का वचन प्रमाण किये. रवाला महान कवि कालिदास हुवे.

महाराजा विक्रम का देशाटन के लिये जाना.

महाराजा विक्रम अपने साथ पाच रत्नो लेकर पद्मपुर मे आये, वहा उनहोने प्रथम दृष्टि से एक तापस को निर्लोभी मान कर अपने रत्न उस की पास रखने को गये तापसने हा ना किया, पर अन्त मे महाराजा वहां रत्न छोडकर चले.

महाराजा भ्रमण करके वापस आये, और जहां तापस की मढुली थी वहा एक आलिशान मकान देखा, तापस का भी देखा, उसकी पास जा कर महाराजाने अपने रत्नो के लिये कहा, तापसने इन्कार किया महा राजा मंत्री और राजा के पास फरियाद करने चले, पर उनहीं की चाल देख कर निराश हुए, अपने रत्नो की तहकिकातमनी दिखाई नहीं

कामलता वेश्या से महाराजा का मिलन हुवा दोनो ने मन्त्रणा का और तापस के पास जाने का समय ठीक कर लिया

पूर्व संकेतानुसार प्रथम महाराजा तापस के पास आये और अपने रत्न के लिये मांग कि, उसी समय कामलता वेश्या थाल मे रत्नो लेकर आई और तापस को अपनी पुत्री जल कर मर रही है इससे अपनी सारी संपत्ति भेट करनी है इत्यादि कहने लगी, तापस संपत्ति के मोह में पडा, और महाराजा विक्रम के पांचो रत्न देकर अपनी प्रतिष्ठा रखने का प्रयास किया. महाराजाने एक रत्न तापस को भेट किया, उसी समय कामलता की दासी आई और कहा, ' आप की पुत्रीने जल कर मरने का

लग्न के समय महाराजाने बहुत सी सावधानी रखी. पर विधि का लेख मीट नहीं सक्ता. ढाल में से सिंह उत्पन्न हुआ और वरराजा को मार डाला. आनंद की जगह हा.. हाकार हो गया, सब रोने लगे, महाराजा विक्रम आश्वासन देते हुए अपना बलिदान देने को तैयार हुए. देवी की प्रार्थना की, देवी प्रगट हुई और बालक को सजिवन किया तत्पश्चात् महाराजा अवंती गये.

प्रकरण ५१ . . . . पृ. ३७९ से ३८७

रत्नप्राप्ति व उस का मूल्य

एक दिन महाराजा विक्रमादित्य समक्ष एक वणिकने अमूल्य रत्न लाकर रखा. उस का मूल्य कराने को जोंहरीओं को बुलाये. वे मूल्य कर न सके, किन्तु उन्होंने कहा, 'इसका मूल्य बलिराय करेंगे' महाराजा वणिक से रत्न लेकर पताल में गये. अपनी बुद्धि से बलिराय की मुलाकात की, रत्न का मूल्य पूछा, रत्न देख कर बलिरायने युधिष्टिर की कथा कही और मूल्य बताया, महाराजाने अवंती में आकर वणिक को बुलाकर रत्न का मूल्य दिया.

प्रकरण ५२ . . . . पृ. ३८८ से ४०५

एकदंडिया राजमहेल

एक दिन रात्रिचर्या में सौभाग्यसुंदरी नामक कन्या का वचन सुन कर महाराजाने उसकी मां से मांगनी की. और उस को सौभाग्यसुंदरी बताने को कहा, उसको एकदंडिया महल में रखी. समय बीतने पर गगनधूली से सौभाग्यसुंदरी की आंख मिली. उसने एक पत्र डाला, गगनधूली पत्र पढकर उस को मिलने आया, और हमेशा वो आता जाता रहने लगा. एक दिन महाराजा ये बात जान गये, उस पर विचार करते महाराजाने राजदरबार में योगी की मायाजाल भी देखी.

महाराजाने सौभाग्यसुंदरी को भोजन बनाने को कहा, योगी को वहा बुलाया, योगी आया, भोजन के लिये बैठा. महाराजाने योगी के पास स्त्री को प्रगट करवाई, स्त्री के पास पुरुष प्रगट करवाया, और सौभाग्यसुंदरी मे गगनधूली.

महाराजाने सब को अभयदान दिया और गगनधूली मे अपना परिचय देने को कहा, गगनधूलीने अपना परिचय देना शरू किया, कोशाम्बीपुरी के चन्द्रशेठ की लडकी रुक्मिनी से कयसे शादी हुई, वेश्या की मोहजाल में कयसे फँसा, अपने बापकी मिलकत कयसे फना की, अपनी पत्नी गरीबी हालतमे घरबार छोडकर एक तावीज के साथ अपने बापके घर कयसे गई, वेश्या के घर से कयसे निकाला गया, अपनी पत्नी के हाथ से कयसे भिक्षा ली और अपनी स्त्री का कुचरित्र देखा, उस के प्रेमीने उसे क्यों मारा, और उस के हाथ से गिरा हुवा तावीज उस के हाथ में कयसे आया, तावीज मे रहा हुआ रहस्य जानकर वह कयसे अपने गांव आया.

प्रकरण ५३ . . . . पृष्ट ४०६ से ४२३

गगनधूलीका रहस्यमय जीवन वृत्तांत चालु

तावीज मे रहा हुआ रहस्य जानकर अपने घर में खुदाई का काम शरू किया, उस को धन मिला, वह पुनः श्रीमंत हुवा, अपने श्वसुर के घर गया, वहां रात को अपनी स्त्री से उसका चरित्र कहा, सुनते ही रुक्मिणीने अपना प्राण छोड दिया, उस के बाद रुक्मिणी की बहन सुप्पा से लग्न किया, सुप्पाने अपने पतिव्रत की प्राप्ति के लिये कभी भी न मुरझाने वाली पुष्पकी माला दी.

यह सुनकर सुप्पा के पतिव्रत की परीक्षा करने का महाराजाने निश्चय

किया. अपने सेवकों से अपना निर्णय कहा. मूलदेव नामक सेवक जाने को तैयार हुवा. गगनधूली के गाँव में जा कर मूलदेवने एक वृद्धा से परिचय किया उसके द्वारा जाल बिछाई, बिछाइ हुई जाल में खुद ही फस गया. मुल्पा का कैदी बना.

दिनों के बाद शशीभृत गया, वही वृद्धा को मिला, शशीभृत और वृद्धा दोनों मुल्पा के वहां कैदी हुवे अब खुद महाराजा गगनधूली के साथ आये. मुल्पाने ये तीनों को एक पेटी में बंध कर महाराजा को दिये, रास्ते में उन्होंका परिचय-घटस्फोट हुवा, महाराजा गगनधूली के गाँव वापस आये, और गगनधूली-मुल्पा को अभिनंदन दे कर आगे गये.

स्वामीभक्त अघटकुमार

ज्योतिषी चन्द्रसेन का भविष्य कहता है, उस चन्द्रसेन और मृगावती की कामलोलुपता चन्द्रसेन का ज्योतिषी को महाराजा के पास ले जाना वहां दुसरे दिन ज्योतिषी पट्टहस्ति का मृत्यु होनेवाला है, कहता है, इस बात की परीक्षा करने को ज्योतिषी को राजा अपने वहां रखता है.

दुसरे दिन हाथी पागल हो जाता है, एक ब्राह्मणी को अपनी सूंढ में लेकर मारने को तैयार होता है, राजकुमार का यकायक आना राजकुमार और हाथी का युद्ध, हाथी का मृत्यु, प्रजा में हर्ष होना, राजकुमार को अभिनंदन देना, इस अभिनंदन समारंभ में मुख्य मंत्री के सिवा सब कोई आते हैं इस से राजा मंत्री से नाराज होते है, मंत्री अनुपस्थि का प्रयोजन कहता है इस हाथी के मरण से दुश्मनों आनंद मनायेंगे, ये सुनकर राजा राजकुमार पर अप्रसन्न हो जाता है, राजकुमार इस बर्ताव का अपमान समज कर राज छोडकर अपनी पत्नी के साथ चला जाता है, रास्ते में पुत्र का जन्म होता है.

तीनों अवंती में आते हैं पत्नी और पुत्र को श्रीद्‌शेठ की दुकान पास बीठा कर राजकुमार नौकरी की खोज में जाता है. उसी समय श्रीद् को ज्यादा विक्रा होने से वह ये मा-लडके के पास आता हैं. उतने मे राजकुमार भी आता है, और अवंती छोड कर जाने की बात करता है. श्रीद् शेठ उन्हों को अपने घर रखता है, रात मे परिचय बढता है, साडी व घोडी इनाम मे देता है.

प्रकरण ५५ . . . . पृ. ४३९ से ४५४

रूपचन्द्र की परीक्षा

श्रीद् सेठ से रूपचन्द्र राजकुमार महाराजा विक्रम से मिलने का उपाय पूछता है. श्रीद् शेठ उस को रास्ता बताता है, किन्तु वह ठीक मालुम नहीं होने से खुद फलफलादि लेकर जाता है. पहेरगीर उस का राजसभा मे नही जाने देता है. रूपचन्द्र उस को लप्पड मारकर स्वयं सभा मे जाता है, महाराजा को भेट देता है महाराजा प्रसन्न होते हैं, और उस को रहने के लिये मकान की व्यवस्था करने की भट्टमात्र को आज्ञा देते है. उसी पहेरगीर को महाराजा की आज्ञा का अमल करना पडता है, वह रूपचन्द्र को अग्निवैताल का भयजनक मकान रहने के लिये दिखाता है.

रूपचन्द्र मकान देखकर खुश होकर पत्नी और बच्चे को लेने के लिये जाता है, श्रीद् सेठ को सब बातन कह कर अपने भाग्य पर भरोसा रखकर पत्नी-पुत्र के साथ मकान पर आता हैं, बहार जाता है, उसी समय अग्निवैताल भूतगण के साथ वहा आता है, और उस का पराभव होता है. रूपचन्द्र अग्निवैताल पर बैठ कर शहर मे घुमकर राजसभा मे जाता है. महाराजा उस का नाम अघटकुमार रखता है और अंगरक्षक बनाता है.

एक रातको करुण रुदनस्वर सुनकर महाराजा अघटकुमार को प्रयोजन जानने को भेजते है और वह भी पीछे पीछे जात है. *देवी उस स्दन*

कर रही थी वहां अघटकुमार आता है. महाराजा वहां आकर छुप जाते है, रुदन का प्रयोजन अघटकुमार पूछता है, 'राजा कल मरजानेवाला है.' देवी कहती हैं, अघटकुमार महाराजा को बचानेका उपाय पूछता है, देवी उन को उसका पुत्र का बलिदान देने को कहेती है. और अघटकुमार अपने पुत्र का बलिदान देकर ही रहता है, बलिदान देकर अघटकुमार चला जाता है, बाद में महाराजा वहा आकर दवी के सन्मुख मरने को तैयार होते है, देवी प्रगट होकर महाराजा की इच्छा पूर्ण करती है. बच्चा का सजीवन करती है. दूसरे दिन महाराजा अघटकुमार को सहकुटुंब अपने वहा बुलाते है अपनी पत्नी के साथ अघटकुमार महाराजा के वहा जाता हैं. महाराजा बच्चे के लिये पूछते है, अघटकुमार ज्यों त्यां जवाब देता है. अत में घटस्फोट होता है

वफादार अघटकुमार को महाराजा विक्रमने जागीरी दी वह अपने राज में गया, पिताका वारसा प्राप्त कर न्यायी राजा होता है महाराजा विक्रम और रूपचन्द्र की परस्पर प्रीति बढती है.

सर्ग ग्यारहवॉ

महाराजा विक्रमादित्य का पूर्वभव श्रवण व प्रायश्चित्

महाराजा विक्रमादित्यने आचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी से अपना पूर्वभव के लिये पूछा, आचार्यश्री ने महाराजा का पूर्वभव कहा साथ ही साथ भट्टमात्र, अग्निवैताल और खर्पर के सबंध में भी कहा, और अत में पापका प्रायश्चित लेने की आवश्यकता बताई, और हरेक जीवको प्रायश्चित

लेना ही चाहिये कहा, महाराजाने गुरुदेव समक्ष सम्यक् आलोचना ली और पुण्य कर्म करने लगे, सो जिनालय और एक लाख जिन बिम्ब भी बनवाये.

समस्या-पादपूर्ति

लक्ष्मीपुर नगरके राजा अमरसिंहको एक पुत्र और पुत्री थी. पुत्र का नाम श्रीधर और पुत्री का नाम पद्मावती, बुद्धिशाली पद्मावती विद्वान थी साथ ही एक तोता भी पंडित था, दोनोंने अपनी बुद्धि-मत्ता दिखाई.

पुत्री जब विवाह योग्य हुई, तब तोतासे मंत्रणा कर दूर देशके राजकुमारों को निमंत्रण दिया, चारों दिशासे आये हुवे राजकुमारों चारों दिशामें बैठे, तोताने क्रमशः राजकुमारों को भिन्न भिन्न समस्या कह कर पूर्ण करनेको कहा, किन्तु सब आये हुए राजकुमारो का प्रयत्न निष्फल गया.

कुछ दिनों के बाद तोता, राजकुमारी और मंत्रीश्वरादि योग्य वर की शोधमें निकले, जहा जाते वहा समस्या कहते, किन्तु कोई पूर्ण कर नहि सकता. आखिर भ्रमण करते वे अवंती में आये, तोताने महाराजा से वृतान्त कहा, महाराजा विक्रमादित्यने पादपूर्ति करके पद्मावती से लग्न किया.

गुलाब में कंटक

पद्मावती के प्रेमपाशमें बंधे हुए महाराजासे दवदमनी और अन्य रानियोंने पक्षपात की फरियाद की, और स्त्रीचरित्रमय कथा कहना शुरु की, पद्मा की और रमा की कथा कह कर सत्य का दर्शन कराया.

कोची हलवाइन के यहां महाराजा का पहुँचना

कोची हलवाईन के यहां महाराजा का जाना, कोची उनको पहचान लेती है, स्नानादि करा कर चुपचाप एक पेटी में बैठने को कहती है, महाराजा वैसा ही करते हैं, थोडी ही देर में बुद्धिसागर मुख्य मन्त्री वहां भेट लेकर आता है और दिलकी बात कहता है, कोची उसी को मोरपीछी-लेखनी देकर पेटीमें बैठाती है, पेटी वहां से उडकर महारानी मदनमंजरी के महल में जाती है, मदनमंजरी बुद्धिसागर को प्रेमसरोवर में स्नान कराती है, महाराजा अपनी पत्नी और मन्त्री का दुष्ट कृत्य देखकर लालपीले होते हैं किन्तु शांति नहीं छोडते.

प्रातःकाल होने से पहले मन्त्रीश्वर पेटी मे बैठकर कोची के घर आते है, और मोरपीछी देकर, अपनी और मदनमंजरी की ओर से नमस्कार कर जाता है, बाद में कोची हलवाइन महाराजा को पेटी से बहार निकाल कर कोधकी शान्ति के लिये उपदेश देती है, महाराजा उसको नमस्कार कर महल को आते हैं, दूसरे दिन बुद्धिसागर मन्त्री और रानी मदनमंजरी को देशनिकाल का दंड देते हैं.

छाहड और रमा

देता, और आता तब अमृतकूपिका से अमृत छाटकर रमा को जीवित करता, कितने दिनों के बाद उसको यात्रा जाने की इच्छा हुई उसने रमा से बात नहीं उसकी भस्म करके वृक्ष की शाखा के कोटर में गठडी बांधकर रखी और वह यात्रा के लिये चला गया, तत्पश्चात् एक ग्वाल वहा आया, उसने गठडी देखी, लेने गया तो भस्म मे अमृतबिंदु पड गया. यकायक रमा जीवित हो गई, और उस ग्वालसे आनंद-प्रमोद करने लगी.

छाहड का आने का समय हुआ, रमाने जलाकर भस्म करने को ग्वाल मे कहा, ग्वालने वैसा ही किया, भस्म की गठडी बांधकर कोटर में रख दी, यात्रा करके छाहड आया रमाको जीवित किया उसी समय उसके अंगसे वास आने लगी, खोज करत ही ग्वाल मिल गया सब वृत्तान्त जाना, इससे छाहडने विरक्त होकर तापस से दीक्षा ले ली. रमा भी कुमार्ग सेवन से पाप उपार्जन कर दुःखदायक नर्क में गई

दूसरे पंडितने लोहपुर में रहनेवालों की धुर्तताकी बात कही, महाराजाने वह गाव देखने का विचार किया, पहले भट्टमात्र को भेजा, उसके बाद महाराजा चले, रास्ते मे एक वन में ठंडे और गरम पानी के कुंड देखे, वानरलीला भी देखी, आश्चर्य गरकार हो उसने भी अजमायस की, और आगे चले, रास्ते में चोर मिले, उनसे घोडा, खाट, गुदडी और थाली लेकर लोहपुर आये घोडा बेचकर कामलता वेश्या के वहा रहे वेश्याने धन देनेवाली गुदडी और दूसरी चीज महाराजा से पडा ली और घरसे बहार निकाल दिये, रास्ते में भट्टमात्र से मुलाकात हुई उस को महाराजाने सब वृत्तान्त कहा. दोनोंने मंत्रणा कर जहा कुंड थे वहां गए और पानी लेकर कामलता वेश्या के वहा गये युक्ति से कामलतापे पानी छाटकर बंदरी बनाई, बाद में भट्टमात्रने महाराजा को योगीवेश पहना कर जंगल में विठाये और वह आया कामलता के वहा कामलता का अक्का कामलता बंदरी हो जाने से शोर मचा रही थी. भट्टमात्रने उसके पास आकर योगीराज की प्रशंसा की, वेश्या को वहा ले चला योगीमहाराजने लुटी हुई चीजें

मंगवाई, और अब से किसी के साथ फरेब-कपट नहीं करने का कहकर कामलता को बंदरी रूपसे मुक्त करके अवंती चले.

प्रकरण ६३ . . . . पृ. ५५२ से ५८१

महाराजा का मन्दिरपुर नगर में जाना

एक दिन महाराजा मन्दिरपुर गये थे. वहा का सेठ भीमका पुत्र मर गया था, उस को चिता मे रखने थे तो भी बारबार वहा से घर चला आता था. यह बात वहा के राजा को सुनाई गई, राजाने ये शव को जलाने-वाले को इनाम दिया जायगा ऐसा ढिंढोरा पिटवाया. महाराजा विक्रम शव लेकर श्मशान में आये, वहा डाकन से मुलाकात हुई. उस का चरित्र देखकर महाराजाने ललकारा, डाकन अदृश्य हो गई, दूसरे प्रहर में शव के पास जंगल में सोये थे, वहा से राक्षस उठाकर दूसरे जंगल में ले गये, वहां धधकती हुई आग पे एक बडी कडाहि रखी थी, उसमें राक्षसो लोगों को डालते थे. वे जब महाराजा को डालने तैयार हुवे तब महाराजाने उनका सामना किया, और पराभव किया, जीवितदान दिया, तीसरे प्रहर में एक स्त्रीका रुदन सुन कर राक्षस से युद्ध किया. राक्षस को मारा, नारीको बचाई. चौथे प्रहर में शर्त कर के शबने जुआ खेलने लगे, शबको हरके उसको जलाया, मंदिरपुर आये पर वृत्तान्त कहा. राजाने इनाम दिया वह महाराजा विक्रमने गरियाँ को दिया. वहां से भ्रमण करते हुए महाराजा स्त्रीयों के राज मे आये, स्त्री ने उनको सदाचारी जानकर चौद रत्नों दिये वे रत्नों भी महाराजाने राज में गरिबों को दे दिये.

एक रातको महाराजा सोये थे उसी समय स्त्रीका रोने का अवाज सुनाई दिया, महाराजाने अपने अंगरक्षक 'शतमति' को भेजा, शतमति स्त्रीके पास पहुँचा, और रोने का कारण पूछा. 'महाराजा को सँाप आज डसेगा महाराजा का मृत्यु होगा.' उस स्त्री-देवीने कहा, कारण जानकर शतमति

वापस आया, उसी समय महाराजा सोये हुए थे. शतमति सांपकी राह देखने लगा उतने में काला भयकर साप आया शतमतिने उसे मार डाला, और एक वर्तन मे उस के टुकडे रख कर वर्तन को दूर रख दिया, सापके मुँह से कुछ जहर के बुद रानी की छाती पर गिरे थे. उसको शतमति अपने हाथों से पोंछने लगा, उसी समय महाराजा की आख यकायक खुल गई. शतमति का कृत्य देखा, और मारने का विचार हुवा, किन्तु शात रहे. समय पूर्ण होते ही उसको विदा किया, दूसरा अगरक्षक 'सहस्त्रमति' वहा आया, महाराजाने उसको शतमति को मार डालने की आज्ञा दी. सहस्त्रमति शतमति के वहा गया. उसी समय शतमति अपने घर पर नाटक करवा रहा था और दान दे रहा था उसका पवित्र चहेरा देख कर शतमति निर्दोष है ऐसा मान लिया, वापस आया और महाराजा को ब्राह्मणी और नेवला की कथा कह कर शाति से काम लेनेका कहा

उसका समय पूर्ण होतेही उस को विदा किया, तीसरा अगरक्षक 'लक्ष्मति' आया, उस को भी महाराजाने शतमति को मारने की आज्ञा दी, लक्ष्मतिने महाराजा को श्रेष्ठी पुत्र सुदर की कथा कहते हुए चार पडितो की तथा शशक और सिंह की कथा सुनाई

उसको भी समय पूर्ण हात ही विदा किया, चौथा अगरक्षक कोटिमति पहर पर आया महाराजाने उसको भा शतमति को मारने की आज्ञा दी. कोटमतिने कशात की कथा महाराजा को शात करने के लिये कही. उसका समय पूर्ण होत ही वह गया.

प्रात काल होने ही महाराजाने कोटवाल को बुलाया, शतमति को फासी और सहस्त्रमति, लक्ष्मति, कोटीमति इन तीनों को देशनिकाल की सजा करनेको उससे कहा, कोटवालने महाराजाने जो कहा सो किया

शतमति को जब फासी पे ले जा रहा था तो शतमतिने महाराजा से मिलने की विज्ञप्ति की, कोटवाल शतमति को महाराजा के पास ले

आया, रत्नमतिने साँप के टुकडे बताते हुए रात का सारा वृत्तान्त कहा, महाराजाने उस से संतोष हुआ और रत्नमति को गाव दिया. सद्धर्मनि, लक्ष्मति और कोटीमति को अच्छा इनाम दिया.

प्रकरण ६४ . . . . पृष्ठ ४८२ से ४९३

राजसभा में ब्राह्मण का आना

एक दिन एक ब्राह्मणने विक्रमचरित्र के लिए कहा. महाराजाने उस को नजरकैद करके साक्षात्कार करनेको चले, दूर देश में जाकर साक्षात्कार करके वापस आये, ब्राह्मण को छोड दिया, और द्रव्य भी दिया.

कुछ दिनों के बाद शालिवाहन से युद्ध हुआ. युद्ध में महाराजा की छाती में शालिवाहन का तीर लगा, उस से उन्हों का मृत्यु हुआ.

महाराजा की अंतिम क्रिया करके महाराजा विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र युद्ध करने को आया, शालिवाहन का पराजय किया, उस से संधी की, आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी म. विक्रमचरित्र को सांत्वन देने आये, और सर्वोत को महाराजा का शोकमुक्त किया.

सर्ग बारहवाँ

पृष्ठ ४९४ से ६४८ .... प्रकरण ६५ से ६७

प्रकरण ६५ . . . . पृष्ठ ४९५ से ६१८

श्री विक्रमचरित्र का राज्याभिषेक

राजकुमार विक्रमचरित्र जैसे सिंहासन पर बैठने गये उसी समय सिंहासन अधिष्ठायिका देवीने उस को रोका, और कहा, 'तुममें महाराजा

त्रिक्रमादित्य जैसी योग्यता नही हैं." साथ ही सिंहासन को जमीन में गाड देने का सूचन किया.

सिंहासन को जमीन में गाड दिया गया, और नया सिहासन बनवा कर विक्रमचरित्र को उस पर बिठाया विक्रमादित्य की बहनने नये महाराजा को आशीर्वाद दिया उसी समय सिहासन पर की चामरधारिणीयों हसी और महाराजा विक्रमादित्य के रोमाचकारी जीवनप्रसंग कहने लगी.

शुक्युगल के वचन से महाराजा, भट्टमात्र और अग्निवैताल को शुकने कहा हुआ नगर की खोजमे भेजते है, दोनों वह नगर शोधकर महाराजा को समाचार देत है महाराजा वहा जात है, और वहा की अबोला राजकुमारी का वामन ब्राह्मण की कन्या साविनी की, चार मित्रो की, दो मित्रा की, और विश्वरूपराजा की कथा कहकर अग्निवैताल की सहायता से चारवार बुलात है और उस कन्या से लग्न करत है

रुक्मिणी का ककण

दूसरी चामरधारिणी महाराजा विक्रमादित्य की गुण कथा कहने का शरु करती है

महाराजा की सभा में रुक्मिणी की कथा विप्रने कही, देवशर्मा की पुत्री को सौतीली मा हैरान करती है, उसी को नारदजी इन्द्रपुर से मिलन कराता है, उसरु स्वर्ग में ले जाते है, समय बितने पर नारदजी के सूचन से उसी का वापिस उसाके गांव लौटात है. रुक्मिणा घर को जाती है, उसी समय उसका एक दिव्य ककण मार्ग में गीर जाता है. रुक्मिणी जब घर का आती है तब उसकी सौतीली मा-कमला सब आभूषण युक्ति से ले लेती है.

जमील पे गिरा हुआ कंकण वहा के राजा के हाथ मे आता है. वह अपनी राणी को देता है, राणी दूसरा कंकण के लिये हठाग्रह करती है, मंत्री से मंत्रणा कर राजा प्रजा को आभूषण पहनकर भोजन के लिये निमंत्रण देता है, रुक्मिणी की सौतीली मा कमला अपनी पुत्री को आभूषण पहेना कर भोजन के लिये भेजती है, मन्त्री आभूषणयुक्त कमला की पुत्री को देख कर धाकधमकी से सब बात जान जाता है, अंतमे राजा और रुक्मिणी का लग्न होता है. राजा अपनी राणी को दिया हुवा कंकण ले लेता है. राणी निराश हो जाती है.

कुछ दिनोंके बाद रुक्मिणी पुत्र को जन्म देती है, कमला रुक्मिणी को अपने घर ले आने के लिये अपने पति को कहती है. देवशर्मा राजा के पास जाता है. और रुक्मिणी को घर ले आता है.

एक दिन कमला उस को कुवे पे ले जा कर उस में गिरा देती है और अपनी पुत्री लक्ष्मी को राजा के वहा भेजती है. राजा कमला का कपट जान जाता है और कूवे मे गिरने तैयार होता है, मन्त्री उसको समजाता है.

कूवे में गिरी हुई रुक्मिणी को तक्षक-नागदेव ले जाता है और पतिपत्नी के रुप मे रहते है. तक्षक रुक्मिणी को उस के बच्चे के लिये कहता है, रुक्मिणी उस की आज्ञा लेकर राजा के वहां आती है और बच्चे को स्तनपान कराके कुछ आभूषण छोड जाती है. दूसरे दिन राजा आभूषण देखता है, और अपनी पत्नी को पकडने के लिये तैयार होता है तीसरे दिन पतिपत्नी का मिलन होता है, तक्षक वहा आता है. राजाको डंस देता है, राजा उस को मार डालता है, और स्वयं भी मर जाता है, दोनों को मरे हुवे देख कर रुक्मिणी स्मशान में सेवकों के साथ मरने आती है. वहां इन्द्रपुत्र मेघनाद का यकायक आना, सबको जीवित करना.

प्रकरण ६७ . . . . पृ. ६३५ से ६५८

विक्रमादित्य की सभा में जादुगर की इन्द्रजाल

तीसरी चामरधारिणीने एक वैतालिक की कथा कही, जिस में वैतालिकने अद्भुत चमत्कार दिखाया, महाराजा विक्रमादित्यने उन को पाड्य देश से आई हुई भेट दे दी.

चौथी चामरधारिणीने एक कृतघ्न ब्राह्मण की कथा सुनाई. महाराजाने परकाय प्रवेश की विद्या प्रदान करवाई. उस कृतघ्न ब्राह्मणने उपकार करनेवाले पर अपकार किया, तथापि अपकार करनेवाले पर भी महाराजाने उपकार किया इत्यादि चार चामरधारिणी की रोमाचकारी कथा सुनकर विक्रमचरित्र और सारी सभा आनंद अनुभव करने लगी.

विक्रमचरित्र का तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की यात्रा के लिये जाना, वहा जावडशा द्वारा उस महागिरिवर का उद्धार करना उस मे विक्रमचरित्र का सहयोग होना इत्यादि अद्भुत वृतान्तो के साथे चरित्र पूर्ण होता है, और अंत में ' विक्रम और जैन साहित्य ' के बारे मे निबंध दिया गया है.

श्रीयुत् कानराज हीराचंदजी महेता-मुथा

सिरामि-राणी राजस्थान (मारवाड़)

इसे नररत्न नवयुवक की स्मृतिमें शाह हीराचंदजीने "विक्रमचरित्र" प्रकाशनमें १००१ की सहायता प्रदान कर ज्ञान प्रचार का पुण्य श्रेय प्राप्त किया है

०

श्रीयुत् कानराजजी हीराचंदजी महेता-मुथा

विरामी (रानी-मारवाड)

धर्मप्रेमी जेठमलजी और हिराचंदजी ये दोनों भाई विरामी (राजस्थान) में निवास करते थे. जिस मे से श्री जेठमलजी श्री वरकाणा गोडवाड जैन महासभा के सेक्रेटरी थे उन्होंने ये पद पर रहकर वर्षों तक सेवा की थी और सुयश उपार्जन कीया था. और श्री हिराचदजी भी बडे भाई की तरह धर्म प्रेमी सज्जन हैं. श्री धर्मप्रेमी हिराचंदजी के वहां कानराजजी का जन्म वि. संवत १९८७ के श्रावण कृष्ण १३ को विरामी ग्राम में हुआ. उन्होंने वरकाणा बोर्डिंग में प्रारंभिक शिक्षण प्राप्त कर जोधपुर के गुराश्रम में मेट्रिक तक अभ्यास किया, पश्चात सेवाडी के प्रमुख श्रीमंत शाह उम्मेदमलजी रीखबाजी राठोड की सुपुत्री श्री मुन्नीबाई के साथ सं. २००४ फाल्गुन वदी ९ को आपका शुभ महुर्त में लग्न हुआ. श्री कानराजजी एक अच्छे सेवाभावी उत्साही, धर्मप्रेमी, मातापिता के परमभक्त व विनयवान्, आज्ञाधारी नवयुवक थे. विराम नवयुवक समाज के सिरमौर सितारे थे युवक समाज को अपनी इस विभूति पर बडा गर्व था और इन के सहयोग से धर्म व समाज तथा ग्राम सेवा का हरकार्य बडी सुगमता से वे करते थे. श्री कानराजजी बडे मिलनसार व बडी उदार प्रकृति के थे. हरएक को सुख पहुँचाना, कीसी को जरा भी कष्ट न पहुँचे इसका उनको बडा ध्यान रहता था. विरामी मामनिवासी जनता को अपने इस होनहार युवक विभूति से बडी २ आशाएँ थी, पर यहा है कि " जिसकी यहाँ चाह

उस की वहाँ चाह" इस उक्ति अनुसार कराल कालने इस अर्धविकसित कलिका को कवलित कर लिया, और संवत २००९ कार्तिक वदी ६ के दिन आप स्वर्ग सिधार गये, सारा ग्राम शोकाकुल हो उठा युवक समाज से खलबली मच गई.

आज भी उन की याद कर विरामीवासी जनता श्रद्धा के आंसु प्रकट करती है.

आपकी धर्मपत्नी सुश्रीबहन सुशील एवं धर्मप्रेमी सन्नारी है, जीवन मे धर्मक्रियादि में भावनाशील है उपधान, अट्ठाई और वरसीतप आदि कई तपस्या की है और सदा ही सादाई और धर्मपरायणशील है.

ऐसे नररत्न नवयुवक की स्मृति में शाह हीराचंदजीने "विक्रमचरित्र" प्रकाशन में ५०० रु. की सहायता प्रदान कर ज्ञान प्रचार का पुन्य-श्रेय प्राप्त किया है.

श्रीमान जेठमलजी हीराचंदजी ये दोनों बान्धवों अपनी सहज उदार वृत्ति से धर्मकार्य मे समय समय पर धन व्यय करते ही रहे है, विरामी गाव के जिनमंदिर में श्री कानराजजी की स्मृति-निमित्तक आरसपहान के महातीर्थों के मनोहर पट्ट करवाये और श्री संघ को भेट कीये है तथा आत्मोन्नतिकारक श्री उपधान की तपस्या भी अपने ही गाव में श्री स पकी निश्रा में अपनी ओर से वि. संवत २०११ की साल में कराई और शासन शोभा में वृद्धि कर अच्छा धन व्यय करके पुण्यभागी बने. जिस तरह आज तक धर्मकार्य में यथाशक्ति धन व्यय करते आये उसी तरह धर्मभावना नवपल्लवित रखे यही एक शुभकामना

—प्रकाशक

४	,, उमेदमलजी रीखवाजी राठोड	सेवाडी
१	,, गुलाचंदजी उमाजी	मुंबई नं. ८
१	,, अमरचंदजी हीराचंदजी	वाली

विक्रमचरित्र के तीनों भाग के अग्रीम ग्राहक होनेवाले

महानुभावकी शुभ नामावली

नकल		गाम
९	श्री ताराचंद मोतीजी	मु. जावाल
४	,, पुखराज कस्तुरचंदजी मलीया	शिवगंज
५	,, रीखवदास खीमाजी	जावाल
५	,, राजमल पुरवराज C/o जवानमल कस्तुरजी.	मालगाम
३	,, हंसराज पीथाजी	दांतराई
४	,, दूरगचंद धरमचंदजी	विजयवाडा
३	,, सांकलचंद रासाजी	जावाल
२	,, नागराज उमेदमलजी ढालावत	खीमेल
१	,, चंदनमलजी गुलाबचंदजी	विजोवा
१	,, देवीचंद लुम्बाजी	शिवगंज
१	,, हीराचंद रूपाजी पोरवाल	,,
१	,, जुहारमल देसाजी	,,
१	,, लखमीचंद थानमलजी	,,
१	,, छोगमल नेमाजी	,,
१	,, भभूतमल गुलाबचंदजी, हस्ते शान्तामहन	शिवगंज
१	,, उमरावबाई	शिवगंज
१	,, पेपीबाई	सादडी

१	,, भगवानदास वालचंदजी गुंगलीया	सादडी
१	,, चुनीलाल लालचंद	शिवगंज
१	,, सेसमलजी रायचंदजी हस्ते सरेमल	नोवी
१	,, मगनीरामजी भूताजी-कलापुरा	शिवगंज
१	,, नथमल भीकमचंदजी	जावाल
१	,, मगनलाल सांकलचंदजी	,,
१	,, फुलचंद चमनाजी	,,
१	,, मगनलाल लालचंदजी	,,
१	,, चंपाबाई ह. गेनमल भभूतमलजी	,,
१	, भभूतमल भगवानजी	,,
१	,, देवीचंद गलबाजी	,,
१	,, समरथमल पानाचंदजी	दांतराई
१	,, लालचंद सदाजी	,,
१	,, सरूपचंद मुलाजी	,,
१	,, हजारीमल डुंगरचंद-दातराई	कोल्हापुर
१	,, मुलचंदजी C/o पुनमचंद मुलचंद	कोलापुर
१	,, मनरूपजी ओटाजी हस्ते लखमीचंदजी	सिरोही
१	,, छोटालाल नरसींगजी C/o नरसींगजी डुंगाजी	दातराई
१	,, खुमाजी मानाजी (सिलंदर आबु) C/o श्री अमीचंदजी मानाजी	पुना
१	,, पुखराज चीमनाजी सेवाडीवाले	,,
१	,, भीकमचंदजी चन्द्रभाणजी मु. परेवा, वाया फालना	
१	,, सरदारमलजी भीमाजी	मुंबई

१ ,, कुंदनमल हमीरमल सादडी
१ ,, धरमचंद देवाजी मेरमांडवाडा B. P. M.
१ , पुखालाल मेघराजजी बरलुठा
C/o जे. मेघराज शाहुकार विलीपुरम्
१ ,, मीठालाल हजारीमलजी (बिजोवावाले) दादर
१ ,, सोगमल नथाजी शेसी ,, दादर
१ ,, सांकलचंद प्रेमाजी (ओसवाल रामसेनवाले) पुना
१ ,, अगरचंद सरदारमलजी बाफणा सादडी
१ ,, बरलुट जैन संघ मु. बरलुट (जी. सिरोही)
१ ,, राणमल हजारीमलजी विनायक खंडप
१ ,, लालचंदजी रामचंदजी बाफणा
ह. सेसमल जवानमल पेण सेवाडी
१ ,, पैराजी जेठमलजी मु. यादगीरी—म्हेसुर स्टेट
१ ,, चंदनमल सुरजमलजी गांधी मु चाकरा
१ ,, सिंघवी पारसमल गोतमचंद सोजत

प्रचार के लिये प्रथम भाग की पुस्तकें लेकर हमारी ग्रंथमाला को प्रोत्साहन दिया उन सहायक—

महानुभावों की शुभनामावली :—

नकल) (गाम
२१ शाह गुलचंदजी साजमलजी ह. सागरमलजी सादडी
११ शाह चंदनमलजी फत्तुरचंदजी ,,
११ ,, मीठालालजी पृथ्वीराजजी-मेलावाला ,,

१ शाह हिंमतलाल जवानमल्ल मंडारवाले. भा. २–३
१ शाह कस्तुरचंद दलीचंद. भा. २–३
१ शाह ताराचंद चुनीलाल. भा. २–३
१ शाह करणराजजी जीवराजजी. भा. २–३
१ शाह मेघराजजी प्रेमचंद. भा. २–३
१ शाह शीवलाल मुलचंदजी साचोरवाला भा. २–३
१ पुरोहित किशनाजी लुंबाजी. भा. २–३
१ माधवलाल मणीलाल पेथापुरवाला. भा. २–३
१ महावीरचंद भोगीलाल. पांचभाइवाला. भा. २–३

११	,,	मियाचदजी सतोकचदजी	सादडी
१०	,,	हीराचदजी पुनमचदजी उपधानवाले	,,
५	,,	खसराजजी सहजमलजी ह ओटरमलजी	,,
५	,,	गुलाबचदजी पुनमचदजी	,,
५	,,	सेरमलजी देवीचदजी	,,

— शेप नामावली —

४	श्री सेसमलणी गेनाजी	भाग १-२-३	मैसुर
१	श्री दीपचद छोगाजी सिवगंजवाला	भाग १-२-३	नागोठाणा
१	श्री सेरमल वीसाजी श्रा श्रीमाल	भाग १-२-३	सेवाडी
१	श्री जवानमल लबाजी	भाग १ २-३	मोदागाम
१	श्री बाबुभाइ गणेशमल	भाग १---३	घोरडी

— श्री थानाजी जेठाजी माधुपुरावाले की मारफत —

१	श्री मगनलाल बाबुलाल	भाग १ २	अमदावाद
१	श्री जवानमल सेसमल	भाग १-२	
१	श्री हसराजजी अमीचद	भग २-३	
१	श्री घनराज गणशमलजी	भाग २-३	,,
३	श्री हसमुखलाल गिरधारीलाल हस्ते भुरमलभाई	२-३	

१	,,	लालचद वक्ताजी	दातराई

धर्मानुरागी सेठश्री थानाजी जेठाजी अमदावाद-माधुपुरा, की शुभ प्रेरणा से प्रेरित होकर जो महानुभावोंने इस पुस्तक के अमीम ग्राहक हुए उन सज्जनों की नामावली —

१ शाह रमणलाल मोहनलाल भा. १-२-३
२ शाह मगळचद चुनीलाल भा २-३
१ शाह नथमलजी गेनमलजी ह मीसरीमल भा. २-३

॥ शासनसम्राट् तपागच्छाधिपति अनेक तीर्थोद्धारक प्रौढ प्रभावशाली जैनाचार्य, पूज्यपाद स्वर्गीय श्रीनेमिसूरीश्वर गुरुभ्यो नमो नमः

संवत्-प्रवर्तक-

महाराजा-विक्रम

[प्रथम भाग-परिचय]

गग्गे काम गवी मली, तत्ते सुरतरु वृक्ष ।
मम्मे मणि चिंतामणी, गौतम स्वामी प्रत्यक्ष ॥

इसी परम पवित्र भारतवर्ष मे धन-धान्य समृद्धि आदि परिपूर्ण सुविख्यात मालव देश है। इसी मालव देश मे क्षिप्रा नदी के तट पर प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव के सुपुत्र अवंती कुमार के नाम से प्रसिद्ध होने वाली अवंती नगरी है। जो वर्तमान मे उज्जैन के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी अवंती नगरी में आज से २५०० वर्ष पूर्व श्रमण भगवंत श्री महावीर स्वामी के समय में चन्द्रप्रद्योत राजा राज्य करता था। उनके बाद क्रमशः नवनन्द, चन्द्रगुप्त-चाणक्य, अशोक महाराजा, सम्राट संप्रति, आदि राजाओं ने न्याय नीति से यहां राज्य किया था।

बाद में इसी नगरी मे गधर्व-सेन (गर्द भिल्ल) नामक राजा हुए। जिनके भर्तृहरि तथा विक्रमादित्य नामक दो पराक्रमी पुत्र हुए।

थे। भर्तृहरि अपनी प्रिया पिंगला (अनगसेना) के द्वारा ससार के मोहजाल का परिचय प्राप्त कर अपने वैराग्यमय जीवन को प्राप्त हुए। भर्तृहरि के वैरागी बन जाने पर अपने पराक्रम बल से उनका उत्तराधिकार विक्रमादित्य ने प्राप्त किया।

इन्हीं महाराजा विक्रमादित्य ने अपने अतुल बल और उदार वृत्ति से अनेक परोपकारी कार्य कर जगत मे अपूर्व यश उपार्जित किया। महाराजा ने भारतवर्ष की सपूर्ण जनता को उऋणि बना कर सुखी बनाया। इन्हीं महाराजा ने अपने नाम से नया विक्रम सवत् चलाया। इनके जीवन के अनेक रोमान्चक प्रसंगों तथा आश्चर्य जनक कहानियों से परिपूर्ण तथा अनेक सुन्दर आकर्षित भावपूर्णचित्रों से युक्त ५०० पृष्ठ का प्रथम भाग गत दो वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

इस लिए पाठकगण वह पुस्तक प्राप्त कर एवं पढ कर उसका रसास्वादन करें। उसके अनुसधान में उसका यह दूसरा भाग आपके हाथों में प्रस्तुत है। पाठकगण! इसे आदि से अंत पढ कर अपना अभिप्राय सूचित करें।

प्रथम भाग की किंमत प्रचार के लिये मात्र रूपया पाच है।

प्राप्ति स्थान--

(१) पण्डित मुरालाल कालीदास c/o सरस्वती पुस्तक भडार, ठि० हाथीखाना, रतन पोल, अहमदाबाद

(२) सोमचद डी० शाह० जीवन निवास के पास में, पालीताणा (सौराष्ट्र)

बम्बई व अहमदाबाद के प्रसिद्ध जैन बुकसेलरों से भी यह ग्रन्थ प्राप्त करसकते हैं:--

ॐ ह्रीं श्रीधरणेन्द्र पद्मावती सहिताय
श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथाय नम

संवत् प्रवर्तक

महाराजा विक्रम

[द्वितीय-भाग]

मूल कर्ता-परम पूज्य पंडित श्री शुभशील गणिवर्य महाराज

हिन्दी भाषा सयोजक- श्रीनेमि-अमृत-खान्ति चरणोपासक—

साहित्य प्रेमी पू० मुनि श्री निरजनविजयजी महाराज

तेतीसवां-प्रकरण

—(आठवें सर्ग से आरभ)—

तीर्थ महिमा और शुकराज चरित्र

यस्मिञ्जीवति जीवन्ति, सज्जना मुनयस्तथा ।
सदा परोपकारी च, स जातः स च जीवति ॥

"जिसके जीने से परम पवित्र मुनिजन आदि साधु सन्त और सज्जन लोग जीते हैं अर्थात सुरक्षित हैं, और हमेशा परोपकार

कार्यों मे जो सदा प्रवृत हैं, इस संसार में उसी का जन्म सार्थक है और उसी का जीवन सफल है।"

इस भारत वर्ष में अपनी सारी प्रजा को उऋण करके अवन्ती पति महाराजा विक्रमादित्य अपने नाम से नया सवत् प्रवर्तन कर प्रजा का पुत्रवत् पालन करने लगे। पुण्य योग से एक बार सर्वज्ञ पुत्र जैनाचार्य श्री सिद्ध से नदिवाकरसूरीश्वरजी महाराज सपरिवार क्रमश ग्रामानुग्राम भव्य जीवों को धर्मोपदेश देकर सन्मार्ग में स्थापन करते हुए अवन्ती नगरी मे पधारे। अवन्ती पति महाराज ने अपने परोपकारी गुरुदेव का बड़ा भारी शानदार प्रवेश महोत्सव किया। बाद में प्रतिदिन पूज्य गुरुदेव के मुख कमलसे धर्मोपदेश सुनकर अपनी धर्मभावना बढाने लगे।

एक दिन सूरीश्वरजी महाराज ने महाराजा विक्रमादित्य आदि महाजनो के आगे धर्मोपदेश देते हुए फरमाया कि "इस अनादि कालीन संसार मे प्राणियों को मोक्ष क चार परम कारण प्राप्त होने अत्यन्त दुर्लभ हैं—

१. आर्य क्षेत्र और सद् धर्म वान् उत्तम कुल मे मानव जन्म प्राप्त होना। २. जिन वचन रूप सद् शास्त्रों का श्रवण होना और ३ उस पर अटल श्रद्धा होनी तथा ४. संयम-शुद्ध चारित्र धर्म प्राप्त कर उसमे शक्तियों का पूर्ण विकास होना-करना। ❀ ये-चारों मोक्ष के परम साधन महाभाग्यशालो जीव को ही प्राप्त

❀ "चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जंतुणो
माणुसत्त सुई सद्धा संजममी अ वीरिअं ॥१॥ सर्ग ८

सर्वज्ञपुत्र विरुद धारक जैनाचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी महाराजा विक्रमादित्य आदि महाजनोंके आगे धर्मोपदेश देते हुए पृ० २

होते हैं। शास्त्रों में कहा भी है—

'देवलोक में देवता सदा ऐश-आराम और विषय विलास में अति आसक्त रहते हैं, नरक में जीव विविध प्रकार के दुःखों से सदा दुखी रहते हैं, पशु पक्षी आदि तिर्यञ्च विवेक रहित होने से पूर्ण धर्म साधन नहीं कर सकते। अर्थात् इन तीनों गति से जीव को धर्म साधन का समुचित अवसर प्राप्त नहीं होता है। तब एक मनुष्य गति में ही धर्म साधन की साधन सामग्री जीव को प्राप्त हो सकती है। 卐 महा दुर्लभ मानवभव प्राप्त कर अविच्छिन्न प्रभावशाली त्रिकालाबाधित श्री वितरागसासन एवं शुद्ध सनातन जैन-धर्म प्राप्त कर धर्माराधन में मानव को विशेष उद्यम करते रहना चाहिये।

महातीर्थ श्री शत्रु जय माहात्म्य—

> अनि दुर्लभ मानव जीवन पा, जो प्राणी शत्रु जय जाता।
> जिनवर प्रभु आदि नाथ दर्शन, पद वन्दन पूजन मन लाता॥
> शुभ अनत पुण्य होता है उसको जन्मों का पाप हटाता है।
> निज दुःख दूर करके औरों के, सुख में हाथ बटाता है॥

महादुर्लभ मनुष्य जीवन प्राप्त कर जो प्राणी तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय महा तीर्थ में रहे हुए श्री आदिनाथ प्रभु को भक्ति पूर्वक वन्दना करता है, उसको अनन्त पुण्य होता है। गिरिराज

卐 "देवाविसय पसता, नेरइया निच्च दुःख संसत्ता।
तिरिया विवेग विगला, मणुआणं धम्म सामग्गी॥

श्री महातीर्थाधिराज श्री शत्रुंजयगिरी के अनायास— स्पर्श मात्र से कोटि गुण पुण्य होता है और यदि मन वचन और काया से शुद्धि पूर्वक स्पर्श हो जाय तो अनंत गुण पुण्य होता है। तीर्थयात्रा की इच्छा से श्री शत्रुंजयतीर्थ के सन्मुख एक एक कदम जाने से मनुष्य कोटि कोटि जन्मों के पातकों से मुक्त हो जाता है। पापों से अत्यन्त घिरा हुआ मनुष्य तब तक ही भयंकर दुःख का अनुभव करता है, जब तक श्री शत्रुंजय गिरि पर चढ़ कर श्री जिनेश्वर देव को नमस्कार न करलें।'

श्री शत्रुंजयगिरि के दर्शन व स्पर्श मात्र से मनुष्यों को सहज में ही मुक्ति प्राप्त* हो जाती है। और जो प्राणी श्री शत्रुंजयगिरिवर के आस पास के पचास योजन के भीतर में जन्म लेता है वह प्रायः अल्प समय में ही परमगति मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। इस शत्रुंजयगिरि पर मयूर, सर्प, सिंह आदि हिंसक प्राणी भी जिन दर्शन करके सिद्ध हो गये, सिद्ध होते हैं और सिद्ध होंगे।"

उन्ही प्राणियों का जन्म, धन तथा जीवन सार्थक है कि जो सिद्धाचल पर विराजित श्री जिनेश्वर देवों के दर्शन के लिये जाते हैं अन्यथा दूसरों का तो जन्म, धन और जीवन सब निरर्थक है। श्री जिनेश्वर देवों ने भी श्री सिद्धाचल तीर्थ को सब तीर्थों में सर्वोत्तम तीर्थ कहा है, सब पर्वतों में सर्व श्रेष्ठ पर्वत है, सब पुण्यक्षेत्रों में उत्तमक्षेत्र है।" पुराण में भी कहा है कि—

अड़सठ तीर्थों की यात्रा से, जो फल होता भर जीवन में
वह आदिनाथ के स्मरणों से, पाता है प्राणी इसी तन में ॥

"अड़सठ तीर्थों में यात्रा करने से जितना पुण्य होता है उतना श्री आदिनाथ प्रभु के स्मरण मात्र से ही होता है 卐। इसके सिवाय और भी कहा है—शुभ भावना से जो प्राणी तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय का स्पर्श करता है, श्री रैवताचल-गिरनार तीर्थ को नमस्कार करता है और 'गजपद' कुण्ड में स्नान करता है तो उस प्राणी को फिर से इस संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। इस तीर्थ का ध्यान करने से सहस्र पल्योपम[१] प्रमाण पाप नष्ट होते हैं, तीर्थ यात्रा के लिये नियम करने से लाख पल्योपम प्रमाण पापों का नाश हो जाता है और तीर्थ यात्रा के लिये प्रयाण करने से सागरोपम[२] प्रमाण पाप समूह नष्ट हो जाते हैं। भव्य जीव को सदा मोक्ष और सुखादि को देने वाला श्री शत्रुंजयमहातीर्थ प्रख्यात है, जिस पर ही पूर्व समय में श्रीपुण्डरीक आदि अनेक गणधर प्रभु सिद्ध हो गये हैं।"

जैन शास्त्रों में कहा है कि इस श्रीसिद्धाचलजी पर चैत्र पूर्णिमा के दिन पांचकोटि मुनियों के साथ श्री पुण्डरीक गणधर भगवन्त ने अनशन[३] कर मुक्ति प्राप्त की, उससे ही इस तीर्थ का 'पुण्डरीकगिरि' नाम जग में प्रसिद्ध हुआ। इसी श्री पुण्डरीकगिरि

卐 "अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रया यत्फलं भवेत्
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद् भवेत्" ॥१२॥ सर्ग० ८

१) असंख्य वर्षों का एक "पल्योपम" होता है। (२) दश कोड़ा कोड़ी पल्योपम का एक "सागरोपम" होता है। (३) खाने पीने का सर्वथा त्याग करना।

इसी क्षेत्र में 'क्षितिप्रतिष्ठित' नामक नगर में 'मृगध्वज' नामक अत्यंत न्याय परायण एक राजा हुआ। जैसे कहा है कि--

"जो राजा यशस्वी है, तेजस्वी है, शरण में आये हुए प्राणियों के रक्षण करने में निपुण है, दुर्जनों का सतत शमन करने वाला है, अपने शत्रुसमूह का नाश कर चुका है, प्रजा का सदा प्रेम से पालन करने वाला है, सदा दान मार्ग में सद् लक्ष्मी का व्यय करने वाला है, तथा अपनी उचित लक्ष्मी का भोग करने वालाऔर सब कार्य में विनय विवेक से व्यव हार करने वाला है, नीति मार्ग का सदा पालन करने वाला है, स्वीकार की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण पालन करने वाला है, और सदा कृतज्ञ है, वही अखंड आज्ञा वाला राजा इस पृथ्वी मंडलमें अपने विशाल राज्यको फैलाता प्रसिद्ध करता है卐। और भी कहा है—

"प्रजा का अभ्युदय राजा की राज्य वृद्धि करने वाला होता है और प्रजा में धर्म का अस्तित्व राजा के पापों का नाश करने वाला होता है तथा प्रजा में अनीति का प्रचार होने से राजा के धर्म और कीर्त्ति दोनों का नाश होता है और अपनी

卐 "यस्तेजस्वी यशस्वी शरणगत, जनत्राण कर्म प्रवीण, शास्ता शश्वत् खलाना, क्षतरिपुनिवहः-पालकश्च प्रजानाम् । दाता भोक्ता विवेक नयपथपथिक सुप्रतिज्ञ कृतज्ञ, राज्य राजा स राज्यं प्रथयति, पृथिवीमण्डलेऽखण्डिताज्ञ, २४स०८

सारी प्रजा को आनन्द में रखने पर ही देवता लोग राजा पर संतुष्ट-प्रसन्न होते हैं ※।

एक दिन मृगध्वज राजा राज-सभा में विराजमान थे, उस समय विलासीजनों को आनन्द कराने वाली वसंतऋतु का समय था। उद्यान की वनराजी अति फैली हुई थी, जिससे उद्यान की शोभा में अनुपम अभिवृद्धि हुई थी, यह देख कर उद्यान-पालक ने आकर महाराज के आगे रोमाचकारी वसंतऋतु का वर्णन किया —

हेमन्त शिशिरमें ठिठुर ठिठुर,जाड़ासे जीव है दुख पाता।
तब ऋतु वसन्त उपकार लिये प्राणीके कारण सुख लाता॥
वन वृक्ष प्रफुल्लित हराभरा, फूलों से अतिशय लगी लता।
मधुपान दान पाकर मधुकर,रंजित हो गान किया करता॥
आमों की मोर महँक उठी, कानों में कोकिल कूक पड़ा।
उपवन की शोभा भी लखिये कहने को माली मूक खड़ा॥

और महाराज को उद्यान में क्रीड़ा करने पधारने की विनती की। इसलिये एक दिन मृगध्वज महाराज अपनी रानियों को साथ लेकर उद्यान मे आनन्द विलास करने आये।

वहा आकर महाराजा ने अपनी रानियोंके साथ उद्यानमें आई हुई वापिका-बावडिया मे जाकर बहुत समय तक जल क्रीड़ा-

---

※ प्रजासु वृद्धिर्नृपराज्यवृद्धये, प्रजासु धर्मो दुरितापह प्रभो।
प्रजारवनीति र्नृपधर्म कीर्ति ह,-न्नृपाय तुष्यन्ति सुरा प्रजोत्सवैः॥
२६। १

करने के बाद पत्नियों के साथ उस सुन्दर उद्यान में भ्रमण करने लगे। इतने में बहुत गहरी छाया वाले एक बड़े ही सुन्दर आम के पेड़ को देखा और राजा उसकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे— सोहग ऊवरि मंजरी, तू साहइ सहकार।

अवि जि तरूअर तुडि करइं, ते सव्वेवि गमार" ॥२६॥८

"कल्प वृक्ष के समान मीठे फलों के देने वाले हे आम्र वृक्ष! तेरी मंजरियां सुन्दर सुशोभित हैं और वे मंजरियां मधुर फलों को उत्पन्न करने वाली है; तेरे पत्तों की श्रेणी अनुपम मंगल की देने वाली है, तेरी छाया सब प्राणियों को प्यारी लगती है, तेरा रूप बड़ा ही सुन्दर है, हे आम्र वृक्ष! अधिक क्या कहूं-तेरा सारा ही अग जगत के जीवों को अति उपकारक है, और जो कवि अन्यान्य वृक्षों के साथ तेरी तुलना करते हैं वे सब गंवार मूर्ख हैं-अर्थात धिक्कार के पात्र हैं।"

मधु मंजरी छाया सुफल-तरुवर शुभद सहकार है।
तरु अन्य से तुलना करे-वह नर निराही गवाँर है॥

इस तरह आम्र वृक्ष की अनेक प्रकार प्रशंसा करते हुए महाराजा रानियों के साथ उसी आम के पेड़ की शीतल छाया में बैठ गए। सुंदर वस्त्रों तथा अलंकारों से सुशोभित अपनी रानियों को देखकर राजा मन में विचार करने लगे कि-"इस संसार में जो देवांगना के समान अलौकिक सुन्दर स्त्रियां मैंने प्राप्त की हैं, वैसी स्त्रियां संसार भर में अप्राप्य हैं, क्योंकि पृथ्वी में सर्वत्र कल्प-

लताएं नहीं मिलती हैं"।

इस तरह राजा अपने मन ही मन गर्व कर रहा था, ठीक उसी समय उस आम के पेड़ की डाली पर बैठा हुआ एक 'शुक' मनुष्य भाषा में बोल उठा—"इस संसार में सब कोई प्राणी अपने मन माने गर्व में मस्त रहता है, इसमें क्या आश्चर्य है? जैसे टिटिट्भि (टिटोडी एक पक्षी) जब वह सोती है तब अपने पांव आकाश की ओर करके सोती है, क्यों कि यदि आकाश गिर जाय तो सारे संसार के प्राणी दब जाय और उनका नाश हो जाय, इसी कारण सब प्राणियों को बचाने के लिये ही अपनी टांगें ऊंची करके सोती है।" (यह भी अर्थ हो सकता है—'मेरे चरणों के भार से पृथ्वी कहीं टूट न जाय इस भय से टिटिट्भि पक्षी चरणों को ऊपर की ओर करके शयन करती है।)

एक शुक (तोता) की बोधदायक वाणी सुनकर महाराजा अपने मन में इस प्रकार सोचने लगे कि—'इस शुक ने मुझे इस प्रकार गर्व करते देख, आज मुझे खूब लज्जित किया है। किन्तु यह बात कदापि नहीं हो सकती। पक्षी में इतनी ज्ञान कहां से आई। यह तो काकतालीय न्याय से अथवा अजाकृपाणि—न्याय से अकस्मात् या मेरे मन के गर्व को जानकर बोला है।

इस प्रकार वह महाराजा अपने मन ही मन अनेक प्रकार के तर्क वितर्क कर रहा था। उस समय पुन वह शुक नेढक और

हंस की उक्ति प्रत्युक्ति वाला काव्य बोला। जैसे—

"किसी कूप में एक मेढक रहता था। उस कूप के तट पर एक राजहंस कहीं से आकर बैठा। इसे देख कर मेढक ने पूछा कि "हे पक्षिन्! तुम कहाँ से यहाँ आये हो?

हंस—मैं मानसरोवर से आया हूँ।

मेढक-वह सरोवर कैसा है?

हंस—बहुत विशाल है।

मेढक-क्या वह सरोवर मेरे इस कूप से भी बड़ा है?

हंस—क्या पूछते हो? इस कूप से तो वह सरोवर बहुत ही बड़ा है।

मेढक-रे पापी! तू झूठ मत बोल!

इस प्रकार कूप मे रहने वाला वह मेढक तट पर स्थित राजहंस को धमकाने लगा। तात्पर्य यही कि जो दूसरे देशों को नहीं देखता है वह अज्ञानी व्यक्ति थोड़े में ही बहुत गर्व करने लगता है।

उस काव्य ॐ को सुनकर राजा अपने मन मे विचार करने

ॐ रे पक्षीन्नागतस्त्वं कुत इह सरसस्तत्, कियद् भो विशालम्।
किं मद्धाम्नोऽपि वाढ नहि, सुमहत् पाप! मा जल्प मिथ्या।
इत्थं कूपोदरस्थः शपति तटगतं दर्दुरो राजहंसं,
नीच स्वल्पेन गर्वी भवति हि विषया नापरे येन दृष्टा.'।३द्वासर्ग.८

लगा—यह शुक मुझ को कूप मंडूक (मेढक) कैसे बना रहा है ?

ठीक इसी समय शुक ने पुनः कहा-कि हे राजन् ! तुम कूप मेढक के समान ही हो !"

राजा यह सुनकर सोचने लगा कि 'निश्चय ही यह शुक पंडित की तरह बडा ज्ञानी है !" इतने में वह शुक राजा से फिर कहने लगा कि हे राजन् ! जैसे छोटे गांव में रहने वाला ग्रामिण (गंवार) अपने दुर्बल बैल को जिसके कि सींग और दाँत भी हिलते हैं, उसे श्रेष्ठ बैल मान लेता है। संसार में मोह, यही अनोखी चीज है। क्यों कि झूंठी बात को भी मोह के कारण सच्ची मान लेता है।" बाद मे उस शुक ने एक छोटी सी कथा सुनाई।

"एक गंवार के घर एक वृद्ध और दुर्बल बैल था। उसके सब दात और दोनों सींग हिलते थे। उसकी पूंछ के बाल निकल जाने से पूंछ विचित्र दिखाई दे रही थी। पेट वृद्धावस्था के कारण अति दुर्बल हो चुका था और उसके ऊपर चन्द्राकार (फोले) फुन्सियां हुई थीं। बैल का शरीर बहुत दुर्बल और कमजोर हो चुका था। इस प्रकार अपने इस असुन्दर बैल को भी, अच्छे बैलों के गुण-समूह को न जानने वाला वह गँवार अपने बैल को सर्व श्रेष्ठ मानकर अपने मन ही मन खुशी मना रहा था।"

"हे राजन् ! उसी प्रकार आप भी अपनी सामान्य स्त्रियों

को देवांगनाओं के समान मान रहे हो !"

इस प्रकार कहने पर भी जब उस राजा ने गर्व नहीं छोड़ा तब वह शुक पुनः देव भाषा में कहने लगा। "हे राजन् ! तुम्हारी अंत पुर की स्त्रियों से भी अधिक सुन्दर रूपवाली 'कमल माला' नामकी श्री गागलि ऋषि की कन्या है।

यदि तुमको उसका रूप देखने की इच्छा हो तो मेरे पीछे पीछे चले आओ। ऐसा कहकर वह शुक वहाँ सें उड़ गया।

शुक के पीछे मृगध्वज राजा का जाना

इसके बाद राजा अत्यन्त उत्सुक होकर अपने सेवकों से कहने लगा कि "वायुवेग वाले घोड़े को तैयार कर शीघ्र लाओ।" सेवकों ने राजा की आज्ञानुसार अच्छा घोड़ा लाकर खड़ा कर दिया। राजा सुसज्जित होकर उस घोड़े पर सवार हो शुक के पीछे पीछे वहां से चल दिया।

राजा के जाने के बाद उसकी सेना, परिवार आदि ने कुछ दूर तक तो राजा का पीछा कर उसकी खोज की; परन्तु जब राजा को नहीं देखा तब उदास होकर नगर में लौट आये। क्योंकि सचिव (मंत्री) रहित राज्य, अस्त्र-शस्त्र रहित सेना, नेत्र रहित मुख, मेघ रहित वर्षा ऋतु, धनी व्यक्तियों में कृपणता, घृत रहित भजन, दुष्ट स्वाभाव वाली स्त्री, प्रत्युपकार (बदला) चाहने वाला मित्र, प्रभाव रहित राजा, भक्ति रहित शिष्य, धर्म रहित

मृगध्वजराजाने सुसज्जित हो कर वायुवेग घोडे पर सवार हो शुक के पीछे पीछे वहां से चल दिया।...पृष्ठ १४

(मु. नि. वि. संयोजित...... विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र नं. २)

मनुष्य आदि ये सब वस्तु शोभा को प्राप्त नहीं कर सकते।

इधर राजा, घोड़े के वेग से चलने के कारण शुक के पीछे पीछे एक सौ योजन मार्ग को पार कर एक विशाल जंगल में उपस्थित हुआ। उस जंगल में सुवर्णदंड, विशाल कुम्भ तथा फहराती हुई पताकाओं से युक्त एक देव प्रासाद को देखा। इतने में वह शुक उसी देव प्रासाद के शिखर पर बैठ कर कहने लगा कि, "हे राजन! जिनेश्वर श्री आदिनाथ को प्रणाम करके अपने जन्म को पवित्र कर।" राजा ने सोचा कि शुक कहीं न चला जाय, इस भय से घोड़े पर बैठे हुए ही जिनेश्वर को नतमस्तक होकर प्रणाम किया।

राजा के मन की शंका हटाने के लिए वह शुक उसी देव प्रासाद में आ गया और जिनेश्वर देव को प्रणाम कर हर्ष पूर्वक स्तुति करने लगा कि:—

"हे आदिनाथ! जगन्नाथ! विमलाचल को सुशोभित करने वाले तथा नाभी कुल रूपी आकाश में प्रकाश करने में सूर्य तुल्य! आपकी जय हो (१)।

आपकी मूर्ति तीनों भुवनों की कठिन पीड़ाओं को नाश करने वाली है। मनुष्यों को आनन्दित करने वाली, अमृत की वर्षा करने वाली, अभिलाषित वस्तु को देने में कल्प वृक्ष स्वरुप तथा

(१) आदिनाथ जगन्नाथ, विमला चल मण्डन।
जय नाभि कुलाकाश, प्रकाशन दिवाकर ॥८७॥

संसार रूपी समुद्र को पार करने की इच्छा करने वालों के लिए दृढ़ नौका रूप आपकी मूर्ति दृष्टि गोचर होने पर क्या क्या नहीं करती (१) ?

शुक की इस प्रकार की स्तुति सुनकर राजा घोड़े से उतर कर जिन प्रासाद में आया और हर्ष पूर्वक श्री जिनेश्वर प्रभु की स्तुति करने लगा।

'मोक्ष का संकेत घर मनुष्यों के संकल्प से मन्दार की माला को भी जीतने वाली, कठिन मोह जाल को काटने वाली, आनन्द हर्ष रूपी सरोवर को पूर्ण करने में मेघ माला स्वरूप, जिसके आगे लक्ष्मीवान इन्द्र हंस भी नमते हैं, दान कला से देवताओं के घर को जीतने वाली, राजाओं को आनन्द देने वाली ऐसी समृद्ध शोभा सम्पन्न आपकी मूर्ति मेरे पापों को नष्ट करे। २

राजा का गांगलि ऋषि से मिलन

इधर उस जिन प्रासाद के समीपस्थ आश्रम में रहने वाले 'गांगलि-ऋषि' इस स्तुति को मधुर स्वर से सुन कर आश्चर्य सहित

१ भाति श्री नाभिनंदन महार्ति शमन', मूर्ति भवानन्दिनी,
मूर्ति वाञ्छित दान, वत्सल तथा मूर्ति सुधानन्दिनी।
संसाराम्बु निधि तरीतुं मनसां मूर्ति र्दृढ़ा नौरियं,
मूर्ति नैव पर्वतता जिनपते किं किं न कुर्यात् पुनः॥१॥४४८॥
२ मोक्ष. संकेत शाला सुगुण परिमलैः र्जित मन्दार माला,
छिन्न श्यामा जाला प्रमद भवसर पूरणे मेघ माला।
नम्रा श्री मन्मराला वितरण जयिता निर्जित स्वर्गिशाला,
स्वन्मूर्ति भी विशाला विदलतु दुरितं नन्दन रोहिप शाला॥१०॥

हो शीघ्रता से वहां आये और राजा की स्तुति समाप्त होने पर मधुर ध्वनि से जिनेश्वर प्रभु की स्तुति करने लगे।

'हे नाभी कुल भूषण! देवेन्द्र रूपी राज हंस जिसको प्रणाम करते हैं। कल्याण रूपी लता समूह के लिए मेघ स्वरूप! महाअज्ञान रूपी वृक्ष के लिए नदी प्रवाह स्वरूप! आपको प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार भक्तिपूर्वक जिनेश्वर देव की स्तुति करके 'गागलि'-ऋषि राजा से पूछने लगे कि, 'हे राजन! मृगध्वज! अब मेरे आश्रम को सुशोभित करो।'

राजा अपना नाम सुनकर अत्यंत चकित हुआ और ऋषि के साथ उनके आश्रम में आया। वहां 'गांगली' ऋषि ने उनका स्वागत किया।

'गागलि-ऋषि' ने कहा कि 'हे राजन्! मैं कृतार्थ हो गया।' क्योंकि मनुष्यों को आप जैसे व्यक्तियों के दर्शन भाग्य से ही होता है।

बाद में गागलि ऋषि श्री जिनेश्वर प्रभु की पूजा में तत्पर रहने वाली अपनी पुत्री 'कमल माला' को उद्यान से स्वयं ले आये। और राजा से कहने लगे कि 'हे राजन्!' 'आप मुझ पर प्रसन्न होकर मेरी इस कन्या को स्वीकार कीजिये। इस विषय में आप तनिक भी विचार न करें।' इस प्रकार अत्यंत आग्रह करके ऋषि ने अपनी उस सुन्दर, रूपवती, गुणवति कन्या को उत्सव पूर्वक राजा को समर्पण कर दिया।

ऋषि कन्या कमल माला का राजा के साथ लग्नः—

इसके बाद तपस्वियों में श्रेष्ठ वह गांगलि ऋषि ने अपनी उनी को जाप-विधि के सहित पुत्र उत्पादक मन्त्र दिया, क्यों कि प्राणियों को जंगल आदि विषम-स्थान में जाने पर भी धर्म के प्रभाव से राज्य, कन्या, लक्ष्मी आदि की प्राप्ति अवश्य होती है।

दूसरे दिन राजा ने कहा कि-"हे महर्षि! इस समय मेरा राज्य सूना पड़ा है इसलिए ऐसा उपाय कीजिए कि मैं अपने स्थान पर यहां से शीघ्र पहुच जाऊं।"

ऋषि ने उत्तर दिया। "इस समय मेरे पास रेशमी दुकूल आदि उत्तम वस्त्र नहीं हैं।" केवल वलकल के ही वस्त्र हैं। और दूसरा मेरे पास कुछ भी नहीं है। इसी समय ऋषि क्या देखते हैं कि पास ही खड़े वृक्ष की शाखाओं में से सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र बरस रहे हैं और उनका ढेर हो गया है। सच है, पुण्य के प्रभाव से असंभव पदार्थ भी पुरुष को प्राप्त हो सकता है। जैसे, रामचन्द्र जी के समुद्र पार उतरने के लिए मेरू के समान विशाल पर्वत भी समुद्र में तैरने लगे थे। पुण्य के प्रभाव से ही चन्द्र और सूर्य आकाश में भ्रमण कर रहे हैं। पुण्य के प्रभाव से ही वृक्ष फल देते हैं। पुण्य के प्रभाव से ही मेघ जल बरसाता है और पुण्य के प्रभाव से ही समुद्र भी मर्यादा का उल्लघन नहीं करता। 卐

पुण्य प्रभाविइ शशी सूर्य चालइ, पुण्य प्रभाविइ फल वृक्ष आलिइ
पुण्य प्रभाविइ जल मेघ मुकइ, समुद्र मर्याद धीकमोन मुकइ॥७६॥८

इस समय ऋषि क्या देखते वृक्षकी शाखाओंमे से सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र बरस रहे। पृष्ठ २०

(मु नि वि संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न. ३)

इसके बाद ऋषि कन्या कमलमाला उन आभूषण तथा वस्त्रों आदि को पहन कर श्री जिनेश्वर प्रभु के दर्शन करने जिनालय में गई। वहां वह श्री जिनेश्वर की स्तुति करने लगी।

"हे स्वामिन्! आप अतुल बलशाली हैं, यह मैं जानती हूं। इसलिये मैं आपको अपने हृदय में रक्खे रहती हूँ। आप मेरे हृदय से क्या निकल जायेंगे? हे स्वामिन्! आपके दोनों चरण कमल अपार सुख के देने वाले हैं। मैं पर्वत, नगर, वन, रण, कहीं भी रहूं आपके चरण कमल मेरे हृदय में बराबर विराजमान रहें।" इस प्रकार अत्यन्त भक्ति पूर्वक श्री जिनेश्वर देव की अनेक प्रकार स्तुति कर लेने के बाद वह कमलमाला अपने आश्रम में चली आई।

इसके बाद मृगध्वज राजा भी श्री जिनेश्वर देव को प्रणाम करके अपनी प्रिया के साथ अश्व पर चढ़ा और अपने नगर की ओर जाने के लिये गांगलि ऋषि से मार्ग पूछने लगा।

तब ऋषि ने कहा कि मैं तुम्हारे नगर के मार्ग से सर्वथा अनजान हूँ।

राजा कहने लगा कि तब आपने मुझको कन्या क्यों दी?

मुनि ने उत्तर दिया कि मैंने जब अपनी कन्या को देखा और उसके विवाह के लिये उत्सुक हुआ। तब आम के पेड़ पर बैठा हुआ एक शुक बोला कि तुम अपने मन में कन्या के बारे में जरा भी सोच न करो। प्रातःकाल में ही अश्व पर चढ़ा हुआ मृगध्वज नामक राजा को मैं ले आऊंगा। उसे तुम अपनी

कन्या दे देना। इतना कह कर वह शुक शीघ्र ही वहां से कहीं उड़ गया। बाद में वास्तव में ही प्रातःकाल आपको मैंने देखा और तुरन्त ही अपनी कन्या देदी। इसलिये मैं आपके आने जाने का मार्ग नहीं जानता हूं।

शुक के साथ राजा का अपने नगर को लौटना —

इसके बाद जब राजा चिन्ता से व्याकुल होने लगा तब ठीक उसी समय एक शुक ने आकर देवभाषा में कहा कि हे राजन! तुम मेरे पीछे पीछे जल्दी से चले आवो, मैं अपने भरोसे पर रहने वालों की उपेक्षा नहीं करता क्योंकि सुन्दरता सौभाग्य शान्तस्वभाव सद्कुल में जन्म, शुद्ध आचरण, सब कार्यों में दक्षता, एवं जीवन भर सुयश की प्राप्ति, ये सब धर्म के प्रभाव से ही सभी प्राणियों को प्राप्त होते हैं और सद्धर्म के प्रभाव से देवता भी वश में हो जाते हैं। जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार पुण्यात्माओं के सभी विघ्न समूह नष्ट हो जाते हैं।

इसके बाद मृगध्वज महाराजा अपने मन में शुक का सुन्दर उपदेश सुनकर आश्चर्य चकित हुए। गांगलि ऋषि की अनुमति लेकर अपनी नव विवाहित स्त्री के साथ अश्व पर चढ़ कर शुक के पीछे पीछे चलने लगा, बहुत मार्ग उल्लंघन करने पर दूर से अपना नगर देखा, तब वह शुक एक वृक्ष की शाखा पर बैठ गया।

तब राजा ने कहा, हे शुक ! आगे क्यों नहीं चलते हो ?
नगर को परसैन्य से घिरा हुआ देखना'—

शुक कहने लगा कि इसमें कुछ कारण है उसे आप सुनलें। तुम्हारी चद्रवती नामकी कुटिल स्त्री आपको कहीं दूर चले गये जान कर आपके राज्य को ग्रहण करने के लिए अपने भाई को बुला कर ले आई है। उसके भाई चन्द्रशेखर ने अपनी चतुरंगी सेना से आपके नगर को छल से घेर लिया है। नगर में से आपके विश्वासी वीर सरदारों ने वीरता से अब तक युद्ध किया है।

तब शुक के द्वारा नगर में जाना दुष्कर समझ कर राजा अपने मन में सोचने लगा कि यह संसार वास्तव में असार है क्योंकि प्यारी स्त्री भी इस प्रकार का धोखा देती है। कहा भी है कि राज्य, भोजन की वस्तु, शैया, श्रेष्ठ गृह, श्रेष्ठ स्त्री और धन इन सब को सूना छोड़ देने पर निश्चय ही दूसरे लोग अपने अधिकार में ले लेते हैं।"卐

जड़ बुद्धि मैंने ही बिना विचारे वेग में आ कर नगर को छोड़ा। इसलिए यह सब दोष मेरा ही है। इसमें किसी दूसरे का दोष नहीं। क्योंकि नीतिकार ने ठीक कहा है —

समझ सोचे बिनु कहीं पर काम करते आप हैं।
मानिये उसका बुरा फल, सब तरह सताप है॥

卐 राज्यं भोज्यं च शय्याच वरवेश्म वरांगना।
धनं चैतानि शून्यत्वेऽधिष्ठीयन्ते ध्रुवं परैः ॥६६॥

है संपदा गुण लोभिनी, उसके ही घर जाती सदा।
जो स्पष्ट सज्जन है विवेकी, धैर्य रखता सर्वदा।

नगर को सूना देख कर दूसरे मनुष्य उसकी इच्छा करते ही हैं क्योंकि हितदायक अथवा अहितदायक कार्य करते हुए पंडितों को यत्न पूर्वक पहले ही उसके परिणाम का निश्चय कर लेना चाहिए। अन्यथा अत्यन्त वेग म आकर अविचार से किये कार्यों का परिणाम व्याधि के समान हृदय में दाह देने वाला होता है। सहसा कोई काम नहीं करना चाहिए। क्योंकि अविवेक परम आपत्ति का घर है। विचार पूर्वक काम करने वालों को गुण की लोभी संपत्ति स्वयं आ मिलती है।

इस प्रकार जब राजा चिंता कर रहा था उस समय वह शुक कहीं चला गया था। उसी समय नगर की ओर से सेना को आते देख कर राजा अत्यन्त डर गया। सोचने लगा कि निश्चय ही इस वन में रहे हुए मुझ एकाकी को मारने के लिए यह शत्रु सेना आ रही है। अब मैं किस प्रकार अपनी इस प्रिया की रक्षा करूं? क्या किया जाय और क्या न किया जाय? इस प्रकार के तर्क वितर्क से जब तक राजा शांत हुआ तब तक उसके आगे 'जय-जय' कार की ध्वनि होने लगी। राजा आये हुए अपने इस परिवार को देख मन में आश्चर्य चकित हुआ और उनसे पूछने लगा कि "इस समय तुम लोग यहां कैसे आये?"

उन लोगों ने उत्तर दिया-"हम लोग भी यह नहीं जानते कौन मनुष्य हमें इस विकट मार्ग से ले आया है।"

इधर वाद्यों के शब्दों से दिशाओं को शब्दाय मान करते हुए मृगध्वज राजा को आते हुए देखकर चन्द्रशेखर राजा के मन्त्रियों ने आकर उसे सूचना दी कि "हे राजन्! यह मृगध्वज राजा सब लोगों का नाश करने वाला है इसलिए आप को अपनी रक्षा के लिए उपाय करना चाहिए। क्योंकि शत्रु अधिक बलवान है।

बलवानों के आगे शरदऋतु के चन्द्र के समान शांत भाव ही रखना चाहिए। उत्तम व्यक्तियों को नम्र निति से, शूर व्यक्तियों को भेद नीति से, नीच व्यक्तियों को कुछ देकर तथा तुल्य बलवालों से पराक्रम के साथ मिल जाना चाहिए! 卐

चन्द्रशेखर का राजा के पास आगमनः—

तत्काल उत्पन्न बुद्धि वाला राजा चन्द्रशेखर अपने स्वरूप को गुप्त करके राजा मृगध्वज के समीप जाकर बोला कि "हे राजन! मैंने लोगों के द्वारा आपको कहीं दूर देश गया हुआ समझ कर आपकी भक्ति भाव से प्रेरित होकर आपके ही नगर की रक्षा के लिए आया था, किन्तु आपके योद्धाओं ने इस बात को नहीं समझ कर मेरे साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। मेरे सुभटों

卐 बलवंतं रिपुदृष्ट्वा किलात्मानं प्रगोपयेत्।
बलवद्भिस्तु कर्तव्या, शरच्चन्द्र प्रकाशता ॥१०८॥
उत्तमं प्रणि पातेन शूरं भेदेन योजयेत्।
नीच मूल्य प्रदानेन, समशक्ति पराक्रमैः ॥१०६॥

ने इन लोगों के बहुत प्रहार सहन किये। अब आप स्वयं ही अपना राज सम्भालें।

अपने साला चन्द्रशेखर की ये बातें सुन कर मृगध्वज राजा ने उसका अतीव सम्मान किया। बाद में बड़े उत्सव के साथ नगर में अपनी नूतन रानी कमलमाला के साथ प्रवेश किया। नगर की स्त्रियां अपना अपना गृहकार्य छोड़ कर राजा की नवीन रानी को देखने के लिए एकत्र हो गई, क्यों कि स्त्रियों में नवीन वस्तु देखने की आतुरता अधिक बलवान होती है।

कमल-माला का शुभ स्वप्नः—

इसके बाद राजा मृगध्वज ने अपनी नवीन रानी कमल-माला को पटरानी बना निर्मल चित्त से न्याय पूर्वक अपनी प्रजा पर शासन करने लगा। कमल-माला ने अपने पिता से मिले हुए मन्त्र को अपने स्वामी को दिया। राजा ने दूसरे ही दिन पुत्र-प्राप्ति के लिये विधि पूर्वक उस मन्त्र का जप किया। इसमे सब राज रानियों के क्रम २ से एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कमल-माला ने एक दिन राजा से कहा कि मैंने आज रात को एक अच्छा स्वप्न देखा है। मैंने उस स्वप्न में अपने पिता के आश्रम के निकट जिन मन्दिरों में स्थित होकर कल्याण कारी भक्ति से श्री ऋषभ देव को प्रणाम किया और उन्हीं जिनेश्वर देव ने मुझे कहा कि "हे पुत्री! इस समय यह एक मनोहर शुक लो। कुछ दिन बितने

पर मैं पुनः तुमको एक सुन्दर हंस दूंगा।"रानी के इस स्वप्न को देखने के बाद मैं जागृति हुई। अब स्वामिन्! आप मुझे यह बतलाइये कि इस स्वप्न का क्या फल मुझे प्राप्त होगा। वह मुझे बतलाइये!

स्वप्न फल का कथन तथा पुत्र जन्मः—

राजा ने प्रातःकाल स्वप्न जानने वालों से विधि पूर्वक फल पूछ कर अपनी प्रिया कमल-माला को कहा। "जो कोई स्वप्न में राजा, हाथी, घोड़ा, सुवर्ण, बैल और गाय ये सब देखता है उसका कुटुम्ब बढ़ता है। जो स्वप्न में दीप, अन्न, फल, कमल, कन्या, छत्र और ध्वज देखता है अथवा मात्र प्राप्त करता है वह सदा सुख का लाभ प्राप्त करता है। स्वप्न में गाय, घोड़ा, राजा, हाथी, देव इनको छोड़ कर अन्य सब कृष्ण (काली) वस्तुओं को देखना अशुभ है। कपास तथा लवण इनको छोड़ कर अन्य सब शुक्ल (सफेद) वस्तुओं का देखना शुभ है। देवता, गुरू, गाय, पीतर, सन्यासी और राजा ये स्वप्न में जो कुछ भी कहते हैं वह उसके अनुसार ही फल देता है। इस लिये हे प्रिया! इस स्वप्न के अनुसार तुम्हें दो पुत्र प्राप्त होंगे पहला पुत्र शीघ्र ही उत्तम तथा शुद्ध आचरण वाला होगा। राजा की ये बातें सुन कर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा कुछ समय पश्चात् उसने गर्भ धारण किया। उस गर्भ के प्रभाव से रानी को बहुत अच्छे

दोहद१-विचार उत्पन्न होने लगे अर्थात् रानी कमल-माला के मन में अभिलाषा हुई कि नगर के जिनेश्वर देवों के मंदिरों में ठाट-बाट से पूजा करवाई जाय, जीव दया पलाई जाय इत्यादि। राजा मगध्वज ने भी अपनी पटरानी कमलमाला की अभिलाषाओं को सम्मानित कर पूर्ण की। जिससे पटरानी आनन्द पूर्वक अपना गर्भ पालन करने लगी। गर्भ के नव मास पूर्ण होने पर जैसे पूर्व दिशा में चन्द्रमा-उदय होता है उसी प्रकार पटरानी कमला-माला ने शुभ दिन में पुत्ररत्न को जन्म दिया।

पुत्र का 'शुकराज' नाम करण:—

मृगध्वज राजा ने पुत्र जन्म के हर्ष से सारी प्रजा को अन्न पान आदि देकर सम्मानित किया। पुत्र जन्म का शानदार उत्सव मनाया। स्वजनों से विचार कर शुक स्वप्न के अनुसार उस पुत्र का नाम 'शुकराज' ही दिया।

पुत्र क्रमशः पंच धाव माताओं से लालन-पालन होता हुआ पांच का होगया। सारे परिवार को आनंद तथा सभी के मन को मोहने वाला वह राजकुमार प्रति दिन शुक्ल-पक्ष की चन्द्र कला की तरह बढ़ने लगा।

एक दिन मृगध्वज राजा अपनी प्रिया और पुत्र के साथ क्रीड़ा करता हुआ उस उद्यान में आम की छाया में बैठ कर प्रिया

१. दोहद—गर्भिनी स्त्री की गर्भ समय में होने वाली इच्छायें।

'हे प्रिये ! यही आमका पेड़ है जहाँ कि शुकके मुखसे तुम्हारे सौंदर्यका वृत्तान्त

को कहने लगा कि हे प्रिये ! यही वह आम का पेड़ है जहां कि शुक के मुख से तुम्हारे सौंदर्य का वृत्तांत सुन कर शुक के पीछे पीछे दौड़ा था और उस वन में जाकर तुमसे विवाह किया। बाद में तुम्हारे साथ अपने नगर में आया !

शुकराज का मूर्छित होनाः—

स्पष्ट शब्दों में इन बातों को सुनकर राजा की गोद में बैठा हुआ राजकुमार 'शुकराज' विद्युत के समान शीघ्र ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने पुत्र को इस प्रकार देख कर राजा-रानी दोनों इस प्रकार कोलाहल करने लगे कि उसे सुनकर बहुत से लोग एकत्रित हो गये। तथा चंदन, जल, पंखे की वायु आदि अनेक प्रकार के शीतोपचार करके राजा आदि सब जनों ने मिल कर राजकुमार को सचेत किया। परन्तु वह शुकराज प्रसन्न नेत्र से सभी ओर देखता था, किन्तु लोगों को कुछ कहता नहीं था अर्थात् वह बोलता नहीं था।

तब राजा अपनी प्रिया सहित अत्यन्त उदास होकर सोचने लगा कि राजकुमार को अचानक क्या हो गया ? राजा ने अपने पुत्र के बोलने के लिए अनेक प्रयास किये किन्तु सब निरर्थक हुए, तब राजा ने पुनः कहा कि-हे प्रिये ! यमराजा प्रत्येक उत्तम पदार्थ में कुछ न कुछ दोष लगा देता है, जिस प्रकार चन्द्रमा में कलंक, कमल के नाल में कांटे, समुद्र के जल को नहीं पीने योग्य

'हे प्रिये ! यही आमका पेड़ है जहाँ कि शुकके मुखसे तुम्हारे माधवका वृत्तान्त सुनकर शुकके पीछे पीछे दौड़ा था' पृष्ठ २९

को कहने लगा कि हे प्रिये ! यही वह आम का पेड़ है जहां कि शुक के मुख से तुम्हारे सौंदर्य का वृतांत सुन कर शुक के पीछे पीछे दौड़ा था और उस वन मे जाकर तुमसे विवाह किया । बाद में तुम्हारे साथ अपने नगर में आया !

शुकराज का मूर्छित होना:—

स्पष्ट शब्दों में इन बातों को सुनकर राजा की गोद मे बैठा हुआ राजकुमार 'शुकराज' विद्युत के समान शीघ्र ही मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । अपने पुत्र को इस प्रकार देख कर राजा-रानी दोनों इस प्रकार कोलाहल करने लगे कि उसे सुनकर बहुत से लोग एकत्रित हो गये । तथा चंदन, जल, पंखे की वायु आदि अनेक प्रकार के शीतोपचार करके राजा आदि सब जनों ने मिल कर राजकुमार को सचेत किया । परन्तु वह शुकराज प्रसन्न नेत्र से सभी ओर देखता था, किन्तु लोगों को कुछ कहता नही था अर्थात् वह बोलता नहीं था ।

तब राजा अपनी प्रिया सहित अत्यन्त उदास होकर सोचने लगा कि राजकुमार को अचानक क्या हो गया ? राजा ने अपने पुत्र के बोलने के लिए अनेक प्रयास किये किन्तु सब निरर्थक हुए, तब राजा ने पुन कहा कि-हे प्रिये ! यमराजा प्रत्येक उत्तम पदार्थ में कुछ न कुछ दोष लगा देता है, जिस प्रकार चन्द्रमा में कलंक, कमल के नाल में कांटे, समुद्र के जल को नहीं पीने योग्य

खारा, पंडितों को निर्धन प्रियजनों का वियोग होता है और सुन्दर रूप वालों को दुर्भाग्यता एवं धनवालों को लाभी बनाया, इस प्रकार हमारे सुंदर राज पुत्र को भी गूंगा मूंगा बना दिया यह सब यमराज की लीला है। राज्य की सारी प्रजा राजा के इस दुख से दुखी हुई।

तत्पश्चात् महाराजा उद्यान से नगर में आकर अनेक शास्त्रों के जानने वाले बहुत से वैद्यों को बुलाकर अनेक प्रकार का उपचार कराने लगे। इस प्रकार उपचार करते करते छ मास बीत गये परन्तु शुकराज कुछ भी नहीं बोला। वैद्य लोग कहते थे कि कफ पित्त और वायु का विकार है। ज्योतिषी कहते थे कि ग्रह का दोष है। भौतिक उपसर्ग में निपुण लोग कहते थे कि भूत का उपद्रव है साधु लोग कहते थे कि पूर्व जन्म के पापों का फल है।

हे सुज्ञ वाचक! इस प्रकरण में मृगध्वज राजा के साथ ऋषि पुत्री कमल-माला के लग्न का अद्भुत प्रसंग आया एवं शुकराज का जन्म व एक आम के पेड़ के नीचे मूर्छित होना उसके लिए अनेक उपचार किये वे सब निरर्थक हुए अब आगे क्या होता है वह सब आगे के प्रकरण में दिखाया जायगा।

प्रकरण चौतीसवां

शुकराज और राजा जितारिः—

धिरे धिरे काम करे तो कार्य सफल सब होते हैं।
सिंचन सम्यों का खुब करे पण ऋतु आए फल देते हैं॥

इस प्रकार राजकुमार के गूंगेपन को दूर करने के लिए महाराजा को बहुत से उपाय करते करते छ मास व्यतीत हो गये। राजपुत्र की चिंता के कारण राजा आदि सारा ही परिवार हमेशा चिंतातुर रहता था।

कौमुदी-महोत्सव में राजा का गमन.—

एक दिन प्रजाजनों ने राज सभा में मृगध्वज राजा से नम्र विनती की "हे राजन हम कल कौमुदी महोत्सव मना रहे हैं, कृपा कर आप सपरिवार पधारें।" प्रजाजन के अति आग्रह होने के कारण कौमुदी महोत्सव में आने को राजाने स्वीकार किया।

दूसरे दिन महाराजा अपने परिवार सहित उद्यान में पधारे। उद्यान में घूमते घूमते राजा को वही वृक्ष दृष्टि गोचर हुआ कि जहां अपना प्यारा पुत्र पूर्व मूर्छित हुआ था तत्पश्चात् राजा ने अपनी प्रिया से कहा हे प्रिये! इस दुखदायी वृक्ष से दूर रहना ही ठीक है। इतने में उसी आम के वृक्ष के नीचे देव दुंदुभी का शब्द होने लगा। जब राजा ने किसी आदमी से पूछा कि यह क्या है? तब किसी मनुष्य ने कहा कि 'हे राजन-उस वृक्ष के

नीचे तपोध्यान में लीन "श्री दत्त" नामक मुनिश्वर को इसी समय वहां पर निर्मल केवल ज्ञान卐 उत्पन्न हुआ है। केवल ज्ञानी मुनिश्वर के प्रभाव से आकर्षित हो देवता स्वर्ग से आकर सुवर्ण का कमल बनाकर केवल ज्ञान का उत्सव मना रहे हैं। आनन्द दायक दुन्दुभी बजा रहे हैं उसी का यह दुन्दुभीनाद सुनाई देता है।"

यह बात सुनकर कमल-माला पटराणी ने कहा कि-हे स्वामी ! इस समय केवल ज्ञानी महात्मा से भक्ति पूर्वक नमस्कार कर पुत्र के बोलने का उपाय पूछना चाहिए। क्यो कि केवल ज्ञानी इस संसार की भूत, भविष्य और वर्तमान की सब बातें सम्पूर्ण तरह से जानते हैं।

卐 जो कर्म मनुष्य कोटि जन्मों मे तीव्र तपस्या करने पर भी नष्ट नहीं कर सकते, वह कर्म समता-भाव का आलम्बन करके क्षण भर मे नष्ट कर लेते हैं, और जिस आत्मा को आत्म ज्ञान प्राप्त हो चुका है, ऐसा साधु सामायिक रूपी शलाका से- शली जो अनादि काल से जीव और कर्म का परस्पर संयोग है, उसको प थक कर देते हैं अर्थात् आत्मा के सब कर्मों को हटाकर आत्मा को निर्मल कर देता है। सामायिक रूप सूर्य की किरणों से राग-द्वेष-मोह आदि अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने पर परम-योगीजन अपने मे ही अपनी आत्मा को देखने लगते हैं, अर्थात् त्रिकाल ज्ञानी होते हैं वे अपने त्रिकाल ज्ञान से सारे जगत के दार्थों को पूर्णरुप से देख सकते हैं।

श्री दत्त केवली मुनि की वंदना:—

राजा रानी अपने परिवार सहित केवली मुनीश्वर को प्रदक्षिणा देकर विधिपूर्वक वंदना की, और भक्ति पूर्वक स्तुति करके अपने पुत्र को गोद में लेकर मुनि भगवंत के सामने धर्म देशना सुनने के लिए बैठ गये। श्री दत्त केवली भगवान ने धर्मोपदेश देते हुए फरमाया कि "इस परिवर्तनशील संसार में प्राणी को उत्तम धर्मवान कुल में जन्म, आदर्श शीलवती स्त्री, सशक्त उत्साहित पुरुषार्थ रुपी लक्ष्मी से युक्त जीवन पवित्र आचरण वाले पुत्र और शुद्ध हृदय वाले मित्रों की प्राप्ति ये सब फल निश्चय करके धर्म के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं।" और अधर्म के प्रभाव से स्वजन से विरोध भाव, नित्य रोगी रहना, मूर्खजनों से संगत, क्रूर स्वभाव, अप्रिय वचन का उच्चार, रोषयुक्त रहना यह सब मनुष्यों को नरक गति से आने के चिन्ह १ और जीव धर्म प्रभाव से जो स्वर्ग लोक से मनुष्य लोक में आते हैं उनके हृदय में नित्य चार बातें जरुर रहती हैं जैसे कि-पहली दान देने की रुचि, दूसरी मधुर वाणी से बोलना, तीसरी देव पूजन की इच्छा, और चौथी सद्गुरु की सेवा २ इत्यादि सद्-बोध दायक मधुर वाणी से धर्म देशना सुनाई।

१ "विरोधिता बन्धुजनेषु नित्यं सरोगता मूर्खजनेषु सङ्ग।
क्रूरस्वभावः कटुवाक् सरोषोनरस्य चिन्हं नरकागतस्य॥१६२॥८

२ स्वर्गच्युतानामिह जीवलोके चत्वारि नित्यं हृदये वसन्ति।
दानप्रसंगो विमला च वाणी देवार्चनं सद्गुरुसेवनं च॥१६३॥८

केवली मुनि से शुकराज के विषय में प्रश्नः—

"धर्म देशना बाद में-किया प्रश्न गुरू से।
भूप समझने के लिये-किया यत्न शुरू से॥
कहिये कृपाकर क्यों हुआ-इस वृक्ष नीचे आज है।
पुत्र वाणी बन्द जिससे-व्यर्थ मेरा राज है॥"

धर्मोपदेश के पश्चात् राजा ने केवली भगवान से पूछा कि हे भगवान! मुझ पर प्रसन्न होकर यह बात बतायें कि इस वृक्ष के नीचे मेरे पुत्र की वाणी क्यों बन्द हो गई? तब केवली भगवान ने कहा कि "इस पृथ्वी पर पुन्य और पाप के प्रभाव से प्राणियों को अनेक प्रकार के सुख और दुख प्राप्त होते हैं, क्योंकि कोई व्यक्ति हजारों का भरण पोषण करता है तथा कोई लाखों का भरण पोषण करने वाला होता है, कई मनुष्य ऐसे भी होते हैं, जिसको कि अपना एक का भी भरण पोषण करना मुश्किल हो जाता है, इसका कारण अपना ही पुण्य अथवा पाप है।"

केवली भगवान ने पुनः कहा "हे राजन! मैं तुम्हारे पुत्र को शीघ्र ही बोलने वाला कर दूंगा आप मत घबराइए।"

तब राजा ने कहा कि हे स्वामी! मेरे पुत्र को आप दयाकर तत्काल स्पष्ट बोलने वाला बना दीजिए।

तब केवली भगवान ने उस राजपुत्र को कहा कि हे शुकराज विधिपूर्वक मुझे वंदना करो।

'हाथ जोडकर राजाने केवली भगवानसे पूछा कि हे भगवान! मुझ पर प्रसन्न होकर यह बात बताये कि इस वृक्षके नीचे मेरे पुत्रकी वाणी क्यों बंध हो गइ ?' पृष्ट ३२

(मु. नि. वि. सयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न. ५)

तब शुकराज गुरु महाराज की आज्ञानुसार शीघ्र ही उठ कर हर्ष पूर्वक स्पष्ट शब्दों मे इस प्रकार बोला "अणुजाणह पसाऊ करी" हे गुरु महाराज कृपा करके वंदना करने की आज्ञा दीजिए।

तब गुरु महाराज ने कहा कि 'इच्छं"

पुनः वह राजकुमार बोला कि-"इच्छामि खमासमणों वंदिऊं, जावणि जाए निसीहिआए मत्थएण वंदामि" इस प्रकार छोटे बालक को बोलता और भक्ति पूर्वक वन्दना करते हुए देख कर सब लोग अपने मन मे आश्चर्य चकित हो गये।

> बोलकर मुनि वन्दना करता हुआ उस बाल को,
> देख कर सब चकित हैं फिर पूछते इस हाल को॥

राजा ने पुन पूछा कि "हे भगवान! मेरे पुत्र को ऐसा क्यों हो गया?

श्री केवली द्वारा शुकराज के पूर्व जन्म का कथनः—

मृगध्वज महाराज के प्रश्न का उत्तर देते हुए केवली भगवान ने मधुर वाणी से फरमाया कि हे राजन! इस राजकुमार के पूर्व जन्म का सब वृतान्त सुनो, इसके बाद केवली मुनीश्वर शुकराज का पूर्व जन्म का सारा हाल राजा और सभा जन को सुनाने लगे-"पूर्व काल मे 'भद्दिलपुर' मे न्याय निपुण 'जितारी' नाम का राजा राज्य करता था, वह एक दिन राजसभा मे बैठा हुआ था, उस समय द्वारपाल ने आकर नम्र निवेदन किया, 'हे राजन!

विजयदेव राजा का दूत आया है, और द्वार-पर खड़ा है वह आपके दर्शन करना चाहता है' राजा ने कहा 'उसे सभा में ले आओ। बाद में उस राजदूत को द्वारपाल राज सभा में महाराज के पास ले आया। राजा ने उससे पूछा कि 'तुम यहां कहां से आये हो और आने का क्या प्रयोजन है ?

तब दूत कहने लगा कि हे राजन! पूर्व दिशा में 'लक्ष्मीवती' नाम की एक सुशोभित नगरी है, वहां विजयदेव नाम का परम धार्मिक राजा राज्य करता है उनकी प्रीतिमती नाम की पटराणी है वह सतियों में शिरोमणी है। उनको सोम भीम धन और अर्जुन नाम के चार पुत्र हुए तथा हंसी और सारसी नाम की दो कन्याओं को जन्म दिया क्रमशः बड़े प्यार से उनका पालन पोषण किया। एक दिन राजा राना ने सोचा कि आहार निद्रा भय और मैथुन यह सब मनुष्यों को और पशुओं को समान ही है। मनुष्यों को सिर्फ ज्ञान ही विशेष है। ज्ञान रहित मनुष्य पशु के समान ही है इसीलिए विजयदेव महाराजा ने अपने प्यारे पुत्रों व पुत्रियों को विद्वान पंडितों के द्वारा अच्छी तरह से शिक्षित किये। वे चारों पुत्र और दोनों कन्याये सब शास्त्रों में पारंगम और परम धार्मिक हुए।

चारों राजपुत्र अस्त्र शस्त्र आदि क्षत्रियोचित और पुरुषों की बहोत्तर कलाओं में यथा योग्य प्रवीण हुए। और हंसी व सारसी दोनों ने स्त्रियों की चौसठ कलाओं का अध्ययन परिपूर्ण किया। क्रमशः वे दोनों राज कुमारी बाल्यावस्था का उल्लंघन कर

यौवन अवस्था को प्राप्त हुई दोनों बहनों ने एक दिन आपस में यह निश्चय किया कि हम दोनों कभी भी प्रथक नहीं होंगी अथवा हम दोनों एक ही पुरुष के साथ विवाह करें जिससे हमारा कभी वियोग न हो सके।

एक दिन दोनों कन्याओं को विवाह योग्य देखकर राजाने उनको पूछा- हे पुत्रियो ! *मैं तुम्हारा विवाह किस देश के किस* व्यक्ति के साथ करूं?

दोनों राज कन्याओं ने उत्तर दिया-पिताजी ! यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हम दोनों बहिनों का बिवाह एक ही वर के साथ करें ताकि हमारा वियोग न हो और हम दोनों सदा प्रेम पूर्वक साथ रहें।

"कन्याएं बोली तात हमें, वर एक चाहिये जिससे हम
बिछुड़े न परस्पर बहिनों से, स्वामि सौभाग्य न खोवें हम ॥

और नितीकार ने भी कहा है-"कन्या तो सुन्दर व रुपवानवर को, माता धन को पिता अच्छे ज्ञानवान को और बान्धवलोग के वल मिष्टान्न ही चाहते हैं।" ❀

राजा ने अपनी पुत्रियों को उत्तर दिया कि "मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार एक ही वर के साथ तुम्हारा विवाह करूंगा।"

❀ वरं वरयते कन्या माता वित्तं पिता श्रुतम्।
बान्धवाःधन मिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः ॥८१॥ ८

स्वयंवर में जितारी राजा को निमन्त्रणः—

राजा ने अपने स्वजनों के साथ विचार करके शानदार स्वयंवर मंडप बनाया। माघशुक्ला अष्टमी का निश्चय मुहूर्त करके बहुत से देशों में कुंकुम पत्रिकाएं भेजी गईं। मैं इसी कुंकुम पत्रिका को लेकर आपको यहां देने आया हूँ। आप कुंकुम पत्रिका को पढ़ कर वहां अवश्य पधारें।

इस कुंकुंनिका को पढ़ कर राजा अपने परिवार के साथ स्वयंवर में आया। दूतों से कहे हुए, उनके वंश को सुनती हुई अंग, बंग, कलिंग आदि बहुत से देशों के राजाओं को छोड़ कर सिंहासन पर बैठे हुए जितारी राजा के कण्ठ में उन दोनों कन्याओं ने मनोहर वरमाला पहनादी!

मनोहर रूप-वाली उन दोनों कन्याओं से विवाह करके राजा जितारी दहेज में दिये हुए बहुत से घोड़े और हाथियों को प्राप्त कर वहां से अपने नगर के प्रति प्रस्थान किया।

दोनों पत्नियों सहित राजा को अपने नगर में आते हुए सुनकर नगर की महिलायें नई विवाहित दोनों रानियों को देखने की अभिलाषा से एक नेत्र में ही अंजन लगाकर और कई महिलायें अपने अपने काम को अधूरा ही छोड़कर उत्सुकता से राज मार्ग में आकर खड़ी हो गईं। इसके बाद राजा "जितारि"

रति और प्रीति की तरह हंसी और सारसी दोनों मनोहर स्त्रियों से सुशोभित होकर उत्सव पूर्वक अपने नगर में प्रवेश किया।

एक दिन नगर के उद्यान में "श्रीधर" नाम के आचार्य गुरुदेव के पधारने की वधाई सुनी, हंसी और सारसी दोनों रानियों के साथ जितारि राजा उद्यान मे आचार्य की वंदना करने के लिए आये। वहाँ पर आचार्य ने धर्मोपदेश देते हुए फरमाया —

"इस संसार मे अनेक प्राणियों को धर्म के प्रभाव से ही उत्तम आर्य कुल में जन्म, निरोगी शरीर, सौभाग्य दीर्घ आयु और बल प्राप्त होता है। धर्म से ही निर्मल यश, सद् विद्या तथा रिद्धि सिद्धि आदि की प्राप्ति होती है, घन घोर वन में और महाभय मे धर्म ही रक्षा करता है, धर्म की वास्तविक उपासना करने पर स्वर्ग और मोक्ष भी मिलता है।"

राजा का सर्व श्रेष्ट धर्म को ग्रहण करना:—

राजा जितारि धर्मोपदेश सुनकर अहिंसा धर्म को ग्रहण करके अपनी स्त्रियों के साथ अपने राज महल मे आया, और आनंद पूर्वक समय विताने लगे। हंसी सरल स्वभाव वाली स्त्री थी और अपने स्वामी की उचित रूप से आज्ञा पालन करती हुई धर्म ध्यान में निमग्न हुई। उसने स्त्री जाति योग्य कर्म को

नाश कर मनुष्योचित कर्म से बंध (संबंध) किया और दूसरी बहन सारसी यह कपटी स्वभाव वाली थी। वह पति के साथ माया खेलती हुई और बाहर से प्यार दिखाती हुई स्त्रियोचित कर्म से बंध (संबंध) किया।

कुछ दिन व्यतीत होने पर कुटिल स्वभाव वाली सारसी हंसी के साथ हमेशा क्लेश करती रही। एक ही वस्तु के दो चाहने वाले होने पर परस्पर अवश्य कलह होता है, और कलह के कारण आपस में मतभेद जरूर होता है, उसमें भी सपत्नियों (सौत) का स्वभाव सरल होना तो असम्भव ही है।

"पाठक गण ! देखो कैसे बव-भगिनी में आपस द्वेष चला।
जब काम वासना बढ़ती है-होगा तब कैसे कहीं भला॥

पाठक गण ! दोनों बहिनों के आपस में कितना प्रेम था और वियोग न हो जाय इसीलिए एक ही स्वामी के साथ विवाह किया था वे ही आपस में द्वेष रखती हैं, यही स्वार्थी संसार की स्थिति है।

यात्रिक संघ का अवलोकनः—

एक दिन "जितारि" महाराजा खिड़की पर बैठे हुए राज मार्ग पर अवलोकन कर रहे थे, उस समय यात्रियों को इकट्ठे हुए जाते देख कर सेवकों से पूछा, ये सभी यात्री कहां जा रहे हैं?
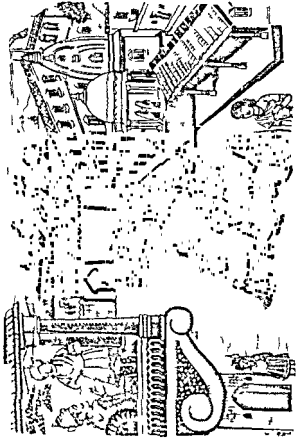
खिड़की पर बैठे हुए राजा जितारि मार्ग पर अवलोकन कर रहे थे, उस समय यात्रियों को इकट्ठे हुए जाते देख कर सेवक से पूछा, ये सभी यात्रि कहां जा रहे हैं ? पृष्ठ ३८

(मु नि वि संयोजित धिम्मल चरित्र दूसरा भाग चित्र नं ६)

सेवकों ने जाच करके कहाकि यात्री संघ "शंखपुर" का रहने वाला है, सौराष्ट्र देश में आया हुआ है, श्री सिद्धाचल महातीर्थ पर श्री आदिनाथ भगवान को प्रणाम करने के लिये जा रहे हैं। वे लोग नगर बाहर के उद्यान में विश्राम के लिए ठहरे हुए हैं, ये लोग वहां से इस नगर में जिनमंदिर में दर्शन करने जा रहे हैं।"

राजा मृगध्वज ने यात्री संघ के विश्राम स्थान में जाकर उसे संघ के साथ पधारे हुए 'श्रीश्रुतसागर सूरीश्वर' नामक गुरू को भक्ति पूर्वक प्रणाम करके हाथ जोड़ कर पूछा कि आप लोग श्री सिद्धाचल तीर्थ पर क्यों जा रहे हैं?'

तीर्थ महिमा का कथनः—

तब सूरीश्वरजी ने कहा कि "उस महातीर्थ का जन शास्त्रों मे बहुत बड़ा महात्म्य है,"। श्री सिद्धाचल महातीर्थ के ऊपर विराजित श्री प्रथम तीर्थंकर प्रभु के दर्शन मात्र से सज्जनों को दिव्यदृष्टि प्राप्त होती और पाप नष्ट होता है अर्थात् उनके प्राणियों के लिए अमृतांजन के तुल्य है और संसार के मोहजाल मे फंसे हुए अज्ञानियों के लिए ऐसा अपूर्व धूआं है कि जो सारे अज्ञान को आंसू रूप से बहाकर नष्ट कर देता है। इस संसार रूप महासमुद्र में एक छोटे से सरोवर की तरह पार उतार देता है, । जो प्राणी को श्रीसिद्धाचल दूर से भी दृष्टि गोचर होने पर पुण्य को प्राप्त करता है, वह मनुष्य जन्म सफल बनाता

है पाप को नष्ट कर देता है, सज्जनों के नेत्रों को पवित्र करता है। वह शोभा सम्पन्न श्री पुंडरिकगिरि महातीर्थ सबसे उत्कृष्ट रूप में विजय मान रहे।"

"उस श्री विमलाचल महातीर्थ मे चार तीर्थंकर समवसरण कर चुके हैं और भविष्य काल मे बाविसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के सिवाय उन्निस तीर्थंकर समवसरण करेंगे। जहाँ पर श्रीपुंडरिकगणधर आदि पाचकोटि मुनीयों के साथ तथा नमि विनमि आदि दो क्रोड़ मुनियों के साथ सिद्ध हुए, द्राविड़ऋषि तथा वारि खिलजी दस कोटि मुनियों के साथ एवं श्री कृष्णजी के पुत्र प्रद्युम्न और शाम्ब कुमार साढे तीन कोटि मुनियों के साथ इसी तीर्थ पर सिद्ध हुए हैं और जहाँ पर श्री पांचपाड़व, नारद ऋषि, राम, भरत, तथा अन्य दशरथजी के पुत्र एवं सेलगसूरी आदि अनेक उत्तम आत्मा कर्म से विमुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त हुए उस श्री शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए कि जिसको गणना देव भी नहीं कर सकते। उनकी गणना आकाश को अंगुली से नापना तथा गहरी नदी के जल का परिणाम जानने के समान असम्भव ही है, हे राजन्! अधिक क्या कहें।"

राजा की तीर्थ यात्रा के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा:—

इस प्रकार उस महातीर्थ की बड़ा भारी महिमा सुनकर महाराज ने तत्काल मंत्री आदि के समक्ष प्रतिज्ञा की, कि श्री विमलाचल पर

श्री आदिनाथ को प्रणाम करके ही अन्न और जल ग्रहण करूंगा। और मैं इस महातीर्थ की पैदल चल के ही यात्रा करूंगा, इस प्रकार निश्चय कर राजा अपनी हंसी और सारसी इन दोनों पत्नियों के तथा परिवार आदि को साथ लेकर उस यात्री संघ के साथ साथ श्रीविमलाचलतीर्थ कीओर प्रयान किया। क्रमश:संघको चलते चलते सात दिन व्यतित हुए, एक विशाल घनघोर जंगल मे संघ ने आकर विश्राम किया। राजा को अन्न पानी सात दिन से त्याग था इससे वे थके हुए मालूम होते थे, इससे सकल सघ और मंत्री आदि व्याकुल होकर-सोचने लगे, कि महाराजा ने विना सोचे ही यह प्रतिज्ञा ले ली, यहाँ से श्रीसिद्धाचल तीर्थ दूर है भूखे प्यासे महाराजा वहाँ कैसे पहुँच सकेगें, इत्यादि सोच कर मंत्री आदि यात्रीगण मिलकर सूरीश्वरजी के पास आकर पूछने लगे, कि अब कितना मार्ग वाकी है?'

सव सूरीश्वरजी ने कहा कि "यह काश्मीर देश है। मन्त्रियों ने पुनः पुनः पूछा कि "राजा ने अत्यन्त दुष्कर प्रतिज्ञा ली है इसलिए रानी आदि सब लोग इस समय व्याकुल है,"

सूरीजी ने राजा को बुलवा कर पूछा कि तुमने सहसा नियम ले लिया है, इस लिए अब पारणा कर लो क्योंकि प्रतिज्ञा के अदर 'सहसागार' आदि चार आगार सर्वत्र कहे जाते है अर्थात् विषम अवस्था में छूट ली जाती है; नहीं तो धर्म की अवहेलना होगी, हे राजन्! लाभालाभ का विचार कर के सव कार्य करना चाहिये।

राजा को अनेक प्रकार से समझाने पर भी उसने अपने नियम को नहीं छोड़ा। दृढ़ मन वाले महाराजा ने उत्तर दिया, "मैं अपनी की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का सामर्थ्य रखता हूं, प्राणान्त होने पर भी मैं अपनी ली हुई प्रतिज्ञा नहीं छोड़ूंगा !"

स्वप्न में गोमुख यक्ष का कथनः—

मंत्री आदि सारा हा परिवार अत्यन्त दुखी हुआ। रात होने पर मन्त्री आदि सब सो गये, तब सोये हुए मन्त्री को स्वप्न में तीर्थ के अधिष्ठायक श्री 'गोमुखयक्ष' ने कहा कि तुम अपने मन में कुछ भी चिन्ता न करो मैं तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करूंगा; प्रातःकाल प्रथम प्रहर में जब संघ मार्ग मे चलने लगेगा तब मैं सत्य ही श्री विमलाचल तीर्थ को सन्मुख में ले आऊंगा और उस तीर्थको नमस्कार कराकर राजाजीका अभिग्रहको पूर्ण कराना इस प्रकार यक्ष ने सब को विश्वास केलिये हरेकको स्वप्न दिया। प्रातःकाल में सूरीश्वरजी आदि मन्त्रीगण एकत्रित होकर रात्रि का स्वप्न का समाचार परस्पर कहने लगे। संघ के साथ मार्ग में चलते हुए राजा ने तीर्थ को देख कर भक्ति भाव से पूजादि कर अपने अभिग्रह को पूर्ण किया।

सारे संघ के यात्रीगण को आज बहुत ही आनन्द हुआ था, अच्छे अच्छे सुगंधी पुष्पोंसे तथा सुन्दर स्तोत्रों से द्रव्य और भाव से तीर्थ की स्तुति करके राजा आदि सभी ने अपने मानव जन्म को सफल किया। श्री आदिनाथ को प्रणाम करके आगे जाने में राजा

का मन मानता ही नहीं था, श्री जिनेश्वर को प्रणाम करके आगे पुनः जाता था तथा पुनः २ लौट आता था। राजा को इस प्रकार बार बार करते देखकर मन्त्रियों ने कहा कि हे राजन्! आप इस प्रकार क्यों लौट रहे हैं? राजा ने कहा कि मैं, नहीं जानता हूँ कि मेरा पाँव आगे क्यों नहीं बढ़ता है।

विमलानगरी का निर्माणः—

तब मन्त्रियों ने कहा कि यहाँ पर ही नगर की स्थापना करता हूँ। यहां ही सब लोग रहेंगें। तब अनेक जिनेश्वरों के मन्दिरों से युक्त 'विमला' नाम की नगरी बसाकर राज धर्म ध्यान में लीनहोकर वहां पर रहने लगा।

इधर गोमुख यक्ष ने आकर राजासे कहाकि "मैंने देवशक्ति" राजा से श्रीपुण्डरीक नाम का पर्वत राज यहा पर बनाया था। अब आपकी तथा समस्त संघ की प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई। इसीलिये अब मैं शीघ्र ही इस पर्वतराज का संहरण करूंगा। इसलिये सौराष्ट्र देश मे भूषण स्वरूप मुख्य तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचल पर जाकर श्री ऋषभदेव प्रभु की भाव पूर्वक वन्दना कर आओ। क्योंकि—

'देवताओं के द्वारा रचित चित्त को हर्ष देने वाला गृह आदि, सब वस्तुएं एक पक्ष से अधिक नहीं रहते ऐसा जिनागम में कहा हुआ है।"卐

卐 विकुर्वितं सुरैः वस्तु गेहादि चित्तहर्षदम्।
पक्षादुपरि नो कुत्र तिष्ठत्युक्तं जिनागमे ॥२३८॥सर्ग८

दूसरे दिन राजा हर्षित चित्त से श्रीविमलाचल पर श्री जिनेश्वर आदिनाथ को प्रणाम करने के लिये संघ से युक्त होकर चले और क्रमशः वहां पहुंच गये ! वहां जाकर भाव पूर्वक स्नात्रपूजा महापूजा, ध्वजारोपण सघ मालारोपण आदि संघ सहित राजा ने मानव जन्म को सफल कर लिया । इस प्रकार सुन्दर यात्रा करके मनुष्य जन्म के उत्तम फलों को प्राप्त करता हुआ संघ के साथ नयी बसाई हुई श्री विमलापुरी में राजा वापिस लौट आये।

तत्पश्चात हाथी घोड़े सेना रथ आदि से युक्त होकर राजा "जितारि" अपनी पत्नियों के साथ शीघ्र ही श्री भद्दिलपुरी में आये।

धर्मोपदेशः—

एक दिन नगर के उद्यान में गुरु श्री श्रुतसागरसूरीश्वरजी को आये सुनकर अन्त पुर के साथ राजा उनकी वन्दना करने के लिए गया। सूरीजाने धर्मोपदेश देते हुए फरमाया कि पूज्य व्यक्तियों की पूजा करना, दया, दान, तीर्थयात्रा, जप, तप, आगम का श्रवण परोपकार ये मनुष्य जन्म मे आठ फल हैं। जिनेश्वर की पूजा आदि स्वर्ग तथा मोक्ष देने वाली है इस प्रकार सुनकर राजा जीव-दया रूपी धर्म मे अत्यन्त दक्ष हुआ। न्याय नीति से राज्य करता हुआ राजा अन्त समय में हर्ष पूर्वक अनशन लेकर एक समय श्री नवकार महामन्त्र सुनते सुनते ध्यान में तत्पर हुआ इसी बीच में श्री आदिनाथ प्रभु के मन्दिर के शिखर पर एक शुक को शब्द करते हुए देखकर उसमे राजा ने मन लगा दिया ।

जितारी राजा का देहान्तः—

जिन प्रसाद के शिखर पर स्थित शुक को देखते २ उसी समय राजा ने शरीर त्याग कर दिया। मरते समय राजा का ध्यान शुक की ओर था इसी लिए वे वहां से मरकर उनकी आत्मा शुक की योनि में उत्पन्न हुई क्योंकि उच्च उच्चतर मध्यम हीन हीनतर स्थानों में अर्थात् जिसको जहां जाना है मरते समय चित्त में वही भाव उत्पन्न होता है। निरंतर अनेक पाप पुन्य करने के कारण तन्मय आत्मा वाले प्राणियों की अंत अवस्था में जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है। मरण कब होगा! उसको कोई निश्चित समय नहीं है इसी लिये सदा सद् ध्यान करना चाहिये।

दोनों रानी की दीक्षा व स्वर्ग गमनः—

राजा की मृत्यु के बाद प्रजाजन आदि लोग कहने लगे कि यह धमवान एवं पुन्य वान् राजा स्वर्ग मे गया होगा क्योंकि प्राणियों की गति तथा अगति को गृहस्थी मनुष्य कैसे जाने? अर्थात त्रिकालज्ञानी के सिवाय मनुष्य नहीं जान सकते। स्वजन आदि मिलकर राजा की अंतिम प्रेतक्रिया समाप्त की। बाद में इस संसार की असारता जानकर हंसी और सारसी दोनों रानियों को वैराग्य उत्पन्न हुआ। गुरु के समीप जाकर दोनों ने हर्ष पूर्वक दीक्षा ली। गुरु के आश्रय में ज्ञान ध्यान पूर्वक अच्छी तरह दीक्षा का पालन करते हुए निरंतर छट्ट के पारणे, दो-दो उपवास छट्ट आदि घोर तपस्या करते हुए क्रम से उत्तम ध्यान मे लीन वे दोनों आयु पूर्ण कर प्रथम स्वर्ग लोक मे उत्पन्न हुई।

अवधि ज्ञान से अवलोकन:—

वहां वे दोनों देवी होकर सुख पूर्वक समय बिताने लगी, अवधि ज्ञान से अपने पिछले भव के सम्बन्ध को देखने लगी। अपने स्वामी को पक्षी-तिर्यञ्च गति में देख कर दोनों देवियों को अत्यन्त दुख हुआ। बाद दोनों देवियां शिघ्र ही देव लोक से उस शुक को प्रतिबोध के लिए आकर कहने लगी कि "हे शुक पूर्वजन्म में तुम 'जितारी' नाम के महाराजा थे, अर्थात् हमारे स्वामी थे," इत्यादि पूर्व जन्म का सब वृतान्त कह सुनाया और पुनः कहा कि तुमने बहुत पुन्य आदि किया था परन्तु अंत समय में आर्तध्यान के कारण भाग्य संयोग से पक्षी भव को प्राप्त किया है। इसी लिए अब तुम अपने मन में शुभ ध्यान करो, जिससे तुम को स्वर्ग और मोक्ष के सुख प्राप्त होंगे।'

शुक-पक्षीका अनशन व स्वर्ग गमन:—

इस प्रकार धर्मोपदेश देकर शुक को अनशन ग्रहण कराया, बाद वह शुक धर्म भावना पूर्वक मरकर स्वर्ग में गया, और उन्हीं दोनों देवियों के स्वामी देव हुए इस प्रकार वह शुक-देव उन दोनों देवियों के साथ सुख का अनुभव करते हुए किस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया यह नहीं जान सके।

स्वर्ग से च्युत होकर दो तीन चार मनुष्य जन्म प्राप्त करके वे देवियां पुन. २ जितारी देव की पत्नियां हुई अर्थात् दो मर्तबा मनुष्य भव और तीन बार देव भव तीनों जिवों ने क्रम से प्राप्त
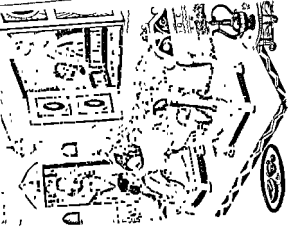
जिन प्रसाद के शिखर पर शुकको देखते दखते उसी समय जितारि राजाने शरीर त्याग कर दिया। पृष्ट ४१
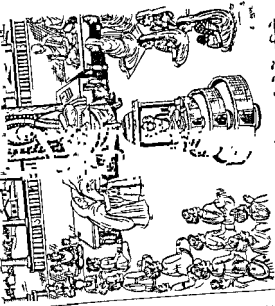
राजा जितारिकी हंसी और सारसी दोनों रानियो को वैराग्य उत्पन्न हुआ, गुरुके समीप जा कर दोनों ने हर्षपूर्वक दीक्षा ली । पृष्ट ४५

(म नि वि सयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ७-८)

किये, जब अन्तिम भव में वे देवियाँ स्वर्ग से च्युत हुई तब 'जितारी' देव मोहके कारण बहुत दुखी हुआ। उस दुखके कारण वह देव बावड़ी उद्यान आदि में कहीं भी क्रीड़ा करने नहीं जाता था क्योंकि ईर्ष्या, विषाद, मद, क्रोध, माया लोभ आदिसे देवभी दुखी रहते हैं, अर्थात् देव लोगों में भी पूर्ण सुख कहां है ? देव विषय में सदा आसक्त रहते हैं, नारकी के प्राणी अनेक प्रकार के दुख से दुखी रहते हैं; तिर्यञ्च-पशु योनि सदा विवेकसे रहित है, तब केवल मनुष्य भव में ही पुन्य से जीव को धर्म की सामग्री प्राप्त होती है।

केवली भगवान से प्रश्न व निर्णयः—

एक दिन वह देव धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से लक्ष्मीपुर के बाहर के उद्यान में रहे हुए श्री धर्मघोषसूरीश्वरजी नाम के केवली भगवानके समीप आया। सूरिजी महाराजने मधुर वाणीसे सुन्दर धर्म देशना दी। तत्पश्चात् केवली भगवान से उस देव ने पूछा 'हे भगवन ! मैं सुलभ बोधि हूँ ? या दुर्लभ बोधी हूँ ?' तब केवली भगवान ने फरमाया कि "तुम सुलभ बोधि हो।"

यह सुनकर देव ने पूछा कि "किस प्रकार होगा ?" कृपा कर बताइये। तब केवली भगवान ने कहा-तुम्हारी दोनों देवियाँ जो पूर्व भव में स्वर्गसे च्युत होकर हंसीका जीव शुभ कर्मके योग से 'क्षितिप्रतिष्ठित' नगर में 'मृगध्वज' राजा हुआ है, और सारसी का जीव पूर्व भव में किये हुए कपट के कारण

विमलाचल से निकट एक बागमें श्री आदिनाथ भगवान के मंदिर के समीप आश्रम मे गागलि ऋषि की 'कमल माला' नामकी कन्या के रुप में उत्पन्न हुई है। उन दोनों के संयोग से उनके घर पुत्रके रुप मे तुम जन्म ग्रहण करोगे और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त करके ससार रुपी समुद्र तरोगे।

श्री केवली भगवान के मुख-से यह बात सुनकर वह देव अत्यन्त प्रसन्न होकर सब अवयवों से सुन्दर शुक रुप बनकर तुम्हें उस आश्रम मे लेजाकर ऋषिकी कन्या से विवाह कराकर अत्यन्त स्नेह से उस देव ने शृंगार के साधन; अत्यन्त मनोहर वस्त्र और आभूषण दिये, तथा पुन. उसी शुक रूप में तुमको अपने नगर मे लाकर छोड़ा। वह देव भी अपने को सुलभ वोधि जानकर आनन्द से स्वर्ग में गया।

वह जितारि देव आयु पूर्ण होने पर स्वग से च्युत होकर तुम्हारा पुत्र हुआ है, जिसका बड़े उत्सव के साथ तुमने शुक-राज नाम रखा है, इसी वृक्ष के नीचे तुम को अपनी राणी के साथ वार्तालाप करते देखकर जातिस्मरण ज्ञान हुआ इस कारण यह तुम्हारा पुत्र अपने मन में विचारने लगा कि मेरे ये दोनों माता-पिता पूर्व जन्म मे मेरी अत्यन्त प्रेमपात्र प्रिया थी, आज मैं उन्हें पिता और माता कैसे कहूं ? इसलिये मौन रहना ही अच्छा है, ऐसा अपने मनमें सोच कर तुम्हारे पुत्र ने मौन धारण किया, हे राजन्! इस में कोई रोग का कारण नहीं है, इसीलिए

तुम्हारे सब उपाय व्यर्थ गये। तब शुकराज बोल उठा,हे भगवन! आपने जो कुछ कहा है वह सत्य है। शुकराज को मन मे दुखी होते देख कर श्री दत्त केवली भगवान ने फरमाया —

हे शुकराज! इसमें आश्चर्य जनक कोई बात नहीं। यह संसार एक विचित्र नाटक ही है, जिसमें हरेक जीव अनेक रूप से एक दूसरेके साथ पिता पुत्र, स्त्रीपुरुष, हजारों वार होचुके हैं। इस ससार मे ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसी कोई योनि नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, कोई ऐसा कुल नहीं, जिसम प्राणी अनेकों वार जन्मको प्राप्त करके मरणको प्राप्त नहीं हुआ हो, इसीलिए किसीसे राग, द्वेष कुछ भी नहीं करना चाहिए, मन में समता धारण कर सबसे स्नेह व्यवहार करना चाहिये।

इस ससार में हजारों माता पिता हो गये, कितने ही पुत्र स्त्री का सयोग वियोग हो गया, वास्तव में मैं किसी का नहीं हू, और मेरा कोई नहीं है, क्योंकि यह संसार एक माया जाल है।

श्री दत्त केवली भगवान बोलेकि हे राजन! इस संसार आश्चर्य जनक घटना को देख कर मुझे भी वैराग्य हो आया! अब मेरा सारा ही वृत्तान्त तुमको विस्तार के साथ सुनाता हूँ, वह सावधान होकर सुनो।

पैंतीसवां प्रकरण

श्रीदत्त केवली का पूर्व–चरित्र

खल खंडन, मंडन सुजन सरल सुहृद् सविवेक।
गुण गंभीर, रण सूरमा, मिलत लाख में एक॥

केवली भगवान श्री श्रीदत्त मुनीश्वरजी राजा मृगध्वज एवं सभाजन के समक्ष अपना ही रोमांचकारी चरित्र इस प्रकार सुनाने लगे।

"इसी भारत वर्ष में "मंदिर" नाम का एक अत्यन्त रमणीय नगर था। उस नगर में "सूरकान्त" नाम का राजा नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करता था। उस राजा के आदर पात्र श्रेष्ठियों में शिरोमणि एक "सोम" नामका श्रेष्ठी था। उसकी स्त्री का नाम "सोमश्री" था, उसके पुत्र का नाम "श्रीदत्त" था, उस श्रीदत्त के निर्मल शीलवती "श्रीमती" नाम की स्त्री थी। इस प्रकार वह श्रेष्ठी सब प्रकार से भाग्यशाली था, क्योंकि प्रेम पात्र पत्नी, विनय युक्त पुत्र, गुणवान भाई, स्नेही बन्धुजन, अत्यन्त बुद्धिमान-मित्र जन, नित्य प्रसन्न चित्त स्वामी; लोभ रहित सेवक, सदैव दूसरे के कष्ट को शान्त करने के उपयोग में आने वाला धन ये सब भाग्योदय से ही किसी पुण्यशाली व्यक्ति को ही प्राप्त हो सकते हैं।

"प्रेम भरी वनिता, विनयान्वित पुत्र, गुणी निज सहोदर भाई,
बन्धु सस्नेह मिले, होसिआर सुमित्र, प्रसन्न सदा रह साँई।

सेवक लोभ विना, जिसके धन मे जनता सब दुःख दुराई, .
उपदेशक ज्ञान निधि गुरु वर्य्य को–पाता है पुण्यसे भाग्य जगाई"

सोम श्रेष्ठी का उद्यान में जाना—

एक दिन वह सोम श्रेष्ठी अपनी प्रिया के साथ बाग में मनोरंजन के लिये गया, उसी समय अनायास ही वहां राजा सूरकान्त भी अपने अन्त पुर के साथ उपस्थित हुआ, तथा अपने रूप से अप्सराओं को भी तिरस्कृत करने वाली सोमश्री को देखकर मोह में अन्ध होकर बलात्कार पूर्वक उसे वह दुष्ट बुद्धि राजा अपने अन्त पुरमे ले गया, क्योंकि प्राय मूर्खोंकी बुद्धि दूसरेके धन और परस्त्री मे ही रहती है। जैसे रोगी को जो शरीर के लिये अपथ्य होगा वही अच्छा लगता है, कामदेव कलाओं के कुशल व्यक्ति को भी क्षण मात्र व्याकुल कर देता है, पण्डितों को भी तिरस्कार योग्य कर देता है, धैर्यवान पुरुषको भी धैर्य रहित कर देता है।

इसके बाद निरुपाय होकर सोम श्रेष्ठि राजा के मान्य मंत्रियों के घर पर गया, उनको आर्त वाणी से अपनी स्त्री के अपहरण का सब समाचार कह सुनाया, इस पर मंत्री लोग राजा के समीप जाकर स्पष्ठ शब्दों में इस प्रकार कहने लगे कि—

सूरकान्त राजा को मन्त्री का उपदेशः—

राजन ! पर स्त्री हरण करने में अत्यन्त घोर पाप होता है। क्योंकि शास्त्र मे ऐसा कहा है कि जो कोई देवमंदिर सम्बन्धी द्रव्य भक्षण करते हैं तथा पर स्त्री गमन करते हैं वे प्राणी सात बार

अत्यन्त घोर सातवी नरक मे जाते हैं।' 卐

"काम वशी होकर अन्यों की नारी हर कर लाता है।
देव द्रव्य को खाने से सात बार नरक मे जाता है॥"

मन्त्रियों की ये सब बातें सुन कर राजा सूरकान्त ने कहा कि 'मेरे प्राण भी चले जांय तब भी मैं उस वणिककी स्त्री सोमश्री को नहीं छोड़ सकता। आप लोगों का इस विषय में कुछ भी बोलना व्यर्थ है।'

तब वे मंत्री लोग सोम श्रेष्ठी के समीप जाकर कहने लगे कि जैसे हाथी के कान मे स्थिरता रहना असम्भव है ठीक उसी प्रकार राजा का इस दुष्ट कार्य से निवारण करना असम्भव है। जिस प्रकार विद्युत्पातको कोईरोक नहीं सकता, कोईनदीके वेगको रोक नहीं सकता, कोईअत्यन्त उत्कट वायुको रोकनहीं सकता, तथा अग्निको भी कोई मनुष्य धारण नहीं कर सकता। माता यदि पुत्र को विषभक्षण करावे, पिता अपने सन्तान का विक्रय करे, राजा यदि प्रजा के सर्वस्व का अपहरण करे तो इसका क्या उपाय हो सकता है ? अर्थात् यदि 'रक्षक' ही 'भक्षक' बन जाय तो इसका क्या उपाय हो सकता है !

卐 "भक्खणे देवदव्वस्स परत्थी गमणेण य।
सत्तमं नरयं जंति सत्तवारा उ गोयमा !" सर्ग ८॥२६७॥

माता जहर पिलाती शिशुको, पिता बेचने जाय
नृप हरता है धन दौलत वो, उसका नहीं उपाय ॥

इसके बाद निराश होकर वह सोम श्रेष्ठी अपने घर पर आ गया तथा अपने पुत्र से कहने लगा कि – 'इस दुष्ट राजा ने बल पूर्वक यद्यपि तुम्हारी माता को अपहरण कर लिया तथापि मैं द्रव्य व्यय करके उसे राजा के हाथों से छुडाके रहूँगा।' अभी अपने घर छ लाख का द्रव्य है, उसमें से आधा खर्च कर किसी बलवान राजा की सहायता लेकर तुम्हारी माता को बल पूर्वक शीघ्र ही छुडाऊंगा। इस प्रकार विचार करके वह श्रेष्ठी धन लेकर तथा अपने पुत्र से प्रेमपूर्वक मिल कर चुपचाप किसी अज्ञात् दिशा को चल दिया।

इसके बाद घर में निवास करते हुए 'श्रीदत्त' की स्त्री ने एक कन्या को जन्म दिया, कन्या जन्म सुन कर श्रीदत्त अपने मन मे विचारने लगा कि माता पिता से वियोग हो गया है, धन का भी नाश हो गया है, हा आज पुत्री का भी जन्म हुआ है, उधर राजा भी विरुद्ध है। भाग्य विपरीत होने पर कौन विपत्ति नहीं पाता ? पुत्री के जन्म लेते ही शोक होने लगता है। जैसे जैसे वह बढ़ती है वैसे वैसे चिंता भी बढती ही रहती है। इसके विवाह करने में भी खर्च करना पड़ता है। इसलिये इस संसार में कन्या का पिता होना निश्चय ही कष्ट कर ही माना जाता है, पिताके घर का शोषण करने वाली, पति के घर को भूषित करने वाली, कलह और कलंक समूह का घर कन्या को जिसने जन्म नहीं दिया, इस मनुष्यलोक मे वही मनुष्य वास्तव में सुखी है।

इसके बाद एकदिन श्रीदत्त ने अपने मित्र 'शंखदत्त' को कहा कि "धनके बिना मनुष्य शोभा नहीं पासकता है, इसलिये धनका उपार्जन करना चाहिये । क्योंकि शील, पवित्रता, तप, क्षमा, सहनशीलता, लज्जलुता मृदुलता, प्रियता कुलीनता, ये सब मनुष्य धन हीनको शोभा नहीं देते है 卐 । जोमनुष्य निर्धन है वह रूपवान् हो तथा विद्वान् हो फिर भी पूजित नहीं होता । जैसे स्पष्ट अक्षरों में राजा के नाम से युक्त तथा गोलाकार रुपये का नकली होने पर लोगों मे उसका कुछ भी मूल्य नहीं होता, इसलिये समुद्र मार्ग से किसी देश मे जाकर प्रचुर धन का उपार्जन करें, जो धन प्राप्त होवे उसका विभाग करके आधा आधा दोनों ले लेंगे । इस प्रकार निश्चय करके श्रीदत्त दशदिन की कन्या सहित स्त्री क घर से अकेली छोडकर स्वयं समुद्र मार्ग से परदेश चल दिया ।

श्रीदत्त और शखदत्त का प्रयाण —

इस प्रकार अपने मित्र के साथ धनोपार्जन के लिये समुद्र मार्ग से जाता हुआ क्रमसे श्रीदत्त व शखदत्त कुशल पूर्वक सिंहल द्वीप पहुचे । वहाँ नौ वर्ष रह कर बहुत सा धनोपार्जन किया, वहा से अधिक लाभ सुनकर 'कटाहाह' नाम के द्वीप के प्रति गये । क्योंकि धनहीन व्यक्ति एक सौ की अभिलाषा करता है, सौ रुपया वाला हजार की, सहस्राधिपति लक्ष का, लक्षाधिपति कोटिकी,

卐 शील शौर्य तप क्षान्तिदाक्षिण्य मधुरता कुले जन्म ।
न विराजन्ति हि सर्वे वित्तहीनस्य पुरुषस्य ॥३११॥ सर्ग ८

कोटिश्वर राज्य की, राजा चक्रवर्ती बनने की, चक्रवर्ती देवत्व की तथा देव इन्द्रसन की इच्छा करता है। इस प्रकार आशा और तृष्णाका कहीं पार नहीं हो पाता। वहां 'कटाहाद' द्वीप में व्यापार करते हुए दोनों मित्रों ने जब एक दिन गणनाकी तो पूर्व जन्म के पुण्य प्रभाव से सब धन मिल करके आठ कोटि हुआ। तब दोनों मित्रों ने बहुत से क्रयाणक-किराना की वस्तु और अनेक हाथी घोड़े लेकर समुद्र मार्ग से अपने घर के लिये वापस प्रस्थान किया।

मार्ग में इन दोनों ने जल में थोड़ी दूर एक मंजूसा, -पेटीको देखा। धीवरों-मच्छीमारों को भेजकर उसको अपने समीप हर्ष पूर्वक मगवायी। दोनों मित्रों ने परस्पर इस प्रकार निश्चय किया कि जो कुछ सुवर्णरत्न आदि होगा वह विभाग कर दोनों मित्र आधा आधा ले लेंगे। इस प्रकार निश्चय किया और उन दोनों ने उस पेटीको खोला तो उसमें देखतेहैं कि 'नीम के पत्र पर श्याम वर्ण की एककन्या अचेतन अवस्था में पड़ी हुई है' उसको देख वे दोनों बोलने लगे कि इसको सर्प ने काट लिया है, इसलिये कोई इसको जल के प्रवाह में प्रवाहित कर गया है। तब हंसदत्त कहने लगा कि मैं निश्चय ही इसको जीवित करूंगा, ऐसा कहकर उसने मंत्र बोलकर जलके छींटे वदन पर देकर शीघ्र ही उस बालाको जीवित कर दिया।

कन्या के लिये परस्पर विवाद —

— ... मनोहर रूपवाली उस कन्या को देख ...

स्पष्ट रूप में इसप्रकार कहने लगा कि—'इसको मैंने जीवनदान दिया है, अतः इस कन्या को मैं ही ग्रहण करूंगा।'

तब श्रीदत्त ने कहा कि हे मित्र ! इस प्रकार तुमको बोलना नहीं चाहिये, क्योंकि तुम्हारा यह विचार अनुचित है, कारण कि पहले ही अपने दोनों ने इस प्रकार निश्चय कर लिया है कि दोनों मित्र आधा आधा लेंगे। इसलिये तुम कुछ धन लेकर यह कन्या मुझे दे दो।

तब क्रोध से रक्त नेत्र करके शंखदत्त कहने लगा कि-हे मूर्ख दुष्ट ! पापिष्ट ! हे निर्दयी श्रीदत्त ! जब तक मैं जीता हूँ तब तक तुम इस कन्याको किसी प्रकार ग्रहण नहीं कर सकते हो। ठीक ही कहा है—"सिद्धि और स्वर्ग की अर्गला (कपाट) रुप कन्या का निर्माण किसने किया। जिसके लिये मोहित होकर के देव तथा मनुष्य सब कोई दिङमुढ हो जाते हैं" 卐। सुन्दर नेत्र वाली कन्या बलवान मनुष्य के मनको भी प्रेम पूर्वक अपने वश में कर लेती है। जिस तरह मच्छी मार मच्छी को पकड़ लेता है और जैसे मद्यपान करने से उन्मत्त होकर लोग अपना हित अथवा अहित नहीं समझते हैं, उसी प्रकार स्त्रियों से मोहित होकर मनुष्य विवेक हीन होजाते हैं। अपार समुद्रका पार पा सकते हैं, परन्तु स्वभावतः कुटिल स्त्रियों का तथा दुराचारी व्यक्तियों

卐 "हा नारी निर्मिता केन सिद्ध्य स्वर्गऽगला खलु।
यत्र स्खलंति हा मूढाः सुरा अपि नरा अपि" ॥३३०॥सर्ग ८
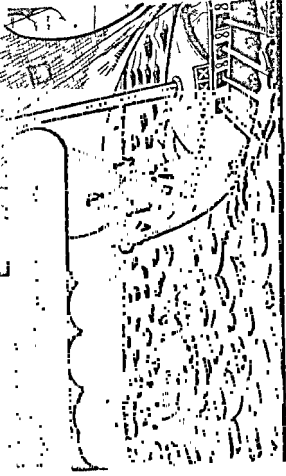
पेटीमें नीमेके पत्तोंमें श्याम पड़ी हुई, मनोहर रुपवाली कन्या को देख कर कन्यालेनेके कारण परस्पर दोनाम विवाद हुआ, श्रीदत्तद्वारा शंखदत्तको समुद्रमें फेकना पृष्ठ ५५

मु नि वि संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ९)

का पार पाना असम्भव है। इस प्रकार दोनों को विवाद करते देख कर नाव-खेवैयिर्यो-नाविको ने कहा "आप लोगोंका इस प्रकार का विवाद करना अत्यन्त दु ख दायी है। इसमे कोई संदेह नहीं, दो दिनों के बाद तटपर एक "सुवर्ण कूल" नामक नगर आवेगा, वहां पर राजा के बहुत से चतुर मनुष्य रहते हैं। वे लोग आप दोनो के विवाद का समाधान कर देंगे, तब तक आप लोग शान्त रहो।"

नाविकलोगों की यह बात सुनकर दोनों ने परस्पर विवाद करना छोड़ दिया। परंतु श्रीदत्त मन मे सोचने लगा कि लोग जीवन दान देने के कारण यह कन्या शंखदत्त को ही दिलायेंगे। इसलिये गुप्त रुप से कोई उपाय किया जाय जिससे यह कन्या मुझको मिल जाय। इसप्रकार विचार करके वह निर्दयी श्रीदत्त छल से शंखदत्तको विश्वास देने लगा। कहा भी है कि "जिसका मुख कमल के समान प्रसन्न, वाणी चंदन के समान शीतल तथा हृदय कैंचीके समान घातक, ये तीनों प्रकार धूर्तोंके लक्षण समझो।"卐

शखदत्त को समुद्र में फेंकना—

रात्रि होने पर शंखदत्त को नाव के उच्च भाग पर बठाकर श्रीदत्त बोलाकि हे मित्र ! समुद्रमें एक बहुत बड़ा सु दर कौतुक हो

卐 "मुखं पद्मदलाकारं वाचा चदनशीतला।
हृदयं कर्त्तरीतुल्यं त्रिविधं धूर्तलक्षणम् ॥३३॥ सर्ग ८

रहा है, एक बहुत बड़ा आठ मुख वाला मत्स्य इस समय नावके नीचे से जारहा है, यह सुनकर कुतूहल वश जब शंखदत्त उस मत्स्य को ध्यान से देखने लगा, तब श्रीदत्त ने छल से उसको समुद्र में गिरा दिया। बाद में शीघ्र ही लोगों के आगे अपना शोक प्रदर्शित करता हुआ आर्त्त स्वर से बोलने लगा कि हे मित्र! अब तुम्हारे बिना मेरे प्राण भी चले जायेंगे, इस प्रकार सब लोगोंको कहता हुआ जोर २ से रुदन करने लगा। इसकेबाद लोगों के समझाने पर शोक को त्याग कर हृदय में प्रसन्न होता हुआ, वहांसे चलते चलते समुद्र तटपर स्थित "सुवर्ण कुल" नाम के नगर में पहुँचा। श्रीदत्त ने नगर में जाकर घोड़ा तथा हाथी आदि वहां के 'धन' नामके राजा को उपहार दिया। राजा ने प्रसन्न होकर उस दुष्टचित्त श्रीदत्त को हाथी का मूल्य देकर सम्मानित किया। इसके बाद नाव परसे कन्या सहित सब वस्तुओं को उतार कर उस श्रीदत्त ने राजा के कर माफ कर देने पर सस्ते भाव से बेच डाली। कुछ समय व्यतीत होने पर एक दिन श्रीदत्त ने ज्योतिषियों को बुलाकर उस कन्या के साथ विवाह करने के लिये मुहूर्त का निश्चय किया। इसके बाद श्रीदत्त राजा की सभा में गया, वहां जाकर श्रीदत्त ने राजा के समीपमें एक सुंदर चामर धारणी को देख कर किसी एक मनुष्य से उसके विषयमें पूछा।

- तब उस मनुष्य ने श्रीदत्त से कहा कि राजा से सम्मानित इस 'स्वर्णरेखा' से वही एक बार बोल सकता है जो उसको

सम्मान पूर्वक पचास दीनार-सोना मोहर देता है, क्यों कि यह स्वर्ण रेखा राजा के अत्यन्त सम्मान की पात्र है।

कन्या और स्वर्ण रेखा को लेकर श्रीदत्त का जानाः—

यह सुन कर श्रीदत्त मोहित होकर पचास दीनार देकर चुप-चाप उस कन्याके साथ स्वर्ण रेखाको रथमें चढ़ाकर एक बड़े वन में ले गया। तथा वन मे एक चंपाके विशाल वृक्षके नीचे दोनो स्त्रियोंके साथ बैठ कर जब श्रीदत्त अनेक तरह से मनोरंजन कर रहा था, उसी समय में बहुत सी वानरियों के साथ एक वानर आया। उसको देख कर श्रीदत्त ने स्वर्ण रेखा से कहा कि-इन वानरियों से इस वानर का क्या २ सम्बन्ध है ? क्या ये सब इस बन्दर की स्त्रियाँ हैं ?

तब स्वर्ण रेखा कहने लगी कि—पशुओंमें इतना विवेक कहा से होवे ? कोई इसकी माता होगी कोई भगिनी तथा कोई कन्या, इस प्रकार आपस में एक दूसरे के अनेक प्रकार के अन्य सम्बन्ध भी होंगे। यह सब मैं कैसे बताऊं ? क्यों कि "पशु प्राणियों का जन्म निन्दित है। और उसमें विवेक नहीं होता, और कर्तव्य का ज्ञान भी नहीं होता है, उन्होंका जन्म निरर्थक है। तथा पशुओं को स्तन पान तक ही माता से सम्बन्ध रहता है। अधम मनुष्यों को स्त्री प्राप्ति तक, मध्य प्रकृति के मनुष्यों को जब तक गृहकार्य मे समर्थ रहती है तब तक माता के प्रति सद्भाव रहता है। परन्तु उत्तम प्रकृति के मनुष्यों का जीवन पर्यन्त तीर्थ के समान

ही माता के प्रति सद्भाव रहता है। 卐

वानर का मनुष्य भाषा में कथन—

यह सब बात सुनकर जाता हुआ, वह वानर क्रोध से लाल नेत्र करके वापिस लौटा तथा श्रीदत्त को दृढ़तापूर्वक इस प्रकार कहने लगा कि "रे पापिष्ठ दुराचारी। दूसरे के दोषों को देखने वाले! पर्वत परकी अग्निको देखता है परन्तु अपने चरणोंके नीचे नहीं देखता। इसलिये ठीक ही कहा है कि दुर्जन व्यक्ति राई और सरसों के समान दूसरे के छोटे २ दोषों को देखता है परन्तु 'बिल्व' फल के समान अपने दोषोंको कभी नहीं देखता तथा सब कोई केश के अग्रभाग से भी बारीक दूसरे के दोषों को देखते हैं परन्तु हिमाचल पर्वत के शिखर के समान विशाल अपने दोषों को नहीं देख सकते। अपने मन में सभी व्यक्ति अपने को गुणी ही मानते हैं। दूसरे के दोष का वर्णन सब कोई करते हैं परन्तु अपने दोषोंको नहीं कह सकते हैं। ❀

अपने मन से सब सुन्दर हैं सब देखे पर दोष।
अपनी कमी छिपाता जन है, करे अन्य पर रोष॥

हे श्रीदत्त" तुम अपने मित्रको समुद्रमें फेंक कर तथा अपनी माता और कन्या को अपने बगल में लेकर दूसरे के दोष को

卐 आस्तन्यपानाज्जननी पशूनामादारलाभाच्च नराधमानाम्।
आगेहकर्मेव तु मध्यमानामाजीवितात्तीर्थमिवोत्तमानम्॥३५६॥न

❀ सर्वः स्वात्मनि गुणवान्, सर्वः परदोषदर्शने दक्षः।
"सर्वस्य चास्ति वाच्यं, न चात्मदोषान् वदति कश्चित्" ॥३६१॥न

वानर का मनुष्य भाषामें कथनः—

रे पापिष्ट दुराचारी ! दुसरे के दोषों को देखने वाले ! तुम अपने मित्रको समुद्रमें फेंक कर, अपनी माता और कन्या को बगलमें लेकर के दूसरे के दोष को कहते हो, तुम शीघ्र ही गहरे कूपमें गिरोगे। पृष्ट ६०-६१

(मु नि. वि. संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र नं. १०)

कहते हो, तुम शीघ्र ही गहरे कूप में गिरोगे, क्योंकि असत्य बोलने से मनुष्य वाणी अस्पष्टता तोतलापन तथा निरर्थक वृथा बोलने वाला पन गूंगापन, तथा मुख रोग को प्राप्त होते हैं। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि असत्य और तथा दुष्ट वचन कदापि न बोले।

इस प्रकार कहकर शीघ्रगति से वह वानर कूद कर कहीं दूर चला गया। तब श्रीदत्त सोचने लगा, कि यह जानवर इस प्रकार कैसे बोल गया? मेरी माता तथा कन्या यहा से बहुत दूर हैं। तथा मेरी माता आदि इस प्रकार की आकृति वाली नहीं थी तो फिर वे दोनों यहा कैसे हो सकती है। इस प्रकार सोच कर 'स्वर्ण-रेखा' से पूछा कि तुम कौन हो?

तब स्वर्ण रेखा ने कहा कि क्या तुम मूर्ख मनुष्य की तरह इस पशु के बोलने पर तुम भ्रम में पड़ गये हो।

इसके बाद श्रीदत्त ने वहा से उठकर वनमें इधर उधर घूमते हुए एक मुनीश्वर को देखा तथा उन्हें प्रणाम करके अजलि बद्ध होकर पूछने लगा कि हे मुनीश्वर! वानर के द्वारा मैं संदेह रूपी समुद्र में गिरा दिया गया हू, इसलिये आप मुझको सत्य ज्ञान रूपी नौकासे बाहर निकालें। क्योंकि सज्जन व्यक्ति अपने कार्य से लापरवाह होकर दूसरे के परोपकार के कार्य मे लगे रहते हैं। जैसे चन्द्रमा समस्त पृथ्वी को प्रकाशमान करता है, परन्तु अपने कलंक को साफ करने का अवसर उसको नहीं मिलता है।

इस पर अवधि ज्ञान वाले मुनि भगवन्त सब वृतान्त जानकर कहने लगे कि वानरने जो कुछ कहा है वह सब बातें बराबर सत्य है इसमें कोई सन्देह नहीं।

तब श्रीदत्त कहने लगा कि "कन्या और माता का किस प्रकार सम्बन्ध हुआ, इसका वर्णन मुझको कहो।"

श्रीदत्त का ज्ञानमुनी से मिलना तथा कन्या का पूर्व वृतान्त—

तब अवधिज्ञानी मुनीश्वर कहने लगे, कि 'प्रथम कन्या का सम्बन्ध सुनलो। जब तुम दश दिन की अवस्था वाली कन्याको छोड़कर धन के लिये नौका पर आरूढ होकर चल दिये, तब कुछ दिन बाद शत्रुराजा के डरसे सब लोग उस नगर से इधर उधर भागने लगे। तुम्हारी स्त्री भी कन्या को लेकर गंगा के तट पर 'सिंहपुर' नाम के नगर में अपने बन्धुओं के समीप चली गई, तथा अपने बन्धुओं के समीप रहती हुई तुम्हारी स्त्री को ग्यारह वर्ष बीत गये। एक दिन रात्रि में एक दुष्ट सर्पने तुम्हारी कन्या को काटलिया, तब उस कन्या की माता तथा मामा आदि अनेक प्रकार के उपचार करने लगे, परंतु दुर्भाग्य से वह सब कुछ भी उपयोगी न हुआ, क्योंकि जो कुछ भाग्य में लिखा है उसका परिणाम सबको मिलता है, यह जानकर धैर्यवान व्यक्ति विपत्ति में भी कायर नहीं होता, तब उस कन्या की माता ने स्नेह से उसे एक पेटी में रखकर अपार जल राशि समुद्र में रख दिया। तुमने जिसको छल से लेलिया है, वही तुम्हारी पुत्री है, यह सब वृतान्त सत्य है।

माता का पूर्व वृतान्त

अब अपनी माता के समाचार सुनो जब तुम्हारी माता को राजा सूरकान्त ने अपने अन्त पुर मे रख लिया, तब तुम्हारे पिता उस राजा से तुम्हारी माता को छुड़ाने की इच्छा से द्रव्य लेकर चुपचाप दूसरे नगर में अपने घर से चल दिया। तुम्हारे पिता ने नगर के किसी एक पल्लीपति को अत्यन्त प्रसन्न कर दिया, इसके बाद वह पल्ली पति तुम्हारे पिता से कहने लगा कि "जो कुछ कार्य हो वह शीघ्र मुझको कहो।"

तब तुम्हारा पिता कहने लगा कि "राजा सूरकान्त मेरी स्त्री को चुराकर ले गया है। उस अपनी स्त्री को मैं आपके सहयोग से छुडाना चाहता हूँ। अपने कार्य को सिद्ध करने मे समर्थ तो बहुत से लोग देखे जाते हैं, परन्तु जो परोपकार करने वाले हैं, ऐसे मनुष्य पृथ्वी में थोड़े ही मिलते हैं।' इसके बाद वह सोम उस पल्ली पति की सेना लेकर राजा सूरकान्त की सीमा में पहुँचा। सूरका त उस विशाल सेना को देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गया, फिर भी सन्मुख आकर शत्रु से युद्ध करने लगा, परन्तु जब सूरकात की सब सेना नष्ट हो गई, तब वह भाग कर अपने किले में चला गया। किले के द्वार को बद करके बख्तर पहनकर सावधान होकर स्थिर हो गया। इधर सोम सैन्य के साथ बल पूर्वक द्वार को तोडकर नगर म पहुँच गया। कि तु युद्ध करते

करते सोम के मस्तक में एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण लग गया, जिससे तत् क्षण में उसके प्राण पखेरू उड़ गये। जिस कार्य को एक दूसरे रूप में सिद्ध करना चाहता था, वह एक दूसरे ही रूप में बदल गया। यह एक भाग्य की ही बात है। भार्या को छुड़ाने में अपने प्राण ही चले गये। सच है प्राणी सोचता कुछ और है और कुदरत करती है कुछ और।

सूरकान्त युद्ध करते करते अपनी सेना के नष्ट हो जाने से कहीं भाग गया। इधर राजा की वह भिल्ल सेना अनुचित रूप से नगर को लूटने लगी। क्योंकि—

"चन्द्रबल, ग्रहबल, सेनाबल अथवा पृथ्वी का बल तब तक ही कार्य करता है, अपना सब मनोरथ तब तक ही सफल होता है, मनुष्य तब तक ही सज्जन रहता है, और मंत्र-तंत्र आदि का महात्म्य या पुरुषार्थ तब तक ही काम देता है, जब तक मनुष्यों का पुण्य विद्यमान रहता है, पुण्य के नष्ट होने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है।"卐

卐 तावच्चन्द्रबलं ततो ग्रहबलं तावद्‌बलं भूबलं,
तावत्‌सिध्यति वाञ्छितार्थमखिलं तावज्जन सज्जनः।
मुद्रामंडलमंत्र तंत्र महिमा तावत्कृतं पौरुषम्,
यावत्पुण्यमिदं नृणां विजयते पुण्यक्षयात्क्षीयते ॥३८८॥स.८

श्री वृषभका शर्मामुनिसे मिलना-

कन्याका पूर्व वृत्तान्त तथा माताका पूर्व वृत्तान्त सुना रहे हैं। पृष्ठ ६२-६३

सुमर्षने वनमें किसी एक अज्ञात वृक्षका फल खा लिया, उस फलके प्रभावसे उनका सारा शरीर गौरवर्ण एवं पुरुषके समान सुन्दर हो गया। पृष्ठ ६५

(मु. नि. वि. संयोजित चित्रमय चरित्र दूसरा भाग चित्र नं. ११-१२)

सोमश्री का अज्ञात फल खाने से रूप का परिवर्तन

इसके बाद एक भिल्ल सोमश्री को लेकर शीघ्र उस नगर से बाहर निकला। परन्तु रात्रि में जब सब सो गये तब छल करके सोमश्री कहीं भाग गई। उसने वन में भ्रमण करते हुए किसी एक अज्ञात वृक्ष का फल खा लिया। उस फल के प्रभाव से उसका सारा शरीर गौरवर्ण एवं युवती के समान सुन्दर हो गया। क्योंकि मंत्र रहित कोई भी अक्षर नहीं है, कोई वनस्पति की ऐसी जड़-मूल नहीं जो औषध न हो, पृथ्वी स्वामी रहित नहीं है परन्तु उसकी विधि बताने वाले संसार में दुर्लभ हैं। दूसरे दिन देवांगना के समान रूप लावण्यवाली उस सोमश्री को वन में देखकर एक धनसार्थवाह नामके व्यापारी उसको समझाकर चुपचाप उसको लेकर वेग से हर्ष पूर्वक सुवर्णकुल के तट पर पहुँचा। पहले उस नगर मे बहुत वस्तुयें खरीदी परन्तु दूसरे दिन उस नगर में वही चीजें सस्ती मिलने लगी। धनसार्थवाह सोचने लगाकि बिना द्रव्य के किस तरह से ये सब सस्ती वस्तुयें खरीदू गा। यह विचार कर वह श्रेष्टी उस सोमश्री को बेचने के लिये बाजार के चौक में ले आया। उस नगर की रुपवती नाम की एक वैश्या ने एक लाख द्रव्य देकर उसे खरीद लिया और अत्यन्त यत्न से नृत्य आदि सब कलायें उस सोमश्री को सिखादीं।

सोमश्री का नाम परिवर्तन .

अपने शरीर की कान्ति से सुवर्ण को जीतने वाली उसको देखकर उस नगर नायिका ने सोमश्री का 'सुवर्णरेखा' नाम रखा। इसके बाद एक दिन नृत्य करती हुई उस सुवर्णरेखा को देख कर राजा ने उसको अपने समीप में चामर धारिणी बनाया।

हे श्रीदत्त! वही यह तुम्हारी माता है। इसने लोभ तथा लज्जा से अपना स्वरूप तुम्हारे पास प्रकट नहीं किया क्योंकि –

"वेश्यायें लोभ की राजधानी हैं, वहां से जो कोई प्रयाण करता है, वह समस्त संसार को जीत लेता है। जिन वेश्याओं के हृदय में कुछ और रहता है, वाणी में कुछ और तथा क्रिया एक दूसरे प्रकार की ही रहती है। वे वेश्यायें किसी को सुख का कारण कैसे हो सकती है?"卐

श्री दत्त ने पुनः प्रश्न किया कि 'यह पशु जाति का वानर ये सब बातें कैसे जानता है?'

को श्री दत्त के पास भेजी। वे दासियां उसके पास जाकर कहने लगी कि "सुवर्णरेखा कहां है?"

卐 लोभस्य राजधानीयं ज्ञेय पण्याङ्गनाजना।
अत्र प्रयाणकं कृत्वा विश्वं विश्वं जयत्यसौ। ४००॥स०८
मनस्यन्यद् वचस्यन्यत् क्रियायामन्यदेव हि,
यासां साधारणस्त्रीणां ताः कथं सुखहेतवे।४०१॥स०८

पिता की पूर्व कथा—

तब मुनिने उत्तर दिया कि मस्तक में बाण लगने पर तुम्हारा पिता सोम श्रेष्ठी दूरस्थित मन्दिरपुर नाम के नगर में बाण से घायल होकर वहां सोम श्री के ध्यान से प्राण त्याग करने के कारण व्यन्तर जाति में प्रेत हुआ। क्योंकि "रज्जुग्रहण से, विष भक्षण से, जल प्रवेश, तथा अग्नि प्रवेश से शरीर त्याग करने वाला तथा पर्वत के शिखर पर से गिर करके मरने वाला, शुद्ध भाववाला व्यक्ति भी व्यन्तर(प्रेत)बन जाता है।" व्यन्तर ने तुमको उस सोमश्रीमाता तथा पुत्री से युक्त देखकर उस व्यन्तर ने वानर का रूप धारण करके तुमको ये सब बातें कही हैं। वह व्यन्तर पूर्व स्नेह के कारण इस सोम श्री को लेकर जायगा। मुनिके ऐसा कहनेपर वह व्यन्तर अकस्मात् कहीं से शीघ्र आकर सोम श्री को उठाकर कहीं चला गया। इसके बाद श्रीदत्त मुनि को प्रणाम करके अपने मन में अत्यन्त आश्चर्य करता हुआ, कन्या सहित नगर में आकर अपने घर में स्थित हो गया।

इधर रूपवती वेश्या ने सखियों से पूछा कि 'स्वर्णरेखा कहां है?'

तब सखियोंने मधुर वचनसे उत्तर दिया- 'श्री दत्त'ने सोमश्री से कहा कि मैं तुमको पचास दीनार दूंगा ऐसा कहकर उसको लेकर वन में गया था। इस पर रूपवती ने अपनी दासियों

श्री दत्त ने उत्तर दिया कि "मैं कुछ नहीं जानता हूँ कि वह कहाँ गई है।"

तब वे दासियां कहने लगी कि रे दुष्ट! पापिष्ठ! तुम अत्यन्त ही झूठ क्यों बोल रहे हो?

इसके बाद रुपवती राजा के पास जाकर कहने लगी कि "हे स्वामिन्! मैं एक ठग द्वारा ठगी गई हूं; "वह धूर्त भी इसी नगर में रहता है"

श्रीदत्त को कैद करना—

राजा ने पूछा-'किस से ठगी गई हो?' तब रुपवती ने उत्तर दिया कि 'दुरात्मा श्री दत्त ने सुवर्णरेखा का अपहरण कर लिया है।' इस पर राजा ने श्रीदत्त को बुलाकर पूछा। तब श्री दत्त विचार ने लगा कि "यदि मैं कहूंगा कि बानर स्वर्ण रेखा को ले गया तो कोई नहीं विश्वास करेगें।" इस प्रकार सोचकर वह मौन ही रह गया। तब राजा ने आदेश दिया कि इसे कारागार में लेजाओ। तब दण्ड पाश धारण करने वालों ने ऐसा ही किया। उसकी दुकान में सील देकर राजा ने उसकी कन्या को अपने अन्त पुर में रख लिया। क्योंकि:—

"गंगा नहाये न काक पवित्र, जुआरी न सत्य कभी कहि बोले।
सर्प क्षमा करता न किसी पर, स्त्री न बिना कुछ काम के बोले॥
धीरज धारण हो ही जड़ाफेन, भूपति मित्र न शाश्वत भोले।
ज्ञान कथा न सराबी को भाती है, ये सब भव्य समाज के रोड़े॥"

काक में पवित्रता, जुआ खेलने वालों में सत्य, सर्प में क्षमा, स्त्रियों मे काम वासना की शान्ति, नपुंसक मनुष्य मे धैर्य, मद्यपान करने वालों में तत्वज्ञान की विचारणा और राजा का सदा के लिये मित्र होना किसने देखा है और न सुना है ?

इसके बाद श्री दत्त ने हृदय में इस प्रकार सोचकर, अब इस समय में सत्य बोल दूं, जो होना होगा सो हो जायगा, राजा के आगे वानर का सब वृतान्त कह सुनाया।

राजा आदि सब व्यक्ति श्रीदत्त की यह बात सुनकर कटाक्ष पूर्वक कहने लगे कि "श्री दत्त ने अपूर्व सत्य वचन कहा है।" क्योंकि जो असंभव हो ऐसा यदी प्रत्यक्ष भी देखने में आवें तो भी बोलना न चाहिये। जैसे-वानर का गीत गाना तथा पत्थर का जल में तैरना।

भीमराजा की कथा—

यह कथा इस प्रकार है कि श्रीपुर नाम के नगर के भीमराजा का मंत्री समुद्र में एक शिला का जल में तैरता हुआ देखकर नगर में आया और राजा आदि सब व्यक्तियों को शिला के तैरने का सब समाचार कहा।

इसे सुनकर राजा ने कहा कि 'यदि प्रत्यक्ष भी देखा हो तो भी वह असंभव जैसी होतो नहीं बोलना चाहिये।' राजा की यह बात सुनकर वह मंत्री मौन रह गया।

इसके बाद राजा एक दिन घोडे पर चढकर नगर से बहुत दूर बाहर निकला। वहां मार्ग में वानरों का अपूर्व नृत्य गीत

आदि देखकर पीछे लौट कर नगर में आ गया। अपने आँखों से देखी हुई घटना नगर निवासियों को कहने लगा। परन्तु कोई भी व्यक्ति इस असभव बात को मानने के लिये तैयार नहीं था। तब राजा अत्यन्त उदास हो गया।

श्रीदत्त को शूली की आज्ञाः—

इसके बाद मन्त्री राज सभा मे आया और राजा तथा प्रजा जन के आगे राजा और उसने जंगल में जो कुछ देखा था, उस विषय को लेकर एक श्लोक बनाकर बोला, जिसका तात्पर्य है कि प्रत्यक्ष देखने पर भी असम्भव बात किसी को कहनी न चाहिये जैसे यदि कहीं वानर को नृत्य गात करते देखा हो तथा जल मे पत्थर को तैरते देखा भी हो तो किसी से यह न कहे कि मैंने ऐसा होते देखा है卐। ऐसा श्री दत्त से कहकर राजा क्रोध से लाल नेत्र करके श्री दत्त को शूली पर चढ़ाने के लिये आज्ञा दी। कहा है

'कहां राजा हरिश्चन्द और कहां उनको चाण्डालदास को बनना, कहाँ पार्थिव अर्जुन और कहां उनका राजा विराट के घर में नट के समान नृत्य करना, कहां राजा रामचन्द्र और कहां उनका वनवास ? सच है, इस संसार में कर्म के अनुसार

卐 *'असंभाव्यं न वक्तव्यं प्रत्यक्षं यदि दृश्यते।*
यथा वानर गीतानि तथा तु तरिता शिला' ॥४२१॥स.न

भाग्य का परिणाम विचित्र होता है।* इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति को भूतकाल तथा भविष्यकाल की चिन्ता नहीं करनी चाहिये परन्तु वर्तमान काल के अनुसार व्यवहार करना चाहिये।

इसके बाद उद्यान पालक के मुख से, 'एक 'मुनिचन्द्र' नाम के ज्ञानी गुरु उद्यान में आये हैं,' यह बात सुनकर राजा अपने परिवार के साथ उनकी वन्दाना करने के लिये उद्यान में आया। मुनीश्वर को प्रणाम करके धर्मोपदेश के लिये प्रार्थना की।

मुनिचन्द्र की धर्म देशना—

तब मुनिश्वर राजा को बोध देने के लिये बोलने लगे कि "जो न्याय करने वाला नहीं हो तथा धर्म का आचरण करने वाला नहीं हो वहां धर्मोपदेश क्या दिया जाय?"

तब राजा ने कहा कि 'हे भगवन्! मैं न्याय और धर्म का बराबर पालन करता हूं।'

तब पुन मुनिश्वर कहने लगे कि 'तुम ठीक ठीक न्याय नहीं करते हो, क्योंकि तुम सत्यवादी श्रादत्त का व्यर्थ ही प्राण ले रहे

---

* क्व च हरिश्चन्द्र क्वान्त्यजदास्य,
क्व च पृथुसूनु क्व च नटलास्यम्।
क्व च वनवास क्वासौ राम,
कटरे विकटो विधिपरिणाम ॥४२०॥स.८

हो।' कहा है कि—

"सज्जन लोग कष्ट पाते हैं, दुर्जन लोग सुख भोगते हैं, पुत्र मरते हैं, पिता जीवित रहते हैं, दाता दरिद्र हो जाते हैं और कृपण धनी हो जाते हैं। हे लोगों! देखो कलियुग का यह सब व्यवहार कैसा आश्चर्य जनक है।' 卐

ज्ञानी मुनि की यह बात सुनकर राजा आश्चर्य चकित हो गया और अपने सेवक को शीघ्र भेजकर श्रीदत्त को बुलवाया और आदर पूर्वक अपने समीप बैठाया। इसके बाद राजा ने पुन. प्रश्न किया कि 'श्रीदत्त को आपने सत्यवादी कैसे बताया ?'

जब राजा मुनीश्वर से इस प्रकार पूछ रहा था ठीक उसी समय में वानर स्वर्णरेखा को पीठ पर लेकर अकस्मात् वहा उपस्थित हो गया। वह सब के देखते ही मुनीश्वर को विधिपूर्वक प्रणाम करके तथा स्वर्णरेखा को पीठ पर से उतार कर देशना सुनने की इच्छा से सबको आश्चर्य चकित करता हुआ, उनके समीप बैठ गया, क्योंकि पशुपक्षि के योग्य जो बात तथा कार्य है वह बात तथा कार्य मनुष्यों में देखकर तथा मनुष्य के कार्य

卐 सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः
पुत्रा म्रियन्ते जनकश्चिरायुः।
दाता दरिद्रः कृपणो धनाढ्य,
पश्यन्तु लोकः कलि चेष्टितानि ॥४३६॥स.च

पशुओं में देख कर किस मनुष्य के हृदय में कौतुक नहीं होता।

इसके बाद देशना जब पूर्ण हो गई तब श्रीदत्त ने मुनीश्वर से पूछा कि "हे भगवन्! किस कर्म के प्रभाव से मुझको माता तथा पुत्री के विषय में अनुराग हुआ!

तब मुनीश्वर ने उत्तर दिया कि यह पूर्व जन्म के संस्कार से ऐसा हो गया है।"

मुनि द्वारा श्रीदत्त और शंखदत्त का पूर्व जन्म कथन—

तब पुनःश्रीदत्त ने पूछा कि 'मेरापूर्व जन्म किस प्रकार था ?' मुनीश्वर कहने लगे कि 'हे श्रीदत्त ! तुम अपने पूर्व जन्म का वृतान्त सावधान मन से सुनो।"

पंचाल देश में एक 'काम्पील्य पुर' नाम का नगर था। वहां 'चैत्र' नाम के ब्राह्मण को 'गोरी' और 'गंगा' नाम की कामदेव की रति और प्रीति के समान अद्भुत रूप लावण्य वाली दो स्त्रियां थीं। एक दिन उस चैत्र ने अपने मित्र मैत्र से एकान्त में कहा कि हे मित्र ! इस समय किसी दूसरे देश में धनोपार्जन के लिये चलना चाहिये। क्योंकि:—

'डर से, आलस्य से और अति आलस्य के कारण कौवा कायर पुरुष तथा मृग अपने देश में ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं, 卐 कारणकि

卐 सभीताः परदेशस्य बहुवालस्यः प्रमादतः ।
स्वदेशे निधनं यान्ति कांकाः का पुरुषामृगाः ॥४४७॥

परदेश को मुसाफरी का कष्ट वे सहन नहीं कर सकते हैं।" जो घर से निकल कर अनेक आश्चर्य से भरी हुई इस समस्त पृथ्वी को नहीं देखते हैं, वे मनुष्य कूप क मेढक के समान संकुचित भाव वाले होते हैं। इस प्रकार विचार करके वे दोनों मित्र 'मैत्र' और चैत्र' द्रव्योपार्जन के लिये 'कोङ्कण' देश में पहुचे। वहा पहुँच कर क्रमश बहुत संम्पत्ति का उपार्जन किया प्रचुर द्रव्य उपार्जन करने के बाद एक दिन मार्ग में अत्यन्त लोभ के वशीभूत होकर सोये हुए चैत्र को मारने के लिये मैत्र उठा। धन कैसी बुरी चीज है जो अपने प्यारे मित्र को मारने के लिये तैयार हो गया। पर उसी समय भाग्योदय से उसमें विवेक गुण प्रगट हुआ और वह विचारने लगा कि मेरे जैसे विश्वासघातीको नरकमें भी स्थान न मिलेगा। पाप करने वाले प्राणी अत्यन्त घोर नरक में जाते हैं। क्योंकि लोभ पाप का मूल है, स्वाद व्याधि का मूल है तथा, स्नेह दु ख का मूल है। इन तीनों के त्यागने से ही सच्चा सुख मिलता है।

पृथ्वी कहती है कि "मुझको पर्वतों का भार नहीं है, तथा सात समुद्रों का भी भार नहीं है परन्तु कृतघ्न और विश्वासघाती ये दोनों मुझको बहुत बड़े भार स्वरूप हैं" और भी कहा है कि कूट साक्षी (मिथ्यासाक्षी देने वाला), मिथ्या बोलने वाला, कृतघ्न चिरकाल तक क्रोध रखने वाला, ये चार कर्म से चण्डाल हैं और पांचवां जाति से चण्डाल होता है। ये सब बातें सोच कर मैत्र

श्रीदत्तका पिता पल्लि सामश्रीके ध्यानसे प्राण त्याग कर व्यन्तर हाना उस व्यन्तरने वानर रूप धारण करके सब बात कही हैं और इस सामश्री का लकर जायगा उतनेमे ही यह व्यन्तर सोमश्री का ठाकर कही चला गया। पृष्ठ ६७

ज्ञानीगुरु मुनिचन्द्रजी धर्म देशना दे रहे है। पृष्ठ ७१

(मु नि वि सयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न १३-१४)

अपने आत्मा की अत्यन्त निन्दा करते हुए दया युक्त हृदय होकर वापस अपने स्थान पर जाकर बैठ गया। सच है 'उत्तम व्यक्तियों का चित्त कुमार्ग में जाते हुए भी स्वयं उससे विरक्त हो जाता है, परंतु दुष्ट हृदय वाले पापी मनुष्यों का चित्त अनेक उपदेश देने पर भी कुमार्ग से निवृत्त नहीं हो सकता है।'

इसके बाद वे दोनों मित्र अनेक देशों मे भ्रमण करके तथा बहुत सा धन उपार्जन करके मार्ग मे आते हुए नदी के प्रखर प्रवाह में अचानक पड़ कर मृत्यु को प्राप्त हो गये। कहा है—

"मनुष्य जलमें मग्न हो जाय, मेरु पर्वत के शिखर पर चढे, युद्ध में शत्रुओं को जीते, व्यापार कृषि कर्म आदि कला तथा विद्या की शिक्षा ले, पक्षी के समान बहुत प्रयत्न करके अनन्त आकाश में उड़ जाय, परन्तु जो भावी नहीं है वह नहीं हो सकता तथा भाग्यवश जो भावी है, उसका नाश भी किसी प्रकार से नहीं हो सकता"※ पश्चात् तिर्यग्योनि आदि में तृष्णा बुभुक्षा, आदि अनेक कष्टों को प्राप्त करके चैत्र का जीव तुम 'श्रीदत्त' नाम से इस समय हुए हो। और अनेक योनियों में

※ मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुं जयत्वाहवे।
वाणिज्य कृषिसेवानादि सकला विद्याकलाः शिक्षतु॥
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत् कृत्वा प्रयत्नं परम्।
ना भाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः॥४५८॥स०८

भ्रमण करके तथा अनेक कष्टों को प्राप्त करके मैत्र का जीव 'शंखदत्त' नाम से तुम्हारा मित्र हुआ है।

इधर चैत्र की दोनों स्त्री गंगा और गौरी चिरकाल तक अपने स्वामी की आने की राह देखकर अन्त में निराश होकर संसार से विरक्त हो गयी। वे दोनों स्त्रियां मासोपवासादि अनेक तप करती हुई एक दिन गंगा तट पर एक परमसुन्दरी वैश्या को देखकर विचारने लगी कि इस वैश्या को धन्य है क्योंकि प्रतिदिन अपने अभिलषित पुरुष को सेवन करती है। परन्तु हम दोनों को धिक्कार है जो स्वामी का कहीं से किसी भी प्रकार का समाचार नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार दुःख चिन्तन करती हुई, अपने उपवासादि पुण्य कर्म का ध्यान छोड़कर, शरीर त्याग करके ज्योतिष्क देवों के स्थान में देवीपद को प्राप्त हो गयी।

इसके बाद वहां से च्युत होकर वे दोनों गंगा और गौरी श्रेष्ठ स्वभाव वाली तुम्हारी दोनों स्त्रियां पूर्व जन्म के अनुराग के कारण सुन्दर रूप वाली तुम्हारी माता और कन्या हुई। 'हे श्री दत्त! पूर्व जन्म के वैर के कारण तुमने शंखदत्त को समुद्र में अत्यन्त क्रोध से गिरा दिया। यही सब तुम्हारा कुकर्म है।"

गुरु मुख से इस प्रकार अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त जानकर श्रीदत्त के मन में वैराग उत्पन्न हो गया। तथा सोचने लगा

इसको प्रकार जीव अपने पूर्व जन्म में किये हुये कर्मों के वश से अनेक प्रकार के सुख और दु.ख को प्राप्त करते हैं। क्षण में अनुरक्त, क्षण में विरक्त, क्षण में क्रोध, क्षण मे शान्ति, इस प्रकार मोह में आकर वानर के समान मुझ से चपलता हो गई। फिर गुरुसे कहने लगाकि 'हे स्वामिन्। मुझ पर अब प्रसन्न होकर इस अपार संसार रुपी विषम समुद्र से पार होने के लिये कोई उपाय दिखाइये, क्योंकि सज्जन व्यक्ति अपने कार्यों से विमुख होकर परोपकार करने में लीन रहते हैं। जैसे चन्द्रमा अपने कलंक को छोड़कर पृथ्वी को प्रकाशित करने में आसक्त रहता है।'

"इस भव समुद्र को तैरने मे, है.धर्म नाव के तुल्य बना।
उस नाव खेवने में मानों चारित्रय बांस है सदा बना॥"

तब गुरु उपदेश देने लगे कि संसार रूपी समुद्र में पार होने के लिये धर्म ही नौका के समान है। तथा चारित्र के सिवाय और कोइ उपाय नहीं है।

श्री दत्त ने पुनः पूछा कि "हे भगवन्! यह मेरी कन्या, मैं किसको दूं!"

तब मुनीश्वर ने कहा कि 'शखदत्त को क्यों नहीं दे देते हो?'

तब श्रीदत्त नेत्र से अश्रु गिराता हुआ गद्‌गद् स्वर से कहने लगा कि उसको मैंने समुद्र में गिरा दिया है। अब उस मित्र से मिलन किस प्रकार हो सकता है?

"लक्ष्मी, स्त्री, माता, पिता, ये सब बार बार दूसरे जन्मों में प्राप्त हो सकते हैं परन्तु साधु संगति की प्राप्ति होना कठिन है।

तब मुनि कहने लगे कि 'हे श्रीदत्त! तुम खेद न करो तुम्हारा प्रिय मित्र अभी यहां आ मिलेगा।'

श्रीदत्त से शखदत्त का पुन: मिलन

यह सुनकर श्रीदत्तजब तक अपने मन में आश्चर्य से विचार करता है तबतक शंखदत्त क्रोध से रक्त नेत्र किये हुए तत्काल वहां उपस्थित हो जाता है, तथा प्रथममुनि को विधि पूर्वक प्रणाम करके राजा के समीप बैठ जाता है। अत्यन्त क्रोध से भरा हुआ शंखदत्त को देखकर उसके क्रोध को शान्त करने के लिये मुनीश्वर ने इस प्रकार देशना दी कि "क्रोध प्रेम को नाश करता है, अभिमान विनय का नाश करने वाला है, माया मित्रता का नाश करती है, लोभ सर्वस्व का नाश करने वाला होता है,卐क्रोध जब देह रूपी घर में प्रवेश करता है तब उसमें तीन प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, तथा स्वयं भी तप्त होता है और दूसरे को भी ताप देता है। इस प्रकार वह अतीव हानिकारक होता है।

इस प्रकार अनेक उत्तम देशना से शांत हुए शंखदत्त को अपने समीपमें बैठाकर मुनीश्वरसे श्रीदत्त ने पूछा कि 'हे गुरो शखदत्त किस प्रकार यहां आया ?'

तब मुनीश्वर कहने लगे कि समुद्र में गिरता हुआ तुम्हारे

卐 "कोहो पीइ पणासेइ माणो विणय णासणो।
माया मित्ताणि णासेइ लोहो सव्वविणासणो" ॥४८४॥४८

मित्र को एक फलक (पाटिया) प्राप्त हुआ। तथा उसी के अवलम्बन से सात दिन में वह सागर के तट पर आ पहुँचा। वहां तट पर उसको संवर नाम के उसके मामा मिले तथा कुशल समाचार पूछकर अपने घर ले गये। अन्नपानादि से अत्यन्त प्रसन्न होकर इसने मामा से पूछा कि स्वर्णकूल "यहां से कितनी दूर है।" मामा से उत्तर मिला कि "यहां से छतीस योजन दूरी पर है।" इस प्रकार मामा से जानकर अपनी वस्तु तथा कन्या आदि का लेने के लिये यह यहां शिघ्र आया है।

उन दोनों श्रीदत्त और शंखदत्त का पूर्व जन्म का वैरभाव जान कर हित करने की बुध्दि से मुनि शंखदत्त से इस प्रकार कहने लगे क्योंकि –"सज्जन व्यक्तियों का चित्त दया से आवृत्त रहता है। तथा वाणी अमृत से भी अधिक मधुर होती है और शरीर परोपकार करने में सतत तत्पर रहा करता है।"*

मुनि कहने लगे कि "हे शंखदत्त! श्रीदत्त को तुमने पूर्व जन्म में मारने की इच्छा की थी, उसके बदले में तुमको मारने के लिये श्रीदत्त ने तुम्हें समुद्र में गिरा दिया था। इस प्रकार घात प्रतिघात से तुम्हारे वैर भाव की शुद्धि हो चुकी है। अब तुम दोनों स्थिर प्रीति करलो। क्यों कि जो कर्म किया जा

---

*कृपाकवचितं चेतो, वचः पीयूषपेशलम्।
परोपकार व्यापारं, वपुः स्यात् सुकृतात्मनाम्॥ ४६४॥स.च

चुका है। उसका नाश कोटि कल्प में भी नहीं हो सकता । किये हुए कर्म का शुभ या अशुभ फल जीव को अवश्य ही भोगना पड़ता है।

परस्पर क्षमा-याचना

वहां पर बैठे हुए राजा ने यह सब बात सुनकर दिल में धर्म के बिना कल्याण नहीं हो सकता है, यह सोच कर उन मुनि से 'सम्यक्त्व मूल द्वादश व्रत' को अच्छे उत्सव के साथ ग्रहण किया। क्योंकि गृहस्थों के लिये पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षा व्रत, ये १२ व्रत मोक्ष देने वाले हैं।

बाजू में बैठे वानर रूपी व्यन्तर ने गुरु का उपदेश सुनकर अपनी पूर्व जन्म की स्त्री में अनुराग का त्याग किया और इस प्रकार क्रमशः श्रीदत्त, शखदत्त, राजा और उस व्यन्तर, श्रीदत्त की कन्या तथा सोमश्री ने परस्पर क्षमा की याचना की।

इसके बाद स्वर्णरेखा वेश्याकर्म का त्याग करके जिनोपदेशित धर्म का आचरण करती हुई स्वर्ग जायगी तथा क्रमश मुक्ति को भी प्राप्त करेगी अन्य भी बहुत से संसारी लोकों ने ज्ञानीमुनि की धर्म देशना सुन तथा श्रीदत्त तथा शखदत्त का वृतान्त सुनकर, पापबुद्धि को नष्ट कर, धर्म मार्ग में प्रवृति कर धर्म का मार्ग ग्रहण किया। श्रीदत्त और शखदत्त ने जैन धर्म को स्वीकार किया तथा मुनि को प्रणाम करके हर्ष पूर्वक अपने २ स्थान को गये। श्रीदत्तने आधे

द्रव्य के साथ कन्या को शंखदत्त को देकर उत्सवपूर्वक शेष धन सातों क्षेत्रों में दे दिया तथा केवली मुनि से संसार से तारण करने वाली दीक्षा लेकर तीव्र तप करता हुआ वह विहार करने लगा। तप रूपी अग्नि से दुष्ट कर्म रूपी इन्धन के समूह को भस्म करता हुआ क्रमशः श्रीदत्त क्षपक श्रेणी को प्राप्त हो गया। अज्ञान रूपी अन्धकार को शुक्ल ध्यान के प्रखर किरणों से नाश करता हुआ उस श्रेष्ठ श्रीदत्त मुनि ने क्षणमात्र में निर्मल केवल ज्ञान को प्राप्त किया।

वही श्रीदत्त मैं केवल ज्ञान प्राप्त करके सांसारिक प्राणियों के हित करने की भावना से विहार करता हुआ यहां इस समय आया हूँ। पूर्व जन्म में चैत्र रूपी मुझको जो गौरी और गंगा प्रियायें थीं वे इस जन्म में कर्मवश मेरी माता और पुत्री हुई। दुष्ट कर्मों के अधीन होकर अज्ञान से मैंने माता तथा पुत्री के ऊपर प्रेम किया। (श्रीदत्त केवली कथा समाप्तम्)

उस केवली भगवंत की यह सब बात सुन कर वह राजकुमार केवली से बोला कि 'जो हंसी और सारसी पूर्व जन्म में मेरी प्रिया थी वे ही इस समय मेरी माता तथा पिता हैं। उसको मैं तात तथ माता किस प्रकार कहूँ।'

शुकराज से केवली का उपदेश

तब उस केवली भगवत ने कहा कि "हे शुकराज! यह संसार

रूपी नाटक विचित्र ही है। क्योंकि

"संसार मे ऐसी न कोई दिखती कुल जाति है।
शत वार जिसने जन्म पाया हो न मानव जाति है॥
शत सहस्रों वार सवके सव हुआ सुत ताप है।
जीव जव तक मोक्ष पाता यह कहां तक पाप है।"

इस संसार मे ऐसी कोई जाति नहीं है, न ऐसी कोई योनि है, न ऐसा कोइ स्थान है, न ऐसा कोई कुल है कि जहा पर इस जीव ने अनेक वार जन्म धारण न किया और मरण प्राप्त न किया हो। अर्थात् यह जीव सब स्थानों में अनेक समय भ्रमण कर चुका है और जहा तक मुक्ति मोक्ष प्राप्त नही होगा वहा तक जीव का भ्रमण चालू ही रहता है। इस संसार मे भ्रमण करने वाले प्राणियों को परस्पर अनेक वार माता पुत्र आदि का सम्बन्ध हो चुका है। इसलिये इस प्रकार के न्याय को देखते हुए बुद्धिमानों को लोक व्यवहार का त्याग नहीं करना चाहिये, क्योंकि निश्चय से व्यवहार बलवान है। यही नीति कहती है।

इसके बाद संसार को नाटक प्राय समझ कर तात माता आदि शब्द बोलते हुए शिशु शुकराज को देखकर मृगध्वज श्रीदत्त मुनि से बोला कि 'हे स्वामिन्! पृथ्वी पर आपके समान जो मनुष्य हैं वे धन्य हैं। युवावस्था में ही जिन लोगों के चित्त मे वैराग्य को प्राप्त कर लिया है; मेरा चित्त संसार से विमुख होकर मुझे वैराग्य कब प्राप्त होगा?"

इस प्रकार राजा के पूछने पर केवली श्रीदत्तमुनि ने कहा कि हे राजन! जब तुम तुम्हारी रानी चन्द्रावती का पुत्र तुम्हारे दृष्टि

गोचर होगा तब तुमको मोक्ष का सुख देने वाला वैराग्य भाव प्राप्त होगा।

उन मुनीश्वर से कहे हुए वचनों को अपने हृदय में धारण करके और उन केवली मुनीश्वर को विधि पूर्वक प्रणाम करके अपने पुत्र आदि के सबध मे सब बातों को स्वप्न के समान समझता हुआ वह आनंद पूर्वक राजा अपने नगर में आया।

इसके बाद वे केवली मुनि भव्य प्राणी रूप कमल के प्रबोध के लिये प्रकाशमान ज्ञान रूपी किरण युक्त दिवाकर स्वरूप केवली श्रीदत्तमुनि पृथ्वी में ग्रामानुग्राम विचरने लगे।
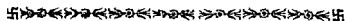
पारस मे और संत मे, बडा ही अन्तर जान।
एक लोहा कचन करे, एक करे आप समान ॥१॥
चेतन सें ऐसी करी, ऐसी न करे कोय।
विषया रस के कारणे, सर्वस्व बेठो खोय ॥२॥
जो चेताये तो चेतजे, जो बुझाय तो बुझ।
खानारा सौ खाई जशे, माथे पडशे तुझ ॥३॥
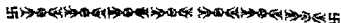
प्रकरण छत्तीसवां

चन्द्र शेखर

"तरवर-सरवर-सतजन, चौथा वर्षे मेह,
परमारथ के कारणे, चारों धरिया देह।"

गत प्रकरण के अंदर श्रीदत्त केवली भगवत ने महाराजा मृगध्वज को शुकराज का रोमांचकारी पूर्व भव इत्यादि वर्णन किया। उस वर्णन को सुनकर महाराजा अपने मन में बहुत ही आश्चर्य चकित हुए। महाराजा अपने मन में, इस संसार के अनोखे माया जाल पर सदा सोचते ही रहते थे, इस असार संसार से मेरा छुटकारा कब होगा ? यह दिल की चाहना थी। इस इच्छा की पूर्ति के लिये श्री दत्त केवली मुनि के वचन सदा याद रखते थे और धर्म भावना में रत रहे हुए न्याय नीति से प्रजा का पालन कर रहे थे।

गागलि ऋषि का राजसभा में आगमन---

जब वह राजकुमार शुकराज दस वर्ष का हुआ तब कमल माला को पुनः एक दूसरा मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा मृगध्वज ने उसका जन्मोत्सव करके स्वप्न के अनुसार हर्ष पूर्वक "हंसराज" नाम रक्खा। इसके बाद दस वर्ष की अवस्था वाला हंसराज और शुकराज के साथ राजा जब सभा में बैठे थे। तब

द्वारपाल आकर निवेदन करने लगा कि "हे राजन्! आपके दर्शन की इच्छा से गांगलिऋषि द्वार पर आये हैं।' यदि आपकी आज्ञा हो तो वह यहां आवें।"

राजा की आज्ञा प्राप्त कर वह द्वारपाल तीन शिष्यों से युक्त जटाधारी गांगलिऋषि को वहां पर ले आया। आदर-सत्कार करने के अनन्तर आशीर्वाद प्राप्त करके राजा उन ऋषि श्रेष्ठ को उच्च आसन पर बैठाकर पूछने लगा कि जिन मन्दिर आदि सब कुशल तो हैं?'

ऋषि ने उत्तर दिया कि "जब आप जैसे राजा पृथ्वी का पालन करने वाले इस पवित्र पृथ्वी पर विद्यमान हैं तो लोगों को किस प्रकार कोई विघ्न हो सकता है? जैसे मेघ के बराबर वर्षा करते रहने पर क्या कहीं पर दुर्भिक्ष (अकाल) प्रकट होता है?"

अपने पिता को आये हुए सुनकर कमल-माला भी आई और पिताजीके चरणों में प्रणाम करके एक स्थान पर खड़ी हो गई। तब राजा ने पूछा कि "आप किस प्रयोजन से अभी यहां आये हैं।"

ऋषि कहने लगे कि मेरे आगमन का क्या कारण है वह मुझ से सुनिये। एक दिन स्वप्न में मुझको गोमुख नामका यक्ष आकर कहने लगा कि "मैं प्रधान तीर्थ श्री विमलाचल पर के श्री जिनेश्वर भगवान को प्रणाम करने के लिये जारहा हूँ; तुम भी आओ।" यक्ष के इस प्रकार कहने पर मैंने कहा कि 'इस आश्रम

और मन्दिर की देखभाल कौन करेगा ?' तब वह यक्ष बोलाकि तुम हंसराज तथा शुकराज दोनोंमें से किसी एक दौहित्र को लाकर यहां रक्खो। ऐसा करने से तीर्थ सुरक्षित रहेगा। फिर उस यक्ष के प्रभाव से मैं बहुत थोडे समय में ही यहां आगया हूं। इसलिये हे मृगध्वज ! मुझको तुम शीघ्र कोई भी एक पुत्र समर्पित करो।

राजा ने कहाकि "मेरे दोनों पुत्र अभी छोटे हैं। इसलिये मैं उन दोनों को वन में जाने के लिये कैसे आदेश दूं।" परन्तु पुन. ऋषि मुनि की प्रार्थना पर विचार कर राजा वन में जाने के विषय में अपने दोनों बालकों को पूछने लगा।

गागलिऋषि के साथ हंसराज की जाने की अभिलाषा—

तब हंसराज पिताजी के चरणों पर प्रणाम करके विनय पूर्वक बोला कि 'हे पिताजी ! गागलिक ऋषि को श्री शत्रुंजय तीर्थ पर श्री जिनेश्वर देव को प्रणाम करने के लिये जाने की इच्छा है इसलिये मैं आपकी आज्ञा से आश्रम की रक्षा करने लिये जाऊगा" क्योंकि:—

"धन्य लोग जग वे बड़ भागी जननी जनक वचन अनुरागी
वे नर धन्य सकल बुध रह हीं, गुरुवर वचन सदा अनुसरहीं"

"वे पुरुष धन्य हैं जो माता पिता के वचनों को सादर स्वीकार करते हैं। संसार में ये भी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं जो पूज्य गुरुवरों के हितकारी वचनों का सदा आदर करते हैं।"ॐ

ॐ "ते धन्या ये पितुर्मातुर्वाक्यं च कुर्वते मुदा।
ते च धन्यतमा लोके गुरूणां च वचोहितम् ॥४४॥स.८

हंसराज की बात सुनकर माता तथा पिता दोनों ने हर्ष पूर्वक कहा कि "हे पुत्र तुम धन्य हो ! क्योंकि तुम्हारा इस प्रकार का उत्तम वचन है। दीप से कुलदीपक पुत्र विलक्षण होते हैं, क्योंकि दीप वर्तमान वस्तु को ही प्रकाशित करता है, परन्तु कुलदीपक पुत्र अपने गुणों की उत्कृष्टता से बहुत पूर्व में हुए पूर्वजों को भी प्रकाशित करते हैं।"

राजा की यह बात सुनकर शुकराज ने कहा कि 'हे तात ! मुझको आज्ञा दीजिये क्योंकि श्री विमलाचल तीर्थेश्वर को प्रणाम करने की इच्छा मुझे भी पहले से ही है। सच कहा कि 'आदि में सूक्ष्म, मध्यम में विशाल, पद पद पर विस्तार वाली तथा प्रवाह वाली नदियों के समान सज्जन पुरुषों की अभीलाषा कभी निष्फल नहीं होती।

"जैसे गिरिवर से निकली नदी आगे बढ़त विशाल।
होती है यों सुजन की इच्छा क्रमिक विशाल।"

इसके बाद दोनों पुत्रों के विनय युक्त वचन सुनकर जब तक मन्त्रियों का मुख महाराजा देखते है, उस समय मंत्री कहने लगे कि "ऋषि मुनि याचना करने वाले हैं, आप देनेवाले है। जिन मन्दिर और आश्रम का रक्षण करना अपना कर्तव्य है। ऐसी स्थिति में यदि शुकराज रक्षण करने वाले होवें तो हम भी सहर्ष इसका पूर्ण अनुमोदन करते हैं।'

शुकराज का ऋषि के साथ आश्रम में जाना

मन्त्रियों का वचन सुनकर शुकराज माता-पिता के चरणों में प्रणाम करके सिंह के समान गागलि ऋषि के साथ चल दिया। फिर गांगलि मुनि महाराजा को शुभ आशीर्वाद देकर शुक के साथ पृथ्वी का लंघन करते हुए अल्प समय में ही अपने आश्रम में आ पहुँचे। शुकराज श्रीआदिनाथ प्रभु को प्रणाम तथा स्तुति करके उस आश्रम में ही रहने लगा। तथा वहा स्वर्ग और मुक्ति की लक्ष्मी को देने वाले बहुत से क्रिया अनुष्ठान किये। इस प्रकार *शुकराज तीर्थ और आश्रम का संरक्षण यत्न पूर्वक करने लगा।* गागलि मुनि भी विमलाचल पर श्रीजिनेश्वर भगवान को प्रणाम करने के लिये चल दिये।

"तीर्थ के मार्ग की धूली से लोग निष्पाप हो जाते हैं। तीर्थों में भ्रमण करने से ससार के भ्रमण से मुक्त होते हैं। तीर्थ मे धन का व्यय करने से संसार में लोग स्थिर सम्पति वाले होते हैं, एव तीर्थेश्वर की पूजा करने वाले जगत्पूज्य होते हैं।" ※

※ श्री तीर्थपान्थरजसाविरजीभवन्ति,
तीर्थेषु बंभ्रमणतो न भवे भ्रमन्ति।
तीर्थ व्ययादिह नरा. स्थिरसपद. स्यु,
तीर्थेश्वरार्चनकृतो जगदर्चनीया॰ ॥५५६॥स.८

रात्रि में स्त्री का रुदन

शुकराज ने जब इस वन में प्रवेश किया तो बिना वृष्टि के दावानल शान्त होगया, फल पुष्प आदि की अत्यन्त वृद्धि हो गई, तथा बलवान प्राणी निर्बल प्राणियों को पीड़ित नहीं करते थे। एक रात्रि में किसी स्त्री का दूरसे रुदन सुनकर शुकराज वहां गया और उससे रुदन का कारण पूछा।

तब वह स्त्री कहने लगी कि 'चम्पापुरी में अरिमर्दन नाम के राजा हैं। उसको श्रीमती नाम की पत्नी से पद्मावती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई, उस पद्मावती की मैं धात्री माता हूं, मेरा नाम रमा है। तथा जैसे प्रेम से माता अपने सन्तान को स्तन पान आदि से पालन करती है, ठीक वैसे ही मैं भी प्रेम पूर्वक पुत्रीवत् उसका पालन करती थी। एक दिन पद्मावती को तथा मुझको कोई आकाश चारी अपने विमान में लेकर आकाश मार्ग से चलदिया। यहां पर मैं अकस्मात् विमान से गिर गई हूं। तथा वह आकाश चारी पद्मावती को लेकर कहीं चला गया है। इसलिये मैं रुदन कर रही हूँ। क्योंकि प्राणियों को पिता, माता, मित्र, पुत्र, स्त्री, आदि का वियाग अत्यन्त दुष्कर होता है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

> "मात पिता सुत बालिका-वनिता सुजन सुयोग।
> स्वजन हानि सताप से-होता सबको सोग॥"

पद्मावतीको ढूंढने के लिये शुकराज का गमन

तब शुकराज मधुर वचनों से उसको धीरज देकर तथा आश्रम में उसको रखकर पद्मावती को आस पास में ढूंढने के लिये वहां से शीघ्र चल दिया। परन्तु आश्रम के पास वाले जिनप्रसाद के पीछे एक मनुष्य को रुदन करते हुए देखकर शुकराज ने उससे पूछा कि 'तुम कौन हो ? तथा कहां से यहां आये हो ?'

तब उसने कहा कि, मैं आकाश चारी हूँ, और वायुवेग मेरा नाम है। पृथ्वी को देखने के लिये वैताढ्यगिरी पर आये हुए हैं 'गगन वल्लभ' नाम के नगर वरोवर है से चला था। तथा चम्पापुरी के राजा की कन्या को लेकर आकाश मार्ग से मैं आ रहा था जैसे ही मेरा विमान यहां मंदिर के शिखर पर पहुचा और अकस्मात रु॰ गया। इस विमान से प्रथम तो एक स्त्री गिर गई, और बाद मे वह राज कन्या भी गिर गई, पश्चात् मैं भी यहां गिर गया हू। इसका कारण कुछ भी मुझे तो ज्ञात नहीं हो रहा है कि ऐसा क्यों हुआ ?'

वायुवेग को आश्रम में लाना

तब शुकराज कहने लगा कि "हे वायुवेग! इसी तीर्थ के प्रभाव से तुम्हारा यह विमान रुका तथा तुम्हारा पतन हुआ है।" इसके बाद उस वायुवेग को लेकर शुकराज जिन प्रासाद में गया तथा भक्ति भाव पूर्वक श्री जिनेश्वर देव को दोनों ने

एक रात्रिमें किसी स्त्रीका दूरसे रुदन सुनकर शुकराज वहां गया और उससे रुदनका कारण पूछा। पृष्ठ ८९

(मु नि जि संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न. १६)

तत्पश्चात् वायुवेग विद्याधर को शुकराज ने पूछा कि तुमको आकाशगमन विद्या याद है या भूल गये ?

तब वायुवेग ने कहा कि आकाशगमन विद्या मुझको याद तो है, परन्तु वह अभी कुछ भी कार्य नहीं कर रही है।

शुकराज को आकाशगामिनी विद्या की सिद्धि—

शुकराज ने कहा कि 'हे विद्याधर ! वह विद्या मुझको सुनाओ' इसके बाद विद्याधर से कही हुई आकाशगमन की विद्या को लेकर जिनालय में जाकर श्री जिनेश्वर भगवान के आगे तप पूर्वक विद्या का जाप करने लगा। इस प्रकार आकाशगमन विद्या सिद्ध करके शुकराज ने वह विद्या पुनः विद्याधर को सिखा दी। इस प्रकार दोनों परस्पर उपकार के द्वारा आकाश गामी हो गये। ठीक ही कहा है कि देना लेना, गुप्त कहना और पूछना, भोजन करना तथा कराना ये छै प्रकार का प्रीति का लक्षण कहा गया है।

> "लेना देना पूछना गुप्त बताना भेद।
> खाना पीना परसपर मैत्री के छै भेद॥"

गागलि ऋषि का तीर्थ यात्रा से लौटना—

कुछ दिनों के बाद विमलाचल पर्वत पर श्री जिनेश्वरदेव को प्रणाम करके प्रसन्नता पूर्वक गागलि ऋषि आ गये, तथा शुकराज

ने आकाशचारी विद्या सिखी है, यह जानकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई, क्योंकि "सज्जन व्यक्ति दूसरे की लक्ष्मी को बढ़ती हुई देखकर जैसे बढ़ते हुए चन्द्रमा को देखकर समुद्र प्रसन्न होता है, ठीक वैसे ही प्रसन्न होते हैं।"

इसके बाद गागलि मुनि से प्रेम पूर्वक मिल कर शीघ्र ही वायुवेग तथा उन दोनों स्त्रियों के साथ उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर शुकराज आकाश को उल्लंघन करता हुआ तथा अनेक नगर समुद्र पर्वत आदि को देखता हुआ चम्पापुरी में आ पहुँचा।

विद्याधर के मुख से शुकराज का अपूर्व चरित्र सुनकर राजा 'अरिमर्दन' ने अत्यन्त आनन्दित होकर बहुत उत्तम उत्सव पूर्वक घोड़े, हाथी, सुवर्ण आदि देकर शुकराज का पद्मावती के साथ विवाह कर दिया। "श्री वीतराग भगवान के द्वारा बताया गया अहिंसा रूपी धर्म जिनके मन में स्थापित है उसके वश में सुर असुर, राजा, यक्ष, राक्षस, भूत आदि सब हो जाते हैं।'

"इस महापुरुष शुकराज ने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है।" इससे प्रसन्न होकर वायुवेग के पिताने सुन्दर उत्सव पूर्वक अपनी वायुवेगा नामकी सुन्दर कन्या का भी विवाह शुकराज के साथ कर दिया।

अष्टापद तीर्थ की यात्रा के लिये शुकराज का गमन—

अपनी स्त्री वायुवेगा को गगरा में ही छोड़कर शुकराज वायुवेग के साथ अष्टापद का माहात्म्य सुनकर जिनेश्वर देवों की वन्दना करने के लिये चल दिया पीछे शुकराज २ इस प्रकार नाम ग्रहणपूर्वक बार बार पुकारती हुई किसी स्त्री को सुना। शुकराज ने पीछे घूमकर देखा तो 'दिव्य आभूषणों से युक्त एक स्त्री उसकी ओर आरही है।" निकट आने पर राजकुमार ने पूछा कि तुम कौन हो? कहां से यहां आई हो? इस प्रकार शुकराज के प्रश्न पूछने पर वह कहने लगीकि मैं 'जिनेश्वरदेवकी सेवा करने वाला चक्रेश्वरी नामकी देवी हूं, मैं सदा धर्मी जीवों के अनेक विघ्नों को नाश करने वाली हूं, मैं गोमुख यक्ष के आदेश से इस समय श्रीपुण्डरीकगिरी की रक्षा करने के लिये चाली थी, चलते २ मध्य मार्ग में जब मैं क्षितिप्रतिष्ठित नगर के ऊपर आई तब राजमहल समीप के उद्यान में करूण स्वर से किसी स्त्री का रूदन सुनकर, वहा पर गई और उस स्त्री से रूदन का कारण पूछा, तब उस स्त्री ने उत्तर दिया कि "शुकराज नामका मेरा पुत्र

पीछे शुकराज शुकराज इस प्रकार नाम ग्रहण पूर्वक बार बार पुकारती हुइ किसी स्त्रीका सुना। शुकराजाने पीछे घूमकर देखा तो दिव्य आभूषणोंसे युक्त एक देवी उसकी ओर आ रही है। पृष्ठ ९४

(मु नि चि संयोजित

विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न. १७)

गागलिऋषि के साथ गया परन्तु अभी तक उसका कोई समाचार मुझे नहीं मिला है, इसलिये ही मैं रूदन कर रही हू ।"

देवी ने उत्तर दिया कि 'तुम्हारे पुत्र के कुशल समाचार जानकर तुमको शीघ्र कहू गी।' इस प्रकार तुम्हारी माता को आश्वासन देकर, तत्काल अवधिज्ञान से तुमको यहा जानकर आई हूँ। इस लिये तुम पीछे लौटकर, अपने नगर में जाकर, अपनी माताजी के चरणा मे प्रणाम कर, अपन निर्मल चरित्रों से उसको प्रसन्न कर दो।

"माता चरण प्रणाम ही, सब तीर्थों का ध्यान।
बिना कष्ट तप जानिये, जल बिन स्नान समान॥"

क्योंकि माता के चरणा का सेवन करना बिना यात्रा के ही तीर्थ है, बिना देह कष्ट का तप है तथा बिना जल का स्नान है। नीतिकार ने कहा है—

"जिसने नौ मास तक गर्भ का वहन किया, प्रसव समय मे अत्यन्त उत्कट कष्ट को सहन किया, पथ्य आहारों से स्नान आदि क्रियाओं से दूध पिलाना एवं रक्षा के अनेक उपायों से तथा विष्ठा मूत्र आदि मलिन पदार्थों से कष्ट प्राप्त कर के भी जिसने पुत्र को अनेक प्रकार से रक्षण किया, ऐसी एक माता ही स्तुति के योग्य है।" ❀

❀ ऊढो गर्भ, प्रसवसमये सोढमत्युग्रशूल,
पथ्याहारैः स्नपनविधिभि स्तन्यपानप्रयत्नै।
विष्ठा मूत्रप्रभृतिमलिनै कष्टमासाद्य सद्य।
त्रात पुत्र कथमपि यया स्तूयता सैव माता॥ ६०६॥ म.न

चक्रेश्वरी देवी के द्वारा माता को समाचार पहुचाना—

यह बात सुनकर शुकराज की आखों में आसू भर आये और दुखित* होकर शुकराज ने कहा कि "समीप मे प्राप्त तीर्थ को प्रणाम किये बिना ही, मैं किस प्रकार पीछे लौट जाऊं ? क्योंकि विवेकी को चाहिये कि धर्म का अवसर प्राप्त होने पर उसमें विलम्ब न करे। जैसे बाहुबलि को एक रात बीत जाने पर तक्षशिला के उद्यान में आये हुए श्री ऋषभदेव प्रभु के दर्शन न हो सके। इसलिये हे देवी ! तुम मेरी माता को कहना कि तेरा पुत्र देवों की वन्दना करके शीघ्र ही आ जायेगा।"

इस प्रकार चक्रेश्वरी देवी से कह कर शुकराज मित्र के साथ श्री अष्टापद तीर्थ में श्री जिनेश्वरदेवों को प्रणाम करने के लिये हर्ष पूर्वक पुन वहाँ से चल दिया।

इधर चक्रेश्वरी देवी के द्वारा अपने प्यारे पुत्र की कुशलता का सन्देश सुनकर कमलमाला भी स्वस्थ हुई। शुकराज श्री जिनेश्वर देवों की वन्दना करके लौट आया। बाद मे वायुवेगा तथा पद्मावती दोनों स्त्रियों के साथ विमान पर आरूढ़ होकर क्षितिप्रतिष्ठ नगर के उद्यान मे आया। अपने प्यारे पुत्र का आगमन सुन कर उस के माता तथा पिता ने हर्षित हो नगर मे तोरण आदि बन्धवाये।

शुकराज का अपने नगर में प्रवेश

अत्यन्त प्रसन्नता से उत्सव पूर्वक शुभ मुहूर्त में शुकराज को

नगर प्रवेश करवाया शुकराज ने आते ही विनय पूर्वक अपने माता पिता के चरण कमलों में प्रणाम किया। क्यों कि —

"जिससे धर्म वृद्धि को प्राप्त हो तथा बन्धु वर्ग यश एवं कुल वृद्धि को प्राप्त हो, वही वास्तव में पिता का पुत्र है। दूसरे स्वछंदी (उछृंखल) तो शत्रु ही है।"※

राजा मृगध्वज ने जिन मंदिर में स्नात्र पूजा आदि करके तथा अनेक प्रकार के दान प्रदान के द्वारा पुत्र के आगमन की खुशी में उत्सव किया। क्यों कि 'देवपूजा, गुरू की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप, शास्त्राध्ययन और परोपकार ये आठ मनुष्य जन्म के फल हैं।'

इसके बाद एक दिन राजा अपने पुत्र शुकराज और हंसराज के साथ उद्यान में आकर परिवार के साथ आनन्द विनोद कर रहे थे। इसी बीच में अकस्मात दूर से मनुष्यों का कोलाहल सुनकर उसके समाचार जानने के लिये राजा ने अपने एक सेवक को शीघ्र ही वहां भेजा।

वह सेवक वहां गया और वहां के समाचार जान कर राजा से आकर बराबर सुना दिये कि "सारंगपुर में वीरांगद नाम का एक राजा है। उसका पुत्र सूर आपके पुत्र हंस के साथ वैर भाव धारण करता हुआ बहुत सेना के साथ उनसे युद्ध करने के लिये यहां आ रहा है।"

※ ये वृद्धि नीयते धर्मो वन्धुवर्ग कुलं यशः।
पितुः पुत्रास्त एव स्युर्वैरिणः स्वैरिणः परे॥६१७॥स. ८

तब राजा ने कहा कि 'राज्य तो मैं करता हूं फिर मेरे पुत्र के साथ वह वैर क्यों करता है ?' इतने में राजा के दोनों पुत्र भी उद्यान में से निकट आपहुंचे। राजा दोनों पुत्रों से युद्ध के बारे में परस्पर विचार कर रहे थे। इतने में शत्रु की सेना में से एक सेवक आकर उनसे कहने लगा कि 'तुम्हारे पुत्र हंसराज से पूर्व जन्म में पराजित राजा सूर वैर भाव का स्मरण करता हुआ बहुत सेना के साथ युद्ध करने के लिये आया है।'

"द्वेष नष्ट हो जाता जिसके, दर्शन से आनन्द लहे।
पूर्व जन्म का मित्र बन्धु, वह है ऐसा बुध वर्ग कहे॥"

महाराजा मृगध्वज पुत्र स्नेह के कारण और शुकराज भ्रातृ स्नेह के कारण सूर राजकुमार के साथ युद्ध करने को तैयार हुए तब हंसराज ने कहा कि 'इस राजकुमार सूर का मेरे साथ वैर है इसलिए मुझे ही युद्ध करने दी जिये।'

हंस और सूर का परस्पर युद्ध

यह कह कर यमराज के तुल्य हंस राजकुमार रथ पर आरूढ़ होकर राजा सूर के साथ बाहुयुद्ध करने लगा। इसके बाद हंसराज ने मृगध्वज आदि राजाओं के देखते देखते ही सूर के सब शस्त्रों को काट डाले। तब अत्यन्त क्रुद्ध होकर सूर जब तब हंस को मारने के लिये उद्यत हुआ, तब तक हंस ने सूर को पृथ्वी पर धर पटका। पुनः हंस ने गिरे हुए बेहोश सूर को बान्धव के समान शीघ्र ही शीतवायु आदि उपचारों के द्वारा सूर को स्वस्थ किया।

गिरे हुए बेहोश सूरकुमारको बान्धवके समान शीघ्रही शीत-वायु आदि उपचारोंके द्वारा सूरकुमारको देवकुमारीने स्वस्थ किया, यह देख सूरकुमार मनही मन लज्जित हुआ। .पृष्ठ ९८

(मु. नि. वि. संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र नं. १८)

जब इस प्रकार हंस ने सूर को स्वस्थ किया तब सूर कहने लगा कि "हंस ने मुझको बाह्य तथा अन्तर दोनों ही प्रकार का चैतन्य दिया है। क्योंकि मैं अभी रौद्र ध्यान से मर कर नरक में चला जाता। परन्तु दयालु गुरु समान हंस ने मेरी रक्षा की है। हंस ने मुझको इस समय ज्ञान दृष्टि दी है। इसलिये मुझको कल्याण और सुख देने वाला विवेक प्राप्त हुआ है। एक कविने उचित ही कहा है-

"पर उपकारी नाश काल में, भी न मलिन मुख करता है।
देखो चन्दन कुल्हाड़ी को, दे सुगन्ध मुख भरता है॥"

"सज्जन व्यक्ति सदा परोपकार के लिये अपनाविनाश काल प्राप्त होने पर भी विकार को प्राप्त नहीं करते, जैसे चन्दन वृक्ष अपने खुद को काटने तथा नष्ट करने वाले कुठार के मुख को भी सुगन्धित करता है" ॐ सज्जनों की यह रीति हमेशा चली आ रही है। इसके बाद सूर ने उठ कर उत्तम पुरुषों के समान परस्पर र भाव को त्याग कर, प्रेम पूर्वक हंस को क्षमा प्रदान की।

पाठक गण! इस प्रकरण मे राजकुमार सूर को मुनि के द्वारा गत भव सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हुआ और पूर्व भव सम्बन्धी वैरभाव को स्मरण करके हंस राजकुमार के साथ युद्ध किया। सूर मैदान में पराजित होकर भूमि पर गिरा और बेहोश हो गया। उस समय हस राजकुमार ने अपने शत्रु सूर का जलादि द्वारा सिंचन कर सचेत किया। प्राचीन कालीन मानवता में अपने शत्रु पर भी प्रेमभाव दर्शाना यह सुन्दर शिक्षा इस प्रकरण से मिलती है।

ॐ सुजनो न याति विकृतिं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि
छेदेऽपि चन्दनतरु सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥६३८॥स८

सैंतीसवां प्रकरण

"काम पूर्ति हो धर्म से-धर्म सकल सुख हेत,
रे मन ! मानो धर्म परमारथ फल देत ॥"
"काजल तजे न श्यामता मोती तजे न श्वेत,
दुर्जन तजे न कुटिलता-सज्जन तजे न हेत ॥"

गत प्रकरण के अन्दर सूर तथा हंस का युद्ध प्रसंग आया है। युद्ध भूमि में वेहोश होकर गिरे हुए शत्रु सूर पर भी हंस कुमार ने परम कृपा दिखाकर अपनी सज्जनता और कुलीनता का परिचय दिया। बाद में दोनों को परस्पर वैरभाव निवृत्त हुआ। अब आगे का हाल इस प्रकरण में लिखा जाता है।

यह अद्‌भुत कौतुक देखकर मृगध्वज ने सूर से पूछा कि आपने मेरे पुत्र से युद्ध क्यों किया ?

श्रीदत्त केवली के द्वारा सूर के पूर्व जन्म का कथन

तब सूर कहने लगा कि 'एक समय सारगपुर के उद्यान में श्रीदत्त नाम के केवली भगवत पृथ्वी को अपने चरण कमल से पवित्र करते हुए आ पहुंचे। उस समय मैं अपने पिता के साथ मुनि को प्रणाम करने के लिए उद्यान में गया। उन ज्ञानी भगवंत ने मोक्ष सुख को देने वाली धर्म देशना लोगों को दी। 'धर्म धनार्थी' को धन देनेवाला, कामार्थी को काम देनेवाला, सौभाग्यार्थी को सौभाग्य देनेवाला, पुत्रार्थी को पुत्र देनेवाला, राज्यार्थी को

राज्य देने वाला, अर्थात् विशेष करके क्या कहा जाय? मनुष्य को ससार में कौन सा ऐसा पदार्थ है जो धर्म नहीं दे सकता? यह धर्म स्वर्ग और मोक्ष को भी देने वाला है।"

देशना के अन्त में मुनि भगवत से पूछा कि मैंने पूर्वजन्म मे क्या पुण्य किया था?"

'केवली' भगवत कहने लगे कि तुमने पूर्वजन्म मे जिनार्चन (जिन पूजा) किया था। मैंने पुन पूछा कि "कौन से भव में जिन पूजा की थी? ज्ञानी मुनि ने कहा कि 'भदिदलपुरी में एक जितारी नाम के राजा थे। उन्होंने अपनी स्त्री हसी और सारसी के साथ शंखपुरी के सघ से युक्त होकर विमलाचल महा तीर्थ की यात्रा के लिये गये, लौटकर आते हुए जितारी राजा मार्ग में ही मृत्यु को प्राप्त कर गये। इसके बाद जितारी राजा का मन्त्री सिंह सब लोगों के साथ भदिदलपुरी को चल दिया। जब सिंह आधे मार्ग में आया तब चरक नाम के सेवक को कहा कि 'मैं विश्राम स्थान पर रत्नकुण्डल भूल गया हूं इसलिये तुम शीघ्र जाओ और वे रत्नकुडल ले आओ।"

इस प्रकार मन्त्री की आज्ञा हो जाने पर सेवक वहा से रत्नकुडल लाने के लिये चल दिया, क्योंकि सेवा से धन चाहने वाले, मूर्ख सेवक लोग अपने शरीर स्वतन्त्रता की तरफ़ो खो देते हैं। इसके बाद वहा जाकर उसको रत्नकुडल नहीं मिला तो पुन लौटकर चरक सेवकने मन्त्रीजी से कहा कि—"हे मन्त्रिश्वर! मुझको वहा पर बहुत खोज करने पर भी वह रत्नकुडल नहीं

मिला है। प्राय उसी समय मे कोई भिल्ल वह रत्नकुंडल उठा ले गया होगा।"

सिंहमन्त्री द्वारा चरक सेवक को पीटा जाना

तुमने ही वह रत्नकुंडल ले लिया होगा, ऐसा कहते हुए चरक को उस मन्त्री ने खूब पीटा।

"सुख या दुःख किसी को कोई न देता है यह नियमित है,
निज कर्म सूत्र मे गुंथा हुआ-फल को पाना नय निश्चित है।"

"क्योंकि सुख तथा दुःख का कोई देने वाला नहीं होता है। दूसरे मुझको सुख या दुःख देते हैं यह तो मन्द बुद्धि वाले ही सोचते हैं। "यह मैं करता हू" इस प्रकार का व्यर्थ ही मनुष्यों मे अभिमान है सब लोग अपने कर्म-सूत्र से ग्रथित हैं।"

इसके बाद उस चरक को वहीं मूर्छित अवस्था मे ही छोड़कर और लोगो के साथ पृथ्वी का अतिक्रमण करता हुआ सिंह मन्त्री भद्दिलापुरी मे जा पहुँचा।

इधर शीतल वायु आदि से अपने आप स्वस्थ शरीर होकर चरक अपने मन मे विचारने लगा कि 'धन-सत्ता से गर्वित मन्त्री को बार बार धिक्कार है।' इस प्रकार रौद्र ध्यान करते हुए चरक प्यास से दुःखी होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। पुन वही चरक भद्दिलापुरी के समीप वन में आकर सर्प हो गया, क्योंकि शास्त्र मे फरमाया है 'आर्तध्यानमे मरने से प्राणी पशु योनिको प्राप्त

करता है, रौद्र ध्यान में मृत्यु होने पर नरक में जाता है, धर्म ध्यान में मृत्यु होने पर देवगति को प्राप्त होता है, उसे शुभ फल मिलता है। शुक्ल ध्यान में मृत्यु होने पर उसे मुक्ति प्राप्त होती है।' इसलिये व्याधि का अंत करने वाले हितकर संसार से निस्तार करने वाले औषध की तरह श्रेष्ठ शुक्ल ध्यान में ही मृत्यु के लिये बुद्धिमानों को भावना करनी चाहिए।" इसके बाद वह सर्प आकर के क्रोध से उस मंत्री को डस गया। मंत्री उसके जहर से मरकर भयानक नरक को प्राप्त हो गया। रौद्र ध्यान परायण वह सर्प भी मरकर दुष्कर्म के योग से उसी भयंकर नरक को गया। नरक में गये दोनों जीव परस्पर सदा कलह करते हुए अत्यंत दुःख से दुःखी होकर समय को बिताने लगे।

जिन पूजा के प्रभाव से चरक का सूर रूप में जन्म

चरक का जीव नरक से निकल कर लक्ष्मीपुर नाम के नगर में अत्यन्त मनोहर रूप वाला भीम नाम का धन श्रेष्ठी का पुत्र हुआ। उस जन्म में पवित्र श्रेष्ठ पुष्पों से भाव सहित श्री जिनेश्वरदेव की पूजा करने के कारण तुम सूर नामक वीरांगद राजा के पुत्र हुए हो। क्योंकि 'जो कुछ भाग्य में लिखा है उसका परिणाम लोगों को प्राप्त होता ही है। यह जानकर बुद्धिमान लोग विपत्ति में भी कायर नहीं होते।'

उधरसिंह मंत्री भी नरक में अनेक महान् कष्टों को भोगकर

श्री विमलाचल पर बावड़ी में हंस हुआ। उस हंस को तीर्थ का दर्शन होने से पूर्व भव का जाति स्मरण ज्ञानप्राप्त हुआ। इसी कारण वह अपने पाखों से जल लाकर श्री जिनेश्वर देव को स्नान कराता था तथा वन में से अपनी चोंच में सुन्दर २ पुष्पों को लाकर श्री युगादीश जिनेश्वर का भाव पूर्वक पूजन करता था। इस प्रकार निरन्तर जिनेश्वर देव की पूजन करने के कारण वह हंस मर कर देव हुआ, वही देव इस समय हंस नामका आप का पुत्र है। मुनि से यह बात सुनकर मैं अपने शत्रु हंस को मारकर अपने वैर का बदला लूंगा। इस प्रकार भाव को प्रगट करता हुआ क्रोध पूर्वक जब मैं वहां से चला तब श्रीदत्तमुनि ने मेरे क्रोध को शान्त करने के लिये अनेक प्रकार के वचन कहे, परन्तु मैं उनके उपदेश की अवज्ञा करके इस समय हंस के साथ युद्ध करने के लिये यहां आया हूं। बलशाली आपके पुत्र हंस से युद्ध करता हुआ तत्काल हार गया हूं। इसलिये अब मैं वैर भाव को त्याग करके श्रीदत्त मुनि के समीप संसार रूपी समुद्र से शीघ्र तारण करने वाले दीक्षा व्रत को ग्रहण करूंगा। इसके बाद अत्यंत स्नेह से हंस को नमस्कार करके सुर तत्काल व्रतग्रहण करने के लिये श्रीदत्त मुनि के समीप गया, शास्त्रों में कहा है 'विषय समूह कायर पुरुष को ही अपने अधीन में करता है, सत्पुरुष को नहीं। कारण कि जैसे मकड़ी का तन्तु मच्छर को ही बांधता है परन्तु गजेन्द्रको नहीं बांध सकता।' बहुत बड़े भाग्य से प्राणी में धर्म क्रिया करने की अभिलाषा उत्पन्न होती है किन्तु वह अभिलाषा फलवती होवे अर्थात धर्म किया जावे यह तो स्वर्ण में सुगन्धि जैसा सुमेल है।

उस चरक संवकक जीव-सप ने आकर क्रोधसे उस - सिंहलनी को डस लिया। पृष्ट १०३

सिंहलनीका जीव क्रमश श्री विमलाचल तीथ पर वावडीमें हस हुआ, वह हस अपनी चोचमें सुंदर सुंदर पुष्प लाकर श्री आदिनाथजीकी पूजा करता था पृष्ट १०४

(मु नि थि सयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न १९-२०)

आकाशवाणी सुनकर कौतुकवश राजा उस बालक को साथ लेकर उस केवली वनमें गया
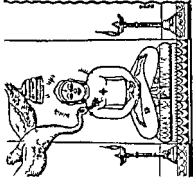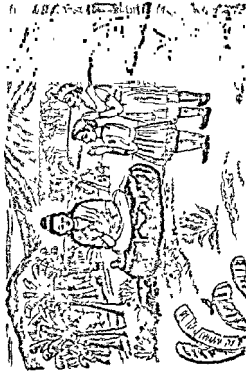
'हे राजन्! मैं वही वराकी हूँ और मैंने धर्मध्यान के प्रभावसे अवधिज्ञान को प्राप्त कर लिया है।

पृष्ठ १११

म्रगध्वज राजाको श्रीदतकेवली के वचनों का स्मरण होआना

ये सब समाचार सुनकर मृगध्वज अपने मन में विचारने लगा कि 'पृथ्वी मे जो मनुष्य व्रत ग्रहण करते हैं वे धन्य है।'

पिण्डों के लोभ लगाकर के तब तक ससार मे पितर रहे।
जब तक न पवित्रात्मा सुत कोई कुल में यति के धर्म गहे॥"

पुराणों मे भी कहा है कि पिण्ड की अभिलाषा से पितर लोग तब तक ससार में भ्रमण करते है, जब तक कुल में पुत्र विशुद्ध अन्त करणवाला संयासी नहीं होता।'*पूर्व समय मे ज्ञानी ने कहा था कि "जब तुम चन्द्रवती के पुत्र को देखोगे तब तुम्हारे हृदय मे शुद्ध वैराग्य उत्पन्न होगा।" परन्तु आज तक चन्द्रावती के पुत्र को मैंने नहीं देखा, अब मैं वृद्ध हो गया हू। 'क्या ज्ञानीमुनि का वचन मिथ्या होगा?' इस प्रकार मृगध्वज राजा उस वन मे जब विचार कर ही रहा था तब ही एक बालक ने आकर राजा को प्रणाम किया। तुम कौन हो? कहा से आये हो? ये सब बातें राजा जब तक उससे पूछता है इसीबिच में आकाश वाणी हुई कि "यह चन्द्रावती का पुत्र है, यदि तुम्हारे चित्त म सन्देह होता है तो, हे राजन! यहां स ईशान कोण में पाच कोस तक जाओ। वहां दोनो पर्वतों के मध्य में केले के वृक्षों से पूर्ण एक वन है। उसमें यशोमति नामकी एक योगिनी नित्य अत्यन्त उग्रतप करती है वहा जाकर तुम उस यशोमति

* "तावद्भ्रमंति ससारे पितर पिण्डकांक्षिण।
यावत्कुले विशुद्धात्मा यति पुत्रो न जायते॥इति पुराणे॥६८८॥८८

योगिनी से पूछना। उससे तुमको चन्द्रावती के पुत्र की उत्पत्ति का सब वृत्तान्त ज्ञात हो जायगा।"

यह आकाश वाणी सुनकर अत्यन्त कौतुक से राजा उस बालक के साथ शीघ्र ही उस कदलीवन में पहुँचा। वहां ध्यान में लीन योगिनी को देखकर राजा ने पूछा कि 'क्या यह चन्द्रवती का पुत्र है ?'

योगिनी द्वारा चन्द्रवती के पुत्र का परिचय

यह सुनकर योगिनी ने कहा कि 'हे राजन् सत्य ही यह चन्द्रवती का पुत्र है, क्योंकि यह असार संसार रूपी जहर से भी अधिक विषम है। इसलिये कहा है कि:-

'मैं कौन हूँ ? तुम कौन हो ? कहां से आये हो कौन मेरी माता है ? कौन मेरा पिता है ? ये सब यदि गहराई पूर्वक देखा जाय तो स्वप्न के व्यवहार के जैसा ही यह सब संसार है।"[1] रात, दिन, मास वर्ष बराबर होते हैं। लोग वृद्ध तथा बालक पुन. पुन. होते हैं। काल भी इसी प्रकार आता जाता रहता है। वह योगिनी पुनः कहने लगी कि "चण्डपुरी में एक सोम नाम का राजा था। जो इन्द्र के समान सतत न्याय मार्ग से प्रजा का पालन करता था उस राजा को जैसे रामचन्द्रजी के सीताजी थी उसी प्रकार अन्तपुर में सबसे श्रेष्ठ 'भानुमती' नामकी पवि-

---

कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः को मे जननी को मे तातः।
यद्येवं दृष्टः संसारः सर्वोऽयं स्वप्नव्यवहारः॥६६१॥स ८

बना रही थी। हिमवान क्षेत्र से एक युगल (स्त्री पुरुष) पूर्व भव में स्वर्ग को गया। पश्चात स्वप्न में सूचना देकर भानुमती के गर्भ मे प्रवेश किया। 'क्योंकि (युगलिक जीव पुन निश्चय पूर्वक देवगति में जाते हैं तथा अपनी अवधि के समाप्त होने पर ऐश्वर्यवानों के घर मे आते हैं) इसके बाद अपने गर्भ की अभिलाषा को पूर्ण करती हुई, समय पूर्ण होने पर भानुमती ने पुत्र तथा पुत्री रूप में अत्यन्त मनोहर दो सन्तानों को जन्म दिया। तब राजा ने उत्तम उत्सव करके पुत्र का नाम चन्द्रशेखर तथा पुत्री का नाम चन्द्रवती रखा। वे दोनों क्रमश. बढ़ते हुए परस्पर जाति स्मरण ज्ञान हो जाने के कारण प्रेम से युगलिक की तरह परस्पर लग्न करने इच्छा करने लगे, इसी बीच में सोमराजा ने तुम्हारी चन्द्रावती के साथ शादी की तथा चन्द्रशेखर का यशोमति के साथ विवाह कराया।

चन्द्रशेखर को कामदेव का वरदान

जब तुमको 'शुक' पोपट माया-छल करके गागलि ऋषि के आश्रम मे ले गया तब तेरी पत्नी चन्द्रवती अपने पूर्व मनोरथ को सिद्ध करने के लिये तथा तेरे राज्य को हड़प कराने के लिये चन्द्रशेखर को बुला कर ले आई थी। बाद मे उसी समय तुम वहां से लौट आये तब उसने अनेक प्रपंच करके तुम्हारे से ठगाई की।

बाद में चन्द्रशेखर ने भक्ति पूर्वक कामदेव की आराधना की। तथा प्रेम के कारण च द्रवती के लिये याचना की। कामदेव ने प्रसन्न होकर उसको अदृश्य होने वाला काजल दिया और कहा कि जब तक मृगध्वज महा० चद्रवती के पुत्र को नहीं देखेगा तब तक तुम इस अञ्जन से अदृश्य रहोगे। जब राजा मृगध्वज चद्रवती के पुत्र को देखेगा तब मैं चद्रवती के पुत्र का वृत्तान्त कह कर अपने स्थान को चला दूंगा, तब वह चद्रशेखर प्रसन्न होकर नेत्रों मे वह अञ्जन लगा करके अदृश्य शरीर होकर चंद्रवती के समीप चला आया और चद्रवता को देव से दिये हुए वर का समाचार कहा, और कहा कि अब क्या करना चाहिये।

तब चद्रवती ने कहा कि मैं गर्भ को गुप्त रूप से रख रही हूं। यदि प्रात काल पुत्र का जन्म हो जायगा तब क्या होगा?'

चद्रशेखर ने उत्तर दिया कि 'उत्पन्न होते ही तुम्हारे पुत्र को मैं गुप्त रीति से लेकर मेरी स्त्री यशामती को दे दूंगा फिर हम दोनो सुख पूर्वक काम सुख मे लीन होकर इसी अंतपुर मे रहेंगे, कोइ मुझको देखेगा भी नहीं।"

ये सब विचार करके तथा यक्ष के प्रभाव से चन्द्रवती के पुत्र को लेकर यशामती को दे दिया, तथा कहा कि 'मृगध्वज की रानी चन्द्रवती का चन्द्राक नाम का यह श्रेष्ठ पुत्र है। इसका धर्म के लिये पुत्रवत् पालन करना।" इस प्रकार कह कर पुत्र

अपनी इष्ट सिद्धि के लिये चन्द्रशेखर अदृश्य विद्या से चन्द्रवती के समीप गुप्त रूप से रहने लगा।

चन्द्राङ्क से यशोमती की काम अभिलाषा

इधर प्रतिदिन अत्यन्त कान्तिमान् बालक को बढते हुए देखकर यशोमती इस प्रकार विचारने लगी कि 'मैं कभी भी अपने पति का मुख नहीं देख सकती हू । इसलिये पालन किये हुए इस शिशु रूपी वृक्ष का ही फल ग्रहण करू।' ये सब बातें अपने मन मे विचार कर यशोमती चन्द्राक से कहने लगी कि 'यदि तुम मेरी ओर देखो तो मैं राज्य के साथ तुम्हारी आज्ञाकारी हो जाऊ गी।'

कामदेव के लिये कहा है कि—"जिसकी आज्ञा, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तथा स्वर्ग के अधिपति इन्द्र भी शिरोधार्य करते हैं। वह उत्तम वीर समस्त ससार को जीतने वाला तथा विषम-बाण वाला कामदेव किस धैर्यवान् व्यक्ति को भी चपल नही करता ?"

यशोमता की इस प्रकार की अनुचित बात सुनकर वज्र से आहत हुए के समान दु खी होकर शीघ्र ही चन्द्राक कहने लगा कि हे माता! तुम इस प्रकार की अनुचित बातें क्यों बोल रही हो। वास्तव मे स्त्रियाँ स्वयं रक्त नहीं होने पर भी चित्त को रक्त (रागयुक्त) कर देती ह। स्निग्ध नहीं होने पर भी चित्त को स्निग्ध कर देती

है। तथा अमूढ (चतुर) होकर चित्त को मूढ़ बना देती हैं।

तब यशोमती कहने लगी कि 'हे बालक! मैं तुम्हारी माता नहीं हूं। तुम्हारी माता मृगध्वज की स्त्री चन्द्रवती है। मेरे तुम्हारे बीच में माता पुत्र का संबंध नहीं है। इसलिये तुम अपने द्वारा मुझको तृप्त करो।'

उसकी बात सुनकर चन्द्रांक अपने मन में विचारने लगा कि अहो! ब्रह्मा ने इस प्रकार की दुष्ट आशय वाली नारियों को क्यों बनाया है। क्योंकि:—

रानी यशोमति का योगिनी होना—

"अच्छे कुल में भी उत्पन्न हुई कामिनी स्त्रियां कुल में कलंक लगाने वाली होती हैं। जैसे सोने की बनाई सांकल भी बन्धन को देने वाली होती है। इसमें कोई संदेह नहीं।*'

"कुलजा हो या सुन्दरी, कुल कलंक की मूल।
बेड़ी सोना की बनी, नारि स्वर्ग प्रति शूल॥"

राजा की पत्नी, गुरू की पत्नी, मित्र की पत्नी, अपनी माता और अपनी पत्नी की माता, ये पांचों माता ही के समान मानी गई हैं। यह स्त्रियों का चरित्र विचार कर तथा उसकी वाणी का अनादर

---

* प्रायं कुलकलंकाय कुलजातापि कामिनी।
शृङ्खला स्वर्ण जाता हि बन्धनाय न संशयः ॥४२८॥

विचार कर तथा उसकी वाणी का अनादर करके चन्द्रांक वहां से अपने माता पिता के चरणों के दर्शन के लिये चल दिया। इस प्रकार यशोमती दोनों ओर से भ्रष्ट होकर हृदयमें विषाद करती हुई संसार के सम्बन्ध का त्याग करके योगिनी होगई।

हे राजन्! मैं वही यशोमती हूँ और मैंने धर्म ध्यान के प्रभाव से अवधिज्ञान को प्राप्त कर लिया है। तुम्हारी स्त्रीका सब समाचार मैं जानती हू। हे मृगध्वज! यक्षने आकाशवाणी द्वारा तुमको अपनी स्त्री का समाचार जानने के लिये मेरे पास भेजा है। इन सब बातों से राजाको अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर योगिनी उसे-शिष्ट एवं मधुरवाणी से कहने लगी कि—

"पुत्र मित्ता हुइ अनेरा, नरह नारि अनेरी,
मोहई मोहियो मूढ, जपइ मुहिआ मोरी मोरी।
अतिह गहना अतिह अपारा संसारसायर खारा।
बूझऊ बूझऊ गोरख बोलइ मारा धम्म विचारा ॥७४४॥८॥
कवण केरा तुरंग हाथी कवण केरी नारी।
नांकि जाता काइ न राखए हाअडइ जोइ विचारी ॥७४६॥८॥
क्रोध परिहरि मान मन करि माया लाभ निवार।
अवर वइरि मनि म आणे केवल आपु तारे ॥७४७॥८॥"

'मनुष्य को पुत्र तथा मित्र अनेक हुआ करते हैं। स्त्रियां भी अनेक होती हैं। ये सब मनुष्य को मोहित कर देते हैं। मोहित हो करके मूर्ख लोग ये सब 'मेरा मेरा' बो[illegible] रहते हैं।

धर्म के सार को विचार करके यह समझना चाहिये कि यह अत्यन्त गहन तथा अपार संसाररूपी सागर खारा है। मधुरता का इसमें अंश भी नहीं है। इसलिये बुद्धिमान् लोग आसक्त नहीं होते हैं, यह गोरखनाथजी का उपदेश है। हाथी, घोड़े, स्त्रियां ये सब किसीके नहीं हैं। क्योंकि नरक जाने के समयमें कोई भी इनमें से रक्षा नहीं करता है। यह सब विचार बराबर करना चाहिये। क्रोधका त्यागकर, मानको हटाकर, माया, लोभ आदि से निवृत्त होकर दूसरोंसे वैरभाव न करके अपनी आत्मा के तारणके लिये सदैव धर्म उद्योग करते रहना चाहिये।'

मंत्रियों के आग्रह से मृगध्वज का नगर में आना—

यह सब उपदेश सुनकर राजा शान्त होगया तथा योगिनी को प्रणाम करके चन्द्रांकके साथ अपने नगरके उद्यानमें आ गया। तथा सम्मुख आये हुए मंत्रियों से कहने लगा कि 'आप लोग शुकराजको राज्य दे देवें। मैं इस समय यहीं रह कर गुरु से व्रत ग्रहण करूंगा। नगरमें जाने से मुनियों को भी दोष लग जाता है। इस लिये मैं नगर में नहीं आऊंगा।'

तब मंत्री लोग कहने लगेकि 'राजन्! एक बार राजभवन को पवित्र करो, क्योंकि जो जितेन्द्रिय नहीं है उनको वनमें भी दोष लगता है' ॐ कहा है कि—

ॐ वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते,
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥ ॥ ७४२॥८

'रागवान् व्यक्तियों को वन में भी दोष लगता है। घर में भी पांच इन्द्रियों को वश करना तप ही कहा गया है। जो निन्दित कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता तथा राग से रहित है उसके लिये घर भी तपोवन है।'

गृहस्थ-अवस्था में ही मृगध्वज राजा को केवल ज्ञान—

मंत्रियोंके इस प्रकार समझाने पर राजा मृगध्वज चन्द्राक के साथ घर आया। उसको देखकर चन्द्रशेखर शीघ्र ही अपने नगरको चल दिया। इसके बाद राजाने उत्तम उत्सव करके शुकराज को राज्य दे दिया तथा सप्त क्षेत्रोंमें द्रव्यका व्यय करता हुआ नगरमें अट्ठाई महोत्सव किया। इसके बाद सब विषय वासनाको त्याग करके प्रातःकालमें व्रत ग्रहण करूंगा, इस प्रकार की भावना हृदयमें करते हुए तथा कर्म समूह का त्याग किये हुए और शुभध्यान में लीन राजा को रात्रिमें समस्त संसार को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। प्रभात में स्वर्गसे देवता लोग आकर उस राजासे कहने लगेकि 'हे राजन्! अब मुनि वेष को धारण करो। हम सब तुम्हारे चरणों की वन्दना करेंगे।' इसलिये ठीक ही कहा है कि 'समता के आलम्बन करने से आधे क्षण में ही सब कर्म नष्ट हो जाते हैं। जिन कर्मों को मनुष्य कोटि जन्मोंमें तीव्र तप करके भी नहीं नष्ट कर सकते,। दान दारिद्रयका नाश करता है। शील दुर्गतिका नाश करता है। बुद्धि अज्ञानका नाश करती है। शुद्ध भावना संसार सेमुक्त करा देती है।

देवता आदि के द्वारा केवलज्ञान का महोत्सव–

इसके बाद राजाने देव प्रार्थना से जब मुनिवेष धारण कर लिया तब देव तथा मनुष्योंने उन केवली मुनिको प्रणाम करके केवलज्ञानकी प्राप्तिका महान् महोत्सव किया, बादमे राजर्षी ने संसाररूप सागरसे पार करने मे नौकाके समान धर्मका उपदेश बहुत मधुर भाषामे दिया। जैसे शरीर में आरोग्य अनित्य है, युवावस्था भी अनित्य है। इसी प्रकार ऐश्वर्य और जीवन भी अनित्य है, तथापि परलोक के साधन में लोग उदासीन भाव रखते हैं, यह मनुष्यों का व्यवहार आश्चर्य कारक है। सूर्य के आगमन और गमन से प्रतिदिन आयु का क्षय होता है। संसार के अनेक कार्यों के बड़े भार से तथा सतत व्यवहार में लगे रहने के कारण समय का ज्ञान नहीं होता है। जन्म, वृद्धावस्था विपत्ति, मरण और दुख ये सब देखकर भी प्राणियों को भय नहीं होता। क्योंकि मोहरूपी प्रमाद की मदिरा का पान करके संसार में प्राणियों को सुख की भ्रांति है। जैसे छोटे बालकों के अंगूठे को अपने मुंह में रखने से स्तन का भ्रम होता है। यह अज्ञान दशा है।

धर्मोपदेश के बाद में हंसराज और चन्द्रांक के साथ कमलमाला ने भी उन राजर्षि के समीप शीघ्र व्रत को ग्रहण किया। तथा आदि से अन्त तक चन्द्रवती का सब दुष्ट वृतान्त जानते हुए भी वे राजर्षि मकरध्वज तथा चन्द्रांक किसी के आगे नहीं बोले।

प्रात कालम व्रत ग्रहण करूगा इस प्रकार का शुभ-भावना हृदयम रखत हुए भरत गजमहलम प्रवश पाश्वाम ही मगशिरा शुभचन्द्र का कवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

पृष्ठ ११३

(मु नि धि सयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ००)
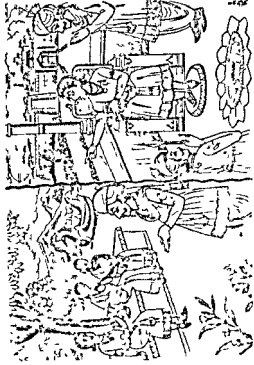
इसके बाद उन राजर्षि रूपने सूर्य संसारके भव्य प्राणी रूपी कमलोंको विकसित करते हुए वहांसे विहार कर दिया । इधर बादमें शुकराज न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा ।

चन्द्रवती पर देवीकी प्रसन्नता—

इधर रानी चन्द्रवती चन्द्रशेखरमें अत्यन्त स्नेह रखती हुई अतीव भक्तिके साथ राज्यकी अधिष्ठात्री देवीकी आराधना करने लगी । इसके बाद वह देवी प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष हो गई और उसको कहने लगी कि 'हे चन्द्रवती ! तुम अपना अभीष्ठ वर मांगो । क्योंकि बिना उपकारके किसीको किसीके साथ प्रेम नहीं होता, अभिष्ठ वस्तु देने पर ही देवता लोग अभीष्ट फल देते हैं ।

तब चन्द्रवतीने कहा कि तुम मुझ पर प्रसन्न होकर यह शुकराज का विशाल राज्य चन्द्रशेखरको दे दो ।

तब देवीने कहा कि शुकराज जब कहीं अन्यत्र जावे तब तुम चन्द्रशेखरको राज्य लेने के लिये बुलाना, उस समय मैं चन्द्रशेखरके शरीरका वर्ण-रूप सब शुकराजके समान बना दूंगी । इसमें सन्देह नहीं । इस प्रकार वर देकर देवी अन्तर्धान हो गई ।

चन्द्रवती प्रसन्न होकर शुकराजके अन्यत्र चले जाने की प्रतीक्षा करने लगी । क्योंकि क्रूर कर्म करने वाला मनुष्य दूसरे

के छिद्र का प्राप्त कर शीघ्र ही उसकी समस्त लक्ष्मीका अपहरण कर लेते हैं। जैसे बिल्ली दूध के अपहरण की ताक में सदा लगी रहती है।

इस प्रकरणमें केवली भगवंत मुनि के द्वारा पूर्व जन्मादि तथा भविष्योंका कथन, और राजा आदि से योगिनी का मिलन, चन्द्रशेखरको कामदेवके द्वारा वरदान मिलना, चन्द्रांक राजकुमार से यशोमति की कामाभिलाषा होना।

बाद में यशोमति का योगिनी होना और सांसारिक माया जाल को देखकर मृगध्वज महाराजाको वैराग्य प्राप्त होना।' गृहस्थ अवस्थामें ही राजाको केवलज्ञान की प्राप्ति, अनन्तर चन्द्रवती रानी से राज्य अधिष्ठात्री देवी की आराधना, तथा देवी का प्रसन्न होना इत्यादि रोचक वर्णन इस प्रकरणमें आया है।

अब पाठक गण आगे के प्रकरणमें राजा शुकराजकी यात्रा गमन आदि का रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़ेंगे।

❀ अडत्तीसवां प्रकरण ❀

माया जाल पसार कर नारी करती खेल।
देखो नाटक आज यह 'चन्द्रा' 'शेखर' मेल॥

पाठक गण! गत प्रकरणमें सूचित महाराजा शुकराजका
[ती]र्थयात्राके लिए प्रस्थान करना, और चन्द्रवतीके द्वारा अपने
[भ]ाई चन्द्रशेखरको शुकराजका रूप धारण करवाना, तथा
[स्]त्रीचरित्र द्वारा कपट पूर्ण नाटक करना, इत्यादि रोमांचकारी
[व]र्णन इस प्रकरणमें आपको मिलेगा।

[श]ुकराज का यात्रा के लिये गमन—

इसके बाद एक दिन शाश्वत् तीर्थों पर के श्री जिनेश्वर
[दे]वों को प्रणाम करने जाने के लिये शुकराज चलने लगा, तब
[पद्]मावती और वायुवेगा उसकी दोनों स्त्रियां कहने लगीं कि 'हम
[द]ोनों भी इस समय आपके साथ साथ यात्रा के लिये चलें
[ज]िससे हम दोनों का भी शाश्वत जिनेश्वरदेवोंके दर्शन व प्रणाम
[क]रने से पुण्य प्राप्त होगा' श्री जिनेश्वर देवोंका जन्म-स्थान,
[द]ीक्षा-स्थान, केवलज्ञान उत्पत्ति स्थान और मोक्ष गमनका
[स्]थान इत्यादि स्थानोंको वन्दन करना उत्तम प्राणियोंका परम
[क]र्तव्य है, क्योंकि शास्त्रमें कहा भी है.—'मैं प्रभुजीके दर्शनके
[ल]िये जिनमन्दिरमें जाऊं।' इस प्रकारका प्रतिदिन ध्यान व
[व]िचार करने वाले को चतुर्थ-भक्त एक उपवास का फल प्राप्त

होता है। जिनमंदिर जाने के लिये खड़ा होता है, तब उसे छट्ठ-दो उपवासका फल प्राप्त होता है और उस मदिरके रास्ते पर चलने से अष्ठम-तीन उपवासका फल प्राप्त होता है और उसी मार्गमें जो श्रद्धा से चलता है तो उसे दशम-चार उपवासका फल प्राप्त होता है। चलते-चलते मंदिरके पास आने से द्वादशम-पाच उपवासका फल प्राप्त होता है और जिनमंदिर में प्रवेश करने से पाक्षिक-पन्द्रह उपवास का फल प्राप्त होता है। जिनमंदिरमें जाकर श्री जिनेश्वर प्रभुके दर्शन करने पर एक मासोपवास का फल प्राप्त होता है, प्रभुजी के दर्शन से कई-गुण अधिक पुण्य जिन पूजा मे होते हैं और कोटिवार जिन पूजा करने से जो पुण्य होता है, इससे कोटि गुणा अधिक पुण्य स्तुति-स्तोत्र पाठ करने से होता है। स्तोत्र से कोटिगुणा पुण्य शुद्धमन से जाप करने मे होता है, जाप से कोटि गुणा पुण्य प्रभुजीका मनमें निर्मल ध्यान करने से होता है, और ध्यान से कोटिगुण पुण्य प्रभुजी के ध्यानमें एकाग्रचित्त हो तन्मय होने से होता है।' इत्यादि शास्त्र कथन बतलाकर शाश्वत तीर्थो की यात्रा और दर्शनों के लिये साथ ले जाने की अत्यंत इच्छा दोनों पत्नियोंने बताई।

इस प्रकार उन दोनोंकी उत्कट इच्छा देखकर शुकराजने मंत्रियों से कहा कि "मैं अभी तीर्थ यात्रा के लिए जाउंगा, इस लिए जब तक मैं यात्रा करके न लौट आऊं तब तक आप लोग प्रयत्नपूर्वक राज्यकी रक्षा करें।"

इस प्रकार मंत्रियोको समझाकर शुकराज दोनों पत्नियोंके साथ विमान पर आरूढ होकर आकाशमार्गसे श्री जिनेश्वर देवोंको प्रणाम करने के लिए चल दिया।

चन्द्रशेखर का शुकराज रूप धारण करना–

इधर चन्द्रवती स्वयं गुप्त रूप से देवता द्वारा शुकरूपधारी चन्द्रशेखरको ले आई तथा देवीके प्रभावसे शुकराज का रूपधारी चन्द्रशेखर रात्रिमें ऊंचे स्वरसे शब्द करता हुआ उठा और कहने लगा "कि कोई विद्याधर मेरी दोनों स्त्रियों को लिये हुए जा रहा है, इसलिये हे लोगों! उसका पीछा शीघ्र करो।'

इस प्रकार की घटना होते देख वहां मंत्रियों ने आकर पूछा कि आप कब आये ?

तब वह कहने लगा कि ' मैं अभी रात्रिमें बिना यात्रा किये आ रहा हूं; कोई दुष्ट विद्याधर मेरी दोनों स्त्रियों को छल से लेकर मेरे देखते ही देखते पूर्वदिशामें चला गया।"

तब मंत्रियों ने कहा कि आपकी आकाशगामिनी विद्याका क्या हुआ ?

तब इसने उत्तर दिया कि उस दुष्ट विद्याधर ने मेरी आकाशगामिनी विद्याका भी हरण कर लिया है।

मंत्रियों ने कहा कि दोनों स्त्रियां के साथ विद्याधर को जाने दीजिये परन्तु आपके शरीरमें तो कुशल है न ?

होता है। जिनमंदिर जाने के लिये खड़ा होता है, तब उसे छट्ठ-दो उपवासका फल प्राप्त होता है और उस मंदिरके रास्ते पर चलने से अष्ठम-तीन उपवासका फल प्राप्त होता है और उसी मार्गमें जो श्रद्धा से चलता है तो उसे दशम-चार उपवासका फल प्राप्त होता है। चलते-चलते मंदिरके पास आने से द्वादशम-पांच उपवासका फल प्राप्त होता है और जिनमंदिर में प्रवेश करने से पाक्षिक-पन्द्रह उपवास का फल प्राप्त होता है। जिनमंदिरमें जाकर श्री जिनेश्वर प्रभुके दर्शन करने पर एक मासोपवास का फल प्राप्त होता है, प्रभुजी के दर्शन से कई-गुणा अधिक पुण्य जिन पूजा में होते हैं और कोटिवार जिन पूजा करने से जो पुण्य होता है, इससे कोटि गुणा अधिक पुण्य स्तुति-स्तोत्र पाठ करने से होता है। स्तोत्र से कोटिगुणा पुण्य शुद्धमन से जाप करने से होता है, जाप से कोटि गुणा पुण्य प्रभुजीका मनमें निर्मल ध्यान करने से होता है, और ध्यान से कोटिगुण पुण्य प्रभुजी के ध्यानमें एकाग्रचित्त हो तन्मय होने से होता है।' इत्यादि शास्त्र कथन बतलाकर शाश्वत तीर्थों की यात्रा और दर्शनों के लिये साथ ले जाने की अत्यन्त इच्छा दोनों पत्नियोंने बताई।

इस प्रकार इन दोनोंकी उत्कट इच्छा देखकर शुकराजने मंत्रियों से कहा कि "मैं अभी तीर्थ यात्रा के लिए जाऊंगा, इस लिए जब तक मैं यात्रा करके न लौट आऊं तब तक आप लोग प्रयत्नपूर्वक राज्यकी रक्षा करें।"

इस प्रकार मन्त्रियाको समझाकर शुकराज दोनों पत्नियोंके साथ विमान पर आरूढ होकर आकाशमार्गसे श्री जिनेश्वर देवोंको प्रणाम करने के लिए चल दिया।

चन्द्रशेखर का शुकराज रूप धारण करना—

इधर चद्रवती स्वय गुप्त रूप से देवता द्वारा शुकरूपधारी चन्द्रशेखरको ले आई तथा देवीके प्रभावसे शुकराज का रूपधारी चन्द्रशेखर रात्रिमें ऊचे स्वरसे शब्द करता हुआ उठा और कहने लगा "कि कोई विद्याधर मेरी दोनों स्त्रियों को लिये हुए जा रहा है, इसलिये हे लोगों! उसका पीछा शीघ्र करो।'

इस प्रकार की घटना होते देख वहा मन्त्रियो ने आकर पूछा कि आप कब आये ?

तब वह कहने लगा कि 'मैं अभी रात्रिमे बिना यात्रा किये आ रहा हू, कोई दुष्ट विद्याधर मेरी दोनो स्त्रियो को छल से लेकर मेरे देखते ही देखत पूर्वदिशामे चला गया।"

तब मन्त्रियोने कहा कि आपकी आकाशगामिनी विद्याका क्या हुआ ?

तब इसने उत्तर दिया कि उस दुष्ट विद्याधर ने मेरी आकाशगामिनी विद्याका भी हरण कर लिया है।

मंत्रियोने कहा कि दोनो स्त्रिया के साथ विद्याधर को जाने दीजिये परन्तु आपके शरीरमें तो कुशल है न ?

राजाने कहा कि मेरा शरीर तो बराबर स्वस्थ है परन्तु दोनों स्त्रियो के बिना मेरा प्राण शीघ्र ही कहीं निकल न जाय।

"धर्म क्रियामें सहाय, कुटुम्ब आपत्तिमें जो अवलम्बन भारी।
मित्र समान जो है विश्वासमें भगिनी हित साधनकारी॥
मात पिता सम व्याधि उपाधिमें, संग पलग में काम दुलारी।
है न त्रिलोक में कोई कहीं पर, भौंतर के हितु गेह की नारी॥"

क्यो कि प्रथमत धर्म को धारण करने वाली, कुटुम्ब पर आपत्ति काल होने पर अवलम्बन देने वाली, विश्वासमें सखी के समान, हित करने में भगिनी, लज्जाशील होने के कारण पुत्रवधू तुल्य, व्याधि और शोकमें माता के समान, शय्या पर होने पर काम देने वाली इस प्रकार की भार्या के समान हितकारी तीनो लोको में और कोई नहीं हो सकता है ?

मन्त्रियो ने कहा कि 'हे स्वामिन्! लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री, ये सब मनुष्यको अनेक होते हैं, परन्तु जीवन बार बार नहीं मिलता। हजारो माता पिता, तथा सैंकोड पुत्र स्त्री इस ससारमें बीत गये हैं। इसलिये इस ससारमे किसी का कोइ भी अपना नहीं है। जो प्रात काल देखनेमें आता है वह मध्याह्नमे देखनेमें नहीं आता। तथा जो मध्याह्न देखने म आता है वह रात्रि में देखनेमे नहीं आता। इस ससार म प्रत्येक पदार्थ अनित्य ही है।'

इस प्रकार मंत्रियोंके समझाने पर वह कपटी चन्द्रशेखर

राज कुल में विश्वास उत्पन्न करके राज्य करने लगा। इसलिये कहा है कि बिना छल-कपट किये कोई किसी के धन का हरण नहीं कर सकता। जैसे बगुला धीरे धीरे चलता हुआ मछलियों को पकड़ लेता है तथा जो अनेक प्रकार की माया रचकर के दूसरों को ठगते हैं वे महा मोह के मित्र होकर स्वर्ग और मोक्ष के सुखों से स्वय ही वंचित रहते हैं।

इसके बाद देवीके प्रभावसे शुकराजरूप धरी वह चन्द्रशेखर सच्चे शुकराज के समान समस्त प्रजा का पालन करने लगा तथा गुप्त रूप से चन्द्रवती के साथ प्रेम करता हुआ वह चन्द्र शेखर माया का घर बन गया।

चारण मुनि की श्री अष्टापदतीर्थ पर धर्म देशना—

इधर शुकराज शाश्वत् श्री जिनेश्वरदेवोंको प्रणाम करता हुआ श्री अष्टापद तीर्थमें गया। वहाँ स्वय चौबीस जिनोंको भक्ति-भाव से प्रणाम किया। तथा वहाँ आकाशचारी चारण मुनि से संसार रूपी समुद्रमें नौका के समान-इस प्रकारकी धर्मदेशनाको सुनने लगा कि "जो मूर्ख इस अत्यन्त अलभ्य मनुष्यत्व को प्राप्त करके प्रयत्न पूर्वक धर्म नहीं करता है वह अत्यन्त कष्ट से प्राप्त चिन्तामणि को प्रमाद करके समुद्र में गिरा देता है तथा कल्प-वृक्ष को काटकर गृह में धतूरे के वृक्ष को लगाता है। चिन्तामणि का त्याग करके काँच के टुकड़े को ग्रहण करता है। अथवा-पर्वत के समान हस्ती को बेचकर गधे को खरीदता है जो प्राप्त

हुई धर्म की सामग्री का परित्याग करके इधर-उधर भोग की ईच्छा से दौड़ते फिरते हैं।" इस प्रकार की धर्म देशना सुनकर तथा मुनि भगवंत एव देवों को प्रणाम करके वहाँ से अपनी स्त्रियों के साथ श्वसुर के घर पर गया। तथा वहा तीन दिन रहकर पुन वहाँ से शुकराज चल दिया। क्योंकि —

"श्वसुर कुल में वास करना स्वर्ग के सम जानिये,
किन्तु तीन या चार दिन ही पाच अति मानिये,
लोभ में फस मिष्ट मधुरों के अधिक दिन जो रहें
वह खरा खर है अधम पशु नीच उसको सब कहे" ❀

"यदि मनुष्य तीन पाच अथवा सात दिन रहे तो श्वसुर के गृह में निवास स्वर्ग तुल्य होता है। परन्तु यदि मिष्टान्न आदि के लोभ से अधिक दिन रह जाय तो सन्मान कम हो जाता है और खिचड़ी आदि साधारण अन्न मिलने लग जाता है। इससे सुसराल में ज्यादा समय तक रहना अनुचित है। यह बुद्धिमानोंका मन्तव्य है। इस तरह विचार कर शुकराज विमानसे शीघ्रता से चलता हुआ उदयाचल पर्वत पर सूर्य के समान अपने नगर के उद्यान में आया।

❀ श्वसुरगृह निवासस्वर्ग तुल्योनराणाम,
यदि वसति दिनानि त्रीणि वा पंच सप्त ।
अथ कथमपि तिष्ठेन्मृष्ट लुब्धा वराको,
निपतति खलु पापे कालिकर्के छिपयुक्तम्, ॥ ८१० ॥

सत्य गुणराज का उद्यान में आगमन—

"दुनिया कहे मैं दो रंगी, पल में पलटी जाऊं;
सुख में जो सोई रहे, वांको दुःखी बनाऊं ॥"

तब खिड़की में बैठा हुआ चन्द्रशेखर उद्यान में आये हुए गुणराज को देखकर अपने मन्त्रियों से कहने लगा कि "जो विद्याधर मेरी स्त्रियों का आकाशगामिनी विद्या सहित हरण कर ले गया था वही मेरा रूप धारण करके बाहर उद्यान में पुन आया है तथा स्त्री को वश करने वाली विद्या से स्त्रियों को भी अपने वश में कर लिया है। इसलिये वे सब इसका ही पक्षपात करती है। अब यह दुष्ट मेरा राज्य ले लेगा।" इसलिये आप लोग इसको इच्छित वस्तु देकर शीघ्र यहां से हटा दो। क्योंकि 'शत्रु को बलवान् समझकर अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिये। परन्तु जो स्वयं बलवान हो तो शरद् ऋतु के चन्द्र के समान शीतलता धारण करना चाहिये। बुद्धि से किया गया कार्य जिस प्रकार शीघ्र सिद्ध होता है, उसी प्रकार से अस्त्र, हाथी, घोड़े, तथा सेना से नहीं होता राजा प्रसन्न होकर नौकर को धन देता है। नौकर इस सन्मान के कारण अपने प्राणों से भी स्वामी का उपकार याने रक्षण करता है। जैसे चक्र का आरा नाभी को धारण करता है, तथा आरा नाभी से स्थिर रहता है। उसी प्रकार का स्वामी और सेवक में परस्पर व्यवहार रहता है।'

इसके बाद बुद्धिरत्न नाम का मन्त्री नगर बाहर के उद्यान में आकर तथा उसको देखकर आश्चर्य चकित होकर मधुर वाणी से कहने लगा कि "हे विद्याधर! मैं आपके सब सामर्थ्य देख लिया है; पूर्व

में आप हमारे स्वामी की पत्नियोंका हरण करके दूर चले गये थे; अब क्या आप मेरे स्वामी का राज्य लेने के लिये आये हो? क्या तुम नहीं जानते कि 'पर स्त्री हरण करने से घोर नरक को देने वाला महा पाप होता है, क्योंकि ऐसा कहा है कि "प्राण को सन्देह में देने वाला अत्यन्त शत्रु भाव का कारण तथा इह लोक और परलोक दोनों जन्म दुःख रूप परस्त्री गमन अवश्य त्याग करना चाहिये।" पर स्त्री गामी पुरुष इहलोक में सर्वस्व हरण, बन्धन, शरीर के अवयवों का छेदन आदि दुखों को प्राप्त करता है तथा प्राण त्याग करने पर परलोक में घोर नरक को प्राप्त करता है। किसी व्यक्ति के प्राण लेने मे मरने वाले को एक क्षण ही दुःख होता है परन्तु किसी के धन का हरण कर लेने से उसको पुत्र पौत्रादि सहित जीवन पर्यन्त दुःख होता है।

उस मत्रीकी इस प्रकारकी बातें सुनकर आश्चर्य चकित होता हुआ शुकराज कहने लगा कि "ये सब उपदेश आप अपने स्वामी को देवें; इस नगरका स्वामी शुकराजमें ही हूँ।"

यह सब सुनकर मत्री पुन: कहने लगा कि 'आप इस समय इस प्रकारकी मिथ्या बातें क्यों बोलते हैं? मृगध्वज राजा का पुत्र शुकराज अभी नगरमें विद्यमान है; इसलिये आप यहांसे शीघ्र दूर चले जाइये, अन्यथा मृत्युको प्राप्त हो जायेंगे, आप कितना ही बोलें परन्तु आपको यहा मानने के लिये कोई तैयार न होगा।'

तब पद्मावती तथा वायुवेग कहने लगी कि 'यही मृगध्वज राजा के पुत्र शुकराज हम दोनों के स्वामी हैं।

मंत्री से परस्पर वार्तालाप—

तब पुनः मंत्री बोला कि 'आप दोनों मिथ्या क्यों बोलती हैं?' किसी ने ठीक ही कहा है कि:—

> "मिथ्या माया मूढता, साहस रहित विवेक।
> निर्दयता अपवित्रता, नारी दोष अनेक॥"

'मिथ्या, कथन, साहस, माया, मूर्खता, विवेकशून्यता, अपवित्रता, निर्दयता ये सब दोष स्त्रियों में स्वभाव से ही रहते हैं। राजा लोग समीप में रहने वाले मनुष्य क विशेष जानता है, चाहे वह विद्या रहित, नीच कुल में ही' उत्पन्न, एवं अपरिचित ही क्यों न रहे क्योंकि राजा; स्त्रिया और लतायें आदि ये सब जो समीप में रहता है उसको लपेट लेते हैं और उसका ही आलम्बन करते हैं। अश्व, शस्त्र, शास्त्र,' वीणा, वाणी, मनुष्य, स्त्री ये सब आश्रित पुरुष के अनुसार ही योग्य अथवा अयोग्य हुआ करते हैं।' 卐

शुकराज द्वारा कर्म की विचित्रता का चिंतन-- -

मन्त्रीकी ये सब बातें सुनकर शुकराज सोचने लगाकि किसीने मेरा स्वरूप धारण करके मेरा राज्य ले लिया है। अब

卐 अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।
पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्त्ययोग्याश्च ॥ ८३३ ॥ स.च॥

क्या करना चाहिये। चन्द्र का बल, ग्रह-बल, पृथ्वी का बल ये सब तब तक ही सहायक होते हैं, तथा तब तक ही सब लोगों का अपना सब अभीष्टसिद्ध होता है, मनुष्य तब तक ही सज्जन रहता है, तथा मन्त्र-तन्त्र आदि का प्रभाव और पुरुषार्थ तब तक ही काम देता है जब तक कि मनुष्यों का पुण्य बलवान रहता है। पुण्य के क्षय हो जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाय करता है।' "ब्रह्मदत्त की अन्धता, भरत राजा का जय, कृष्ण का सर्वनाश, अन्तिम श्री जिनेश्वर देव का नीचकुल में उत्पन्न होना, मल्लीनाथ में स्त्रीत्व, नारद का निर्वाण, चिलातिपुत्र को प्रशम भावना की प्राप्ति आदि इन सब उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि अतुल बलशाली कर्म और पुरुषार्थ स्पर्धा से परस्पर विजय प्राप्त करते हैं।"

"तुलसी रेखा कर्मकी, ललाटमें लिख दीन;
पूर्व जन्म पूण्य पापमें, अखिल जगत अधीन॥"

यदि मैं इस राजा को मारकर बल पूर्वक राज्य लेने लूंगा तो लोग परस्पर अनेक प्रकार से बोलेंगे कि यह दुष्ट मृगध्वज राजा के पुत्रको मारकर राज्य लेकर बैठ गया है लोकापवाद बहुत बलवान होता है। क्योंकि 'भिन्न चित्त में बुद्धि भिन्न भिन्न होती है तथा प्रत्येक कुएह में जल भिन्न भिन्न स्वाद वाला होता है, प्रत्येक देश में विलक्षण आचार होता है, प्रत्येक मुख में भिन्न भिन्न प्रकार की वाणी होती है।'

सारिका शुक सर्प हाथी, सिंह मुख मह बंद हो,
मनुज मुख को बंद करने काम से बहु फंद हो।

उन्मत हाथी, सिंह, दुष्ट सर्प, शुक, सारिका इन सबके मुख को सहज में बन्द किया जा सकता है। परन्तु मनुष्य के मुख को बन्द नहीं कर सकते हैं। इसलिये इस विषय में अब खेद नहीं करना चाहिये। क्योंकि कर्म का परिणाम सबसे अधिक बलवान् होता है। विद्याधर, वासुदेव, चक्रवर्ती, देवेन्द्र, वीतराग कोई भी कर्म की गति से मुक्ति नहीं हो सकते। इसलिये संतोष में रहना ही उत्तम है, "सम्पन्न-अवस्था में हर्षित-गर्वित नहीं होना चाहिये, क्योंकि संपति भोगने से पूर्वकृत पुण्य का क्षय होता है तथा विपत्ति में विषाद भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि उससे पूर्व के पापों का क्षय होता है।" ये सब बातें मन में विचार कर तथा धैर्य धारण करके शुकराज वहां से पत्नी सहित विमान पर आरूढ होकर आकाश मार्ग से चल दिया।

वह बुद्धिनिधि नामका मन्त्री प्रसन्न होकर चन्द्रशेखर के समीप आया और कहने लगा कि 'वह कपटी शुकराज मेरी युक्ति से यहां से भागकर चला गया।'

यह सुनकर कपटी शुकराज वेषधारी चन्द्रशेखर अत्यन्त प्रसन्न होकर तत्काल उस मन्त्री को बीस गांव पुरस्कार में दे दिये, क्योंकि ब्राह्मण भोजन से प्रसन्न होते हैं, मयूर मेघ की गर्जना से प्रसन्न होते हैं, साधु व्यक्ति दूसरों की सम्पति देखकर प्रसन्न होते हैं, दुर्जन व्यक्ति दूसरे की विपत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं।

"विप्र भोजन से खुसी रह, मोर खुस घन गर्जना।
अन्य सम्पति से सुजन सुख, विपति देकर दुर्जना॥"

इधर शुकराज शून्य हृदय होकर आकाश मार्ग से स्थान स्थान में भ्रमण करता हुआ दोनों पत्नियों द्वारा प्रेरित होने पर भी लज्जावश अपने श्वसुर के घर पर नहीं गया। कहा भी है कि:—

"उत्तम व्यक्ति अपने ही गुणों से जगत् में प्रसिद्धि को प्राप्त करते हैं और मध्यम पुरुष पिता के गुणों द्वारा जगत् प्रसिद्ध होते हैं। अपने मामा के गुणों द्वारा प्रसिद्ध होने वाले व्यक्ति अधम कहे जा सकते हैं और अपने श्वसुर के गुणों द्वारा प्रसिद्ध होने वाले व्यक्ति अधम से भी अधम कहे जाते हैं।"卐

इसके बाद प्रसन्न मुखवाला शुकराज कर्म के फल की चिन्ता करता हुआ, घूमते घूमते छै महिनों के बाद सौराष्ट्र देश मे पहुँच गया। "जिसको सम्पत्ति रहने पर हर्ष नहीं हो, विपत्ति में विषाद न हो, रण में धैर्य धारण करने वाला हो, इस प्रकार के तीनों भुवन के तिलक समान पुत्र को कोई विरली माता ही जन्म देती है।"

शुकराज का अपने पिता केवली मुनि से मिलनः—

एक दिन आकाश मार्ग से जाता हुआ अपने विमान को अचानक रूका देखकर शुकराज सोचने लगाकि 'मेरे जलेहुए घावपर यह एक खार और कहां से आ पड़ा ?' जैसे लगे हुए स्थान पर अवश्य करके चोट लगा करती है तथा घर मे धान्य का नाश होने से जठराग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है अर्थात् दुकाल मे

卐 उत्तमाः स्वगुणैः ख्याता मध्यमास्तु पितुर्गुणैः।
अधमाः मातुलैः ख्याता श्वसुरैश्चाधमाधमाः ॥=४१॥=॥

(मु. मि. संयोजित. विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न. २५-

एक दिन आकाशमार्ग से जाता हुआ अपने विमान को अचानक रुका देख कर शुकराज सोचने लगा कि " मर जाते हुए घाव पर यह मार–ख्वार और कहां से आ पड़ा। " पृष्ठ १२८

अधिक मास आता है। आपत्ति आने पर मित्र भी विरोध करते हैं। किसी प्रकार के छिद्र होने पर अनेक अनर्थ होने लगते हैं।

इसके बाद शुकराज नीचे भूमि पर इधर उधर देखता हुआ वन में अपने ज्ञानी पिता को सुवर्ण कमल पर बैठे हुए देखा। तुरन्त ही विमान से उतर कर शुकराज, देव, दानव तथा राजाओं से पूजित हैं चरण कमल जिसके ऐसे अपने पिता मृगध्वज केवलिमुनि को विधि पूर्वक प्रणाम किया तथा श्री केवलीमुनि भगवंत ने उसे धर्म देशना देते फरमाया कि:—

"इस जगत् में धर्म यही सर्व मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है, सर्व दुःखों का औषध जो कोई हो तो सर्व श्रेष्ठ धर्म ही औषध रूप है, और सहायक बलों में धर्म ही श्रेष्ठ बल है। इसीलिये इस जगत् में संसार से पार करने वाला और सभी प्राणियों को शरण करने योग्य एक धर्म ही है। क्रोध मान, माया, लोभ, और दूसरे के दोष का त्याग करना आदि को श्रीजिनेश्वर देवों ने स्वर्ग और मोक्ष को देने वाला धर्म बताया है।"

'उत्तम मनुष्य अपने प्राण जाने पर भी परके दोष को ग्रहण नहीं करते हैं और जीव-हिंसा नहीं करते।' इत्यादि देशना के अन्त मे अश्रुपूर्ण नेत्र होकर शुकराज ने गद्‌गद कंठ से कहा कि मेरे समान रूप धारण करके किसी मनुष्य ने मेरा राज्य ले लिया है।

चन्द्रशेखर और चन्द्रवती के सारे वृतान्त को जानते हुए भी केवलीमुनि भगवत अनर्थ की आशंका से बोले नहीं। तब शुकराज पुनः कहने लगा कि 'हे भगवान् तुम्हारा श्रेष्ठ दर्शन होने पर भी यदि

मेरा राज्य चला जाय तो यह मेरा दुर्भाग्य है।' कहा भी है कि—

"यदि करीर (केर) के वृक्ष मे पत्र नहीं होते है तो इसमे वसंत का क्या दोष है? उल्लूक पक्षी यदि दिन मे नहीं देखता है तो इसमें सूर्य का क्या दोष? चातक के मुख मे यदि वर्षा का जल नहीं पड़ता है तो इसमे मेघ का क्या दोष? पूर्व मे विधाता ने जो ललाट मे लिख दिया है वही प्रमाण है, इसके विपरीत फल नही हो सकता।"卐

श्री विमलाचल महातीर्थ पर पंचपरमेष्ठी महामंत्र का जप.—

शुकराज के द्वारा इस प्रकार अनेक प्रार्थना करने पर श्री मृगध्वज केवली मुनि ने कहाकि 'मोक्ष और सुख का देने वाला श्री विमलाचल नामक महातीर्थ है। इस तीर्थ की गुफा में निरंतर छै: मास तक मंत्रराज पंचपरमेष्ठी का याने नवकार महामंत्र का एकाग्र मनसे स्मरण करो। जिस समय गुफा में महान तेज प्रगट होगा तब शत्रु बिना युद्ध के ही घर चला जायगा।" क्योंकि 'पंच परमेष्ठी नमस्कार मंत्र, शत्रुञ्जय पर्वत, गजेन्द्रपद तीर्थ का जल, ये तीनों त्रिलोक मे अद्वितीय है।'

"मंत्र बिना अक्षर नहीं कोई, मूल मात्र औषध शुभ होई,
हो न अनाथ जगत् यह जानों, योजक जन मिलता नहीं मानो॥"

卐 पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्,
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्,
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः॥८६४॥

जगत मे कोई भी अक्षर बिना मत्र का नहीं है। कोई भी मूल बिना औषध का नहीं है, पृथ्वी अनाथ नहीं है। इन सबकी योजना करने वाले सुज्ञ मनुष्य ही दुर्लभ हैं।

इसके बाद शुकराज केवली मुनिको प्रणाम करके तथा प्रसन्नता पूर्वक विमान पर आरूढ होकर नवकार मन्त्र की साधना करने के लिये श्री महातीर्थ विमलाचल पर चल दिया तथा गुरुदेव द्वारा बताई गई विधि से श्रीपच परमेष्ठी मत्रराज का जप करता हुआ शुकराज ने गुफा मे छै मास वीतने पर अपूर्व तेजके प्रकाश को देखा।

इसके बाद शुकराज अपनी दोनों पत्नियों के साथ विमान मे बैठ प्रसन्नता पूर्वक अपने नगर की ओर चल दिया।

इधर कपटी शुकराज को राज्य की अधिष्ठात्री देवी ने कहा कि "आज से तुम्हारा शुकराज का रूप चला जायगा, और अब तुम्हें चन्द्रशेखर का रूप प्राप्त होगा।"

यह सुनकर चन्द्रशेखर भयभीत होकर शीघ्र नगर से चुपचाप निकल कर, वन में चला गया। इधर अपनी दोनों पत्नियों के साथ विमान में बैठकर शुकराज नगर में आया और अपने राज्य को सभाल लिया।

सब मन्त्रियों से सम्मानित होने पर तथा स्त्री प्राप्ति सबधि समाचार पूछे जाने पर उसने सब समाचार कह सुनाये।

इसके बाद शुकराज अनेक विद्याधरों के साथ सघ का स्वामी होकर श्रीविमलाचल तीर्थ पर श्री ऋषभदेव प्रभु को प्रणाम करने

के लिये उत्सव के साथ चल दिया। स्नात्र पूजा, ध्वजारोहण आदि अनेक शुभ कार्य करके वह संघपति शुकराज प्रसन्नता पूर्वक मन्त्रियों से कहने लगा कि —

'जप कर मन्त्र इसी पर्वत पर, गर्व किया अरिजन के चूर,
इसी हेतु शत्रुञ्जय इसका, नाम हुआ जगमें मशहूर ॥'

इसी पर्वत पर मन्त्रराज नवकार के जप करने से मैंने शत्रु को जीता था। इसलिये इस पर्वत को आज से श्रीशत्रुञ्जय कहो। अर्थात् उसी दिन से इसका नाम तीर्थराज श्री शत्रुञ्जय नाम हो गया।

राजा चन्द्रशेखर की दीक्षा व केवलज्ञान.—

इधर चन्द्रशेखर श्री विमलाचल महातीर्थ पर आकर तथा युगाधीश श्रीआदिनाथप्रभु को प्रणाम पूजा आदि करके अपने मन में विचारने लगा कि 'मैंने जो अनेक प्रकार के दुष्कर्म किये हैं उन पापों से मुझको निश्चय करके नरक में जाना पड़ेगा।" इस प्रकार मन में विचार करने से उसे वैराग्य प्राप्त हुआ और इसी कारण श्री महोदय मुनि से उसने उसी तीर्थ में भाव पूर्वक दीक्षा लेली।

शुकराज श्रीमहोदय मुनि के समीप आकर भक्तिपूर्वक जीवदया मूलक धर्म का श्रवण करने लगा। देशना के अन्त में शुकराज ने उन मुनिश्वर से पूछा कि—"हे मुनीश्वर! छल करके मेरा राज्य किसने ले लिया था ?"

तब महोदय मुनि कहने लगे कि-"हे शुकराज! सुनो इस जन्म से बावन भव पूर्व जीवन में तुम राजा थे तथा उस समय तुमने छल करके जिसका राज्य ले लिया था उसीने इस जन्म में छल करके तुम्हारा राज्य ले लिया था।"

शुकराज ने पूछा कि "मैंने किसका राज्य पूर्व जन्म में ले लिया था?"

तब मुनीश्वर कहने लगे कि-"यह तुम्हारे *मामा राजा* चन्द्रशेखर का राज्य तुमने लिया था।" इसलिये कहा है कि--

"किये कर्म का क्षय नहि होवे, *भोग बिना शत कल्पों में,*
कर्म क्षय के कारण भव में, भोग नियत अति स्वल्पों में।।"

कोटि कल्प बीत जाने पर भी किये हुए कर्मों का क्षय नहीं होता। शुभ या अशुभ जो कर्म पूर्व जन्म में किया जा चुका है उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

यह सुन आश्चर्य चकित होकर शुकराज ने शीघ्र ही उठकर उस श्री चन्द्रशेखर मुनि भगवत को प्रणामादि किया। इसके बाद श्री चद्रशेखर ने अपने किये हुए दुष्ट कर्मों की मन ही मन निन्दा करता हुआ गिरिराज की पावन छाया में अष्ट प्रकार के कर्मों का नाश करने वाले केवलज्ञान को प्राप्त किया।

उनचालिसवां-प्रकरण

"शुद्ध हृदय जन को सदा स्वप्न शकुन फल देत।
भावी सुखदुख सूचना समझ सुजन लेत ॥"

पाठक गण !

गत प्रकरण के अन्दर शुकराज की भाग्य दशा, चन्द्रवती की कपट कला, श्री विमलाचल महातीर्थ पर शुकराज द्वारा पञ्च परमेष्ठी के महामन्त्र का जप, इत्यादि सुन्दर वर्णन आपने पढ़ा है। अब इस प्रकरण में शुकराज की अपने राज्य की प्राप्ति, केवली मुनि भगवत का मिलन, कर्म और उद्योग की बोधदायक चर्चा तथा केवली मुनि द्वारा धन गर्वित वणिक पुत्र की बुद्धि वर्द्धक कथा, इत्यादि वृतांत से पर्याप्त मनोरञ्जन द्वारा ज्ञान प्राप्त करेंगे।

शुकराज को पुत्र प्राप्ति

शुकराज श्री शत्रुञ्जय तीर्थ में उत्सवपूर्वक यात्रा करके पुन अपने नगर में आ पहुँचा। एक दिन उसकी प्रथम पत्नी पद्मावती स्वप्न में चन्द्रमा को अपने मुख में प्रवेश करते हुये देखकर जग गई तथा अत्यन्त प्रसन्न हुई। दान शील आदि का जो भी पवित्र (गर्भावस्था की इच्छा) दोहद उसको हुआ राजा ने प्रसन्न चित से उन सबको पूर्ण किया।

इसके बाद गर्भ समय पूर्ण हो जाने पर रानीने शुभ दिन तथा शुभ मुहूर्त में सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। राजाने इस खुशी में अन्न पान वस्त्र आदि से अपने स्वजनों को सम्मा-

नित करके जन्ममहोत्सव मनाया। उस बालक का नाम 'चन्द्र' रक्खा गया। तथा प्रतिदिन क्रमश बढ़ते हुए उस बालक को पण्डितों से विद्याग्रहण कराई और युवावस्था प्राप्त हो जाने पर सूर नाम के राजा की सुन्दर कन्या से उस चन्द्र का विवाह करा दिया।

एक दिन श्री कमलाचार्य नाम के धर्माचार्य पृथ्वी पर विहार करते २ बहुत साधुओं के साथ उस नगर के उद्यान में पधारे। उन आचार्य देव को आये हुए सुनकर धर्म सुनने की कामना से राजा पत्नी तथा पुत्र के साथ वहा गया और प्रणाम करके उनके चरणो मे विनय पूर्वक बैठ गया।

वहा उसने गुरू चरणों में बैठकर इस प्रकार का उपदेश सुना कि –

"वृथा जिन्दगी मनुज की-धर्म अर्थ बिन काम।
दुर्लभ मानव जन्म में-धर्म सकल सुख धाम॥"

यह मनुष्य जीवन धर्म, अर्थ, और काम के साधने के विना व्यर्थ ही है। इनमें भी धर्म सर्व श्रेष्ठ है, क्योंकि अर्थ और काम की प्राप्ति धर्म से ही होती है। कोटि जन्मों में भी दुष्प्राप्य मनुष्य जन्म आदि सब धर्म सामग्रियों को प्राप्त करके ससार रूपी महान् समुद्र को धर्म रुपी नौका से पार करने का सतत प्रयत्न करना चाहिये। हरेक प्राणी पुरुपार्थ के विना कर्मयोग मात्र से ही धीर वणिक् के समान सुख सम्पति को प्राप्त नहीं करते ?

केवलीमुनि भगवंत द्वारा धीर वणिक् की कथा—

इसके बाद राजाने उस वणिक् की कथा पूछी और वे उस

वणिक् की कथा कहने लगे कि 'विजयपुर नाम के नगर में 'धीर' नामका एक अत्यन्त गरीब वणिक् रहता था। उसकी स्त्री का नाम धीरमती तथा पुत्र का नाम धरण था। वे तीनों जंगलसे लकड़ियां लाकर तथा उन्हें बेचकर उससे अत्यन्त कष्टपूर्वक जीवन निर्वाह करते थे। दरिद्रता के पांच भाई हैं–ऋण, दुर्भाग्य, आलस्य, भूख, सन्तान की अधिकतायें तथा दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और नित्य सेवा वृत्ति से निर्वाह करने वाला ये पांचों व्यक्ति जीवित भी मृतक के ही समान हैं।

कर्म और उद्योग का विवाद—

एक दिन कर्म और उद्योग दोनों आपस में विरोध रूप से परस्पर विवाद करते थे। कर्म कहता 'मैं ही संसार में सब प्राणियों को सुख सम्पत्ति देता हूँ।' उद्यम बोला कि 'मेरे प्रभाव से ही लोगों को सुख सम्पत्ति प्राप्त होती है।'

कर्म ने कहा कि 'मेरी सहायता के बिना तुम अभीष्ट नहीं दे सकते हो।' तुम भी मेरे प्रभाव से ही अभीष्ट को प्राप्त करते हो। जैसे सेवक राजा की सेवा करता है वैसे ही समस्त संसार मेरी सेवा करता है। यदि तुम मेरी सहायता के बिना ही लोगों को ईप्सित दे दो तो इस दरिद्र धीर वणिक् को ईप्सित दो।'

उद्योग ने अमूल्य रत्न का एक मनोहर हार लाकर उसने धीर को दे दिया।

वह प्रसन्न होकर घर जाता हुआ धीर तट पर हार को रखकर जल पीने के लिये सरोवर में गया

शुकराज की रानी कमलावती स्वप्न में चन्द्रमा का अपने मुख में प्रवेश करते देख कर जग गई। पृष्ट १३५

पुत्रजन्म उसका चन्द्रकुमार नाम स्थापना और पालन पोषण. पृष्ट १३५
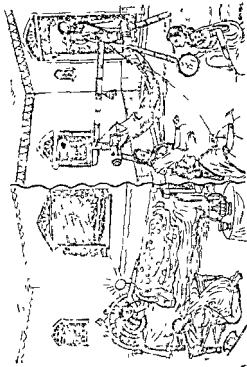
(मु. नि. वि. संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र नं. २८-२९)

इधर पक्षीने उस हार को मांस का टुकडा समझकर वनमें अत्यन्त दूर एक वृक्ष के कोटर में लेजाकर छोड़ दिया। फिर उद्योग उस हार को वहां से पुन: ले आया।

इस प्रकार चार पांच वार धीर को उद्योग का तो देना तथा पक्षी का हरण करना होता रहा। अन्त में उद्योग ने कोटि मूल्य का एक रत्न लाकर वणिक् को दिया और वणिक् ने सरोवर के किनारे रखा तो मत्स्य उस रत्न को भी निगल गया। क्योंकि मनुष्य अदृष्ट से प्रेरित होने के कारण क्या कर सकता है! मनुष्यों को बुद्धि प्रायः कर्म के अनुसार ही प्राप्त होती है।

इसके बाद उद्योग अनेक उपाय करके भी जब कुछ नहीं कर सका तब वह पुन: कर्म से जाकर मिला।

"धीर को सेठ महान् बनाने को लक्ष करोड़ का हार दिया है,
कोशिश की अति उद्यमने पर-काक ने हार को ले ही लिया है;
बाद में कर्म ने कोशिश की फिर भी न सफलता प्राप्त हुई है,
उद्यम कर्म विना न 'निरंजन'-कोई कहीं पर जीव जिया है॥"

तब कर्म ने कहाकि–तुम इस धीर वणिक् को अभी तक धनवान् नहीं बना सके अब मेरा प्रभाव देखो। इसके बाद कर्म ने जो कुछ भी बारम्बार स्वर्ण आदि धीर को दिये वह सब उद्योग के बिना अकस्मात् क्षण मात्र मे ही नष्ट होगया। यह जानकर कर्म सोचने लगाकि मैं व्यर्थ में ही गर्व करता हूँ। क्योंकि उद्योग के बिना कुछ भी नहीं दे सकता हूँ। तब कर्म तथा उद्योग के योग से धीर अतीव धनी होगया। अन्त समय में शुभ ध्यान

करता हुआ धर्म का आचरण करके वह स्वर्ग में गया। कहा भी है:—

"कोई भी किसी प्राणी के सुख तथा दुःख का कर्ता अथवा हर्ता नहीं है। लोग अपने पूर्व कर्मों के ही फल का भोग करते हैं।"卐सद्बुद्धि से यही सोचना चाहिये। कई व्यक्ति श्रेष्ट वचन को सुनकर वणिक् पुत्र के समान अहंकार का त्याग कर सुख को प्राप्त करते हैं।

श्रीकेवलीमुनि ने धन गर्वित वणिक्-पुत्र की कथा सुनाई:-

श्रीपुर में धनद नामक एक श्रेष्ठी था उसकी स्त्री का नाम धनवती था। उसके रूपलावण्य से सुन्दर एक पुत्र था उसका नाम लक्ष्मीधर था। जलमार्ग तथा स्थल मार्ग से बहुत से वणिक् पुत्र धन का उपार्जन करने के लिये चारों दिशाओं में जाते थे। परंतु लक्ष्मीधर को धनदने अच्छे २ पंडितों के समीप खूब पढाया। वह शिक्षित होने पर वह सदा देवता और गुरु की आराधना नम्रता पूर्वक करने लगा, जैसाकि शोक तथा संताप दायक अनेक पुत्रों के उत्पन्न होनेसे क्या ? कुल का तो अवलम्बभूत वह एक ही पुत्र श्रेष्ट है जिससे कुल प्रसिद्ध हो। जैसे वन को एक ही वृक्ष अपने पुष्पों की सुगंध से सुगंधित कर देता है उसी प्रकार सुपुत्र कुल को प्रसिद्ध कर देता है।

इसके बाद क्रमशः उस धनद की लक्ष्मी भाग्य संयोग से नष्ट हो गई। तथा उसी का चन्द्र नामक पुत्र धनवान् हो गया।

卐 सुखदुःखानां कर्ता हर्ता च न कोपि कस्यचिज्जन्तो।
इति चिन्तय सद्बुद्धया पुरा कृतं भुज्यते कर्म ॥६२७॥म॥

क्योंकि 'जब कुमुद समूह शोभा से रहित होते हैं तब कमल समूह शोभायुक्त होते हैं । उलूक हर्ष का त्याग करता है, तब चन्द्र-वाक् प्रसन्न होता है; सूर्य उदय होता है तब चन्द्र अस्त होता है इस प्रकार एक ही समय में भाग्य संयोग से भिन्न भिन्न व्यक्तियों में भिन्न भिन्न कर्म का परिणाम होता है ।'

चन्द्रने अपने भीम नामके पुत्र का लक्ष्मीपुर मे धीर नामक श्रेष्ठी की कन्या चन्द्रवती से विवाह कराया । तथा धीर श्रेष्ठी ने दीवाली के पर्व में दीपावली क्रीड़ा के लिये जामता-भीमको बुलाने के लिये अपने दूत को भेजा । तथा भीम आभूषणोंको धारण करके अपने समान चार कुमारों के साथ ले जाता हुआ श्रेष्ठी पुत्र लक्ष्मीधर को बुलाने के लिये आया । परन्तु लक्ष्मीधर उत्तम वेष भूषा के अभाव से साथमें जाना नहीं चाहता था । किन्तु भीम ने अत्यन्त आग्रह करके उसको भी साथ ले लिया तथा अतीव प्रसन्नता पूर्वक अपने मित्रों सहित श्वसुर के घर पहुचा ।

यहा श्वसुर ने भक्ति पूर्वक उत्तम अन्न पान पक्वान्न आदि देकर उनके मित्रों के साथ अपने जामाता को भी सम्मानित किया ।

वहा वणिक पुत्र भीम अपने मित्र श्रेष्ठी पुत्र लक्ष्मीधर को समय समय पर कार्य करने के लिये कहता था । एक समय उस वणिक पुत्र लक्ष्मीधर को पानी लाने के लिये भेजा । जब वह श्रेष्ठी पुत्र अपने मित्र की आज्ञानुसार पानी लाने को चला तब पीछे से फटे वस्त्र देखकर वह वणिक पुत्र भीम अपने मित्रों के साथ २ हंसने लगा । उन लोगों की हंसी सुनकर वह श्रेष्ठि पुत्र

लक्ष्मीधर पीछे लौट कर और अन्योक्ति से उन लोगों को कहने लगा कि:—

"विपतिमान को क्यों हंसते हो—रे धन मद से मूढ़ कुलोक,
लक्ष्मी नहीं स्थिर है जगमें—यह देती है सबको शोक;
हँसना नहीं किसी को चहिये—देख देख अरहट के गेर,
छन में भरता छन में खाली—कभी नहीं करना अन्धेर।"

"हे धन के मद से अन्धमूढ़! आपत्ति में पड़े हुए को देख-कर क्या हंसते हो? लक्ष्मी कभी भी कहीं स्थिर रही है? अरठ (जलयन्त्र) के चक्र में नहीं देखते हो?' कि सब घेड़े बार बार पानी भरती खाली करती हैं।"卐 श्रेष्ठीपुत्र की इस प्रकार की वाणी सुनकर वह वणिक् पुत्र गर्व छोड़कर अपने निर्धन मित्र को वस्त्र और आभूषण देकर सम्मानित करके क्षमा माँगने लगा। तथा उसे पूर्ण धन देकर उस श्रेष्ठि पुत्र को अपने समान धनवान बना दिया। इसलिये कहा है कि सज्जन व्यक्ति अत्यन्त कुपित होने पर भी संयोग प्राप्त करके सरल हो जाते हैं, परन्तु नीच व्यक्ति नहीं! जैसे अत्यन्त कठिन सुवर्ण के द्रवित करने का उपाय तो है, परन्तु तृणको द्रवित करने का कोई भी उपाय नहीं है।

卐"आपद्गतं हससि किं द्रविणान्धमूढ़,
　　लक्ष्मीः स्थिरा भवति नैव कदापि कस्य।
यत्किं न पश्यसि घटीर्जलयन्त्रचक्रे,
　　रिक्ता भवन्ति भरिताः पुनरेव रिक्ताः ॥६४॥॥"

श्री केवलीमुनि द्वारा अरिमर्दन राजा की कथा—

इस प्रकार उत्तम प्रकृति के मनुष्य दूसरों से भी हित वाणी सुनकर शीघ्र ही उत्तम मार्ग को ग्रहण कर लेते हैं। राजा अरिमर्दन के समान लोग धर्म के प्रभाव से अपने अभिलाषित सुख सम्पति को शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं। इसी भरत क्षेत्र में पूर्व समय में स्वर्णपुर नाम का एक नगर था। जो गगनचुम्बी श्री जिनेश्वरदेवों के मंदिरों के समूह से शोभायमान था। उस नगर में अरिमर्दन नाम के राजा थे। उस न्याय परायण राजा को गुणशील आदि रत्नों की खानि लक्ष्मीवती नाम की स्त्री थी। तथा उसको मतिसार नाम का नीति निपुण एक वृद्ध मन्त्री था। जो बराबर राजा का मनोरञ्जन करता रहता था जैसे कि—

"गुरु भूप-मन्त्री वैद्य साधु-सन्त बूढ़ा ही लसे,
मल्ल गायक नृत्य गणिका-विन जवानी ना लसे॥"

वृद्धावस्था राजा, अमात्य, वैद्य, साधु, इन लोगों को सुशोभित करती है। परन्तु वैश्या मल्ल, गायक तथा सेवक लोगों को वही वृद्धावस्था तिरस्कृत करती है।

एक दिन राजा स्वप्न में उत्तम विमान, वन, प्रासाद, सरोवर आदि से सुशोभित स्वर्ग को देखकर जागृत हुआ और अपने मन में सोचने लगा कि 'यदि इस स्वर्ग के समान मेरा नगर न हुआ तो मेरा जन्म निष्फल ही व्यतीत होगा।'

प्रातः काल राजा का मुख उदासीन देखकर मंत्री ने पूछा कि-'हे राजन्! आपको क्या चिन्ता है? वह मुझको कहो।'

राजा ने कहा कि 'मैं अभी कुछ भी नहीं कह सकता हूं।'

मंत्री ने कहा कि–'हे राजन् ! यदि कोई दुःसाध्य बात भी हो तो मुझको कहदो मैं उसका उपाय करूंगा।'

राजा कहने लगा कि 'आज मैंने स्वप्न में स्वर्ग देखा है इसलिये द्रव्य का व्यय करके मेरे नगर को स्वर्ग के समान बनाओ। तब मन्त्री ने सूर्यकान्तमणि, चन्द्रकान्त मणि, स्फाटिकरत्न, मरकतमणि आदि के समूहों से सब प्रासादों को सुन्दर बनवाया। क्योंकि वेमंत्री शिष्य, सेवक, पुत्र स्त्री, धन्य हैं जो राजा, गुरु, स्वामी, पिता, पति की आज्ञा का पालन हर्षित होकर करते हैं। उस मन्त्री ने राजा के सात मंजिल के प्रासाद के आगे सुवर्ण का घर और मयूर आदि से शोभायमान तोरण बनवाया।

एक दिन झरोखे पर बैठ कर नगर की शोभा देखता हुआ वह राजा अपनी स्त्री से कहने लगा कि—'हे प्रिय ! इस प्रकार का नगर पृथ्वी पर कहीं नहीं है।' क्योंकि अपने मन में सब कोई अभिमान करते हैं। जैसे टिट्टिभ नामका पक्षी आकाश के गिरने के भय से अपने पांव ऊंचे करके सोता है।

राजाकी बात सुनकर तोरण पर बैठी हुई शुकीने शुक पोपट से कहा कि–'हे शुक ! इस प्रकार का रमणीय नगर पृथ्वी पर अन्यत्र तुमने कहीं देखा है।'

तब शुकने कहा कि–'हे प्रिय ! श्रेष्ठ रत्नों के प्रासादों से

तथा स्वर्ग से भी स्पर्द्धा करने वाली, शोभा से युक्त, रत्नकेतुपुर नामका एक नगर है। वहां रत्नचन्द्र नाम के राजा हैं। उनकी स्त्री का नाम रत्नवती है। उनके अत्यन्त सुन्दर और सौभाग्य वाली लक्ष्मीवती नामकी कन्या है। उन चारों के आगे यह नगर तथा यहाँ का राजा आदि उसी प्रकार के हैं जैसे सुवर्ण के आगे अग्नि। क्योंकि जल मे और वृक्ष मे, पृथ्वी में और पर्वत में, काष्ट में और वस्त्र मे, स्त्री मे और पुरुष मे, नगर मे और सुमेरू पर्वत में, महान् अन्तर है। इसी प्रकार इन दोनों नगरों में भी महान् अन्तर है। इसलिये यह राजा अपने नगर को देखकर व्यर्थ में ही गर्व करता है।'

"उत्तम व्यक्तियों को कहीं भी गर्व करना उचित नहीं है। जो मनुष्य जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, तपस्या, शास्त्र इन आठों का अभिमान करता है. तो उसे ये सब चीजें दूसरे जन्म में हीन हो जाती हैं।'

यह सुनकर राजा जब उस शुक के समीप पहुँचा, तब तक वे शुकी और शुक राजा की दृष्टि से उड़कर अगोचर हो गये। तब राजा विचारने लगा कि मैंने इतना द्रव्य व्यय करके इस नगर को सुन्दर बनवाया तो भी ये शुक और शुकी इस प्रकार बोलकर क्यों चले गये ? इस प्रकार विचार करता हुआ राजा उदास हो गया। मन्त्रियों ने राजा को उदास देखकर इस का कारण पूछा। तब राजा ने सब वृतान्त कह सुनाया।

इसके बाद राजा ने रत्नकेतुपुर नगर और राजा रत्नचन्द्र को देखने के लिए सब दिशाओं में अपने नौजि सेवकों को भेजे।

सेवक लोग सब दिशाओं में भ्रमण कर लेने पर भी, रत्नकेतुपुर का पता नहीं पाने से उदासीन मुख होकर राजा के समीप लौट आये और कहने लगे कि—'हे राजन् ! पृथ्वी में रत्नकेतुपुर नगर आदि का कहीं भी पता नहीं है।'

तब राजा ने मन्त्री से कहा कि—'हे मन्त्रिन् ! अब मेरी मृत्यु निकट आगई है। यदि इस नगर का पता प्राप्त न हुआ तो मेरे लिये अग्नि की ही शरण है।'

तब मन्त्री कहने लगा कि—'हे राजन् ! कुछ रोज तक और प्रतीक्षा कीजिये। यदि मैं पृथ्वी में भ्रमण करके छः मास के अन्दर में उस नगर का समाचार नहीं ला सकूं तो आप प्राणत्याग देना।'

इस पर राजा ने कहा कि—'मैं अब नहीं रह सकता हूँ।' तब मन्त्रियों ने समझाया कि किसी कार्य में शीघ्रता करना अच्छा नहीं होता। ऐसा कहा भी है कि—'सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि अविवेक परम आपत्ति का कारण होता है। विचार कर कार्य करने वाले को, गुण की आसक्त सम्पत्ति स्वयं ही प्राप्त हो जाया करती है।'

इस प्रकार समझाने पर भी जब राजा ने अपने दुराग्रह को

नहीं छोड़ा। तब मन्त्री ने कहा कि-'हे राजन्! सज्जन व्यक्ति जो कुछ कहते हैं, वह सब प्राणियों के लिये निश्चय रूपेण शुभकारक होता है। जैसे प्रत्येक स्थान में भीम नाम के वणिक् को सुख की प्राप्ति हुई।'

भीम वणिक् की कथा—

श्रीपुर में धीधन नामका एक धनाढ्य श्रेष्ठी था। उसके दूकान में प्रतिदिन अनेक प्रकार की बुद्धि लोगों को मिला करती थी। एक दिन रमापुर से भीम नामका वणिक् प्रयाण करते करते श्रीपुर आया। उस नगर में घूमते घूमते वह धीधन की दूकान में जा पहुँचा। भीम ने वहां जाकर पूछा कि-'हे श्रेष्ठिन्! तुम्हारी दुकान में क्या क्या चीजें बीका करती हैं?' श्रेष्ठी ने कहा कि 'यहां अच्छी अच्छी बुद्धि मिलती है। किराना चीजें यहाँ नहीं बिकती।' चार सौ दाम लेकर श्रेष्ठी ने उसको चार बुद्धियाँ दे दी। प्रथम-चार व्यक्ति जो कहें वह करना, द्वितीय सरोवर के घाट पर स्नान नहीं करना, तृतीय एकाकी मार्ग में नहीं जाना, चतुर्थ-गुप्तवात स्त्री से नहीं कहना। यदि किसी कार्य में बुद्धि न चले तो शीघ्र मेरे पास चले आना।

इस प्रकार चार बुद्धिया लेकर भीम उस नगर से चल दिया। घूमते घूमते भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह चन्द्रपुरी में जा पहुचा और उन बुद्धियों का स्मरण करता हुआ, वह किसी देव मन्दिर में जाकर रातको सो गया।

इधर कोई परदेशी उस नगर में आकर किसी श्रेष्ठी के हाट में, रात्रि में, निर्भय होकर सो गया। परन्तु अकस्मात् शूलरोग हो जाने के कारण वह परदेशी वहां मर गया। प्रातःकाल उस हाट का स्वामी अपने घर से आया और वहां किसी मरे हुए आदमी को देखकर सोचने लगा कि 'इसको यहाँ से कौन हटायेगा ?' तब वहां अनेकों आदमी एकत्रित हो गये और कहने लगे कि 'इसको शीघ्र बाजार से हटाओ।' इस पर हाट का स्वामी कहने लगा कि 'इसकी ज्ञाति मैं नहीं जानता हूं अतः मैं इसका स्पर्श कैसे करूं ?'

तब महाजनों ने कहा कि 'किसी गरीब को भोजन आदि कुछ देदो तो वह इस मृतक को हाट से खींचकर बाहर कर देगा।' तब सब कोई उस दुकान के मालिक के साथ देवमन्दिर में गये। वहां भीम को देखकर उन लोगों ने कहा कि–'दुकान से एक मृतक मनुष्य को खींचकर तुम बाहर करदो। तुमको इस दुकान का मालिक आज खाने के लिये अच्छा भोजन देगा।'

तब वह भीम उन पंचलोगों की बात मानकर, उस मृतक को रस्सी से बांध कर, श्मशान में खींचकर फेंकने गया। वहां उस मृतक के वस्त्र के अंचल में चार दिव्य रत्नों को देखा। भीम उन चारों रत्नों को लेकर, सरोवर के कोण में स्नान करने के लिये जाने लगा। जाते समय उसको द्वितीय बुद्धि का स्मरण हो आया और वह घाट से हटकर दूसरे स्थान में स्नान करके श्रेष्ठी के घर पहुंचा। जब भोजन करने के लिये बैठा तब सहसा रत्नों का स्मरण हो

जाने से, वह वहा से आकर स्नान करने के स्थान में विस्मृत हुए रत्नों को लेकर, पूर्व में खरीदी हुई बुद्धि की प्रशसा करने लगा। रत्न मिल जाने से प्रसन्न होकर पुन श्रेष्ठी के घर पर गया। तथा भोजन करके नगर मे नाना प्रकार के कौतुकों को देखने लगा।

"राहगीर को अवश्य चाहिये, छोटा सा भी साथी।
होवे क्यों न महान व्यक्ति वह, तोभी चहिये साथी॥
देख लीजिये नेवले ने भी, श्री भीम का उपकार किया।
प्राण बचा तब उस दिन से वह, मिलकर जाना मान लिया॥"

इसकबाद एकाकी नहीं जाना इस तृतीय बुद्धि का स्मरण करके, किसी साथी को प्राप्त करने के लिये भीम ने तलाश की किन्तु कोई साथी न मिला, तो आजु बाजु तलाश करनेपर एक नेवला (नौलिया) दिखाई दिया। उसे पकड़ कर अपने साथ ले लिया। कारण कि प्रथम और दूसरी बुद्धि के फल स्वरूप ही चार रत्न सरोवर क कोण में मिल गये तो उस धीयन श्रेष्ठी की बुद्धि पर उसे अति विश्वास उत्पन्न हो गया। प्रत्यक्ष फल मिलने पर नास्तिक को भी आस्था उत्पन्न हो जाती है।

उस नेवले को लेकर भीम कई गाँव-नगर आदि देखता हुआ, ग्रिष्म ऋतु होने के कारण, मध्याह्न समय मे वन में किसी स्थान पर खेलते हुए नकुल को छोड़कर स्वय एक वृक्ष की छाया में सो गया। इधर एक सर्प वृक्ष क कोटर से निकला और जैसे ही वह

भीम को काटने लगा कि उस नकुल ने, क्रोध से क्षण मात्र में उसके अनेक खण्ड कर दिये। भीम जब सोकर उठा तब नकुल से खण्डित हुए सर्प को देखकर, अपने लिये हितकारक बुद्धि की भी अत्यन्त प्रशंसा करने लगा।

इसके बाद घर जाकर हरपुर नाम के गांव में ही श्रेष्ठी रूपवती नामकी सुन्दर कन्या से विवाह करके सुखपूर्वक रहने लगा। स्वर्ण द्वीप में समुद्र मार्ग से जाकर बहुत धन का उपार्जन किया। और बोनेपर उसी समय फल देने वाला ककड़ी का बीज भी प्राप्त किये। पश्चात् वहां से अपने घर पर आकर नित्य ककड़ी का शीघ्र फल देने वाले बीज जोता था। और उसका फल अपनी स्त्री को देता था।

एक दिन उसकी स्त्री ने पूछा कि, तुम नित्य ककड़ी का फल कहां से लाते हो? तब भीमने सब सही समाचार उसे सुना दिये।

भीम की रूपवती स्त्री पूर्व में श्रीदत्त नाम के श्रेष्ठी से प्रेम सम्बन्ध होने के कारण, प्रयत्न करके उसकेयहाँ जानेकी इच्छा करती हुई भी कुछ दिनों तक, अनुकूल स्थिति की राह देखती हुई, भीम के घर में रही। एक दिन रूपवती ने श्रीदत्त से कहा कि 'मैं तुम्हारे घर आना चाहती हूं' तब श्रीदत्त ने कहा कि 'यदि तुम मेरे घर में आना चाहती हो तो भीम के यहां जो तत्काल फल देने वाले ककड़ी के बीज हैं, उनको अग्नि में पकादो जिससे वे उगने न पावें।

क्योंकि यदि छल करके तुम मेरे घर नहीं आओगी तो राजा मेरे सर्वस्व का हरण कर लेगा।" तव रूपवती ने कहा कि "मैं तुम्हारे कहने के अनुसार कार्य अवश्य करूँगी।"

"पर पुरुषों के सगम कारण, कुल्टा क्या न किया करती।
मात पिता, पति पुत्रों के भी, प्राण हरण से ना डरती॥"

इसके बाद श्रीदत्त श्रेष्ठी राजा की सभा मे आकर बैठा। उसी समय भीम भी राजा से मिलने के लिये आया। तव श्रीदत्त श्रेष्ठी ने कहा कि "अभी किसी के घर मे तत्काल फल देने वाला बीज नहीं देखा जाता है?"

तव भीम ने अभिमानपूर्वक उत्तर दिया कि--"ऐसा न बोलो। मेरे घर मे तत्काल फल देने वाले ककडी के वीज हैं।"

श्रीदत्त ने कहाकि--"मनुष्य को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिये। यदि तुम्हारे घर मे इस प्रकार के वीज होंतो, तुम मेरा सब धन ले लेना और यदि उस प्रकार के बीज तुम्हारे घर मे नहीं होंगे तो, मैं तुम्हारे घर मे जिस वस्तु पर हाथ दूगा वह तत्काल ही ले लूगा।"

तव भीम ने घर से वीज लाकर राजा के आगे मे उसको वोये। परन्तु तत्काल फल नहीं आये। इस पर भीम अपनी हार मान गया।

तव वह श्रीदत्त वोला कि "मैं शीघ्र ही तेरे घर मे जाता हू और

द्विपद आदि जो भी सुन्दर वस्तु मे मेरी इच्छा होगा उसे मैं ले लूंगा।"

उसके ऐसे कथन पर भीम ने मनही मन सोचा कि इसकी इच्छा मेरी गृहिणी(स्त्री)लेने की है। ऐसा समझकर वह भीम शिघ्र बुद्धि देने वाले धीधन श्रेष्ठी के समीप गया और उसे सब समाचार कह सुनाया। यदि वार्ता में हार जाने के कारण गृहिणी दूसरे के घर में जाय तो बुद्धिमान् व्यक्ति अशोभित हो जाता है।

तब श्रेष्टी ने कहाकि 'तुम अपनी पत्नी सहित अच्छी अच्छी वस्तुओं को ऊपरले मंजिलमे ले जाना और सिढ़ी लगाकर कहना कि तुम सिढ़ी द्वारा उपर चढ़कर, अपनी इच्छा अनुसार वस्तु लेलो। इसके बाद जब वह ऊपर चढ़ने के समय मे सिढी पर हाथ देवे, तब तुम उससे स्पष्ट कहना कि 'इस सिढी को हाथ से स्पर्श करने के कारण इसको ही लेलो।'

इस प्रकार धीधन से बुद्धि लेकर भीम घर पर आकर उस धीधन के कथनानुसार सब काम कर लिया। ठीक समय श्रीदत्त भी वहां आपहुचा। गृह के ऊपर के मालमे बैठी हुई भीम की कुल्टा पत्नी रूपवती, श्रीदत्त को अपने रहने का स्थान बतलाने लगी। रूपवती को सकेत करते हुए देखकर, भीम अपनी पत्नी का सब दुश्चरित्र जान गया। अर्थात् वह समझ गया कि "यह कुल्टा स्वयं श्रीदत्त के यहां जाना चाहती है।"

जब वह श्रीदत्त सिढी पर हाथ रखकर ऊपर चढने लगा

तब भीमने कह दिया कि "तुमने हाथ से सीढी का स्पर्श कर लिया है इसलिये यह सिढी लेकर अपने घर जाओ।' इस प्रकार छलित होकर श्रीदत्त किंकर्तव्यमूढ (असमजस) हो गया। इधर भीमने रूपवती को भी व्यभिचारिणी समझकर घर से बाहर निकाल दी तथा विनय, शील सम्पन्न दूसरी स्त्री से उत्सव पूर्वक विवाह कर लिया। क्योंकिः-नन्द मन्त्री चाणक्यने ठीक कहा है--

"छोड़ो धर्म दया से हीन,तजो गुरू जो क्रिया विहीन
कुल्टा घरनी से मुख मोड़,प्रेम रहित भाई को छोड़ ॥२५॥"卐

"दया से रहित धर्म का त्याग कर देना चाहिये, क्रिया से हीन गुरु का त्याग कर देना चाहिये, दुश्चारिणी स्त्री का त्याग कर देना चाहिये। तथा स्नेह हीन बान्धवों का त्याग कर देना चाहिये।' इसी प्रकार भीमके समान, जो मनुष्य श्रेष्ट व्यक्तियों के वाक्य को स्वीकार करता है, उसका सब मनोरथ सिद्ध हो जाता है। इसमें तनिक भी सशय नहीं है।

पाठक गण! आपने इस प्रकरण में भीम के द्वारा ली गई चारों बुद्धियों की अपूर्व कथायें आदि पढकर आनन्द प्राप्त किया होगा। अब आगे के प्रकरण मे आप रत्न केतुपुर की रोचक कहानी पढ़कर आनन्द प्राप्त करें।

卐 त्यजेद् धर्मं दयाहीनं, क्रियाहीनं गुरुं त्यजेत्।
दुश्चारिणीं त्यजेद् भार्यां निःस्नेहान् बान्धवान् त्यजेत्॥१०३६॥=

प्रकरण-चालिसवां

"राग द्वेष जाकु नहीं, ताकु काल न खाय।
काल जीत जग मे रहो, एहज मुक्ति उपाय॥"

पाठक गण! आपने गत प्रकरण मे महाराजा अरिमर्दन का स्वप्न मे स्वर्ग देखना शुकराज, राजा व सभाजनों के आगे अरिमर्दन की कथा का कहना, तथा उसी कथा के अन्तर्गत भीम वणिक द्वारा खरीदी गई चार बुद्धियों की विशेषताओं का तथा संसार के कपटी जनों का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। अब आप इस प्रकरण मे अरिमर्दन द्वारा मन्त्री की सहायता से रत्नकेतुपुर को जाना तथा उसका कन्यारूप धारण कर वहाँ की राजकुमारी सौभाग्यवती से नर द्वेषी होने का कारण पूछना और उसका कारण बताना तथा राजा अरिमदन द्वारा मेंढी से आकाशगामि शैया को पाने की कथा जानना और अपनी सेना सहित अरिमर्दन का रत्नकेतुपुर पहुँचकर वहाँ के राजा रत्नकेतु से मिलना और नरी द्वेष का कारण बताना तथा रत्नावती के साथ अरिमदन का विवाह होना आदि रोचक कथाएँ आप इस प्रकरण मे पढ़ेंगे

मन्त्री द्वारा रत्नकेतुपुर नगर ढूँढने के लिये जाना—

इस प्रकार समझाने पर राजा अरिमर्दन ने तीन मास की अवधि मन्त्री को दी। वह मन्त्री रत्नकेतुपुर तथा वहाके राजा आदि का पता लगाने के लिये वहा से चल दिया। बहुत से देश, नगर

ग्राम, पर्वत, वन आदि मे भ्रमण करता हुआ, वह मन्त्री खिन्न हो रत्नवती नामके नगर में पहुंचा। वहां जिनालय में जाकर श्री ऋषभ जिनेश्वर की स्तुति आदि करके 'मेही' नामके कन्दोई की स्त्री के घर में भोजन के लिये बैठा।

मन्त्री का उदासीन मुख देखकर कन्दोई मेही की स्त्री बोली कि तुम्हारा मुख उदास क्यों है? अपना दुःख मुझ को कहो।

तब मन्त्री ने राजा विषयक अपना सब कार्य कह सुनाया।

मेही ने कहाकि तुम स्वस्थ हो जाओ, तुम्हारा सब इष्ट सिद्ध हो जायगा। यदि रत्नकेतुपुर जाने की तुम्हारी इच्छा हो तो राजा को कार्य सिद्धि के लिये यहां ले आओ।'

तब मन्त्री प्रसन्न होकर अपने नगर मे आया। और राजा से कार्य शुद्धि करने का सब समचार कह सुनाया। तब राजा प्रसन्न होकर सवालाख मूल्य का द्रव्य लेकर मन्त्री के साथ रत्नवतीपुरी मे पहुंच, और मेही से मिला। इसके बाद उसके यहां सन्तोष पूर्वक भोजन आदि किया।

इसके बाद मेही ने कहाकि "वह रत्नकेतु नगर यहां से तीन सौ योजन है। उस नगर के राजा की सौभाग्य सुन्दरी नामकी कन्या मनुष्य से द्वेष करने वाली है।"

राजा ने कहाकि "वहां जाने की मेरी इच्छा है इसलिये मुझको वहां ले चलो।"

मेही ने कहाकि "यदि वहां शीघ्र जाने की तुम्हारी इच्छा हो तो मन्त्रीश्वर के साथ इस शय्या पर बैठ जाओ।"

इसके बाद शय्या पर बैठा हुआ राजा, मन्त्री के साथ तत्काल ही मेही की आकाश गामी विद्या द्वारा रत्नकेतुपुर के बाहर वाले उद्यान में पहुँचा दिया गया।

इसके बाद समुद्र पार करने पर मेही ने राजा से कहाकि "यही वह नगर है। मैं तो पीछी लौट जाऊँगी. तुम अपना कार्य सिद्ध करो।"

तब राजा ने कहाकि "मुझको आकाश गामी विद्या नहीं आती है तो फिर मैं अपने नगर को वापस कैसे पहुंच सकूंगा ?"

तब मेही ने कहाकि "आप दोनों इस नगर के प्रासादों में सौभाग्य सुन्दरी को देखें। मैं अपने घर जाकर आज से ग्यारहवें दिन में इस वन में, यहीं पर वापस आऊँगी।

रत्नकेतुपुर में अरिमर्दन राजा और मन्त्री द्वारा वेश परिवर्तन—

इस प्रकार कहकर मेही चली गई पश्चात् राजा रूप परिवर्तन शील विद्या से अत्यन्त रूपवती कन्या हो गया। मन्त्रीने एक ब्राह्मण का रूपधारण करके उस कन्या को हाथ में पकड़ लिया। और स्थान स्थान में नगर की मनोहर शोभा को देखता हुआ राजा की सभा में जा पहुँचा और राजा को आशीर्वाद दिया।

राजा ने पूछा कि "आप किस स्थान से, तथा किस प्रयोजन से

आये हो ?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि "मैं बहुत दूरसे तुम्हारे नगर का सुन्दर स्वरूप सुनकर उसे देखने के लिये आया हूं।"

तब राजाने कहाकि "आप! रत्न के प्रासादों से शोभायमान इस नगर का भला प्रकार देखो।"

तब ब्राह्मण ने कहाकि-"मुझको यह नगर देखने में मेरी यह कन्या साथ रहने से घूमने में बाधा रूप होती है, क्योंकि इसको साथ लेकर मैं इधर-उधर कैसे घूम सकता हूं? और मुझे शहर देखने की तीव्र इच्छा है परन्तु क्या किया जाय? इसलिये यह कन्या तब तक आपके अन्त.पुर में रहे जबतक मैं नगर को न देख लू।"

तब राजा की आज्ञा से कन्या को अन्तःपुर में छोड़कर वह ब्राह्मण प्रसन्न होकर नगर को देखने के लिये बाजार में चल दिया। वह कन्या अन्त.पुर मे प्रहेलि प्रश्न आदि से यहां की *राजकुमारी का इस प्रकार से मनोरञ्जन करने लगी कि जिससे* वह राजकुमारी इसके साथ बहुत ही स्नेह करने लग गई।

इसके बाद एक दिन उस विप्र कन्या ने राज कुमारी से पूछाकि हे सखी! तुम पुरुष से क्या द्वेष करती हो?'

राजकुमारी का नर-द्वेष का कारण बतानाः-

तब राजकुमारी कहने लगी कि "मलयाचल पर्वत के महान

वनमे श्रीआदिनाथ के प्रासाद में चटका (चिड़ा)और चटक(चिड़ी) दोनों रहते थे। वे श्री आदिनाथ प्रभू की सदा पूजा करते थे।

एक दिन चटकी ने कहाकि 'हे चटक! अब घोसला बनाओ क्योंकि नरेनिकट भविष्य मेही प्रसवका समय आवेगा।' परन्तु जब बहुत कहने पर भी चटक ने कुछ भी नहीं किया। तब वह चटकीने बहुत सा तृण लाकर घासला बना लिया। उसके बने हुए घोसल में वे दोनो रहनेलगे। एक दिन उस वनमे बास समूहों के परस्पर संघर्षण से दावाग्नि उत्पन्न हो गयी। उस समय चटकी ने कहाकि हे स्वामिन्! सरोवर से जल लाकर इस घोसले पर छिटको, जिसमे अग्नि इसे न जला सके। बहुत कहने पर भी जब वह चटका जल लाने के लिये नहीं उठा तब वह चटकी स्वयं जल लाकर मन में कुछ सोचने लगी। परन्तु जब वह सोच ही रही थी उसी समय म दावाग्नि वहाँ पहुँच गई। और वह दुष्ट चटक उठकर वनमे कहीं अन्यत्र चला गया। चटकी दावाग्नि से जल गई। वही मैं आआदिनाथ प्रभु की पूजा क प्रभाव से इस जन्म में रत्नकेतु की कन्या हुई हू।

"अनुभव किया है पूर्व भव मे, पुरुष होता है क्रूर।
इसलिये ही द्वेष मरा, पुरुष म है मशहूर॥"

मुझे इसी पूर्व भव का स्मरण रहने के कारण पुरुषों से मुझ को द्वेष रह गया। पुरुष प्राय दुष्ट आशय वाले होत हैं। कोई सहाय नहीं है।

श कि ा जा र न्र्ज न प य न जसभाम प्रपश किया। पृष्ठ १५५

(म नि वि मयोजित चित्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ३२)

शय्या पर बैठ कर राजा, मन्त्री और मही तीनों उड़कर रत्नपुर जा रहे हैं। पृष्ठ १५५
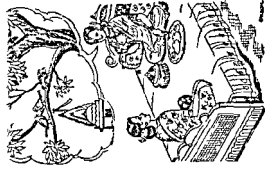
राजकन्या व कन्यारूप धारी अरिमर्दन राजा का परस्पर वार्तालाप हो रहा है। पृष्ठ १५६

उस विप्रक या न कहाकि 'हे राजपुत्रि! क्रोध में आकर स्त्रियाँ भी मिथ्या भाषण आदि अनेक असत् कार्य क्या नहीं करती हैं ?'

यह बात सुनकर राजपुत्री न कहाकि हे सखी! मैं क्या करू ! मनुष्य के प्रति द्वेष मुझसे नहीं जाता है।'

पुन विप्र कन्या ने कहाकि हे राजपुत्रि! वायु के वेग से जैसे मेघ समूह नष्ट हो जाता है । उसी प्रकार क्रोध से सब पुण्य कार्य नष्ट हो जाते हैं ।'

इधर उधर नगर की शोभा देखकर वह ब्राह्मण राजा के समीप आकर बोलाकि "मैं जो अपनी कन्या आपके यहा रख गया था वह कन्या अब मुझको देदे।" तब राजाने अपनी दासी को विप्रकन्या को लान के लिये अपनी कन्या के पास भेजा और कहाकि उसका पिता आगया है इसलिये उसको यहा ले आओ।' वहाँ राजपुत्री न कहाकि 'मैं इस विप्रकन्या का वियोग क्षण मात्र भी नहीं सहन कर सकती हू।' वह दासी राजा के पास खाली लौट आई और उसने राजा का राजकुमारी का अभिप्राय सब कह सुनाया।

ब्राह्मण ने यह सुनकर कहाकि 'हे राजन्! मेरी कन्या शीघ्र दे दीजिये। नहीं तो मैं यहाँ अपनी आत्म हत्या कर डालूगा।'

राजा स्वय पुत्री के समीप गया और उस विप्रकन्या को लाकर उसने ब्राह्मण को देदी। ब्राह्मण अपनी कन्या लेकर कहीं अन्यत्र चल दिया।

राजा की कन्या उस विप्रकन्या के गुण समूहों को याद करके अत्यन्त दुःख पाने लगी। जैसे भ्रमर की स्त्री जाई जाति के पुष्प के गुणों को स्मरण करके दुःख पाती है।

इधर ब्राह्मण उस कन्या को भी समस्त नगर दिखाकर-'ऐसा नगर कहीं नहीं है' इस प्रकार कहता हुआ नगर से बाहर होगया। और पूर्व के सांकेतिक स्थान पर जाकर राजाने पुनः अपने उसी रूप को धारण कर लिया। ठीक उसी समय 'मेढ़ी' भी वहां आ पहुँची। पूर्ववत् राजा और मन्त्री दोनों को शय्या पर बैठाकर आकाशगामी विद्या से अपने नगर को चली गई और भोजनादि से उन राजा मन्त्री दोनों का अतीव सत्कार किया।

इसके बाद राजा अरिमर्दन ने कहाकि 'मैं अपने सब परिवार के साथ इस नगर में पुनः आऊँगा। फिर बाद में तुम इसी प्रकार मुझको शय्या पर सपरिवार उस नगर में पहुँचा देना।'

तब मेढ़ीने कहाकि 'हे राजन्! आप शीघ्र आजावें मैं आपकी इच्छा पूर्ण करूंगी। इसमें कोई सन्देह नहीं।'

राजाने पूछा कि 'तुमको यह शय्या किसने दी?'

मेढ़ी का पूर्व वृत्तान्तः—

'मेढ़ी' ने उत्तर दिया कि 'धरापुरी में धन नामका एक श्रेष्ठी था। उसकी धन्या नामकी स्त्री श्रीशत्रुञ्जय आदि तीर्थों में यात्रा करके धर्म ध्यान परायण होने के कारण प्रथम स्वर्ग को प्राप्त

किया। काल क्रमसे स्वर्गसे च्युत होकर, इस नगरमें मेही नामकी स्त्री हुई तथा धन श्रेष्ठीने धर्ममें परायण होकर प्राण त्याग करके, द्वितीय स्वर्ग को प्राप्त किया। और वह देव पूर्व जन्मका स्मरण करके स्वर्गसे यहां आया तथा मुझको एक आकाशगामी शय्या दी।

उस दिनसे वह मेही सब लोगोंका उपकार करती हुई, धर्म-क्रियामें लीन होकर, समय को बिताने लगी। क्योंकि पुण्य कर्म करने वाले व्यक्तियों को आरोग्य, सौभाग्य, धनाढ्यता, नायकता आनन्द,सर्वदा विजय और अभीष्ट की प्राप्ति होती है। हे राजन्! वह मैं ही हूं

इसके बाद राजा उससे प्रेमपूर्वक मिल कर मतिसारके साथ अपने नगरमें आया। यात्राके बहान से, उत्तम सेनाके साथ, रत्नपुरीमें मेही से आकर मिला तथा मेही से कहने लगा कि— 'मुझको सेना के साथ उस नगर में पहुंचा दो। मैं चालाकी से उस राज कन्या से विवाह कर लूंगा।'

तब मेहीने कहाकि 'समस्त सेना शय्या का स्पर्श करे।' सेना द्वारा शय्या स्पर्श करते ही शय्या आकाश मार्ग से चलने लगी। मेही ने उस शय्या के योगसे समग्र सेनाके साथ राजाको उस वनमें पहुँचा दिया।

अरिमर्दन का सेना सहित रत्नकेतुपुर में उड़कर जाना—

इधर राजा रत्नकेतु कोई शत्रु राजा के आने की भ्रान्ति से

सावधान होकर युद्ध करने के लिये नगरसे बाहर निकला।

इधर अरिमर्दन राजासे शिक्षित, उसके सेवकने, रत्नकेतु राजा को कहा कि—'अत्यन्त धर्मात्मा अरिमर्दन नामका राजा परदेशसे यहा यात्रा करनेके लिये आया है। वह स्त्रियोंको देखता तक नहीं है और स्त्रियों के वचन भी नहीं सुनते हैं यदि कोई स्त्री उसे देखले तो वह तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त करेगा।'

यह बात सुनकर राजा रत्नकेतु ने कुछ शांति अनुभव की और अरिमर्दन के पड़ाव पर गया। उस समय राजा अरिमर्दन श्री आदिनाथ प्रभु की उत्तम पुष्प, गन्ध, अक्षत आदि से अष्ट प्रकार से पूजा कर रहा था। पूजा करने के बाद दोनों राजा आपस में बड़े प्रेम से मिले।

रत्नकेतु राजा ने राजा अरिमर्दन से पूछा—'आप सेना सहित यहा और किस हेतु से अभी जा रहे हैं?'

इस पर अरिमर्दन कहने लगा कि—'मैं ससार भव भ्रमण से छूट कारा पाने के लिये, श्री जिनेश्वर देव की यात्रा करने के लिये यहां आया हूं।' क्योंकि तीर्थ के मार्ग का धूलि के स्पर्श मात्र से भी लोग निष्पाप हो जाया करते हैं तथा तीर्थ में भ्रमण करने से ससार भ्रमण दूर हो जाता है. तीर्थ में द्रव्य व्यय करने से स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने से लोग पूज्य होते हैं। ध्यान से हजार पल्योपम, अभिग्रह से लक्ष पल्योपम और तीर्थ के मार्ग में चलने से सागरोपम प्रमाण

भोगने योग्य दु कमभी नष्ट हो जाते हैं। प्रत्येक मनुष्यको अपना शरीर तीर्थ यात्रासे, चित्त को धर्म ध्यान से, धन को सुपात्र को दान देने से और कुल का सदाचार पालन कर सुशोभित एव पवित्र करना चाहिये।

अरिमर्दन राजा को इतने धर्मीप्र समझ कर राजा रत्नकतु न कहाकि आप प्रस न हाकर मेरे घरमें भोजन करें।'

अरिमद न राजा का नारी-द्वेष—

इस पर राजा अरिमर्दनने कहा 'मैं नगर क मध्यम कदापि नहीं जाऊ गा। क्याकि यदि मेरे सामन कोई स्त्री आगई तो मैं स्वय प्राण त्याग दू गा। इसलिय आप मुझसे भोजन के लिये आग्रह न करें।'

राजा रत्नकेतु ने पुन कहाकि मैं सब स्त्रियों को अपने घर मे बन्द कर दू गा और मेरी स्त्री भी मेरे कहने से गुप्त ही रहेगी।' इस प्रकार आग्रह देखकर अरिमर्दन को बात माननी पड़ी।

इस प्रकार जब अरिमर्दनन बात मानली तब राजा रत्नकतु अपने नगरमे आया और तत्काल नगरमे अपने कथनानुसार व्यवस्था करदी। नगरको सुसज्जित करके और राजसी भोजन बनवाकर राजा रत्नकेतु अरिमर्दन को अपने घर लाया तथा पुरुष से द्वेष करने वाली राज कन्या क गृह क समीप में बने हुए भोजन मण्डप मे पखा आदि ढाल कर अरिमर्दन राजा का अत्यन्त स मान किया। क्योंकि —

"जल मे शीतलता ही रस है, पर घर भोजन मे आदर।
प्रसन्नता रस वनिता जनमें, मित्रों का रस प्रेम प्रखर॥"

जल का शीतल होना ही रस है, दूसरे के अन्न में आदर ही रस है, स्त्रियोंमें आज्ञापालन ही रस है, मित्रों का वचन ही रस है।

नर द्वेषी पुत्री के गृहमें ही उस अरिमर्दन राजाको विश्राम करने के लिये रत्नकेतु ने स्थान दिया। वाद में रत्नकेतुने पूछा कि 'हे राजन्! तुमको स्त्रियों से द्वेष क्यों है ?'

तब अरिमर्दन कहने लगा कि 'मुझको ऐसा पूर्व जन्म से ही है।' पुन रत्नकेतु राजा ने अरिमर्दन राजा से आग्रह पूवक कहा कि 'हे राजन! आप कृपा कर अपना पूर्व भव सबधी वृतात सुनाईये' तब आग्रह वश होकर राजा अरिमर्दन अपना पूर्व भव सुनाइने लगा। कौतुक से नरद्वेषिणी राजकुमारी भी गुप्त रूप से समीप मे बैठ कर राजा का पूर्वभव सुनने लगी।

अपने पूर्व भव का वृतान्त सुनाते हुए राजा अरिमर्दनने कहाकि 'मलयाचल पर्वत पर चटक और चटकी दोनों अपनी इच्छा से रहते थे। तथा जल-पुष्प आदि से वे दोनों अपने कल्याण के लिये जिनमन्दिरमे श्री आदिनाथ जिनेश्वर प्रभुकी पूजा करते थे।'

एक दिन चटक ने कहा कि 'हे चटकी! अब हमको घोंसला बना लेना चाहिये। चटकके इस प्रकार अनेक बार कहने पर भी जब चटकी ने कुछ नहीं माना और न कुछ किया ही, तब चटक ने वृक्ष पर अत्यन्त कष्ट सहन कर एक घोंसला बना

लिया। परन्तु वनमें अचानक दावानल लग गया। दावानल लगते हुए देख कर, चटक ने कहा कि 'हे चटकी ! जल लाकर इस घोंसले पर छिटको अन्यथा यह भी जल जायगा। बार बार कहने पर भी जब वह दुष्ट आशयवाली चटकी न उठी और न बोली ही बल्कि निश्चिन्त होकर बैठ गई। तब चटक श्री आदिनाथ प्रभुका ध्यान करता हुआ घोंसले पर जल सिंचने लगा। तब तक दावानल घोंसले तक पहुँच गया और वह चटक वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ।

अरिमर्दन का ऐसा वृत्तान्त सुनकर राजा की कन्या विचारने लगी कि-'यह क्या मिथ्या बोलता है। मैंने तो इससे विपरीत ही पूर्व भवमें देखा था।' सच ही कहा है कि 'अज्ञान से आवृत्त जीव, हित अथवा अहित, कुछ भी नहीं जानता है। जैसे धतूरा खाये हुए मनुष्य संसार को स्वर्णमय पीला समझते हैं।' ऐसा विचारते हुए राजकन्याने कहाकि-'हे राजन् ! मिथ्या क्यों बोलते हो ? जलाशय से जल लाकर घोंसले को मैंने सिंचा था।'

राजकन्या के ऐसा कहने पर अरिमर्दन ने तत्काल उत्तर दिया "नहीं मैंने सींचा था।" इस प्रकार दोनों, परस्पर अनेक प्रकार के विवाद करने लगे। अन्त मे राजकन्याने पर्दे को हटाकर जब राजा के मुख को देखा तब जैसे सूर्य से अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी प्रकार उस राजकन्या का पुरुषों मे जो द्वेष भाव था वह नष्ट हो गया।

अरिमर्दन राजाका नरद्वेषिनी सौभाग्यवतीके साथ विवाह—

राजा रत्नकेतु अपनी प्यारी राजकुमारी का पुरुष संबधी द्वेषभाव नष्ट हुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, बाद में राजा अरिमर्दन रत्नकेतु से प्रेम पूर्वक मिलकर चलने लगा तब राजकन्या कहने लगी कि "पूर्व जन्म में यह मेरा पति था इसलिये इस जन्म में भी यही मेरा पति हो अन्यथा अग्नि ही मेरा पति होगा।" तब अत्यन्त आग्रह करके राजा रत्नकेतु ने अच्छे उत्सव के साथ अपनी कन्या भी राजा अरिमर्दन को दे दी। कहा है कि—

"धन, सौभाग्य, पुत्र, राज्यासन, धर्म सभी कुछ देता है।
दुर्लभ स्वर्ग मोक्ष भी—मानव, धर्मों का फल लेता है।।"

"धन की अभिलाषा वालों को धन देने वाला, इच्छित चाहने वालों को इच्छानुसार देने वाला, सौभाग्य चाहने वालों को सौभाग्य देने वाला, पुत्र की चाहना वालों को पुत्र देने वाला राज्यार्थियों को राज्य देने वाला सत्य धर्म ही है। कितनी बातें बताई जायें, जगतमें कौन ऐसी वस्तु है जो धर्म नहीं देता? यह अत्यन्त अलभ्य स्वर्ग और मोक्ष का भी देने वाला है।"*

* धर्मोऽयं धनवल्लभेषु धनदः कामार्थिनां कामदः।
सौभाग्यार्थिषु तत्प्रदः किमपरं पुत्रार्थिनां पुत्रदः॥
राज्यार्थिष्वपि राज्यदः किमथवा नानाविकल्पैर्नृणाम्।
तत्किं यन्न ददाति किं च तनुते स्वर्गापवर्गावपि॥१४०॥८॥

राजाअरिमर्दनका सौभाग्यवती सहित अपनेनगरमें आना—

इसके बाद उस राजकन्या से विवाह करके राजा अरिमर्दन मेही की सहायता से रत्नपुरी में आगया। वहां मेही द्वारा की गई भक्ति से प्रसन्न होकर राजाने मेही को लक्ष्यमूल्य वाले चार मणि रत्न दिये तथा उससे प्रेमपूर्वक मिलकर चलता हुआ तथा तीर्थों की वन्दना करता हुआ अपने नगरके उद्यानमें आया। मन्त्री ने नगर में तोरण आदि लगाकर सब प्रकार से नगरको सुसज्जित किया। जब अच्छे मुहूर्त में वाद्य आदि के साथ राजा नव विवाहिता स्त्री सहित नगरके राजमार्ग पर जा रहा था तब वाद्य का शब्द सुनकर रानी सहित राजाको देखने के लिये सब पुरुष तथा स्त्रियां अपना अपना कार्य छोड़कर मार्ग मे एकत्रित होने लगे। अत्यन्त उत्सुकता के कारण कोई एक ही नेत्र में अञ्जन करके, कोई आधे मस्तक में ही केश वेश करके, कोई आधे मुख को ही मण्डित करके स्त्रियां वहां देखने के लिये शीघ्रता से आने लगी। राजा पदपद में दान देता हुआ, गीत, नृत्य के साथ अपनी पत्नी सहित राजमहलमें पहुंचा। इस प्रकार सौभाग्य शाली राजा और रानी; दोनों का चन्द्रमा और रोहिणी तथा शिव पार्वती जैसा सुन्दर योग हुआ इस तरह लोग मानने लगे।

इसके बाद एक दिन स्वप्न में सूचना देकर कोई बहुत बड़ा पुण्यशाली जीव शुभ घड़ी में सौभाग्यवती के गर्भ में आया।

गर्भ के प्रभाव से उस रानी को देवपूजा आदि की जो जो शुभ इच्छायें होती थीं राजा उन्हें अच्छी तरह से पूर्ण करता था समय पूर्ण होने पर एक दिन शुभ मुहूर्त में सौभाग्यवती ने एक बहुत सुन्दर बालक को जन्म दिया। राजाने जन्मोत्सव करके उस बालक का 'मेघ कुमार' नाम रखा।

वह बालक पञ्चधात्रियों से स्तन्यपान आदिसे पालित होकर द्वितीया के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढ़ने लगा। क्योंकि उछलता, गिरता, आनन्द दायक हँसता, लालाको गिराता हुआ ऐसा पुत्र किसी किसी धन्या स्त्री के गोद में ही खेलता है।

फिर राजा ने उस मेघकुमार को पढ़ाने के लिये लेखशाला में भेजा। वह पण्डित से धर्म, कर्म, आदि के अनेक शास्त्र पढ़ने लगा। क्योंकि आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सब तो पशु और मनुष्य में समान होते हैं। मनुष्य में ज्ञान ही एक विशेष है। ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के समान ही है।

इसके बाद चन्द्रपुर के राजा चन्द्र भूप की सुन्दरी मेघरता नामकी कन्यासे शुभ मुहूर्तमें मेघकुमारका विवाह किया गया। दोनों वर और वधू सुन्दर वनमें श्री आदिनाथ जिनेश्वर प्रभु को प्रणाम करने के लिये गये। परन्तु श्री आदिनाथजी की मूर्ति देखकर दोनो वधू और वर मूर्छित होगये। शीतल उपचारों से स्वस्थ करने पर भी वे दोनो बोलते नहीं थे। राजाने मन्त्र तन्त्र आदिसे बहुत उपचार किया। परन्तु स्त्री सहित मेघकुमार कुछ भी नहीं बोला। वैद्य लोग कफ, पित्त तथा 'वायु का विकार' कहते थे।

ज्योतिषी लोग 'ग्रह का दोष' बतलाते थे। मन्त्र जानने वाले 'भूतका उपद्रव' कहते थे। मुनिजन पूर्व जन्म के 'कर्म परिणाम' कहते थे।

केवलज्ञानी श्री गुणसूरिजी महाराज का आगमन—

इसी समय में उस नगर के उद्यान में श्री गुणसूरिजी संसारी प्राणियों को प्रबोध देने के लिये विहार करते हुए पधारे। तथा उद्यानपालकके मुख से सूरिजी का आगमन सुनकर राजा पुत्र वधू तथा पुत्रके साथ वन्दना करने के लिये वहा आये। सूरिजी महाराज ने देशना दी कि 'पिता, माता, स्त्री, मित्र, पुत्र, स्वामी, सहोदर आदि इन सबसे धर्म श्रेष्ट है, धर्म नित्य है। यह मृत्यु होनेपर भी साथ जाता है, दु ख को नष्ट करने वाला है। परन्तु माता पिता, आदि ऐसे नहीं हैं। प्राणियों के लिये धर्म महा मगल कारक है। यह समस्त पाडाओं को नष्ट करने वाला है। माता के तुल्य है तथा समग्र अभिलाषाओं को पूरा करने वाला है। यह पिता के तुल्य है। नित्य हर्ष देने वाला है दान मित्र के तुल्य है। विपत्ति को नाश करने वाला है। शील—सुख को देनेवाला है। तप शीघ्र पाप रूपी कीचड़ सुखाने के लिये आतप (धूप) के तुल्य है। सद्भावना ससार का नाश करने वाला है।

इस प्रकार की धर्म देशना सुन लेने के बाद राजा ने पूछाकि "हे भगवन्! मेरा पुत्र और पुत्रवधू किस दुष्कर्म के प्रभावसे नहीं बोलते हैं? यह बताइये।"

तब श्री गुणसूरिजी कहने लगे 'कि नहीं बोलने का कारण कहने पर दोनों ही गृहत्याग कर के ससार रूपी समुद्र का पार करने मुनि वाला व्रत धारण कर लेंगे।'

राजा ने कहा कि "हे ज्ञानी गुरुदेव ! जो होना है वह होगा ! परन्तु ये दोनों बोलने लगें ऐसा उपाय कीजिये।"

मुनि द्वारा पुत्र व पुत्र-वधू का पूर्व-जन्म का वृतान्त—

तब श्री गुणसूरिजी कहने लगे कि "पहले इन दोनों के पूर्व जन्मका समाचार सुनों। पूर्व समयमें भीमपुरमें शूर नामका एक अत्यन्त न्यायी राजा था। उसने शत्रु के वीरपुर नाम के नगर को भग्न किया तथा शत्रु पर विजय प्राप्त की थी। परन्तु कोई भट (सैनिक) सोम नामके श्रेष्ठी का रूप लावण्य वाले तीन वर्ष की अवस्था वाला धीर नामका पुत्र और दो वर्ष की अवस्था वाली वीरमती नामकी कन्या दोनों को लेकर अपने नगर को चला गया। तथा बाद में द्रव्य लेकर दोनों को कमलश्रेष्ठी को दे दिया। क्रमश युवावस्था होने पर उन दोनों का विवाह करा दिया। वहां एक समय श्री धर्मघोष नामके ज्ञानी मुनि आये उनको प्रणाम करने के लिये कमल अपनी प्रिया के साथ वहां गया। उनका उपदेश सुनकर कमल ने पूछा कि 'हे स्वामिन् ! इन दोनों-धीर और वीरमती का परस्पर किस प्रकारअधिकप्रेम होगया ?' तब उस जन्म का भाई बहन का सम्बन्ध बतलाने पर उन दोनों ने सुन्दर वन में जाकर तथा श्री आदिनाथ देव को प्रणाम करके और गृह का त्याग करके दीक्षा लेली। बाद में तीव्र तपस्या करके दोनों स्वर्ग को गये। इसके बाद स्वर्ग से च्युत होकर वे दोनों तुम्हारे पुत्र तथा पुत्र वधू हुए हैं। जातिस्मरण ज्ञान हो जाने के
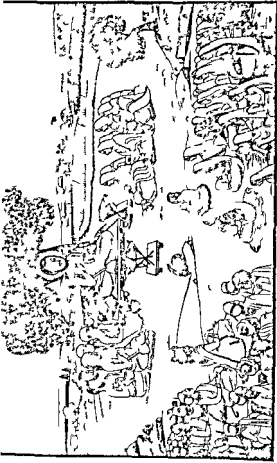
वहा एक समय था धमघोष नामके ज्ञानी मुनि आए ...
उपदश सुनकर कमलन पूछा कि इन दाना धीर और वीरमती का परस्पर किस प्रकार अधिक प्रम हो गया ? ”

पृष्ट १९८

(मु नि वि मयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ३५)
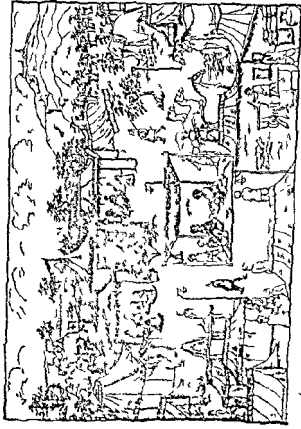
शत्रुंजय म र्थ क मी प्रयाण और चतुर्विध सघ का मनोहर दृश्य। पृष्ठ १८०
(म नि रि मयाजित निरम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ३६)

कारण पूर्व जन्म का स्मरण करके दोनों ने मौन धारण कर लिया है।"

यह सुनते ही राजा अरिमर्दन के पुत्र और पुत्रवधू दोनोंने सांसारिक मोह को त्याग करके, इस भयानक संसार समुद्र को पार करने के लिये, गुरु के समीप दीक्षा व्रत ग्रहण कर लिया। अत्यन्त तीव्र तपस्या करके समस्त कर्म बन्धनों को नाश कर केवल ज्ञान को प्राप्त करके क्रमश मोक्ष को प्राप्त करेंगे। क्योंकि 'जिस कर्म बन्धन को कोटि जन्मोंमें, तीव्र तपस्या से नष्ट नहीं करते हैं, उसी को लोग समता का अवलम्बन कर के आधे क्षण में ही नष्ट कर देते हैं।'

इस प्रकार की धर्म देशना सुनकर राजा अरिमर्दनने पूछा कि 'हे गुरो। मैंने ऐसा कौनसा पुण्य कार्य किया जिससे इस जन्म में मेरा सब कोई अभिलाषित सिद्ध हुआ तथा आश्चर्यकारी राज्य लक्ष्मी को पाया ?'

तब गुरु ने कहा कि "तुमने पूर्व जन्म में श्री जिनेश्वरदेव की भावसहित पूजा की थी। इससे इस जन्म में तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण हुए हैं।"

इस प्रकार राजा अरिमर्दन जिनधर्म का प्रभाव सुनकर तथा श्री गुरुदेव के समीप सम्यक्त्व व्रत ग्रहण करके अपनी प्रिया के साथ घर पर आया। शुद्ध सम्यक्त्व के पालन करने से क्रमशः सब कर्मबन्धनों को नष्ट करके मोक्ष को प्राप्त किया।

श्री केवलीमुनि द्वारा धर्मोपदेश से महाराजा शुक की दीक्षा--

गुरुदेव के समीप इस प्रकार का उपदेश सुनकर महाराजा शुकराज मन में वैराग्य धारण करके अपने घर को आ गया। पुत्र को राज्य देकर स्वयं गुरु के समीप जाकर तत्पत्नी सहित दीक्षा को धारण किया। तथा तपस्या द्वारा कर्मक्षय होने पर मोक्षपद को प्राप्त किया।

इसी प्रकार जो प्राणी श्री शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रा करते हैं वे महाराजा शुकराज के समान शिघ्र मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरिश्वरजी के मुखकमल से यह सब अद्भुत कथायें सहित शुकराजचरित्र सुनकर महाराजा विक्रमादित्य ने पूछा कि 'हे गुरु श्रेष्ठ! इस समय श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ की यात्रा करने की मेरी तीव्र इच्छा हुई है। इससे आप सपरिवार श्रीसंघके साथ पधारने की कृपा करें।'

"निस्पृह होकर धर्म मार्ग से, चलते और चलाते।
ऐसे ही जन गुरुवर होते, तरते और तराते॥" ※

"जो सदा उत्तम मार्ग से चलते हैं तथा निस्पृह होकर दूसरों को भी धर्म मार्ग की ओर प्रवृत करते हैं। इस प्रकार स्वयं संसार समुद्र से तैरते हुए दूसरों को भी तारते हैं। ऐसे महा पुरुषों की

※ अवद्यमुक्ते पथि यः प्रवर्तते, प्रवर्तयत्यन्यजनं च निःस्पृहः।
स एव सेव्यः स्वहितैषिणा गुरुः, स्वयं तरंस्तारयितुं परं क्षमः॥११६५

ही उपासना करनी चाहिये। इससे उन उपासकों का सदा कल्याण ही होता है।" और भी कहा है कि —

"महाव्रत को धारण करने वाले धीर, भिक्षामात्र से जीवन निर्वाह करने वाले, सामयिक से युक्त, तथा सद्धर्मोपदेश करने वाले ही गुरू कहे गये हैं।"*

पाठकगण! महाराजा शुकराज श्री कमलाचार्य से गत दो प्रकरण में बताये गये कर्म और उद्योग के विषय में बोधदायक वृत्तान्त, भीम रथिकपुत्र की कथा तथा अरिमर्दनराजा की रोमांचककारी कथा सुना कर, इस परिवर्तनशील संसार में धर्म ही एक आत्मा का शरण भूत है, यह सब हाल गुरु भगवन्त की देशना से जान कर निश्चय किया कि संसार दुःख से भरा हुआ है। मन के अन्दर खूब विचार-सोच कर, संसार त्याग कर मनमें दीक्षा लेने का निश्चय किया बादमें श्री कमलाचार्य सूरि भगवंत को सपरिवार वंदन कर नगर को लौटा। अपने पुत्र चंद्रराज को राज्य गद्दी पर स्थापन कर, शुकराज ने गुरु महाराज के पास जैनीदीक्षा ग्रहण की। ज्ञान ध्यान पूर्वक, अनेक प्रकार के तीव्र तप कर श्रीशुक मुनिवर ने दुष्कर्मों को नाश कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। बादमें इस पृथ्वी पर विचरण करते हुए अनेक भव्य प्राणियों को मोक्ष मार्गमें स्थापन कर जन्म मरण के दुःख दूर करके मोक्ष में पधार गये।

---

* महाव्रतधरा धीरा, भैक्ष्यमात्रोपजीविन।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मता॥ ११८६॥८

प्रकरण इक्तालीसवा

"स्पृत्वा शत्रुंजय तीर्थं, नत्वा रेवतकाचल।
स्नात्वा गजपदे कुण्डे, पुनर्जन्म न विद्यते॥"

पाठक गण! इस विक्रम चरित्रके दूसरे भाग के प्रथम प्रकरण से ही श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी भगवत ने महाराजा विक्रमादित्य को धर्मोपदेश देते हुए श्री सिद्धाचल महातीर्थ का नाम शत्रुंजय कैसे व क्यों पड़ा? इसके उत्तर में श्री सूरीश्वरजी ने अनेक सुन्दर व रोचक कथाओं से भरपूर महाराज शुकराज का विस्तृत चरित्र सुनाया। यह सब हाल प्रकरण ३३ वें से प्रारम्भ होकर४०वें प्रकरण तक आप भलिप्रकार ध्यानपूर्वक पढ गये होंगे।

श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी भगवत के मुखकमल से महाराजा विक्रमादित्यने श्री शुकराज का अद्भुत चरित्र सुनकर अपने मनमें यह निश्चय किया कि महातीर्थ श्री शत्रुंजय की। धर्म ध्यान पूर्वक, गुरुदेव आदि चतुर्विध श्री संघ के साथ पैदल यात्रा कर अपने मानव जीवन को अवश्य सफल बनाना चाहिए और इस निश्चय के अनुसार महाराज ने गत प्रकरणमें पूज्यपाद् श्री सूरीश्वरजी भगवत को संघ के साथ पधारने के लिए भाव भक्ति पूर्ण नम्र प्रार्थना की।

"हे गुरुदेव! आप श्री ने जो महातीर्थ का माहात्म्य फरमाया

है और छ रि 卐 पालता हुआ पैदल चलकर, विधि पूर्वक जो प्राणी महातीर्थ की यात्रा करता है उसको अधिक पुण्य होता है। अत यह सुनकर मैंने अपने मन मे महातीर्थ की इसी प्रकार यात्रा करने का निश्चय किया है। अतः हे परम कृपालु गुरुदेव! आप भी श्री सघ के साथ पधारने की कृपा करें तो हमें बड़ी ही प्रसन्नता होगी! क्योंकि एक कविवर ने ठीक लिखा है:—

'सगत कीजे सतकी, निष्फल कदीय न जाय।
लोहा पारस स्पर्श से, कञ्चन से वढ जाय॥'

ससार रूपी सागर से जो तैराता है वही तीर्थ कहलाता है। तीर्थ दो प्रकार के बताये गये हैं। (१) स्थावर और (२) जगम। स्थावर तीर्थ में श्री जिनेश्वर प्रभूजी की ❀ 'पच' कल्याणक भूमि तथा मूर्तिजिन मन्दिरो आदि समझना चाहिये तथा जंगम तीर्थमे हिलते, चलते, बोलते आदि तीर्थ। इस तीर्थमे विचरते श्री तीर्थङ्कर प्रभू से लेकर श्री गणधर प्रभू, श्री केवली प्रभू, श्री आचार्य भगवत, श्री उपाध्याय भगवत और सब सामान्य गुरुदेव, साधु-साध्वी वर्ग का समावेश होता है। यह

卐 छ रि (१) एकाहारी (२) भूमि सथारी (३) पादचारी (४) शुद्ध सम्यक्त्वधारी (५) सचित्त परिहारी (६) ब्रह्मचारी।
❀ पच कल्याणक (१) च्यवन (२) जन्म (३) दीक्षा (४) केवल ज्ञान प्राप्ति (५) और निर्वाण।

जंगम तीर्थ चलता फिरता कल्पवृक्ष है। कल्पवृक्ष तो उसके पासमें जाने वाले व्यक्ति को ही इच्छित फल दे सकता है। परन्तु गुरू साधु भगवत तो साक्षात् जंगम कल्पवृक्ष के समान है, उनके पास जाने वालोंको तो धर्मोपदेश रूप ज्ञान फल अवश्य मिलता है। जिससे प्रत्येक प्राणी उस उपदेशके पालन से अपने भूत, भविष्य और वर्तमान के पापों से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसके अलावा जो प्राणी छोटेबड़े गांवों में बसते हैं उनके गांवों में जा जाकर, अनेक शारीरिक कष्ट भोगकर, हर प्राणी को धर्मोपदेश देने हेतु स्वय साधु जन वहां पहुंचते हैं और उन प्राणियों को जाग्रत करते हैं। इससे इन प्राणियों को भी धर्म का ज्ञान हो जाता है और धर्माराधन कर वे प्राणी जन्म-जरा और मरणके भयकर कांटों से छुटकर, मोक्ष धाम रूप परम शांति को प्राप्त कर सकते है। इसीलिए स्थावर कल्पवृक्ष तुल्य स्थावर तीर्थो से शास्त्रोंमें जगम तीर्थ स्वरूप साधु जन की अधिक महिमा बताई गई है।"

इस प्रकार महाराजा विक्रमादित्य की आग्रह पूर्ण भक्ति भाव से विनंती सुनकर पूज्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी महाराज ने भी श्री संघ के साथ आने की महाराजा को अनुमति दी। इससे महाराजा और भी अधिक उत्साहित हुए। पूज्य श्री सिद्धसेन-दिवाकर सूरीश्वरजी की ओर से संघ के साथ आने की स्वीकृति जानकर महाराजा, मत्री मडल एवं धर्म प्रेमी जनता अत्यत प्रसन्न हुई। बाद में मडल सघ को एकत्र कर श्री चतुर्विध सघ के सामने महातीर्थ श्री शत्रुजय की यात्रा करने की अपनी

इच्छा प्रदर्शित की, अपने आज्ञाकारी मत्री मडल एव. राज्य के सब अधिकारी वर्ग को श्री संघ के लिये अति शिघ्र सामग्री जुटाने की आज्ञा प्रदान की ! महाराजा की आज्ञानुसार राज्य कर्मचारियों ने शीघ्र ही अनेक प्रकार की आवश्यक व्यवस्था एव तैयारी करदी, दूसरी ओर अपूर्व उत्साह के साथ महाराजा ने अनेक अन्य राज्यों के राजाओं, सामंतो, श्रीमतों, आचार्यो, साधू, साध्वी एव समस्त धर्मप्रेमी जनता के नाम आमत्रण पत्रिकाए भेज दी।

महाराजा की ओर से आमंत्रित होकर इस सघ का अपूर्व लाभ लेने हेतु अनेक राजा, सामंत, श्रीमत, आचार्य, साधू-साध्वी तथा अनेक साधारण धर्म प्रेमी गृहस्थ भी शीघ्र ही बडे उत्साह के साथ उज्जयनी नगरी में प्रवेश करने लगे। दिनो दिन उज्जयनी मे मानव समूह बढ़ने लगा। महाराजा ने भी अपनी नगरी में आने वाले आगन्तुकों का उदार भाव से स्वागत किया। आपने अतिथियों के लिए ठहरने, भोजन और विश्राम की समुचित व्यवस्था करदी।

उज्जयनी नगरी के महाराज की इस अपूर्व धर्म भावना का असर अवती नगरी की प्रजा पर भी बहुत अधिक पड़ा। फलत वहा की प्रजा ने भी बड़े ही उत्साह के साथ अपनी नगरी को बड़ ठाट बाट से सजाया। जगह जगह तोरण-पताका फहराती नजर आ रही है। चौराहों पर शहनाई आदि तरह-तरह के बाजों की मधुर ध्वनी सुनाई दे रही है। प्रत्येक गली के दोनों किनारों पर सुन्दर-सुन्दर द्वार बनाये गये हैं जो महापुरुषों के नाम से अलकृत हैं। इस अपूर्व अवसर का लाभ लेने में शायद ही कोई

अवति निवासी शेष रहा हो। नगर की महिलाए छोटे २ समूह में अलग-अलग एकत्र होकर सुमधुर स्वर से प्रभु स्तवन, राज्य महिमा आदि के भाव पूर्ण गीत गा रही हैं। इस प्रकार आज की उज्जयनी नगरी को इन्द्रपुरी की उपमा दे दी जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। दर्शकगण तो प्राय यह अनुमान लगा कर वहीं इन्द्रपुरी को साक्षात्कार मान उसका आनन्द ले रहे हैं।

महाराजा विक्रमादित्य के संघ का आज प्रयाण दिन है। मालव देश की प्राचीन राजधानी अवतीपुरी में आज प्रात काल से ही अद्भुत जागृति फैली हुई है। मानव मेदनी से सारी अवती नगरी भर गई है। आज नगरी का कोई भी राज मार्ग ऐसा नहीं होगा जहा मानव मेदनी विशाल समूह में न हो। यहा आज बड़े-बड़े राज्य मार्ग भी सकीर्ण प्रतीत होते हैं। स्थान-स्थान पर मानव समूह आज की संघ यात्रा की बात बड़े प्रेम पूर्वक करते नजर आ रहे हैं। महाराजा विक्रमादित्य की धर्मभावना की स्थान २ पर प्रशंसा हो रही है और महाराजा की उदार वृत्ति के लिए धन्यवाद दिया गया, शुभ मुहूर्त और शुभ तिथि में महाराजा विक्रमादित्य ने सकल चतुर्विध संघ के साथ श्री अवती पार्श्वनाथ जी भगवान को भाव पूर्ण नमस्कार कर नगरी के बाहर वाले उद्यान की ओर अपने पूज्याचार्य श्री सूरिश्वरजी भगवत की आज्ञानुसार प्रथम प्रस्थान किया।

श्री संघ का वर्णन करना इस लिपि वद्ध लेखनी के वश का

बाहर की बात है। परन्तु पाठक गणों को तो इसका कुछ न कुछ रसास्वादन कराना आवश्यक है। अस्तु!

जिस समय श्री विक्रमादित्य महाराजा का संघ प्रथम प्रयाण कर राज्य महल से निकला उस समय के जन समूह की गणना करना तो प्राय. असंभव ही प्रतीत होता है। सबसे आगे संघ में सुमधुर ध्वनी वादन करते हुए अनेक प्रकार के वाद्य कलाकारों का समूह अनेक प्रकार की पोशाकों में सुसज्जित होकर अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए चल रहे हैं। उनके पीछे राज्य की चतुरंगीनी सेना जो राजकीय सैनिक पौशाक मे पंक्ति बद्ध बड़े मान के साथ अपने हथियारों सहित ठाट से चल रही है। ठीक सेना के बाद ही अनेक पूज्याचार्य, साधू समुदाय अपने त्यागमय जीवन का प्रदर्शन करते हुए, बड़ी शांति से चलते नजर आ रहे हैं।

इसी साधू समाज के पीछे अनेक राजा, महाराजा, सामंत, श्रीमंत तथा अन्य प्रजा-जन बड़े विशाल समूह मे दिखाई दे रहे हैं। इसी समूह मे और साधू समाज के ठीक पीछे के भाग मे संघपति महाराजा विक्रमादित्य दिखाई दे रहे हैं। महाराजा के गले में पुष्पहारों का ढेर लगा है। केवल पुष्प-हारों के बीच महाराजा का मुख पूर्णिमा के चांद की भांति सुशोभित हो रहा है और सिर पर का मुकुट चंद्रमा की कलाओं की पूर्ति कर रहा है।

महाराजा के हाथों मे रत्न जड़ित श्रीफल सुशोभित हो रहा

है। सुन्दर वेष भूषा से महाराजा आज बडे ही सुन्दर दिखाई रहे हैं। आज का दिवस महाराजा विक्रमादित्य के तथा प्रजाजन के लिए धन्य है। समूह के अ त में साध्वीगण तथा महिला-समाज का विशाल समूह चल रहा है। समूह बीच महिला समाज अपने कोकिल कठसे सुमधुर स्वर द्वारा गीतगान गाता:आ दृष्टिगोचर हो रहा है। इस समूह के मध्य मे राज्यशाही ठाट के साथ सुन्दर वेश भूषा युक्त होकर, आभूषणों को अपने कोमल तन पर सुशोभित कर महाराजा की रानियाँ का समूह स्त्री समाज की शोभा बढ़ाते हुए महाराजा के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए चलता जा रहा है।

उपरोक्त विशाल मानव संघ के साथ महाराजा विक्रमादित्य का यह शानदार जलूस सघ रूप मे अपनी धार्मिक भावनाओं को एकत्र कर के धर्म-कर्म करने निमित्त प्रभुभक्ति मे लीन होता जा रहा है। जिनका आज प्रथम विश्राम अवन्ती नगरी के बाहर वाले उद्यान की शोभा बढ़ा रहा है। यह उद्यान मालव देश की विशाल पवित्र क्षिप्रानदी के तट पर स्थित है।

पाठक गण! महाराजा विक्रमादित्य के सघ के इस वर्णन का समस्त हाल पढ़ कर कहीं आश्चर्य में न पड जाय। श का होना मानव स्वभाव है। परन्तु प्रमाण मिलने पर उसे बुद्धिमान अपने हृदय में स्थान नहीं देते। अस्तु। वर्तमान काल में समाचार पत्र पढ़ने वाले हर-समय के समाचारो से परिचित रहते हैं। उन्हें

देश मे घटनेवाला घटनाओं का ज्ञान रहता ही है। अत उपरोक्त सघ की पुष्टी में वर्तमान काल का प्रसग यहा देना अनुपयुक्त नहीं होगा।

गत वि० स० १६६१ में अहमदाबाद निवासी सेठ माणकलाल मनसुखलाल भाई ने शासन सम्राट पूज्याचार्य देव श्रीनेमिसूरीश्वर जी महाराज की अध्यक्षता में श्री सिद्धाचल महातीर्थ तथा गिरनार तीर्थ का एक सघ निकाला था। इस सघ का वर्णन करना तो सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य है। कारण कि जो आनन्द प्रत्यक्ष दर्शन में आता है वह लेख द्वारा नहीं। एक प्रत्यक्ष दर्शक के कथनानुसार यह सघ अहमदाबादसे रवाना होकर कई ग्रामोंमें होता हुआ जा रहा था। प्रत्येक ग्राम के जिनालय में पूजा, आगी प्रभावना का लाभ सघपति बडे उत्साह के साथ लेते। प्रत्येक कार्य की व्यवस्था बडी सुव्यवस्थित थी। जहा भी विश्राम होता वहा सघ के लिए एक दिन पूर्व ही सपूर्ण व्यवस्था हो जाती। ग्रामों ग्राम नौकारसी आदि बडे २ भोजो का आयोजन होता जिसमे २०,००० हजार तक मानव समुह भाग लेता। इस सघ की व्यवस्था तो वास्तव में बड़ी ही चित्ताकर्षक थी। जहा सघ विश्राम करता था वह मैदान करीब २-३ मील के घेरे को रोक लेता था। सघ के स्थान को देखकर दूर से यही ज्ञान होता था कि यह तो कोई राजकीय छावनी पड़ी हुई है। वास्तव में यह एक धर्मराज की छावनी थी जो अधर्मराज के विरुद्ध धर्म कार्य कर धर्म की विजय दुन्दुभी बजा रही थी।

संघ के विश्राम स्थान पर एक मुख्य द्वार लगा होता था जिस पर सुन्दर अक्षरों में श्री 'मनसुखनगर' शब्द शोभा दे रहे थे। वास्तव में वह विश्राम स्थान एक नगरीके तुल्य ही था। नगरी में जो भी जनता के आवश्यकता को वस्तुएं होती हैं वह सब संघ के साथ उस स्थान पर लग जाती। जैसे कि डाकखाना, दवाखाना, बैंक, पुलीस स्टेशन आदि। केवल ये लगने से ही इसका कोई अर्थ नहीं निकलता बल्कि उसका वह पूर्ण रूप से काम भी करते थे।

प्रवेश द्वार से करीब आधा मील के फासले पर एक विशाल मंडप दृष्टिगोचर होता था। जहां जाने पर ज्ञात होताकि यहातो कोई पवित्र तीर्थ है और वास्तव में वह संघ एक चलता फिरता पावन तीर्थ ही था। संघपति की उत्तम व्यवस्था के अनुसार चांदी के जिन मन्दिर और मेरूपर्वत संघ के साथ था। वह जगह जगह पर संघ के विश्राम स्थान पर लगा दिये जाते थे। प्रातःकाल संघ के लोग बडे प्रेम से संघपति सहित प्रभु पूजा का यहाआकर सबलोग लाभ लेते तथा शाम को प्रभु भक्ति की सदा ही धूम लगती। स्थान स्थान से आई हुई संगीत मन्डलियों ने तो यहां प्रभु भक्ति का अपूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया था।

संघ का विश्राम स्थान कई भागों में विभक्त होता था। जिनमें से मुख्य २ भागों का वर्णन करना अनुपयुक्त न होगा। श्रीजिनेश्वर देव के मन्दिर के दोनों ओर सामने ही विशाल तम्बू लगे होते थे। जिनमें एक ओर तो अपने कुटुम्ब सहित संघपति रहते और दूसरी ओर अनेक साधू समुदाय के सहित शासन सम्राट आचार्य

देव श्री विजयनेमि सूरीश्वरजी म० सा० आदि अनेक सूरीश्वरजी सह परिवार विराजते थे। इस श्री संघ में पूज्य श्री सागरानंद सूरिजी, श्री मोहन सूरिजी, श्री मेघ सूरिजी आदि करीबन ८०० सौ साधु-साध्वीजी महाराज का समुदाय साथ था। आचार्य देव के तम्बू के पास ही एक महान् विशाल तम्बू था, जिसमें सुबह शाम प्रतिक्रमण, व्याख्यान आदि होता।

दूसरे भाग मे भोजनालय था। यहा करीब २०,००० व्यक्तियो का भोजन होता था। पास ही मे अलग स्थान पर तपस्वियों के भोजन की व्यवस्था थी जैसे कि आम्बील एकासना आदि। भोजनालय के पास ही बड़ी पवित्रता के साथ जल व्यवस्था थी। गरम और शीत दोनों प्रकार का जल नियत समय पर तैयार मिलता। जल स्थान के ठीक पीछे की ओर स्नानागार था जहा से एक सीधा मार्ग जिन मन्दिर की ओर जाता। ताकि स्नान कर लोग पूजा का लाभ ले सके।

विश्राम स्थान के मध्य भाग जो कि 'माणक चौक' के नाम से प्रसिद्ध था, उसके चारों रास्तों पर बाजार लगता। प्रत्येक वस्तु के नियमित भाव से मिलने की व्यवस्था थी। पास ही डाकखाना और बैंक के तम्बू लगे थे। और उनके पीछे की ओर उनके कर्मचारियों के निवास के तबू थे। विशाल संख्या से जुड़ा हुआ मुबई का "श्री स्वय सेवक मडल" भी अच्छी तरह यात्रीगण की सेवा करते थे।

किनारे पर राजकीय पुलिस के तबू थे। नियत समय के अनु-

भार सिपाही अपनी अपनी ड्यूटी देकर संघ की रक्षा का भार सम लते। पुलिस विभाग समय २ पर अनेक राज्यों के आने से और बढ़ गया था। रास्ते में धामधा, भावनगर, पालीताना आदि राज्य आने से उनके महाराजाओं ने भी श्री संघ की ओर भक्ति भाव से आकर्षित होकर अपनी सिपाही-सेना भेज कर संघ की रक्षा का भार और भी अधिक सरल व सबल बनाया।

स्त्री समाज के लिए तो अलग ही सुन्दर व्यवस्था रहती। किसी भी कार्य में स्त्री समाज और पुरुष समाज में भेद भाव नहीं बर्ता जाता पर उनकी व्यवस्था अलग अवश्य होती। स्त्री समाज में किसी भी पुरुष को आपारा फिरने का कतई अधिकार नहीं था। पूजा, प्रभुभक्ति, सामायिक प्रतिक्रमण, व्याख्यान आदि के लिए स्त्री समाज के लिए अलग ही पूर्व से निश्चित स्थान कर दिये गये ताकि उन स्थानों का उपयोग केवल स्त्री समाज ही ले सके।

जब संघ अपने विश्राम स्थान से प्रातः प्रयाण कर आगे की ओर चलता उस समय का दृश्य बड़ा ही मनोहर था। मीलों तक श्री संघ के मानव समूह की पंक्तियें दृष्टिगोचर होती। इस समूह में करीब २००० बैलगाड़ी, घोड़े, रथ, मोटर आदि भी थे ताकि संघ में सम्मलित वृद्ध धर्मप्रेमियों को तथा छोटे बड़े अन्य लोगों के असबाब आदि को ढोने का काम सरलता पूर्वक हो जाय। संघ-पति साधु समुदाय के पीछे कर बद्ध श्रीफल लिए बड़े शान्त भाव से करीब २० हजार संघ साथियों के साथ चलते दृष्टि-

गोचर होते थे। जय-जयकार के नारों से समस्त आकाश मंडल गूंज उठता। इन जयकारों के आगे भी संघ के आगे चलने वाले वाद्य समूह के बाजों की आवाज भी कमजोर पड़ जाती थी!

वास्तव में यह संघ वर्तमान काल का एक अपूर्व आदर्श था। धन्य है उन धर्म प्रेमियों को जिन्होंने इस असंभव कार्य को भी संभव कर अपने साथ-साथ अनेक धर्मानुयायियों को धर्म का लाभ, प्रभु दर्शन का लाभ, साधु समाज के दर्शन तथा संघ के दर्शन का लाभ देकर उनका जीवन अपने साथ २ सफल बनाया।

पाठक गण! वर्तमान काल में जबकि आज कल जगह २ धर्म विरोधी भावना को उत्तेजना दी जारही है, अनेक पापाचार पनप रहे हैं वैसे समय में भी इस प्रकार के महान् धर्म कार्य करने व कराने वाले होते हैं तो भला वह भारत का स्वर्ण युग तो विश्व विख्यात है जबकि भारत सोने की चिड़िया कहलता था। वैसे समय में अगर विक्रमादित्य जैसे महाराजा का एक महान् विशाल संघ इस प्रकार का हो तो कोई नवीन व आश्चर्य जनक बात नहीं। आशा है आप अब अपने मन में तनिक भी सन्देह को स्थान न देकर विक्रमादित्य महाराजा के संघ समूह को कल्पित न मानेंगे।

इसके साथ साथ अगर आजकल के भी भारत के अपूर्व उत्सवों की ओर तथा मेलो आदि की ओर भी दृष्टि डाली जाय तो यह जानकर भी हमें रोमांच हुए बिना नहीं रहेगा।

भारत का प्रथम स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, महात्मा गांधी के अग्नी संस्कार का दृश्य, भारत के प्रसिद्ध कुम्भ

सार सिपाही अपनी अपनी ड्यूटी देकर संघ की रक्षा का भार सम्भालते। पुलिस विभाग समय २ पर अनेक राज्यों के आने से और बढ़ गया था। रास्ते में धांगध्रा, भावनगर, पालीताना आदि राज्य आने से उनके महाराजाओं ने भी भी संघ की ओर भक्ति भाव से आकर्षित होकर अपनी सिपाही-सेना भेज कर संघ की रक्षा का भार और भी अधिक सरल व सबल बनाया।

स्त्री समाज के लिए तो अलग ही सुन्दर व्यवस्था रहती। किसी भी कार्य में स्त्री-समाज और पुरुष समाज में भेद भाव नहीं रखा जाता पर उनकी व्यवस्था अलग अवश्य होती। स्त्री समाज में किसी भी पुरुष को आवारा फिरने का कोई अधिकार नहीं था। पूजा, प्रभुभक्ति, सामायिक प्रतिक्रमण, व्याख्यान आदि के लिए स्त्री समाज के लिए अलग ही पूर्व से निश्चित स्थान कर दिये गये ताकि उन स्थानों का उपयोग केवल स्त्री समाज ही ले सके।

जब संघ अपने विश्राम स्थान से प्रातः प्रयाण कर आगे की ओर चलता उस समय का दृश्य बड़ा ही मनोहर था। मीलों तक भी संघ के मानव समूह की पंक्तियें दृष्टिगोचर होतीं। इस समूह में करीब २००० बैलगाड़ी, घोड़े, रथ, मोटर आदि भी थे ताकि संघ में सम्मिलित वृद्ध पदयात्रियों को तथा छोटे बड़े अन्य लोगों के सामान आदि को ढोने का काम सरलता पूर्वक हो जाय। संघ-पति साधु सन्तों के पीछे रह कर बड़े भक्ति भाव से करीब २० हजार संघ साथियों के साथ चलते हुए-

गोचर होते थे। जय-जयकार के नारों से समस्त आकाश मंडल गूंज उठता। इन जयकारों के आगे भी संघ के आगे चलने वाले वाद्य समूह के बाजों की आवाज भी कमजोर पड़ जाती थी!

वास्तव में यह संघ वर्तमान काल का एक अपूर्व आदर्श था। धन्य है उन धर्म प्रेमियों को जिन्होंने इस असंभव कार्य को भी संभव कर अपने साथ-साथ अनेक धर्मानुयायियों को धर्म का लाभ, प्रभु दर्शन का लाभ, साधु समाज के दर्शन तथा संघ के दर्शन का लाभ देकर उनका जीवन अपने साथ २ सफल बनाया।

पाठक गण! वर्तमान काल में जबकि आज कल जगह २ धर्म विरोधी भावना को उत्तेजना दी जारही है, अनेक पापाचार पनप रहे हैं वैसे समय में भी इस प्रकार से महान् धर्म कार्य करने व कराने वाले होते हैं तो भला वह भारत का स्वर्ण युग तो विश्व विख्यात है जबकि भारत सोने की चिड़िया कहलता था। वैसे समय में अगर विक्रमादित्य जैसे महाराजा का एक महान् विशाल संघ इस प्रकार का हो तो कोई नवीन व आश्चर्य जनक बात नहीं। आशा है आप अब अपने मन में तनिक भी सन्देह को स्थान न देकर विक्रमादित्य महाराजा के संघ समूह को कल्पित न मानेंगे।

इसके साथ साथ अगर आजकल के भी भारतके अपूर्व उत्सवों की ओर तथा मेलों आदि की ओर भी दृष्टि डाली जाय तो यह जानकर भी हमें रोमांच हुए बिना नहीं रहेगा।

भारत का प्रथम स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, महात्मा गांधी के अग्नी संस्कार का दृश्य, भारत के प्रसिद्ध कुम्भ

के मेले का वर्णन आदि के समाचार, समाचार पत्रों में पढ़ने वाले महानुभाव तथा भारत की प्रसिद्ध नगरी बम्बई, राजधानी दिल्ली और कलकत्ता आदि जैसे नगरों के निवासी यह भलि प्रकार जानते हैं कि इन उपरोक्त अवसरों पर भी कितने विशाल समूह में मानव-मेदनी एकत्र होती है। जिसको संख्या करना तो दूर रहा पर अनुमान तक लगाने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। सरकार के व्यवस्था करने वाले कर्मचारी, पुलिस, रेल आदि के कार्य कर भी असफल हो जाते हैं। मानव समाज पर काबू पाना मुश्किल होजाता। यह सब जानकर भी अगर हम अपने पूर्व परिचित राजा महाराजा विक्रमादित्य के संघ की विशाल मानव मेदनी के विशाल समूह पर भी शंका कर बैठे तो फिर यह दोष तो किसे दिया जाय फिर तो कर्म की विचित्रता ही माननी होगी।

राजा विक्रमादित्य का विशाल संघ के साथ प्रयाण—

महाराजा विक्रमादित्य के संघ में महान् चौदह बड़े बड़े मुकुटधारी राजा थे। सित्तर लाख शुद्ध श्रावकों के कुटुम्ब थे। श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी आदि क्रियाकलाप में कुशल और सद्गुणी पांच सौ जैनाचार्य सह परिवार भी तीर्थ बन्दना करने हेतु महाराजा विक्रमादित्य के साथ थे। छः हजार नौ सौ सुवर्ण के श्रेष्ट देवालय तथा अत्यन्त मनोहर तीन सौ चाँदी के देवालय थे। पाँच सौ हस्तिदन्त के देवालय और अठारह सौ काष्ठ के देवालय भी संघ के साथ थे। दो लाख नौ
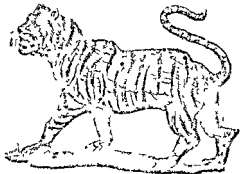
(मु. नि. चि. सरोजिन   विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र नं ३८)

राजकुमार ने मन में सोचा कि इस बानर को खाकर व्याघ्र अपने मनको चला जायगा और मैं अपने स्थान चला जाऊंगा।' पृष्ठ १९२

श्री जिनेश्वरदेव को प्रणाम करने के लिये भाव भक्ति सहित तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय गिरिवर पर श्री चतुर्विध संघ अति उत्साह से चढ रहा है।

पृष्ठ १८४

(मु नि नि संयोजित विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र नं ३७)

सौ रथ, अठारह लाख घोडे, छ हजार हाथी, खच्चर, ऊँट वृषभ आदि तथा स्त्री पुरुषों की सख्या की तो कोई गणना नहीं थी।

देवालय के पताकाओं मे लगी हुई किंकिणियों (घु घरोया) के मधुर शब्द जैसे समस्त देश के सघों को आमत्रित करते हों इस प्रकार लगते थे। विशालस्कन्ध, सुन्दर आकृति तथा अनेक आभूषणों से भूषित हस्ती के समान गतिवाले वृषभ रथको धारण करते थे। देवालय के चारों कोणों पर दिव्य रूप वाले सुन्दर आभूषणों से सुशोभित मृग के समान नेत्रवाली स्त्रिया चामर लेकर खड़ी थी। श्रीजिनेश्वर प्रभु के गीतो को मधुर ध्वनि से गाति हुई चामर को ढुला रही थी।

इस प्रकार स्नात्र पूजा, ध्वजारोपन आदि करता हुआ तथा प्रभावना देता हुआ चतुर्विध श्री सघ एक गाव से दूसरे गाव चलता चलता महाराजा विक्रमादित्य श्री सघ के सहित श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ के समीप पहुच गया। तरण तारण परमपवित्र श्री शत्रुञ्जयगिरीराज का दूर से दर्शन करते ही राजा विक्रमादित्य और सकल सघ के यात्रिक गण भाव उल्लास से नाच उठे और आज का दिन अतीव उत्तमोत्तम मनाने लगे। प्रेम भाव से गिरिराज की वन्दना की। बाद में श्री शत्रुञ्जय की तलेटी में सघ अति उत्साह से धूमधाम पूर्वक आ पहुँचा। याचको को यथेच्छ दान देता हुआ श्री जिनेश्वरदेव को प्रणाम करने के लिये श्रीशत्रुञ्जय गिरिराज पर चढा। स्नात्र पूजा, ध्वजारोपण, आदि

भाव भक्ति से सब कार्य करके श्री जिनेश्वर प्रभु की स्तुति में भक्ति पूर्वक गाने लगे'--

'हृदय बीच जिसके तुम प्रभुवर ! वास बनाकर रहते हो।
उनके पाप नष्ट करके प्रभु, ज्ञान रत्न रख देते हो
सुर असुरों के आनन्द दायी, मुख है कमल सदृश तेरा
जिसको देख कृतार्थ हुये हम नष्ट हुआ दुःख सब मेरा ॥'

'देव, असुर, महीपति आदिके मस्तक समूहों से प्रणाम किया गया है जिसके चरण को-ऐसे शत्रुञ्जय पर्वत के मुकुट मणिस्वरूप श्री ऋषभदेव भगवान की मैं स्तुति करता हूँ ।' हे प्रभो ! जो मनुष्य तुम्हारे चरण कमल का सेवन करते हैं, उनकी देव, दानव, राजा सब कोई भक्ति पूर्वक सेवा करते हैं।※ और भी कहने लगे कि--

"हे प्रभो ! जिसके हृदय मे आप प्रतिदिन वास करते हो, उसके हृदय मे जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नाश होता है उसी तरह आपके निवास से उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। हे नाभिराज पुत्र ! देव, दानव सबको सुख

तनोषि य विभो ! यस्य मानसे वास मन्वहम् ।
तस्य पापानि गच्छन्ति तमासीव दिनोदयात् ॥ १२१४॥८
निरीक्ष्य त्वन्मुखाम्भोज सुरासुर सुखप्रदम् ।
कृतार्थो हम भूप श्री नाभि पाल नन्दन ! ॥१२१५॥८॥

देने वाले तुम्हारे मुख को देखकर मैं कृतार्थ हो गया हूं। हे सुवर्ण के समान शरीर कान्ति धारण करने वाले प्रभो! मुझको अपने चरणों में स्थान दो", इस प्रकार की स्तुति बड़े भक्ति भाव से की। प्रभुदर्शन, चैत्यवंदन आदि करके सूरिश्वरजी के साथ मन्दिर व्यवहार के चौक मे आये।

कई प्रसादों को जीर्ण और कुछ भाग गिरा देखकर राजा विक्रमादित्य ने श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी से कहा कि 'हे गुरु देव, क्या ये प्रासाद गिर जायेंगे ?'

श्री शत्रुञ्जय पर मंदिर का जिर्णोद्धार—

आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी ने कहा कि 'हे राजन्! श्री जिनेश्वरदेवों ने नवीन जिन मन्दिर बनाने का अपेक्षा जीर्णोद्धार मे आठ गुणा अधिक पुण्य शास्त्रों मे कहा है। कई लोग बड़े २ नये मन्दिर अपनी ख्याति के लिये बनवाते हैं। कोई पुण्य के लिये तथा कोई कल्याण के लिये बनवाते हैं। परन्तु नवीन मंदिर बनाने की अपेक्षा जीर्णोद्धार मे इससे आठ गुणा अधिक फल प्राप्त होता है। जीर्णोद्धार से बढकर जिन शासन में दूसरा कोई भी पुण्य कार्य नहीं है। पूर्व काल में इस महातीर्थ पर महाराजा चक्रवर्ती भरत ने श्री ऋषभदेव भगवान का मणि और चांदी मय भव्य प्रासाद बनवाया था। तथा द्वितीय चक्रवर्ती राजा सगर ने इस तीर्थ पर श्री आदिनाथ भगवान का भव्य मन्दिर

भाव भक्ति से सब कार्य करके श्री जिनेश्वर प्रभु की स्तुति भक्ति पूर्वक गाने लगेः--

'हृदय बीच जिसके तुम प्रभुवर ! वास बनाकर रहते हो।
उनके पाप नष्ट करके प्रभु, ज्ञान रत्न रख देते हो
सुर असुरों के आनन्द दायी, मुख है कमल सदृश तेरा
जिसको देख कृतार्थ हुये हम नष्ट हुआ दुख सब मेरा॥

'देव, असुर, महीपति आदिके मस्तक समूहों से प्रणाम किया गया है जिनके चरण को-ऐसे शत्रुञ्जय पर्वत के मुकुट मणिस्वरूप श्री ऋषभदेव भगवान् की मैं स्तुति करता हूँ। हे प्रभो ! जो मनुष्य तुम्हारे चरण कमल का सेवन करते हैं उनकी देव, दानव, राजा सब कोई भक्ति पूर्वक सेवा करते हैं।* और भी कहने लगे कि--

"हे प्रभो ! जिसके हृदय में आप प्रतिदिन वास करते हो, उसके हृदय में जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नाश होता है उसी तरह आपके निवास से उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। हे नाभिराज पुत्र ! देव, दानव सबको सुख

तनोषि च विभो ! यस्य मानसे वास मन्वहम् ।
तस्य पापानि गच्छन्ति तमासीव दिनोदयात् ॥ १२१४॥न
निरीक्ष्य त्वन्मुखाम्भोज सुरासुर सुखप्रदम् ।
कृतार्थों हम भूप श्री नाभि पाल नन्दन ! ॥१२१५॥न॥

देने वाले तुम्हारे मुख को देखकर मैं कृतार्थ हो गया हूं। हे सुवर्ण के समान शरीर कान्ति धारण करने वाले प्रभो! मुझको अपने चरणों में स्थान दो", इस प्रकार की स्तुति बड़े भक्ति भाव से की। प्रभुदर्शन, चैत्यवन्दन आदि करके सूरिश्वरजी के साथ मन्दिर व्यवहार के चौक में आये।

कई प्रसादों को जीर्ण और कुछ भाग गिरा देखकर राजा विक्रमादित्य ने श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी से कहा कि हे गुरु देव, क्या ये प्रासाद गिर जायगे ?'

श्री शत्रुञ्जय पर मंदिर का जिर्णोद्धार—

आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी ने कहा कि हे राजन्! श्री जिनेश्वरदेवों ने नवीन जिन मन्दिर बनाने की अपेक्षा जीर्णोद्धार मे आठ गुना अधिक पुण्य शास्त्रो मे कहा है। कई लोग बड़े २ नये मन्दिर अपनी ख्याति के लिये बनवाते हैं। कोई पुण्य के लिये तथा कोई कल्याण के लिये बनवाते हैं। परन्तु नवीन मंदिर बनाने की अपेक्षा जार्णोद्धार मे इससे आठ गुणा अधिक फल प्राप्त होता है। जीर्णोद्धार से बढ़कर जिन शासन मे दूसरा कोई भी पुण्य कार्य नहीं है। पूर्व काल में इस महातीर्थ पर महाराजा चक्रवर्ती भरत ने श्री ऋषभदेव भगवान का मणि और चादी मय भव्य प्रासाद बनवाया था। तथा द्वितीय चक्रवर्ती राजा सगर ने इस तीर्थ पर श्री आदिनाथ भगवान का भव्य मन्दिर

बनवाया था। पूर्व काल में अनेक राजा, धनाढ्य व्यक्तियों ने बहुत द्रव्यों का व्यय करके अनेक प्रासाद बनवाये थे।

इसके बाद महाराजा विक्रमादित्य ने शत्रुञ्जय तीर्थ में श्रेष्ठ कीर काष्ठकों से प्रासाद का उद्धार करवाया। फिर बाद में वहां से प्रस्थान करके राजा विक्रमादित्य सकल संघ के साथ श्री नमिनाथ प्रभु को प्रणाम करने के लिये गिरनार महातीर्थ पर आये। यहाँ भाव भक्ति पूर्वक स्नात्र पूजा, ध्वजारोपण, आदि कार्य करके हर्ष पूर्वक श्री नमिनाथ भगवान की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे।

इस प्रकार विस्तार पूर्वक दोनों महातीर्थों की यात्रा करके राजा विक्रमादित्य उत्सव के साथ वापस अवंतीपुरी में लौटा। श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वर जी से धर्म कथाओं का श्रवण करते हुए अपने जन्म को सफल बनाया। उत्तम साहसिकों में अग्रणी, राजा विक्रमादित्य न्याय मार्ग से पृथ्वी का पालन करते हुए, दान धर्म में सदा परायण रहने लगा।

विक्रमादित्य की राजसभा में एक दीन मनुष्य का आना—

एक दिन सभा में एक गरीब मनुष्य को आये हुए देखकर तथा कुछ बोलते हुए नहीं देखकर राजा सोचने लगा कि स्खलित गति, दीन स्वर, भिन्न गात्र, अत्यन्त भय—ये सब जो मरण के चिन्ह हैं, वे ही चिन्ह याचक में भी होते हैं। इसके बाद दयार्द्र होकर

उस दीन मनुष्य को राजाने एक हजार स्वर्ण मुद्रा का दान दिया।

जब दान देने पर भी वह दरिद्र मनुष्य कुछ भी नहीं बोला तब राजा विक्रमादित्य ने पूछा कि "तुम बोलते क्यों नहीं हो ?"

तब वह दीन वाणी से बोला "लज्जा बोलने से रोकती है और दरिद्रता मागने के लिये कहती है। इसलिये मेरे मुख से 'दो' इस प्रकार की वाणी नहीं निकलती है"

उस दीन मनुष्य की इस प्रकार की दीन वाणी सुनकर राजाने शीघ्र ही पुन दस हजार स्वर्ण मुद्रा और दिलायी।

कोई चमत्कार करने वाली बात कहो, इस प्रकार राजा के कहने पर वह कहने लगाकि—

'शरीर से बाहर नहीं निकलने वाली आपके शत्रुओं की कीर्ति को कवि लोग असती याने व्यभिचारिणी कहते हैं। परन्तु स्वतन्त्र होकर तीनो लोक में भ्रमण करने वाली आपकी कीर्ति को सती कहते हैं। तात्पर्य यह है कि आपकी कीर्ति अन्या की अपेक्षा अतीव उत्कृष्ट है। अत इसको कोई वश में नहीं कर सकते। क्योंकि सती स्त्री अपने पति के सिवाये आजीवन अन्य किसी के भी वश में नहीं होता।"*

---

* अनिस्सरन्तीमपि देहगभान्कीर्ति परेषाजसता वदन्ति।
स्वैरं भ्रमन्तीमपिच त्रिलोक्यां त्वत्कीर्तिमाहु कवय सतींतु।१२४२।८

दीन मनुष्य की इस प्रकार की श्रेष्ठ अर्थ गाम्भीर्य पूर्ण वाणी को सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर एक लाख स्वर्ण मुद्रा और दी।

दीनपुरुष द्वारा नंदराजा की कहानी का कहना —

राजा के पुनः कहने पर वह दीन पुरुष चमत्कार करने वाली एक बहुत बोध दायक कथा सुनाने लगा। 'राजा लोग कुलीनों का संग्रह करके राज्य करते हैं। आदि मध्य तथा अंत कहीं भी वे विकार को प्राप्त नहीं करते। विशाल पुरी में एक नन्दराजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम भानुमति था। उसके विजय नामका पुत्र था। सकल नीति शास्त्र में पारंगत बहुश्रुत नामका एक मन्त्री था। तथा अनेक शास्त्र के रहस्य जानने वाला शारदानन्दन नामका गुरु था।

राजा सभा में सदा रानी भानुमती के साथ में रहता था। एक दिन राजा को मंत्री ने कहाकि हे राजन! यह आप उचित कार्य नहीं करते हो। क्योंकि—

'मंत्री और गुरुजन जिसके प्रिय प्रिय वचन सुनाता है।
कोश देह धर्मों से वह नृप नष्ट भ्रष्ट हो जाता है॥'*

---

* वैद्योगुरुश्च मन्त्री च यस्य राज्ञः प्रियंवदाः।
शरीरधर्मकोशेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥ १२५६॥ ॥८॥

"वैद्य, गुरु, मन्त्री ये सब जिस राजा के प्रिय बोलने वाले ही रहते हैं, वह राजा शरीर, धर्म, कोष भंडार से शीघ्र ही क्षीण होजाता हैं तथा निम्न वस्तुओं से कुछ दूर रहने पर अधिक फल देने वाले होते हैं–जैसे राजा, अग्नि, गुरु, स्त्री, इन सबका सेवन मध्य भाव से करना चाहिये। अर्थात् इनके अत्यन्त समीप रहने से स्वयं को नुकसान पहुंचाने वाले होते हैं।

तब राजाने कहाकि 'हे मन्त्रिन्! तुमने ठीक कहा परन्तु मैं राणी के बिना एक क्षण भी यहां नहीं रह सकता हूँ।'

तब मंत्री ने कहाकि 'हे स्वामिन्! आप रानीजी का एक सुन्दर चित्र बनवाकर सभा मे समीप रखो।' इस प्रकार मंत्री के कहने पर राजा ने चित्र बनाने वाले को अपनी स्त्री को दिखलाया और चित्रकार ने उसका आबेहूब चित्र बना दिया।

इसके बाद राजाने अपनी रानी के चित्र को शारदानन्दन गुरू को दिखाया। तब गुरु ने कहा चित्र में रानी के जानु साथल के भाग में जो तिल का चिह्न है सो इस चित्र मे नहीं दिखाया है। यह आश्चर्य कारक वचन सुन राजा मन ही मन चकित होकर किसी और का सलाह लिये बिना ही व्यभिचारी की आशंका से क्रुद्ध होकर शारदानन्दन गुरु को मारने का कार्य गुप्त रूप से 'बहुश्रुत' मंत्री को सौंपा और मंत्री ने दीर्घ विचार कर गुरु को भूगर्भ मे छिपा दिया।

इसलिये कहा है कि पंडितों को अच्छा या बुरा काम करते समय उसके परिणाम फल की चिन्ता अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि

अत्यन्त वेग में किये गये कार्यों से विपत्ति आने पर उसका परिणाम शूल के समान हृदय मे पीड़ा देने वाला होता है।

राजा पर नयी आपत्ति—

इसके बाद एक दिन राजपुत्र विजयपालक शिकार खेलने के लिये वनमें गया। वह अशिक्षित अश्व पर आरूढ होकर मृग के पीछे वनमे दौड़ते २ बहुत दूर निकल गया जब अपने सब सेवक बहुत पीछे रह गये तब व्याघ्र को आते हुए देखकर भयसे भयभ्रान्त होकर वह वृक्ष पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर व्यतराधिष्ठित एक वानर था। उसने कहा 'हे राजकुमार! अब कुछ भी डरो नहीं। हम दोनों के यहां रहने पर यह व्याघ्र हम लोगों को क्या कर सकता है?' इस प्रकार वह राजपुत्र और वानर दोनों मैत्री भाव को प्राप्त करके वृक्ष पर बैठे हुए थे। वह व्याघ्र भी उसी वृक्ष के नीचे उपरोक्त दोनों को खाने की इच्छा से बैठ गया।

जब सोते हुए राजकुमार को गोद में लेकर वानर बैठा था तब उस व्याघ्र ने कहाकि हे वानर! मुझको बहुत भूख लगी है। इसलिये राजपुत्र को नीचे गिरा दो जिसको खाकर मैं सुखी होजाऊ और चला जाऊ।'

वानर ने कहाकि 'इस समय यह मेरे आश्रय में है अत' मैं इसे नहीं गिरा सकता हूँ।'

तब व्याघ्र ने कहाकि 'मनुष्य जिसका आश्रय लेते हैं उसीके घातक होते हैं।'

इसके बाद जब राजकुमार जगा और वानर सोने लगा तो

राजकुमार वानर को गोद मे लेकर बैठा। तब व्याघ्र कहने लगा कि 'हे राजपुत्र! मुझको इस समय बहुत भूख लगी हुई है इसलिये यह वानर मुझको देदो और तुम सुखी होजाओ।'

तब राजकुमार ने मन में सोचाकि 'इस वानर को खाकर व्याघ्र अपने स्थान को चला जायगा और मैं अपने स्थान चला जाऊगा।' इस प्रकार सोचकर उस स्वार्थी राजकुमार ने अपनी गोद से उस वानर को नीचे गिरा दिया।

वाघ के मुख मे गिरता हुआ यह वानर हसकर चालाकी पूवक शीघ्रता से पुन राजपुत्र के पास पहुँचा और वहा जाकर अत्यन्त करुण स्वर से रोने लगा।

व्याघ्र ने पूछा कि 'हे वानर! यहा भयस्थान मे आकर तुम क्यों हसे और मित्र के समीप जाकर इस प्रकार क्यों रोते हो?

वानर ने कहा कि 'हे बाघ! मित्र द्रोह के पाप से यह मेरा मित्र नरक मे जायगा। इसीलिये मैं रो रहा हू और कोई कारण नहा।' यह बात सत्य है-ऐसा कहकर व्याघ्र निराश होकर अपने स्थान को चला गया। फिर बाद मे राजकुमार को वानर ने 'विसेमेरा' इत्यादि पाठ सिखा दिया हो इस तरह राजकुमार पागल की तरह 'विसेमेरा' शब्द को ही सतत बकते बकते जगल मे घूमने लगा।

इधर राजकुमार का 'अश्व' व्याघ्र के डर से अपने नगर में जाकर 'हेपा' रव करने लगा। राजपुत्र से शून्य घोडे को देखकर सब राजपरिवार अत्य त चिंतातुर होगया। नौकर चाकर सहित

सहित राजा उसको खोजने के लिये वनमें चल दिया। अनुचरों ने राजकुमार को पागल के समान 'विसेमिरा' इत्यादि शब्द बारम्बार बोलता देखा।

अतः यह भूत आदि से डर गया है यह उन्हें निश्चय हो गया। बस पागल राजकुमार को राजा के समीप ले आये। उसे देखकर राजा अत्यन्त दुःखी हुआ।

इसके बाद अनेक प्रकार के उपचार करने तथा कराने पर भी जब राजपुत्र को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तब राजा बोलाकि 'यदि मैंने शारदानन्दन गुरु का वध कराया न होता तो वह मेरे पुत्र को शीघ्र ही स्वस्थ कर देता।' इस प्रकार राजा अपने अविचार से किये गये कार्य पर पश्चाताप करने लगा।

तब मन्त्री ने शारदानन्दनगुरु से ये सब वृतान्त कह सुनाया। और शारदानन्दन की कही हुई उक्ति राजा से आकर इस प्रकार कही कि 'हे राजन्! मेरी एक पुत्री है जो सर्व शास्त्रों में पारगत है। वह मत्रों के द्वारा आपके पुत्र को स्वस्थ कर देगी।

इसके बाद पर्दे के अन्दर एक भाग में कन्या वेषधारी शारदानन्दन को और दूसरे भाग मे राजा आदि सब लोगों को मन्त्री ने बैठाया।

राजाने कहाकि—हे पुत्री मेरे पुत्र को स्वस्थ करदो।

तब वह कन्या वेषधारी शारदानन्दनगुरु इस प्रकार श्लोक कहने लगा कि—

विश्वासप्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि हन्तुः किं नाम पौरुषम् ॥१२०॥८

'विश्वासी जन को ठगने मे है न बहुत कुछ चालाकी।
गोदी मे सोये वानर को-मार दिखाना नालाकी ॥"

"विश्वास किये हुए व्यक्ति को ठगने मे क्या चतुरता? गोद में आरूढ होकर सोये हुए बदर को मारने मे क्या पुरुषार्थ? यह सुनकर वह राजकुमार प्रथम अक्षर को छोड़कर 'सेमिरा' ये तीन अक्षर ही बोलने लगा।

तब कन्या वेषधारी गुरु पुन दूसरा श्लोक बोलने लगाकि —

सेतु गत्वा समुद्रस्य गगासागर सगमे
ब्रह्महा मुच्यते पापै मित्रद्रोही न मुच्यते ॥ १२८१॥८॥

'समुद्र के पुलपर जाकर तथा गगा और सागर के सगम पर जाकर ब्रह्महत्या करने वाला पापसे मुक्त हो सकता है, परन्तु मित्र द्रोही मुक्त नहीं हो सकता। इसके बाद राजकुमार 'मिरा' ये दो अक्षर बोलने लगा। कन्या रूपधारी गुरू पुन तीसरा श्लोक बोले —

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च स्तेयी विश्वास घातक ।
चत्वारो नरकयान्ति यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥१२८२॥८॥

"मित्र का द्रोह करने वाला कृतघ्न, चोरी करने वाला, तथा विश्वासघाती ये चार जब तक इस संसार में चन्द्र और सूर्य हैं तब तक नरक मे ही वास करते है ॥"

यह सुनकर पुन राजकुमार 'रा' यह केवल एक ही अक्षर बोलने लगा तब गुरू ने पुन चौथा श्लोक कहाकि —

'चाह सही कल्याण की है तो राजन! कुछ दान करो।
देकर दान सुपात्र जनों मे-धर्म गृहस्थी किया करो ॥'

हे राजन् ! यदि तुम राजकुमार का कल्याण चाहते हो तो सुपात्रों को दान दो। क्योंकि गृहस्थ दान से ही शुद्ध होता है।॥

मन्त्री कन्या के मुख से चारों श्लोक सुनकर विजयपालक राजकुमार बिलकुल स्वस्थ हो गया और राजकुमार के मुख से जंगल में बना हुआ सारा ही वृतान्त राजा एवं प्रजाजन ने सुना तब सब लोग आश्चर्य चकित हुए, तथा विद्वान मन्त्री कन्या की भूरी २ प्रशंसा करने लगे अवसर प्राप्त कर राजाने कहा कि 'हे बालिके ! तुम तो गाव में ही रहती हो तो भी तुम वनके वानर, बाघ तथा मनुष्यों के वे सब चरित्र कैसे जानती हो ?'

तब उस कन्या वेषधारी गुरू ने कहा कि 'हे राजन् ! देवता तथा गुरू की कृपा से सरस्वती मेरी जिह्वा पर है। इसीलिये मैंने तुम्हारी रानी भानुमती के जांघ के तिलको जाना था उसी प्रकार सब कुछ जानती हूँ।'

इस प्रकार कन्या वेषधारी शारदानन्दन गुरू के द्वारा एक एक श्लोक कहने पर क्रमशः एक-एक अक्षर को छोड़ कर वह राजकुमार स्वस्थ हो गया। तथा राजा अत्यंत आश्चर्य करने लगा। पश्चात् उठकर राजा ने पर्दे को हटाकर देखा तो उन्हें कन्या रूप धारी शारदानन्दगुरु ही दिखाई दिये। इन्हें देख कर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ, और मन्त्री तथा गुरू को बहुत सा धन देकर प्रसन्न किया।

॥ राजंस्त्व राजपुत्रस्य यदि कल्याणमिच्छसि।
देहिदानं सुपात्रेभ्यो गृही दानेन शुद्धयति ॥१८३॥८॥

राजा विक्रमादित्य की अपूर्व दानशीलता—

इस प्रकार आश्चर्यकारक 'बहुश्रुत' मत्री की कथा सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर, उसको कोटि स्वर्ण मुद्रा देने की आज्ञा कोषाध्यक्ष को करदी और साथ ही कोषाध्यक्ष को यह भी कहा कि कोई भी याचक मेरे दर्शन के लिये आवे तो उसको एक हजार सोना मोहर दे दें, और जिसके साथ मैं वार्तालाप करूं उसको एक लाख सोना मोहर तथा जिसको मैं इनाम देने को कहूं उसको कोटि सोना मोहर दे दिया करें। इस प्रकार राजा विक्रमादित्य ने जगमे अनन्तदानशीलता की ख्याति प्राप्त की।

इसके बाद एक दिन राजा द्वारा आयोजित दान पुण्य के उत्सव मे अनेक देशों से निमन्त्रित बड़े-बड़े व्यक्ति आये। उस समय अठारह प्रकार की प्रजा को राज्य-कर से मुक्त कर दिया गया और दिक्पालों को बुलाने के लिये अपने चतुर दूतों को भेज दिये।

सिन्धु देव को बुलाने के लिये भेजा गया 'श्रीधर' नाम का ब्राह्मण समुद्र के तीर पर जाकर समुद्र की स्तुति करने लगा कि 'हे जलाधिप ! मैं तुम्हारी स्तुति क्या करूं, क्योंकि ससार के पोषण करने वाले मेघ भी तुम्हारे यहा याचक हैं। तुम्हारी शक्ति का क्या कहना ? तुम ही लक्ष्मी के उत्पत्ति स्थान हो। तुम्हारी महिमा मैं क्या बोलू। क्योंकि जिसका द्वीप महीनामसे प्रसिद्ध है। तुम्हारी शक्ति का वर्णन कैसे करूं। क्योंकि जिसके क्रोध से सारे संसार का प्रलय ही हो जाता है।'

तब प्रत्यक्ष होकर प्रसन्न समुद्र श्री अधिष्ठायक सिन्धु देव ने आदर पूर्वक श्रीधर को कहा कि राजा दूर रहने पर भी सतत मेरे समीप में ही रहता है। क्योंकि मित्र का भाव रहने के कारण दूर रहने पर भी सूर्योदय होने पर कमल, तथा चन्द्रोदय होने पर कुमुद जैसे अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हैं। तुम ये चार श्रेष्ठ रत्न लो और मेरे मित्र राजा विक्रमादित्य को देना और इन रत्नों का यह प्रभाव कहना कि प्रथम रत्न इच्छित सम्पत्ति देने वाला है, दूसरा इच्छित भोजन के योग्य वस्तु देने वाला है, तृतीय इच्छानुसार सैन्य देने वाला है तथा चतुर्थ इच्छानुसार सब आभूषणों का देने वाला है।'

इसके बाद उन चारों रत्नों को लेकर वह ब्राह्मण पीछे लौटकर आ गया और वे चारों रत्न राजा को देकर सिंधुदेव की कही हुई उन सब रत्नों की महिमा कह सुनाई। अत्यन्त देदिप्यमान उन रत्नों को देखकर प्रसन्न होकर राजा ने उस ब्राह्मण से कहाकि 'इन रत्नों में से अपनी इच्छा के अनुसार तुम कोई एक रत्न लेलो।'

ब्राह्मण ने कहा कि 'मैं परिवार से पूछ कर आऊं।' घर आकर उस ब्राह्मणने अपने कुटुम्ब के आगे उन रत्नों की सारी महिमा कह सुनायी।

तब पुत्र ने कहा कि 'सैन्य देने वाला मणि लूंगा,' स्त्री ने ने कहा कि 'मैं भोज्य वस्तु देने वाला मणि लूंगी।' पुत्रवधु ने कहा कि 'मैं भूषण देने वाला मणि लूंगी'। ब्राह्मण ने कहा कि 'मैं द्रव्य देने वाला मणि लूंगा।'

इस प्रकार जब कुटुम्ब में कलह होने लगा और एक मता नहीं हो सका तब ब्राह्मण ने विक्रमादित्य महाराज को अपने कुटुम्ब के सब कलह का हाल कह सुनाया।

राजा अत्यत प्रसन्न होकर उन चारों को संतुष्टि के लिये तत्काल ये चारों रत्न ब्राह्मण को दे दिये। इस प्रकार याचकों को मन की इच्छानुसार दान देता हुआ राजा विक्रमादित्य दूसरे कर्ण के समान विश्व मे विख्यात दानी हुआ। एक ससार के अनुभवि कवि ने ठीक ही ललकारा है—

"तुटेकु सधाइए, रुठेकु मनाइए,
भुखेकु जीमाइए, बहोत सुख पाइए।"

पाठकगण! इस प्रकरण के अन्दर राजा नन्द की रोमाच कहानी का हाल पढ चुके है। जिसमे राजा नन्द द्वारा किये अविचार पूर्ण गुरु हत्या का आदेश दिया जाना तथा मत्री बहुश्रुत द्वारा बुद्धिमान से गुरु शारदानन्दन को युक्ति पूर्वक बचाना आदि, तथा विजयपालक राजकुमार द्वारा वानर के साथ विश्वास घात का प्रसंग उपस्थित होकर अन्त मे उसका पागल होना तथा उसी गुरु शारदानन्दन के द्वारा पुन ठीक होना इस कारण से पुत्र की स्वास्थ्यता के कारण राजा नन्द का प्रसन्न होना।

राजकुमार विजयपाल के द्वारा वानर के साथ किये गये विश्वासघात से पाठक गणों को बोध होना परमावश्यक है तथा वानर जैसे पशु द्वारा शरण में आये हुए का पालन करने जैसी अद्भुत उदारता का भी बोध होना नितान्त आवश्यक है इसी

कारण शास्त्रकारों ने 'विश्वासघात-महापाप' नामक उक्ति को महानता दी है। हमें वास्तव में किसी भी प्राणी के साथ कभी भी विश्वासघात न करने का प्रयत्न करना चाहिये। पाप का भयंकर फल हरप्राणी को भोगना ही पड़ता । किसी कविने ठीक ही कहा है —

"आया जग मे आयके बुरे न करना काम।
बन्दे मौज न पावसी, बिरथा हो बदनाम॥"

आगे महाराजा विक्रमादित्य की अपूर्व उदारता का हाल आप इस प्रकरण में पढ़ गये हैं और महाराज को समुद्र का अधिष्ठायक सिंधु देव की ओर से महान महिमा वाले रत्नोंका तनिक मोह मनमें न रख दीन हीन श्रीधर ब्राह्मण को चारों ही रत्न देकर उदारता का परिचय दिया इससे महाराजा की दानशीलता का पूर्ण परिचय मिलता है ।

अब पाठकगण आगामी प्रकरण में राजा द्वारा प्रजाकी शुभ रूपसे रक्षा के लिये रात्री को नगर चर्चा देखने निकलना इत्यादि रोमांचकारी हाल पढ़ेंगे।

बयालीसवाँ प्रकरण

"नर जन्म पाकर लोक मे, कुछ काम करना चाहिये !
अपना नहीं तो पूर्वजों, का नाम करना चाहिये ॥"

एक दिन महाराजा विक्रमादित्य अपने सभी सामन्तों के साथ राज्य-सभा मे विराज रहे थे। आपने अपने सभी राज्य कर्मचारियों से अपनी प्रजा के दु ख-सुख की बात पूछी। साथ ही आपने अपने सुयोग्य मंत्री भट्टमात्र से भी यही प्रश्न किया। आपने अपने मन्त्री भट्टमात्र से यह भी पूछा कि 'हे मंत्रीश्वर ! कोई भी राजा अपनी प्रजा को किस प्रकार सुखी रख सकता है ? राजाको अपनी प्रजा के सुख के लिये क्या क्या करना चाहिये ? तुम इस पर सविस्तार प्रकाश डालो ।'

मंत्रीश्वर ने उत्तर दिया.—हे राजन् ! राजा और प्रजाका सम्बन्ध पिता-पुत्र का है। अतः जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को सुखी रखने के लिये उसके साथ प्रेम का व्यवहार करता है तो प्रेम वश वह पुत्र अति प्रसन्न रहकर पिताकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करने हेतु सदा तैयार रहता है। अगर पिता जरा भी क्रूरता वश होकर पुत्र को डाटता-फटकारता है तो उसके उत्तर मे पुत्र भी पिता की ओर उसी भाव से क्रूरता का प्रदर्शन कर हठ और ढीटाई दिखाता है।

अतः हे राजन् ! राजा को भी अपनी प्रजा को सुखी रखने

के लिये एक सुखी पिता-पुत्र की तरह प्रजा को प्रेम की दृष्टि से देखना चाहिये । अगर राजा क्रूरता से प्रजा को देखेगा तो प्रजा भी राजा से असंतुष्ट होकर सदा दुःखी रहेगी ।

विक्रमादित्य का वेश-परिवर्तन कर नगर निरीक्षण—

राजाने कहाकि हे मन्त्रीश्वर मैं सब बातों की परीक्षा करना चाहता हूं । ऐसा कहकर सभा विसर्जन की । एक समय वेष बदल कर नगर बाहर ईख के खेत मे गया । ईख की रक्षा करने वाली एक वृद्ध स्त्री से राजा कहने लगा कि 'हे माता मैं बहुत प्यासा हूं। इसलिये मुझको थोड़ा ईख का रस पीने के लिये दो ।' तब वह स्त्री एक ईख को हाथ में लेकर उससे बोलीकि 'हे भाई मैं ईख का रस निकालती हूं, तुम अपना हाथ नीचे रखो और ईख का रस पीओ। उस ईख रस को पीकर राजा का पेट भर गया । तथा महल में जाकर मन्त्रीश्वर को ये सब समाचार कह सुनाया और महाराजा मन मे सोचने लगाकि "ईख के अन्दर भरपूर रस होता है और उससे अच्छी आमदनी भी होती है तथापि खेतका मालिक राज्य कर नहीं दे रहा है तो अब से ईख के खेत पर राज्य कर डालना चाहिये । अथवा ईख के खेत का पालक मुझको कुछ नहीं देता है इसलिये ईख के खेत का हरण कर मैं ले लूंगा ।"

ऐसा विचार कर क्रूर भाव से वेष बदल कर पुनः दूसरे दिन उसी ईख के खेत मे गया, और ईख के खेत की मालिका से

कहने लगाकि 'मुझको प्यास लगी है इसलिये शीघ्र तुम मुझको ईख रस पीने के लिये दो।' तब वह बुड्ढी एक ईख को हाथ में लेकर उसका रस निकालती हुई बोली कि 'भाई हाथ नीचे रखो और रस पीओ।' परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी उनमें से कल की अपेक्षा बहुत कम रस निकला।

तब विक्रमादित्य ने पूछाकि 'हे माता कल ही मैंने एक ईख में से बहुत सा रस पीया था। आज इतना रस क्यों नहीं निकल रहा है?'

स्त्री ने कहाकि 'कल तक राजाकी दृष्टि अच्छी थी और आज शायद राजा की दृष्टि क्रूर होगई होगी।'

महल में जाकर ये सब समाचार राजाने मन्त्री से कहे।

तब भट्टमात्र ने कहाकि हे राजन्! यह सौम्य दृष्टि का प्रत्यक्ष चमत्कार देखो।'

राजाने कहाकि हे भट्टमात्र! तुम्हारा कथन सत्य और निःशंक है।

इसके बाद राजाने कहाकि 'लकड़ियां बेचने वाला को मारने की मेरी इच्छा है।'

भट्टमात्र ने कहाकि उन लोगों की भी ऐसी इच्छा होगी। फिर वेष बदल भट्टमात्र और राजा, दोनों बाहर निकलकर लकड़ी बेचने वाला को, देखकर, अमीने, कहाकि राजाविक्रमादित्य आज मर गया है।

लकड़ी बेचने वाले ने कहाकि 'अच्छा हुआ क्योंकि आज हमें लकड़ों का मूल्य अधिक मिलेगा।' इस प्रकार राजा और मंत्री वहां से और आगे चले और नगर से बाहर आये। राजाने पुनः मन्त्रीश्वर से कहाकि 'अब अहिर रवारी की स्त्री का सन्मान करने की मेरी इच्छा हो रही है।

भट्टमात्र ने कहाकि 'उन लोगों की भी ऐसी ही शुभ इच्छा होगी।' फिर बादमें भट्टमात्र तथा विक्रमादित्य दोनों बाहर गये। और एक वृद्ध रवारी को देखकर मंत्री कहने लगेकि 'राजाविक्रमादित्य आज मर गया है।'

यह बात सुनकर वह गोरस के पात्रों को तोड़कर उसी समय अत्यन्त रोदन करने लगीकि 'हे वत्स विक्रमादित्य! करुणा सागर!! तुम कहां चले गये। तेरे बिना यह पृथ्वी अब कौन पालन करेगा। इस प्रकार उसको रोदन करती हुई देखकर राजा प्रगट हुआ और उसको अपने महल लेजाकर बहुत सा धन देकर उसका सम्मान किया।

राजा से बहुत धन प्राप्त करके वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और पुनः प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र ही अपने घर चली आई।

इन उपरोक्त दोनों घटनाओं से महाराजा विक्रमादित्य को यह निश्चय होगया कि जिस मनुष्य की जैसी भावना होगी उसे वैसा ही फल मिलेगा। नीति के अनुसार यह भी ठीक ही कहा है कि "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।"

महाराजा को यह भी निश्चय हो गया कि रक्षक और आश्रित के परस्पर स्नेह भाव होने पर ही दोनों सुखी रह सकते हैं। अगर स्वय ही अपने दोष कोई न देखकर केवल दूसरों के दोषों को निकाले तो दोनों की आत्मा को शांति के बदले महान् दुख ही प्राप्त होता है। अत सज्जन लोग सदा प्रथम अपने दोषों को ही स्वीकार करते हैं। जैसे,

"बुराबुरा सबको कहे, बुरा न दीसे कोय।
जो घट खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय।।"

इसके बाद राजाविक्रमादित्य न्याय मार्ग से उदार आशय करके समस्त पृथ्वी का पालन करने लगा। अवन्ती में इस प्रकार न्याय नीति से प्रजाका पालन करता हुआ राजाविक्रमादित्य दानशीलता तथा तपस्या की भावना करने लगा।

एक दिन रात्रि में पुन राजाविक्रमादित्य वेष बदलकर लोगों के समाचार जानने के लिये नगर में भ्रमण करने लगा। एक श्रेष्ठी के घर पर चौरासी दिया को देखकर वह अत्यन्त विस्मित हुआ।

इसी प्रकार दूसरे दिन भी रात्रिमें भ्रमण करता हुआ उसी घरमें चौरासी दीपों को देखकर पुन आश्चर्य चकित हुआ और विचारने लगाकि 'क्या इस श्रेष्ठी के घर पर चौरासी से न अधिक और न कम दीपक जलते हैं इसका क्या कारण है' कुछ भी कारण ज्ञात नहीं हो रहा है। इस प्रकार सोचकर प्रात काल राज सभामें उस श्रेष्ठी को बुलाकर लोगों के समक्ष महाराजा ने उन

चौरासी दीपकों का कारण पूछा।

तब श्रेष्ठी कहने लगाकि 'हे राजन् ! मेरे घरमें यह आचार है कि जितनी स्वर्ण मुद्राएँ मेरे घरमें रहे उतने ही दीपक रहते हैं। इसलिये रात्रि में घर पर में चौरासी दीपक जलाता हू। अतः आप मुझपर क्रोध न करें।'

तब राजाने हसकर कहाकि 'तुम अभी तक कोटीश्वर नहीं हुए इसका मुझको खेद है यह कहकर राजाने कोषाध्यक्षको बुलाकर सोलह लाख सोना मोहरे उसको और दिलाई। क्योंकि —

"सज्जन पुरुष एक वे ही हैं जो स्वार्थ छोड़कर परोपकारमें तत्पर रहते हैं। वे सामान्य व्यक्ति हैं जो अपने स्वार्थ के साथ साथ परोपकार करते हैं। वे मानव राक्षस तुल्य है जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के हित को नष्ट करते हैं। परन्तु जो मनुष्य बिना प्रयोजन दूसरे के हित को नष्ट करते हैं उनको तो अधमाधम ही कहना उचित है।"*

इसके बाद राजाविक्रमादित्य की कृपा से वह श्रेष्ठी कोटीश्वर होगया। तथा राजा भी अपने नगरको इस प्रकार समृद्ध देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपने राज्यों को जीतकर देश से सात व्यसनों को निकाल दिया। वे सात व्यसन ये हैं,—

* एक सत्पुरुषा परार्थनिरता स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत स्वार्थाविरोधेन च।
तेऽमि मानव राक्षसा परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के जानी महे ॥१२४१॥न

१ जुआ खेलना, २ मास खाना, ३ मदिरा पान करना, ४ शिकार खेलना-करना, ५ वैश्यागमन करना, ६ चोरी करना, और पर स्त्री सेवन करना, ये सात व्यसन जगत मे अतिशय घोर नरक को देने वाले हैं।

व्यसन उन्हें कहते हैं जो आत्मा को आपत्ति में डालें, या आत्मा के सद्गुण को ढक देवे, अर्थात् आत्मा का कल्याण न होने देवे। बुरी आदत को भी व्यसन कहते हैं। व्यसन सेवन करने वाले व्यसनी कहलाते हैं और वे ससार में बुरी दृष्टि से देखे जाते है।

१—जुआ खेलना—रुपये पैसे और कोड़ियें वगैरह से मूठ खेलना और हार जीत करते हुए शर्त लगाकर कोई काम करना, वह जूआ कहलाता है। जुआ खेलने वाले जुआरी कहलाते हैं। जुआरी लोगों का हर जगह अपमान होता है। अपनी जाति के लोग भी उनकी निंदा करते है और सरकार उन्हें दड देती है।

२—मास भक्षण—जीवों को मारकर अथवा मरे हुए जीवों का कलेवर खाना मास खाना कहलाता है। मास खाने वाले हिंसक और निर्दयी कहलाते हैं।

३—मदिरापान—शराब, भाग, चरस, गाजा वगैरह नशीली चीजों का सेवन करना मदिरा पान कहलाता है। इनके सेवन करने वाले शराबी और नशेबाज कहलाते हैं। शराबियों को धम-कर्म और भले बुरे का कुछ भी विचार नहीं रहता और

पुण्यकार्य का भङ्ग, अपकीर्ति ये सब विक्रमादित्य के राज्य में कभी भी नहीं होते थे।

एक समय कुछ चोर नगर में रात को चोरी किया करते थे परन्तु दिन में धनिकों-सा वेष धारण करके नगर में फिरा करते थे। सुवर्ण बाजार, मणि बाजार और वस्त्र बाजार के लोग आकर राजा से कहने लगे कि चोरों ने हमारा बहुत सा धन चुरा लिया है। इस पर राजा ने चोरों को पकड़ने के लिये सब चौराहों पर चौकीदारों को नियुक्त किया। परन्तु बहुत अन्वेषण करने पर भी चोर पकड़े नहीं जा सके।

इसके बाद राजा सोचने लगा कि सामर्थ्य रहने पर भी यदि राजा पीड़ित होती हुई प्रजा का रक्षण नहीं करता है तो उसका नरक में पतन होता है। क्योंकि दुर्बलों का, अनाथों का, बाल वृद्ध, तपस्वी तथा अन्याय से पीड़ितों का राजा ही रक्षक है। अर्थात् एकमेव राजा ही इन लोगों का आधार है। कहा भी है—

"राजा जनता से कर लेकर, चोरों से रक्षा नहीं करे।
स्मृति कहती है तब वह राजा उसी पाप से कभी मरे।।"⊛

⊛ लोकेभ्यः करमादाता चौरेभ्य स्तान्न रक्षिता।
तदीयैर्लिप्यते राजा पातकैरिति हि स्मृतिः ॥१३५२॥

लोगों से 'कर' लेने वाला, परन्तु चोरों से रक्षण नहीं करने वाला राजा चोरी के पाप से युक्त होता है। इस प्रकार स्मृति में कहा है।"

विक्रमादित्य का वेष परिवर्तन कर चोरों को पकड़ने के लिये निकलना—

ये सब विचार करके राजा तलवार लेकर अकेला ही रात्रि में चोरों को पकड़ने के लिये घर से बाहर चल दिया। क्योंकि सिंह शकुन, चन्द्रबल अथवा धन सम्पत्ति नहीं देखता है। वह एकाकी भी लक्ष्य से भिड जाता है, क्योंकि जहा साहस है वहा सिद्धि भी प्राप्त होती है।

राजा गुप्त रूप से भ्रमण करता हुआ माणिकचौक मे पहूँचा और विचारने लगा कि प्राय चोर यहा अवश्य आते रहते होंगे। वह राजा धीरे धीरे चलते रत्नचौक में पहुचा तो पीछे से आते हुए मनुष्यों को देख कर विचारने लगा कि 'यदि आते हुए चौकीदार मुझको नहीं पहचान कर प्रहार कर बैठे तो मेरी क्या गति होगी?' फिर बाद में ये आने वाले चोर ही हैं ऐसा हृदय मे निश्चय करके राजा ने भी अपने आपको चोर रूप बनाकर चोर का जैसा नाम रख लिया।

विक्रमादित्य का चार चोरों से मिलन—

इसके बाद जब वे सब चोर उस चौक पर आकर एकत्रित हो गये और राजा से मिले तब राजा ने पूछा 'कि तुम लोग इस

समय किस प्रयोजन से कहा जाते हो ?

उन चोरों ने कहा कि 'आज हम लोगो ने मेघश्रेष्ठी के घर मे विदेश से आये हुए बहुत धन को देखा है। इसलिये हम लोग उसका हरण करने के लिये जायेंगे। क्योंकि हम चोर हैं और धन चाहते हैं। तुम कौन हो! तथा किस प्रयोजन से कहा जाते हो?'

तब राजा ने कहाकि 'मैं प्रजापाल नामका ससार प्रसिद्ध चोर हूँ। मैं आज राजा का कोप देख आया हू। जो तेल मूग आदि बेचकर कष्ट से धन इकट्ठा करता है उसका धन हरण करने से निश्चित शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। क्योंकि जो कोई किसी को मारता है तो मरनेवाले का एक क्षण ही दुःख होता है। परन्तु धन का हरण करने से तो पुत्रपौत्र के साथ साथ जीवन पर्यन्त उसको कष्ट होता है। परन्तु राजा के घरमें तो विना परिश्रम के ही बहुत धन प्राप्त होता है। इसलिये उसको धन चोरने से अल्प दुःख होता है।

तब चोरों ने कहा–हे चोर! तुमने सत्य कहा है। इसलिये अब हम लोग राजा के घर में ही चोरी करने के लिये जायेंगे।'

राजाने कहा–'चोरी के धनमें तुम चारों का ही भाग है या दूसरे का भी ?

तब चोरों ने कहा कि 'विक्रमादित्य का व्यवहार बहुत कठिन है। इसलिये मस्तक के कटने के भय से उसके चौकीदार आदि कोई भी चोरी में सहाय नहीं करते हैं।

विक्रमादित्य जो इस समय चोर के रूप में था यह कहने

लगा कि 'तुम लोगों ने ठीक ही कहा है। परन्तु यदि तुम लोगों की रुचि होतो मैं भी साथ साथ चलू ?'

तव उन लोगों ने कहाकि 'भाग देने से चोरी मे कोई कमी नहीं होती। इसलिये तुम भी हमारे साथ ही चलो, अब तो हम लोग राजा के महल में ही चलेंगे।'

चोर रूप में रहे हुए हुए राजा ने पूछा कि 'तुम लोगों में क्या क्या शक्ति है ?'

एक चोर कहने लगाकि 'मैं गन्ध से घर के भीतर की वस्तुओं को जान जाता हू।'

दूसरा कहने लगाकि 'मैं हाथ से स्पर्श करते ही अत्यन्त मजबूत ताला तथा कपाटों को खोल देता हू या कमल के नाल के समान तोड देता हू।'

तीसरे चोरने कहाकि 'मैं जिसका शब्द एक बार सुनता हू उसका सौ वर्ष तक और उनके बाद भी उसे शब्द द्वारा पहचान लेता हू।'

चौथा चोर, कहने लगाकि 'मैं सब पशु पक्षियों की भाषा जानता हू।'

वे चारों चोर कहने लगे कि 'तुम्हारे मे कौनसी शक्ति है ?'

तब वह चोर रूप मे रहा हुआ राजा कहने लगाकि 'मैं जिसके बीच में रहता हू, उसको राजा से कोई भी डर नहीं रहता है।'

तब प्रसन्न होकर चोरों ने कहाकि 'तुम भाग्य से मिल ही गये हो अब बडे बड़े धनिकों के घर म धन का अपहरण करेंगे।'

विक्रमादित्य सोचने लगा 'कि अभी इन लोगों को तलवार से मार दूं। पुनः सोचने लगा कि व्यर्थ ही इन लोगों को मार डालना अच्छा नहीं। पहले गुप्त रूप से इन लोगों का चरित्र देख लेना चाहिये। पीछे युक्तिपूर्वक अपना कार्य करूंगा। क्योंकि जो काम पराक्रम से नहीं हो सकता उसको उद्योग या कोई उपाय से करना चाहिये जैसे कौवे ने सुवर्ण के हार से कृष्णसर्प को भी मार दिया था।'

विक्रमादित्य का चोरों के साथ चोरी करना

इसके बाद राजमहल का किला आदि उलांघ करके राजा के महल में जाकर राजा ने चोरों से धीरे धीरे कहा कि 'हे गन्ध ज्ञानी! इस महल में क्या है? यह तुम ठीक २ बताओ।'

तब उसने गन्ध से जान करके कहाकि 'इस घरमें पितल, ताम्र आदि बहुत हैं दूसरे में चांदी तथा तीसरे में सुवर्ण और चतुर्थ में रत्न राशि है। इस प्रकार सब कुछ उसने बता दिया।

तब राजा ने कहाकि अपन कोटिमूल वाले मणि का ही हरण करेंगे। इसलिये हे ताले को स्पर्श से ही खोलदेने वाले! तुम ताला को हाथ से स्पर्श कर खोल दो। तब उसने स्पर्श से ही ताले को क्षण भर में खोल दिया। पश्चात् उसमें चोरी करने के लिये वे लोग प्रवृत्त हो गये। उस समय बाहर सियालियों ने शब्द किया।

इस शब्द को सुनकर शब्द ज्ञानीने कहाकि यह सियाल कहता

है कि 'धनका मालिक साथ में ही है, तब तुम लोग चोरी कैसे करते हो ?

शब्द ज्ञानी के ऐसा कहने पर सब लोग चोरी करने से रूक गये। तब विक्रमादित्य कहने लगाकि 'राजा सर्वदा सातवीं मजिल पर सोता है। वह यहा कैसे आयाया ? सियाल व्यर्थ ही बोलता है। अथवा यह पशु पक्षि की भाषा पहिचानना नहीं जानता तुम लोग यह रत्नराशी शीघ्र ही लेलो।'

इसके बाद जब पुन वे लोग दिवार भित्ती तोड़ने लगे तब शब्दज्ञानी पुन बोलाकि सियल कहता है कि—'गृहस्वामी देख रहा है। इसलिये इस चोरी को छोड दो।

इस प्रकार सुनकर सब लोग फिरसे रूक गये, तब विक्रमादित्य कहने लगाकि 'हम लोगो के बीच मे कोई भी इस गृहका स्वामी नहीं है, यह सियाल तो व्यर्थ ही बोल रहा है, तुम लोग रत्न-राशि को लेलो।'

जब पुन वे सब चोरी करने लगे तब शब्द ज्ञानी पुन. कहने लगाकि सियार कुत्ते से कह रहा है कि तुम राजा के घर से उत्तम भोजन करते हो तब तुम क्यों नही राजा को चोरी का समाचार देते हो, मैं समझ गया कि नीच व्यक्ति ऐसे ही कृतघ्न होते हैं।

तब कुत्ते ने कहाकि बीच में ही स्वामी मौजुद है, तब भला, धनकी चोरी कैसे हो सकती है ?'

यह सुनकर जब वे सब डरकर इधर-उधर भागने लगे। तब विक्रमादित्य ने कहा 'कि राजा यदि मध्य में है तो भी मैं जिसके बीचमें रहता हू उसको राजा से कोई डर नही होता। तब

फोगट तुम लोग क्यो डरते हो ? पशु पक्षियों के शब्द पर मूर्ख लोग विश्वास किया करते हैं। बुद्धिमान् नहीं, यह सुनकर चोरोंने अच्छी तरह से चोरी की और वहा से चोरों ने एक एक रत्न की पेटी लेकर घर चल दिये।

उस समय राजा कहने लगाकि 'हम लोगों के बीच में गृहस्वामी नहीं है, सियार झूठ ही बोलता था। हम लोगों को रत्न से भरी हुई एक एक पेटी हाथ लगी।'

चोरों के साथ पुन मिलन का गुप्त सकेत

इसके बाद माणिकचौक पर आकर जब चोर घर जाने लगे तब राजा ने कहा कि 'फिर सब भाई कैसे मिलेंगे ?'

उन लोगों ने कहा कि 'सन्ध्या समय मे हमारा पुन यहा ही मिलन होगा।'

राजा ने कहा कि 'यहा तो सैंकडों आदमी बराबर रहा करते हैं। इसलिये पहचानने में कठिनाई पडेगा।'

तब उन लोगों ने कहाकि जिनके हाथ में बिजौरा हो उन्हीं को तुम अपना साथी समझना।' इस प्रकार सकेत करके वे चोर अपने घर चल दिये।

राजा भी अपने महल में आकर उस रत्न की पेटी को गुप्त स्थान में रखकर सोगया। प्रात काल बद जन के मगल शब्दों से उठा। तथा पच परमेष्ठि नमस्कार—नवकार महाम त्र जपकर के तथा प्रात काल की धर्म क्रिया करके सभाजनों से शोभायमान सभा में गया।

इधर कोषाध्यक्षने प्रात काल ज्योंही कोश-गृहमे प्रवेश करते ही देखा तो भित्ती टुटी हुई दीखी।

ज्यों ही वह मणियों को देखने के लिये कोशगृह के बीच में गया तो पाच रत्न पेटियों चुराई हुई देखकर वह सोचने लगाकि 'जिसने इन पेटियों की चोरी की है वह बहुत बलवान् है इसलिये मैं भी एक पेटी को गायब कर राजा के समीप जाकर पेटियों के चुराये जाने के समाचार सुनाऊगा।' इस प्रकार सोचकर उसने अत्यन्त ऊंचे स्वर में कहा कि किसी ने भंडार की दिवार तोड कर रत्न की पेटियां चुरा ली हैं। चौकीदार! सिपाहियों ! शीघ्र दौडो ॥

इसके बाद कोषाध्यक्ष सहित सब लोगों ने वह स्थान देख और वे लोग राजा के आगे जाकर कहने लगे कि रत्न की पेटिया चोराई गई है।

हो त

चोरी

इसके बाद चौकीदारोंने समस्त नगर में स्थान-स्थान पर खोज की। परन्तु जब चोर कहीं भी नहीं मिले तो घर में आकर बैठ गये।

तब एक चौकीदार की स्त्री ने पूछा मुख उदास क्यों है ?'

तब चौकीदार ने रत्न पेटी की चोरी हो समाचार सुना दिये और महाराजा ने आज का दण्ड तुम लोगों को देना होगा इसीलिये आज

"कायर कभी न

धीर बनो आपत्ति में-धीरज हा

स्त्री कहने लगी कि 'तुम हृदय में कुछ न करो।

कायर होने से कभी भी कार्यसिद्ध नहीं होता; क्योंकि सदाचारी, धीर,धर्म पूर्वक दीर्घ दृष्टि वाले तथा न्याय मार्ग का अनुसरण करने वाले, लक्ष्मी जाय अथवा रहे उसका सोच नहीं करते।' मैं एकाकी हूं, असहाय हूँ, कृश हूँ, परिवार रहित हूँ, इस प्रकार की चिन्ता सिंह को स्वप्न में भी नहीं होती। बुद्धिमान् लोग भूतकाल की चिन्ता नहीं किया करते। भविष्य की भी चिन्ता नहीं किया करते। वेतो केवल वर्तमान की ही चिन्ता करते रहते हैं। निर्दय हृदय वाले चोर तो बराबर ही नगर में चोरी करते हैं। जब राजा क्रोधित [illegible] आपको शिक्षा देना चाहता है। इसलिये कहा है कि 'कार्मै [illegible], सर्पमें क्षमा, स्त्रियों में काम की शान्ति, [illegible] निवालों में तत्त्व का चिन्तन, तथा राजा का मित्र होना [illegible] किसने देखा है या सुना है ?

अपने घर [illegible] सम्पत्ति राजा को देकर कहो कि 'मैं जीविका के [illegible] अन्यत्र जाता हूं; आप सेवकों के ऊपर इस प्रकार नाराज [illegible] हैं जिससे अब हम लोग आपके समीप नहीं रह सकते [illegible]

स्त्री के [illegible] कार्यपूर्ण सुझाव पर वह चौकीदार राजाके समीप गया और [illegible] कि 'हे स्वामिन् आप सेवकों से असतुष्ट हो गये हैं इस [illegible] अब दूसरी जगह जाऊंगा।'

राजा [illegible] कहा कि 'हे चौकीदार डरो नहीं चोर, लोग पकड़े जायं या न [illegible] जायं, भले ही चोरी करते रहें, परन्तु तुमको कोई डर नहीं [illegible] तुम स्वस्थ हो जाओ और माणेकचौक पर

जाओ और बिजौरा हाथ में रखे हुए जो कोई हो उन्हें पकड़ कर यहाँ ले आओ।'

राजा की आज्ञा प्राप्त कर प्रसन्न होकर वह चौकीदार वहाँ से निकलकर माणिकचौक पर गया। क्योंकि 'पतिव्रता स्त्री अपने पति की, नौकर स्वामी की, शिष्य गुरु की, पुत्र पिता की आज्ञा में यदि संशय करें तो वे अपने व्रत को खण्डित करते हैं।

इधर वे चोर लोग दूसरे दिन की शाम को वहाँ आये। और अपने रात्रि में मिले हुए 'प्रजापाल' नाम के बन्धु की राह देखने लगे। इसी समय काक का शब्द सुनकर शब्द ज्ञानी कहने लगा कि काक कहता है कि 'तुम लोग शीघ्र यहाँ से भाग चलो तुम लोगों को पकड़ने के लिये लोग आरहे हैं।

तब अन्य तीन चोर कहने लगे कि हे भाई! अभी तुम चुप होजाओ, रात में यदि तुम्हारी बात मानी होती तो रत्न की पेटी कैसे मिलती? अभी यदि यहा से चले जायेंगे तो पुनः वैसा अपूर्व निडर बन्धु कैसे मिलेगा?' इस प्रकार के विचार कर वे लोग प्रसन्न होकर उसकी राह देखने लगे।

इसके बाद चौकीदार ने जब हाथ में बीजोरा वाले मनुष्यों को देखा तो उन्हें पकड़ कर ले जाने लगा।

तब वे चोर लोग कहने लगे कि 'तुम पूरा धन हम लोगों से ले लो और हम लोगों को छोड़ दो, अथवा हमारे घर में जो वृद्ध हैं वे राजा के समीप आयेंगे।

चौकीदार कहने लगा कि राजा की हमें ऐसी ही आज्ञा है कि

बीजोरे से युक्त आदमियों को खूब मजबूती से बाँध कर यहा ले आओ।' इसके बाद चौकीदार ने उन चारों को राजा के समीप ले जाकर खडे कर दिये।

तब राजाने कहाकि 'रत्नों की पेटी शीघ्र दे दो। अन्यथा तुम लोगों को चोरी का दण्ड दिया जायगा।' यह सुनकर चोरों ने सोचाकि 'रात्रि का बन्धु यही तो है।' ऐसा समझकर शीघ्र ही राजा के आगे चार रत्न की पेटिया लाकर रखदीं।

राजाने तब क्रोधित होकर कहाकि 'और दो पेटिश कहा गई ?'

तब चोर कहने लगेकि हम लोगों ने चार ही पेटिया ली थीं। अधिक नहीं ली।'

तब राजा ने कहाकि 'हे चोकीदार ! तुम इन चारों को शीघ्र शूलीपर चढा दो।'

तब चौकीदार राजा की आज्ञा पूर्ण करने के लिये चला। उस समय शब्द ज्ञानी ने चुपचाप कहाकि रातमे इस राजाने अपने साथ चोरी करते हुए कहा था कि मैं जिनके साथ रहूंगा उनको राजा से डर नहीं होता। यह सब विचार कर उन लोगों ने चौकीदार से कहाकि हम लोगों को राजा के पास पुन एक वार ले चलो। हम लोग सभी पेटियाँ दे देंगे।

जब वे सब राजा के समीप लाये गये तब उनमे से शब्दज्ञानी ने राजा से कहाकि रात्रिमे चोरी करने के लिये एक आदमी ने हम लोगों से मिलकर कहा था कि जिसके बीचमे मैं रहूँगा उसको

च रो ने राजाजी से प्र्‍ा ...चारी का छोडकर दूसरी किसी भी चीज की माग कर सकेहै। पृष्ट २२१

(मु नि वि मयाजित ... विक्रम चरित्र दूसरा भाग चित्र न ३९)

राजा से डर नहीं होता, तब फिर हम लोगों की आज मृत्यु क्यों हो रही है? इसका कारण ज्ञात नहीं होता !! उन दोनों पेटियों का मूल्य हमारे घर से ले लीजिये, जब राजा रुष्ट होता है तब लोगों का क्या क्या हरण नहीं करता ?' तब एक पेटी जो राजाने गुप्त रक्खी थी सो पेटी सभा में लाकर हाजर की बाद में राजाने कोषाध्यक्ष से कहाकि दूसरी मणि की पेटी तुम ले आओ। तब राजा के डर से खिन्न होकर कोषाध्यक्ष ने शीघ्र ही दूसरी पेटी लाकर देदी।

तब राजा कहने लगाकि 'साथ साथ चोरी करने के कारण तुम लोग मेरे बान्धव ही होगये, इसलिये तुमको अब कुछ डर नहीं रहा। परन्तु तुम लोगों से एक बात की याचना करता हूं।'

तब चोरों ने कहाकि चोरी को छोड़कर दूसरी किसी भी चीज की याचना कर सकते हो।

तब राजाने कहाकि चोरी के पाप से लोग यहाँ तथा परलोक में भी बहुत दुःख प्राप्त करते हैं। इस संसार रूपी वनमें भ्रमण करते रहते हैं। कहा भी है कि —

"काम न आता एक है-धीरज बुद्धि गुणमें-
पर धन चोरी से वृथा-होता है सब धन॥'

"दूसरे की चीजों के चुराने वाले की इस लोकमें व परलोकमें धर्म, धैर्य बुद्धि, इन सभी की चोरी (कमी) होजाती है। चोरी करने वाले के पुरुषो राजा से पकड़े जाते हैं तथा चोरी का त्याग करनेसे चोर भी स्वर्ग को जाता है, जैसे रौहिणेय चोर स्वर्ग को गया।

इह लोके परलोके च धर्मो धैर्यं धृतिर्मतिः।
मुष्णता परकीयं स्वं मुषितं सकलं त्विदं ॥४८६॥

इसपर उन चारों चोरों ने चोरी नहीं करने का नियम जिन्दगी भर के लिये राजाके समीप ले लिया। इससे वे लोग सुखी हो गये। बादमें प्रसन्न होकर राजाने उन चोरों को जीविका के लिये सम्मान पूर्वक पांच सौ गांव दे दिये। बादमें चारों चोरों ने अपने जीवन को बदलकर धर्म की ओर तथा सदाचार की ओर ध्यान बढ़ाया इससे वे चोर फिर से बड़े यशस्वी तथा राजा शाही ठाट-बाट भोगते हुए राज्य के मालिक बने।

"जब तुम आये जगतमें, जगत हँसत तुम रोय।
अब करणी ऐसी करो। तुम हँसो जग रोय॥"

तपागच्छीय-नानाग्रन्थ रचयिता कृष्ण सरस्वती बिरुद-
धारक-परम पूज्य आचार्य श्री मुनि सुंदरसूरीश्वर
शिष्य पंडितवर्य श्री शुभशीलगणि विरचिते
श्री विक्रमादित्य विक्रम चरित्रे श्री
शत्रुंजयोद्धारकरण स्वरूप वर्णनो
नामाष्टमः सर्गः समाप्तः

नाना तीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारी—शासन सम्राट्
श्री मद्विजयनेमिसूरीश्वरस्य पट्टधर कवि रत्न
शास्त्र विशारद-पीयूषपाणि जैनाचार्य श्री
मद् विजयामृत सूरीश्वरस्य तृतीयशिष्य
रत्न वैयावच्चकरण दक्ष मुनि
श्री खान्तिविजय वस्य शिष्य
मुनि निरंजनविजयेन कृतो
विक्रम चरित्रस्य हिन्दी भाषायां
भावानुवाद : तस्य
अष्टमः सर्गः समाप्तः

॥ अष्टम् सर्ग समाप्तम् ॥

तेंयालीसवाँ प्रकरण

(नवमा सर्गका आरंभ)

देवदमनी

सुरतसे कीरत बडी, बीन पंख उड जाय;
सुरत तो जाती रहे किरत कबुह न जाय ॥

पंचदण्डछत्र कथा

संवत प्रवर्तक महाराजा विक्रम के शासनकालमें अवंती-नगरी बहुत ही आबाद थी. विश्वभरमें वह प्रसिद्ध थी. उस नग-रीमें **नागदमनी** नामकी एक घाँसन रहती थी. वह बहुत ही चालाक, बुद्धिमान और मालदार भी थी. दूर दूर तक वह अति प्रसिद्ध थी. जनतामें उसके बारेमें कई प्रकारकी बातें होती थी. **नागदमनी** कई आश्चर्यकारक बातों से अपनी जिंदगी बिताती थी. सारी जनतामें उसकी चालाकी और बुद्धिके लिये सन्मान था।

उस **नागदमनी** को एक सुंदर स्वरूपवान कन्या थी. उसका नाम **देवदमनी** था. वह अपनी मातासे भी सवाई थी. क्रमश युवावस्था को प्राप्त कर वो अनेक कलाओमें निपूण हुई। सारी अवंतीनगरीमे **देवदमनी** की चालाकी, नीडरता और बुद्धि-

बल आदि गुणों की खूब खूब प्रशंसा होने लगी. अवंती के राजमार्ग पर ही उसकी सुंदर हवेली शोभा दे रही थी. उसके वहाँ बहुतसी दासियाँ थी. उसका समय आनंद-प्रमोद से बीत रहा था।

कोई एक दिन अवंतीपति महाराजा विक्रमराज हस्ती पर आरुढ हो लाव-लश्कर एवं दरबारियों को साथमें लेकर नगर बाहरके बगीचेमें आनंद-विनोद करने पधारे, बहुत देर तक बागमें आनंद-विनोद मनाकर वापिस नगरीमें लौट रहे थे. राज, दरबारियों के साथ महाराजा की सवारी घाँसीवाडेमें **नागदमनी** घाँसनकी जो सुंदर हवेली थी उसके पासमें आ पहुँची; उस समय **देवदमनी** की एक दासी हवेली के पासमें झाडू-बहारी लेकर

राजनोकर दासीको धूल उडानेकी मना कर रहा है। - चित्र नं. १

कचरा निकाल रही थी, उससे धूल बहुत उड़ रही थीं, राज–नौकरने आगे आकर उस दासी से कहाः–

नौकर–बाई! धूल मत उड़ाओ।

दासी–क्यों?

नौकर–महाराजा अवंतीपति की सवारी इस मार्ग पर आ रही है, देखो!

नौकर और दासी की बातें सुनकर देवदमनी बोली,

देवदमनी–क्या! महाराजाने अपने मस्तक पर "पंचदण्डवाला छत्र" धारण किया हुआ है?

देवदमनीके मधुर वचन सुनकर महाराजा मन ही मन–विचार–उलझनमें पड़ गये, वे सोचने लगे, क्या पचदण्डवाला छत्र भी हो सकता है? आजतक न कहा देखा, न कहीं सुना यह आश्चर्यकारक बात का विचार मनमें राजा करते रहे, सवारी राजमहल आ पहुँची.

देवदमनीके वचन महाराजाके कानोंमें गुँज रहे थे, क्यों कि जगतमें पूर्वे कभी नहीं सुनी हुई नयी बात कहीं सुनी जाय तो उस बातको जानने के लिये सभीको बहुत इच्छा–इन्तेजारी रहती है. महाराजा सोचते थे कि मुझे पचदण्डवाले छत्रका वृतान्त सूझमें नहीं आता।

महाराजाने राजमहलमें आकर देवपूजा करके पश्चात् शीघ्र

ही भोजन किया, बादमें महाराजाने देवदमनीको बुलानेके लिये अपने नौकर को भेजा. नौकरने नागदमनीके घर जाकर कहा—

नौकर—हे नागदमनी! आपकी देवदमनी नामक कन्या को महाराजा बुला रहे हैं।

नागदमनी—क्यों बुला रहे है?

नौकर—आपकी पुत्रीने महाराजाके आगे कुछ न कुछ अधिक बात की होगी! उस अधिक बोलनेवाली को मेरे साथ शीघ्र ही राजसभामें भेजो।

नागदमनी—एसी छोटीसी बातों में महाराजा यदि कोप करेगें तो, फिर प्रजा को बोलनेका कुछ अधिकार ही नहीं रहेगा, महाराजा उदार आशय और प्रजावत्सल होने चाहिए; जैसे पुत्र-पुत्रियाँ मा-बाप के आगे कुछ भी कहे तो भी क्या मा-बाप कोप करते हैं?

नौकर—आप की पुत्री को महाराज दंड नहि देगें, क्यों गभराते हो? महाराजा आप की पुत्री से "पंचदंड वाले छत्र" का वृतान्त पूंछना चाहते हैं।

नागदमनी—राजाजी से जाकर कहो कि, "विनय के बिना कदापि विद्या प्राप्त नहीं होती है"

नौकर—विना विलंब किये आप की पुत्रीको महाराजा के पास भेजिये।

नागदमनी उलझनमें पड़ गई थी, वह मनमें सोचने लगी कि बालक-आदिके अज्ञानमूलक वचन सुनकर महाराजा कोपकर कुछ र बैठे तो क्या होगा? इस तरह मन ही मन व्याकुल होने गी, बादमें राजनौकर से बोली—

नागदमनी—चलो! मैं ही महाराजा की सेवामें हाजीर होती हूँ।

दोनों ही राजसभामें आये। नागदमनीको देख कर विक्रमने कहा

राजा—तेरी पुत्री के वचन सुननेसे मुझे कोप नहीं हुआ है, पंचदंड वाले छत्र का स्वरूप जानने की इच्छा हुई है; इसीलिये मैंने तेरी पुत्री को राजसभामें बुलाई थी। जब तुमही आई हो तो तुम ही वह पंचदंड वाले छत्र का वर्णन करो।

नागदमनी—हे राजन्! आप उस पंचदंड वाले छत्र का वर्णन जानना ही चाहते हो तो, सर्व प्रथम आप के राजमहलसे मेरी हवेली तक सुंदर गुप्त-सुरंगमार्ग बनवाइये, फिर मेरी पुत्री के साथ चौपाट-चौसर बाजी खेलिये उसमें आप उससे तीन वार जीतो, बादमें उससे व्याह करना. हे राजन्! मेरी पुत्री आप को पांच आदेश-कार्य बतायेगी, वह परिपूर्ण होने बाद मैं या मेरी पुत्री आपको पंचदंड वाले छत्र का सविस्तार वर्णन कह सुनायेगी।

महाराजा—नागदमनी! आज तक तीनों भुवनमें 'पंचदंडवाले छत्र' न कहीं देखा है, अथवा न कहीं उसका वर्णन सुना है; इस लिये तेरी पुत्री को राजसभामें भेजना, मैं शीघ्र तुम्हारे कथनानुसार

सब कार्य करवाऊंगा। इस प्रकार महाराजा का कथन सुनकर, वह नागदमनी राजसभासे अपने घर गयी।

महाराजा दूसरे दिन मनोहर सिंहासन पर विराजमान हो कर, अपने नौकरोंको बुलाकर नागदमनी के कथनानुसार सब कार्य अति शीघ्रतासे करने की आज्ञा दी। महाराजाकी आज्ञानुसार राजमहल और नागदमनी की हवेली के बीचमें प्रचुर धन खर्च करके एक सुंदर गुप्त मार्ग शीघ्रातिशीघ्र बनवाया गया।

महाराजाने देवदमनी को बुलाने के लिये अपने नौकर को उसके घर भेजा।

नौकर—हे नागदमनी! आप के कथनानुसार महाराजाने सब कुछ करवाया है, इसलिये आपकी पुत्री को राजसभामें महाराजा बुला रहे हैं, मेरे साथ शीघ्र भेजिये।

नागदमनीने देवदमनीको नौकरके साथ सज-धज के जानेका कहा.

अपनी माताके कथनानुसार देवदमनी सुंदरसे सुंदर वस्त्र-अलङ्कार आदि शृंगार सज धज कर राजसभा में जाने के लिये घर से रवाना हुई। एक तो युवावस्था है, साथ ही साथ सुंदर वस्त्र-आभुषण आदि शृंगार सज, देवकन्या के समान शोभती हुई देवदमनी जब राजसभामें आयी तब सभी सभाजन आदि उसकी दिव्य रूप-कान्ति देखकर क्षणभर उसके प्रति स्थिर दृष्टि से देखने लगे, सब लोक मनमें विचार करने लगे. कि क्या! यह कोई देवलोकसे मे अप्सरा

तो यहाँ नहीं आयी' सारी सभा के लोक उसके रूपके प्रति आकर्षित हो गये।

एक अनुभवी कविने ठीक ही ललकारा है—

"एक नूर आदमी, हजार नूर कपडा;
लाख नूर टापटीप, क्रोड नूर नखरा ॥"

महाराजा और देवदमनी द्यूत खेल रहे हैं।

उस देवदमनी से महाराजाने चोपाटबाजी-चौसर खेलने का आरंभ किया, खेलते खेलते समय बितने लगा दोनों की दाव-पासें बरोबर समान ही पड़ने लगी, महाराजा उलझनमें पड गये और मनमें विचारने लगे कि यदि यह मुझे जीत जायेगी तो जगतमें मेरी हाँसी होगी और लोक में मेरी निन्दा होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं; इस प्रकार का विचार कर महाराजाने अग्निवैताल का स्मरण किया, शीघ्र ही अग्निवैताल हाजीर हुआ, अब महाराजा उत्साहपूर्वक बाजी खेलने लगे, मध्याह्न होने लगा और भोजन का समय बीत रहा था, तब महामंत्री आदिने महाराजासे भोजन के लिये निवेदन किया।

महामंत्री—हे राजन्! भोजन का समय हो चुका है, इसलिये आप श्रीमान् भोजन के लिये पधारिये।

महाराजा-हे मंत्री! आप सब लोक भोजन कर लिजीए; मुझ को यहाँ से उठने का अभी अवसर नहीं है।

मंत्रियोंने कहा हे स्वामी! भोजन नहीं करने से आप श्रीमान् का शरीर क्षीण हो जायगा; यह समस्त पृथ्वी आप ही के आधार पर है, इत्यादि मंत्रीगण बारं बारं कहते रहे, तब पिछले पहोरमें जब एक घण्टा दिन शेष रहा तब तक महाराजा चौसर बाजी खेलते ही रहे, तदन्तर रात्रिभोजन के पाप के डर से चालु चौसर बाजी पर वस्त्र आच्छादित कर के भोजन करने के लिये उठे।

मार्कण्ड महर्षिने फरमाया है, सूर्यास्त के बाद जलको रुधिर-लोही केसमान और अन्नको मांसके समान-बराबर मार्कण्ड महर्षिने कहा है, इस लिये बुद्धिमान मनुष्य को सर्वथा रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए ।[1]

---

1 'अस्तं गते-दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते, ।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा ॥ श्लो. ९-११ ॥

अवंतीपति महाराजा भोजन कार्य निपटा कर देवदर्शन आदि नित्य-कार्य करके संध्या समय बितने पर, जब कि निशादेवीने सारी पृथ्वी पर अपना राज्य फैला दिया था, उस समय वीर शिरोमणि विक्रम महाराजा अपने विषयमें प्रजाजन का क्या क्या अभिप्राय-विचार है वह जानने के लिये नगरी में चुपचाप भ्रमण करने चले ।

अवंतीनगरीके चौरासी चौटे बाजारमें भ्रमण करते करते रात्रिमें प्रजाजन के मुखसे यह सुना कि "महाराजाने देवदमनी के साथ चोपाटबाजी-द्यूत् खेलने का जो आरंभ किया, वह अविचारी कार्य है, क्या राज्यमें महाराजा को अच्छी शिक्षा-सलाह देनेवाला कोई मंत्री आदि नहीं है? सच ही यह द्यूत खेलने का आरंभ कर के महाराजाने अपनी मूर्खता प्रदर्शित की है, यह देवदमनी महान् देवी उपासक हैं, उसने तो सिकोतरी नामक देवी को सिद्ध की है, इसलिये उसको कोई पराजित नहीं कर सकता है।'

एक वृद्धने कहा कि भाई! राजालागों की रीति नीति विचित्र होती हैं, वे बडे लोग कहलाते हैं। एक कविने ठीक कहा हैं—

"राजा, जोगी, अगन, जल, इनकी उलटी रित;
डरते रहिए परसराम ओछी पाले प्रित ॥"

अपने प्रजाजनों के मुखसे, कई विचित्र बातें सुन कर मनमें कुछ खिन्न होकर- महाराजा राजमहलमें आये, सुख शैया में सोये किन्तु विचारवश जागृति अवस्था में ही रात्रि बिताई

सच ही कहा है कि—

> चिंतासे चतुराई घटे, घटे रूप और ज्ञान;
> चिंता बड़ी अभागणी, चिंता चिता समान. ॥

दूसरे दिन नगरीमें महाराजाका भ्रमण—

दूसरे दिन प्रात काल होते ही महाराजा अपने ईष्ट देवादि का स्मरण करते सुखशैया से उठे और शौच आदि प्रात कार्य किये बाद में देवदर्शन-देवपूजादि नित्यकार्य पूर्ण कर महाराजा राजसभाम पधारे, छडीदारने छडी पुकारी. सभाजनोंने खड़े होकर राजाजीका सन्मान किया. देवदमनी तो राजसभामें प्रथम से ही आकर महाराजा की प्रतीक्षा कर रही थी. महाराजाने आते ही पूर्व दिनकी अपूर्ण रही हुइ चौसरबाजी खेलने का आरभ किया. पूर्व दिन की तरह ही सारा दिन बीता, तीसरा प्रहर बीतने पर शेष दिन रहा तब मंत्रीगण के आग्रह से बाजीपर वस्त्र ढाककर महाराजा भोजन करने के लिये उठे । भोजन आदि सब कार्य निपटाकर रात्रि होते ही वेश बदल कर नगरीमें भ्रमण करने चले, भ्रमण करते महाराजा कारु और नारु[1] के पाडेमें आ

---

१ कारु और नारु की जाति के नाम —

> चाक्रको मोचिको लोहकारो रजक गच्छिको ।
> माछक शूचिको भिल्लो जालिक कारवो नव ॥ स. १–४८ ॥
> स्वर्णकृन्नापितः [illegible] कैदुम्बिकस्तथा
> मालिक काछिकश्चापि ताम्बुलिकश्च सप्तम ॥ स. १–४९ ॥
> मन्थव कुम्भकार स्यादेते च नारु स्मृता

कारु —१ चक्रिक-चक्र करनेवाले सुतार वगेरे, २ मोचि, ३ लोहार,

[illegible]

पहुँचे। वहाँ पर घूमते घूमते लोगोंको परस्पर बातें करते महाराजाने इस तरह सुना कि– 'महाराजाने देवदमनी के साथ द्यूत खेलनका आरंभ करके व्यर्थ ही दुःखको आमंत्रण दिया, यह दुष्ट-बुद्धि देवदमनी राजाजीको अवश्य कष्टमें डालेगा, यह तो देवताओं का भी दमन करती है, "इसीलिये लोग उसको देवदमनी कहते है।" देवदमनी के बारेमें अनेक प्रकारकी विचित्र बातें सुनकर महाराजा अपने महलमें आये, सुख शैयामें सोये किन्तु नींद नहीं आयी, शैय्यामें सोते सोते विचारने लगें, कि 'इसको मैं किस तरह पराजित कर शकु; कोई उपाय सूझमें नहीं आता।' थकावट के कारण अन्तिम रात्रिमें थोडी नींद आयी.

प्रात काल होते ही मंगलशब्दों के साथ महाराजा जागृत होकर, नित्यकार्य और देवदर्शन–पूजा आदि कर राजसभामें आये, पूर्व दिनकी तरह चौसरबाजी खेलने लगे. खेलते खेलते आज तीसरा दिन भी बीता,–सायकाल का भोजन, देवदर्शन आदि नियकर्म कर रात्रि होते ही हमेशाकी तरह अघेर पछेड़ा ओढकर नगरीमें भ्रमण करने निकले।

घूमते घूमते महाराजा नगरीके बाहर आये, जहा पर गन्धवाहा नामका स्मशान है उसके पासमे ही एक देवकुलीका-

---

४ रजक-धोबी, ५ घांसी-तेली, ६ माछिक–मच्छीमार, ७ दर्जी, ८ भिल्ल ९ शिकारी, यह नव कारु जाति कही जाती है।

नारु :—१- सोनी, २ हजाम, ३ कंदोई—मीठाइवाला ४ खेती करनेवाले-किसान, ५ फूलमाली, ६ काछिक-खटिक तरकारी-शाक बेचनेवाला, ७ ताम्बुलिक–पानवाला, ८ गन्धर्व–गायक वर्ग ९ कुम्भकार–कुम्भार यह नव नारु जाति कही जाती हैं।

छोटा मन्दिर था, उस देवकुलीकामें से डमरु की आवाज-ध्वनि सुनाइ दीया। आवाज की गजके अनुसार महाराजा उस देव कुलीकामें आकर देखते हैं, तो वहाँ पर एक भयावह भयकर रूप देखा।

जैसेकि–ऊँटके समान ओष्ट, बिल्ली के समान आँखे, गधे के समान दाँत, कुदाल के समान नख, पथर के समान अगुलियाँ, बहुत बडा पेट, चिपटा हुआ नाक, मूषक–चूहे के समान कान, काली भयानक काया, और घृणा उपन्न करनेवाला मुख, विचित्र प्रकारके मस्तक पर केश, ढाल और तलवार युक्त दानो हाथ, गलमें मानवकी खोपरियाँ की माला, हूकारा करता पृथ्वाको कम्पित करनेवाला और अश्वपर आरूढ साक्षात् यमके समान महा भयानक रूप–आकृति को देखकर वीरशिरोमणि महाराजाने आश्चर्य प्राप्त किया,

क्षेत्रपाल और महाराजा विक्रम चि. नं १

वह भयानक आकृति देवकुलीकामेंसे शीघ्र बाहर आयी तो उसके पीछे पीछे मानों बडी सेना दिखाई देने लगी, महाराजाने उच्च-स्वरसे उसको पूछा कि-आप! कौन है? और कहाँसे आये हैं?

सामनेसे अवाज आयी मैं इस नगरी की प्रतिदिन रक्षा करनेवाला क्षेत्रपाल हूँ।

महाराजाने कहा-मैं परदेशी हूँ मेरा नाम विक्रम है, यदि तुम इस नगरीके रक्षक हो तो इस समय राजाकी रक्षा करो.

तब ज्ञानसे सर्व हाल जानकर क्षेत्रपाल बोला कि 'इस समय राजा देवदमनी की सकट-जालमें फँसा पडा है, भाग्य से ही इस संकटमेंसे राजा का छूटकारा हो जाय. राजा व्यर्थ ही उससे स्पर्धा कर रहा है, उसको देवता अथवा दैत्य-राक्षस भी जीत नहीं सकते है.'

महाराजा-हे क्षेत्रपाल! आप एसा करो कि-जिससे राजा जित जाय, इस कष्ट से उसका छूटकारा शीघ्र ही हो जाय।

क्षेत्रपाल-तुम्हारे आगे कहने से क्या 'लाभ' यदि राजा बलि वगेरह देकर पूछेगा, तो सब बातें कहूँगा।

महाराजा-मैं तुम्हारी बलि आदि देकर पूजा करुंगा, तुम प्रसन्न हो कर, राजा के जय का उपाय बताओ, तब क्षेत्रपालने राजाको पहचान कर कहा कि-हे राजन्! तुमने जो इस देवदमनी के साथ द्यूत-चौसरबाजी खेलने का आरंभ किया है, वह अच्छा नहीं किया, क्योंकि वह दु साध्य है।

महाराजा—क्षेत्रपाल! मैं तो उसके साथ चोपटबाजी खेलने का आरंभ कर चूका है, अब तो मैं प्रतिज्ञाभंग के भयसे उसका त्याग नहीं कर सकता हूँ; मैं तुम को बलि दूँगा, तुम जयका कोई उपाय अभी बतलाओ।

क्षेत्रपाल—देवदमनीके आगे मेरा नाम नहीं लेना, क्योंकि वह देव और दैत्य सबसे दुःसाध्य है।

महाराजा—मैं आपका नाम किसी के आगे नहीं दूँगा।

क्षेत्रपाल—अनेक वृक्षोंसे व्याप्त एक सिद्धसीकोत्तर नामका पर्वत है, वहाँ पर सिद्धसीकोत्तरी नामक देवीका एक मनोहर मन्दिर है, जहाँ सिद्धसीकोत्तरी देवी अपने प्रभाव से रहती हैं; इस कृष्णचतुर्दशीको रात्रिमें वहाँ इन्द्र आवेगा, चौंसठ योगिनीयाँ, बावन वीर, गणाधिप, भूत, प्रेत, पिसाच, आदि अनेक प्रकार के देवता आयेंगे; वहाँ उस सभामें वह 'देवदमनी' अद्भुत नृत्य करेगी. उस समय तुम जाकर गुप्त रूप से रह कर, नृत्य करनेके समय उसके चित्तको क्षोभित-व्याकुल कर उसकी तीन वस्तु हरण कर नगरमें आना, बाद धून-चौसरबाजी खेलते समय इन तीन वस्तुएँ पृथक् पृथक् दिखायेंगे, तो देवताओं को भी दुःसाध्य वह देवदमनी शीघ्र तुमसे पराजित हो जायगी. क्षेत्रपालने कही हुई इन सब बातों को समझकर-मनमें प्रसन्नताको धारण करते हुए, महाराजा विचारने लगे, कि अब मेरे सब मनोरथ सिद्ध हो गये. सच, भाग्यके बिना देव, दानव या मनुष्य-किसी का भी मनोरथ शीघ्र

सिद्ध नही होता। इस प्रकार विचार करते करते अपने सब कार्य सिद्ध हुए मानता हुआ महाराजा अपने महलमें आये. और सुख शैयामें सुखपूर्वक सोये, सोते हुअे शीघ्र ही निद्रा धिन हुए, क्योंकि शिरपर की चिता आज दूर हो गई थी, इससे रातभर आनदसे सोये।

प्रात काल होते ही मंगल शब्दोंसे जागरित हो महाराजाने प्रात कार्य और देवदर्शन पूजन आदि कार्य निपटाकर क्षेत्रपालका आह्वान् कर भक्तिपूर्वक आठ मूटक प्रमाण बलि देकर, नाना प्रकार के सुगधी पुष्पा से क्षेत्रपाल का बहुत ठाठ से पूजन किया। बादम महाराजा राजसभाम आकर देवदमनी के साथ चौसरबाजी खेलने लगे, पूर्व की तरह शामको राज महल म पधारे, भोजन आदि कर कार्य के लिये अग्निवैताल का स्मरण किया, स्मरण करते ही अग्निवैताल हाजीर हुआ और कहने लगा, कि " हे राजन्! क्या कार्य है बताईए "

महाराजाने अग्निवैताल के आगे सब वृत्तात कहा और कहा कि आज कृष्णचतुर्दशी है अभी ही सिद्धसीकोत्तरी के पर्वत पर जाना है, वहाँ पर इन्द्र की सभामें आज देवदमनी नृत्य करने वाली हैं. अग्निवैताल विक्रम महाराजा को कन्धे पर लेकर रात्रिमें सिद्धसीकोत्तरी पर्वतपर आ पहुँचा, इन्द्र की सभामें अदृश्य-गुप्त रूपमें अग्निवैताल और महाराजा चुपचाप आये।

अग्निवैतालके कंधेपे बेठकर विक्रम सिद्ध चौपठेश्वरी पर्वतकी ओर जा रहा है चित्र नं. ९

इन्द्र की सभामें अनेक देवता, चौसठ योगिनियाँ, बावन वीर, अनेक भूत, प्रेत और विविध रूपको धारण करनेवाले राक्षस आदि से भरी हुई थी। सभी के बीचमें देवदमनी सुंदर शृंगार सज-धज और हाव-भाव सहित संगीत के मधुर आलापसे उत्तम प्रकार का नृत्य कर रही थी; उस समय महाराजाने अग्निवैताल को कहा कि—किसी भी तरहसे इसको क्षोभित—व्याकुल करो, तब अग्निवैताल—भ्रमर बनकर नृत्य करती हुई देवदमनी के मस्तक पर से पुष्पको पांवके अंगूठे पर गिराया, अकस्मात् फूलका गिरना तथा भ्रमर को देख कर देवदमनी क्षोभित-सशंकी-व्याकुल हो गई।

देवदमनी का सुंदर नृत्य और मनोहर गीत सुनकर इन्द्र आदि समस्त सभासद् प्रसन्न हुए; इस प्रकार के मधुर आलाप के साथ मनोहर
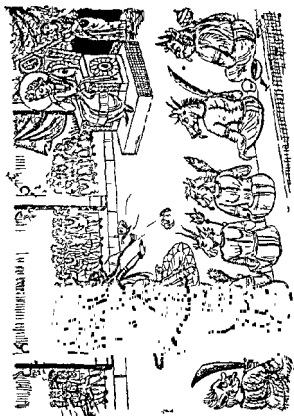
सिद्धाचीकोत्तरी पर्वत पर इन्द्र की सभामें देवदमनीका नृत्य • चि नं. २

नृत्य देख महाराजा विस्मय प्राप्त कर मनमें सोचा, " यदि यह कन्या मेरी गृहिणी नहीं हुई तो नपुसक–हिजडे के समान मेरा जन्म व्यर्थ समझुंगा." इस तरह राजा सकल्प–विकल्प करता रहा.

इन्द्र महाराजाने देवदमनी पर प्रसन्न होकर, एक दिव्य फूलोंकी

माला भेंट दी; देवदमनी जब वह माला अपनी सखी को दे रही थी, उस समय बीचमें से ही अग्निवैतालने माला का हरण कर विक्रमराजा को दे दी। मनोहर आलाप और मधुर गीतो सुनकर फिर इन्द्र महाराजा आदि देवता लोग बहुत संतुष्ट हुए, तब एक श्रेष्ठ नूपुर-झांझर देवदमनी को भेंट दिया, वह झांझर जब अपनी सखीको देने लगी तब उसको भी अग्निवैताल ने हरण कर राजा को दिया.

देवदमनीने पुनः उत्साहपूर्ण हो कर मनोहर आलाप के साथ सुंदर नृत्य किया, वह देख इन्द्र महाराजाने पुनः प्रसन्न हो कर एक पानबिडा-ताम्बुल देवदमनी को दिया, वह भी अग्निवैतालने हरण कर महाराजाको दे दिया। इस प्रकार इन्द्र महाराजासे दिया हुआः १ दिव्यमाला, २ श्रेष्ठ झांझर, ३ ताम्बुल ये तीनों वस्तुएं लेकर राजा अग्निवैतालकी सहायतासे अपने स्थान पर चला आया। निश्चिंत होकर महाराजा सुख शैयामें सोये, बहुत रात्रितक जागनेसे प्रभात होने पर भी आज महाराजा जागृत नहीं हुए थे, इतने में देवदमनी सज-धज कर राजसभामें आयी, तब अंगरक्षकने कहा, "अभी महाराजा सोये हैं." तब नौकर के द्वारा देवदमनीने महाराजा को कहा, "यह क्या तमाशा कर रहे हो! तुमने मेरे साथ चौसरबाजी खेलनेका आरंभ किया, और अभी तक निश्चिन्त हो सुखपूर्वक सो रहे हो!" "आज कुछ अधिक नींद आ गई." ऐसा कह कर महाराजाने शीघ्र उसके साथ पूर्वकी तरह चौपटबाजी खेलने का प्रारंभ किया.

चौसरबाजी खेलते हुये महाराजाने कहा, " तुमने मुझको जबर-दस्ती से क्यों उठाया!"

तब देवदमनीने कहा, "मेरे साथ स्पर्धा कर के क्यों सो गये!"

खेलते खेलते छल–कपट से महाराजा नींद आती हो वैसे झोंके खाने लगे, झोंके खाते हुए राजा को देख देवदमनीने कहा, "क्या आपको नींद आती है?" तब महाराजा बोले, "आज सीकोत्तर पर्वत पर–कौतुक देखते रहने के कारण मुझको रात्रिमें निद्रा नहीं आयी, इसी लिये आलस-झोंके आ रहे है." इस तरह बातें कर खेलते खेलते महाराजाने कहा, "सीकोत्तर पर्वत पर इन्द्र की सभामें सुंदर रूप धारण कर एक नर्तक गवैये सुंदर नृत्य करते हुए, भ्रमरको देखकर व्याकुल–चंचल हो गया." ऐसा कह कर जब राजाने फूल की माला दिखाई, तब चित्तमें व्याकुलता प्राप्त कर देवदमनी बाजीके प्रथम दाव–पाशा हार गई। क्यों कि—

"नदी का वेग, हाथी का कान, ध्वजाका वस्त्र इन सब के समान चित्त, धन, यौवन और आयु चचल–अस्थिर है"+

पुन· चौसरबाजी खेलते पूर्व की तरह बातें करते हुए महाराजाने ताम्बुल दिखलाया, तब दूसरी बार देवदमनीने पासेंमें हार प्राप्त की, बादमें पुन· खेलते रहे और महाराजाने बातें करते हुए, जब झांझर दिखलाया तब देवदमनी तीसरी बार भी चौसरबाजी के पासें में शीघ्र हार गई–पराजित हो गई।

क्योंकि सच ही कहा कि—

'बहुत धनाढ्य होने पर भी चिंता से आतुर मनुष्य का चित्त शीघ्रतासे कार्य करते हुये अस्तवस्त–अस्थिर हो जाता है'१

\+ चल वित्त चल वित्त चल यौवनमेव च।
चलमायुर्नदीवेगगजकर्णध्वजाम्नवत् ॥ १०८ ॥ सर्ग १ ॥

१ चिन्तातुरस्य मर्त्यस्य भूरिलक्ष्मीवतोऽपि च।
विसस्थुल भवेच्चित्त कुर्वत· कार्यमञ्जसा ॥ १११ सर्ग १।

'क्षणमे अनुरक्त–प्रेमवान,' विरक्त–अप्रसन्न क्षणमे क्रोधवान, क्षणमें क्षमावान, इस प्रकार मोह अज्ञानवश बालबातमें कपि बदर के समान चचल–विवल हो जाते है, उसके साथ प्रीति कौस काम की'

महाराजाने देवदमनी को चौसरबाजी में तीन बार पराजित कर के उस की माता की साक्षी में बडे उत्सव और धामधूम से विवाह–शादी कर ली देवदमनी के साथ महाराजा का विजय और विवाह के समाचार चारों ओर नगरीमें फैल गये, इस बात को सुनकर सब लोग आनद मनाने लगे नीतिकारने कहा है—

'बालक से भी हित कारक–अच्छी बात का ग्रहण करना चाहिये, अमेध्य–अपवित्र वस्तुसे भी सुवर्ण निकाल लेना चाहिये, नीच व्यक्ति से भी उत्तम विद्या लेनी चाहिये और दुष्कुल–हलके कुल में से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिये २

महाराजाके आदेशानुसार मत्रीगणने ध्वजा-पताका और तोरणों से सारी नगरीको सुशोभित का स्थान स्थान पर नृत्य, गीत आदि कर उत्सव मनाया, सारी प्रजा आज आनदसागरमें स्नान करने लगी, भाट, चारण और याचक गणको महाराजाने बहुत सा दान दिया, चारों और महाराजा की बहुत प्रशसा होने लगी और जय जय कार हुआ.

लोगों का वैसी ही बुद्धि उपन्न होती है, वैसी मति और वैसी ही भावना और सहायक भी वैसे ही मिल होते है, कि जैसी होनहार भवितव्यता होती है।३

२ बालादपि हित ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि॥ ११४। स ६।

३ सा सा सपद्यते बुद्धि सा मति सा च भावना।
सहायास्तादृशा ज्ञेया यादृशी भवितव्यता॥ ११७। स ९।

चुम्मालिसवाँ प्रकरण

रत्नपेटी प्राप्ति के लिए प्रयास—

हे मर्द वो जो काम पर, अपने डटा रहे।
मेदानमें उत्साह से, आगे सदा बढता रहे॥

पाठक गण! आपने गत प्रकरण में देवदमनी के कथनानुसार पचदड वाले छत्र की प्राप्तिके लिए देवदमनी को चौसरमें हराने का रोमाच-कारी हाल पढा है। अब आप महाराजा विक्रमादित्य का साहसपूर्वक उनकी बुद्धिमानीसे देवदमनी के द्वारा बताये गये पाँच आदेशोंको पूर्ण करने की तथा पंच-दड वाले छत्र को प्राप्त करने का हाल ध्यान-पूर्वक पढें.

महाराजा का देवदमनी के साथ बडी धूमधाम से विवाह सम्पन्न हो गया। महाराजा का समय आनद प्रमोदमे बित रहा था.

एक दिन अवसर प्राप्त कर महाराजाने नागदमनी से कहा, "तुम्हारे कथनानुसार तीन बार चौपरबाजीमें तेरी पुत्री को जीतकर प्रतिज्ञा के अनुसार, जैसे विषमेंसे भी अमृत ले लेना चाहिये, इस उक्ति को प्रमाण कर दुष्कुलमें उत्पन्न तेरी पुत्री के साथ उत्सवपूर्वक मैंने विवाह किया. अब तुम पचदड वाले छत्रका स्वरूप कहो और उसको प्राप्त करने का उपाय बताओ."

अवसर पाकर नागदमनीने महाराजा से निवेदन किया, "हे महाराजा! अगर आप अनशीघ्र ही मेरे पाँचों आदेशों को पूर्ण करें तो मैं

भी अपने प्रण को पूरा कर आपको पंचदंडवाला छत्र प्राप्त करवाऊं. अतः आप मेरे बताये अनुसार कार्य करने का प्रयत्न करें." कह कर नागदमनीने कहा, "हे राजन! ताम्रलिप्ति एक बडी सुंदर नगरी है, जिसके महाराजा के महलकी तीसरी मंजिल में एक प्रकाशमान रत्नों की पेटी है; अतः उन रत्नों से पंच दंडवाले छत्र की जाली बनानी होगी, वैसे रत्न आप के खजाने में भी नहीं हैं, अतः आप उन्हें शीघ्र ही ले पधारें"

नागदमनी की यह बात सुन महाराजा विक्रमादित्य अपने कार्य में लग गये. आपने अपनी नगरी की रक्षा का भार अपने सुयोग्य मंत्री भट्टमात्र को सौंप कर नागदमनी के बताये अनुसार ताम्रलिप्ति नगरी की ओर प्रस्थान किया

ताम्रलिप्ति नगरमें प्रवेश—

रास्ते में अनेक वनों, नदियों, पहाडों और ग्रामों को पार करते हुए महाराजा विक्रमादित्य अपने केन्द्र बिन्दु नगर के निकट पहुँचे, दूर से ही महाराजा को ताम्रलिप्ति नगर बड़ा ही आकर्षित करने लगा. नगर की सीमा के पूर्व ही एक सुन्दर बाग आया जो बडा ही सघन एवं सुन्दर था. अगर उसे नन्दनवन कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगा. इस बाग में लवंग, इलायची, दाखे, ईख आदि विविध फल फू आदि के वृक्षसमूह भी सोने में सुगंध का काम कर रहे थे पवन क सुगन्धित शीतल लहरियां प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर देती थी.

महाराजा विक्रमादित्य भी इस बाग से आकर्षित हो देखने की इच्छा से उस बाग में जा पहुँचे. वहाँ जा कर महाराजाने देखा कि यहां नगरके सभी नागरिक एकत्र होकर भोजन बना रहे हैं, यह देख महाराजाने यहाँ किसी भोज या उत्सव आदि के होने का अनुमान लगाया. पर जब महाराजाने नगर के एक व्यक्ति से इसका कारण पूछा तो उत्तर में उसने कहा, "हे भाई! हमारे नगर के महाराजा चन्द्रने बहुत सा धन खर्च करके अपने नगर को रत्नमय ही बना दिया है. नगर में बडे बडे सुन्दर महल हैं। जिसमें चित्रशाला, हाथीदांत की पुतलियाँ हैं जो श्वेत निर्मल जल की तरह सुशोभित होती है. चंद्रोदय के समान सफेद मोतियों की जालियां जगह जगह लगा हुई हैं. इस सब सुन्दरता के रक्षण के लिए महाराजा का आदेश है कि नगर में कोई भोजन न बनाये कारण कि भोजन बनने से नगर में धुंआ होगा और उससे नगर की सुन्दरता के नष्ट होने का भय है." बाद में उस व्यक्तिने महाराजा का अतिथीरूप में स्वागत कर, भोजन करवा कर विश्राम करने के लिए निवेदन किया. इस से राजा और भी अधिक प्रभावित हुआ. वह कहने लगा, "भोजनके बाद वृक्षों की छायामें विश्राम करके सब लोग मध्याकालमें नगरमें चले जायेंगे. हमारे इस नगरकी शोभाकी समानता लंका या अमरावती कोई भी नगर नहीं कर सकता. श्री जिनेश्वर देवों के, शिवजी के और कृष्णजी आदि देवों के सुंदर मन्दिरों के समूहों से कैलास पर्वत के समान धवल नगर अत्यन्त शोभायमान है."

यह सुन कर विक्रमादित्यने सोचा, "अब मेरा अभिलषित

कार्य यहाँ अवश्यमेव सिद्ध हो जायगा. क्योंकि इस प्रकारका नगर, राजा, धनाढय व्यक्ति आदि के देखने से तथा हाथी, अश्व, छत्र, चामर आदि के देखने से और शुभ–मनोहर शब्द सुनने से कार्य सिद्ध होता है, एसा शुकन शास्त्रोंमें कहा गया है." ऐसा विचार करते हुए विक्रमादित्य उद्यानमें भोजन तथा विश्राम कर के नगर के द्वार पर आये. स्थान स्थान पर हाथी, अश्व और गगनचुम्बी हवेलियों को देखता हुवे स्वय राजा अदृश्य शरीर हो कर नगर के मध्यमें घूमने लगे.

इधर राजा चन्द्र भी सब लोगों के साथ प्रसन्नतापूर्वक मध्याकालमें अपने अपने स्थान पर आये. चन्द्र राजाकी कन्या लक्ष्मीवतीने अपने राजमहल की सातवी मंजिलमें जा कर, नगरमें से श्रेष्ठ नर्तकियाँ को बुला कर मनोहर आलाप और संगीत का सुंदर नृत्य कराया. नृत्य चल रहा था; राजपुत्री सुखपूर्वक सुन रही थी, उस समय विक्रम महाराजा अदृश्य रूपसे नगरमें घूमते घूमते वहाँ आये और अदृश्य रूपसे राजमहल की सातवी मंजिल पर जा कर प्रसन्नतापूर्वक मनोहर नृत्य देखने लगे.

बहुत रात्रि तक नृत्य करा कर तथा आदरपूर्वक ईनाम और ताबुल देकर नर्तकियों को बिदा कर के राजपुत्रीने द्वार बन्द करा दिये. विक्रमादित्य रत्नकरंडिटो लेन के लिये महल में गुप्त रूपसे रहे थे.

महाराजा विक्रमादित्य राजकुमारीके महलमें अदृश्य रूपमें रहे, उसी समय रात्रिमें राजकुमारीके पूर्वसंकेतानुसार भीम नामका कोई राजा प्रतिघण्टा दश कोस चलनेवाली सांढनीको राजमहलके निचे रख

कर, लंबे वांसकी सहायतासे राजमहलमें आकर राजकुमारीसे कहा, "हे राजकुमारी! शीघ्र आओ और सांढनी पर बैठकर चलो. समय मत बिताओ अब यहाँसे चलेंगें." तब राजकुमारीने कहा, "हे राजन्! पहले मेरी रत्नपेटीको शीघ्र निचे उतारो, बाद में आऊँगी." तब भीमने उस प्रकार किया.

रत्नपेटीका हरण—

जब वह लक्ष्मीवतीको लेकर निचे उतरने लगा तब विक्रमादित्य विचारने लगा, "यह भीम रत्नसे भरी पेटी और राजकन्याको लेकर शीघ्र चला जायगा." ऐसा सोचकर अदृश्य रूपसे अग्निवैतालकी सहायतासे बड़ी शीघ्रतासे विक्रमादित्यने राजकन्याके मस्तक परका वस्त्रहरण कर लिया. बादमें लज्जाके कारण जब राजकन्या दूसरा वस्त्र लानेके लिये महलमें गई तबतक राजा विक्रमादित्यने अग्निवैतालकी सहायतासे भीमको उठा कर दूसरे देशमें रखवाया और स्वयं उसके स्थान पर खडा हो गया. जब कन्या दूसरा वस्त्र ओढ़ आई तब उसको सांढनी पर चढ़ाकर पेटीके साथ साथ राजा विक्रमने वहाँसे चल दिया.

सांढनीको उज्जयिनीकी ओर जाते हुए देखकर राजकुमारीने कहा, "हे स्वामिन्! पूर्व दिशाको छोड़कर दक्षिण दिशामें क्यों जा रहे हो?"

तब विक्रमादित्यने कहा, "भीलोंकी वस्तीमें भीमपुर नामका एक गाँव है; वहाँ पर अनेक प्रकारके नट, धूर्त आदि रहते है. चतुरंग नामके भीलके घर एक दिन मैं गया था. वहाँ जाकर एक कन्या

महाराजा विक्रम राजकुमारीको साडनी पर चढा कर चले. चित्र नं. ६

और बहुतसा द्रव्य जुआरमें मैं हार गया था, इस लिये यहाँ जाकर धन और तुम्हें देकर मैं ऋणसे मुक्त होना चाहता हूँ."

यह सुनकर वह कन्या डरती हुई मार्गमें अपने कर्मकी निन्दा करने लगी. "मैंने बिना विचार किये ही यह कार्य कर लिया. अब इस मनुष्य से मेरा छूटकारा कैसे हो सकेगा? मैंने सोचा था कुछ, परन्तु हो गया कुछ और ही. मैं अब क्या करुं?" राजकन्या बडे संकट में पड़ गई. सच ही कहा है, 'हरेक प्राणी के सुख या दुखका कर्ता अथवा हर्ता अन्य कोई नहीं है. लोग अपने किये हुए कर्मका ही फल भोगा करते हैं.' अब हृदयमें सन्तोष कर लेना ही ठीक है, क्यों कि जो होनहार है वह होके ही रहेगा. भाग्यको दोष देनेसे क्या लाभ! अब मैं छुट कर कहीं भी नहीं जा सकती.'

उन्मार्ग में चलनेसे वृक्षकी अस्तव्यस्त कंटीली डालियोंसे पाडित होकर वह कन्या बोली, "धीरे धीरे चलो. क्यों कि मेरे शरीरमें वृक्षकी शाखाओंसे पीडा हो रही है."

विक्रमादित्यने कहा, "यदि वृक्षके कण्टकोंसे पीडित होती हो तो मेरे जैसे द्यूतकारके हाथमें पड़ कर क्या सहन कर सकोगी ?" यह सुनकर राजकुमारी मन ही मन अत्यन्त दुःखित होती हुई चुप रह गई.

बहुत तेजगति से चलनेके कारण शीघ्र ही राजा विक्रमादित्य अपने राज्यकी सीमामें पहुँच गये. पर सन्ध्या समय निकट होने से उन्होंने एक नदीके तट पर अपनी साँढनीको बैठाकर दोनों नीचे उतरे. राजाने उस राजकुमारीसे कहा, 'हे राजकुमारी ! मै अब सोता हूँ. तू मेरे पाँव दबा."
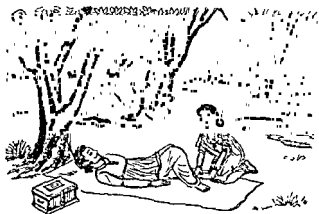
महाराजा विक्रम सो गये और राजकुमारी पाव दबाने लगी

चि. नं. ७

कन्या राजाके पाँव दबाने लगी. थोडे समय बाद दूसे सिंहका शब्द सुनाई पड़ा सिंहके शब्दको सुनकर राजकुमारी राजाको उठाने लगी. और कहने लगी, " यहाँ पर भयंकर शब्द सुन रही हूँ. " तब राजाने उठकर सिंहका शब्द जिस दिशासे आ रहा था उसी दिशामें एक बाण फेंका और पुनः उसी स्थितिमें सो गया

कुछ कालके बाद वह कन्या पुनः बाघका शब्द सुनकर अत्यन्त डरती हुई राजाको जगाकर अत्यन्त गद्गद् कण्ठसे कहने लगी, "अब बाघका शब्द सुननेमें आ रहा है." तब राजाने उठकर बाघके शब्दकी दिशामें बाण मारते हुए बोला, "हे बालिके ! डरो नहो." ऐसा कह कर निर्भय होकर पुन. सो गया.

महाराजा विक्रमने उठ कर शब्दकी दिशामें बाण मारा. चि. नं. ६

।।। प्रात:काल कुमारी को बाण लाने के लिये भेजी. वह मृत सिंह और बाघ के समीप गई और उन्हें मरा हुआ देख कर, बाण उनके शरीरमें से लेकर राजाको दिये, राजाने उन्हें लेकर वापस अपने तूणीर-भाथा में रख लिया.
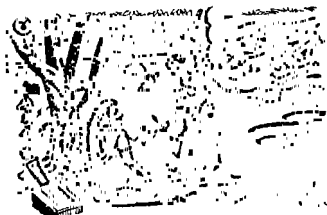
राजकुमारी बाण लेकर आई और राजाको देती है. चि. न ९

राजाने कुमारी को कहा, "हे बालिके! तुम उत्तम भद्र स्वभाववाली हो. मैंने जो यह कार्य किया है, उसे किसी के आगे कहना नहीं."

। यह बात सुन कर राजकन्या अपने मनमें विचार करने लगी, 'यह कोइ निश्चय ही एक उत्तम पुरुष है, इस की धीर व गंभीर वाणी से यह एक वीर पुरुष ज्ञात होता है, सिंह की भांति ही इस के सारे गुण मिलते हैं जैसे कि,

"मैं हूँ अकेला, कोई नहीं है, मेरा साधन जीवन का।
जंगल में सोये सिंहों को, कभी न होता भय तन का"

इस जगतमें जैसे अपनी शक्ति को विना प्रगट किये शक्तिवान मनुष्य को लोगों से तिरस्कार प्राप्त होता है, क्यों कि वही अग्नि, काष्ट में भी होते हुऐ उसका लोग तिरस्कार करते हैं किंतु प्रगट ज्वलित अग्नि का कोई लोग तिरस्कार नहीं कर सकते +

रूपश्री वेश्या राजकुमारी के पास आती है. और अपने यहां ले जाने का प्रयत्न करती है चि. नं १०

इस के वाद वहाँ से सांढनी पर बैठ कर राजकुमारी के साथ राजा लक्ष्मीपुर के उद्यान में पहुँचा। वहाँ नदीके तट पर राजकन्या,

---

+ अप्रगटीकृतशक्ति शक्तोऽपि जनात्तिरस्क्रियां लभते
निवसन्नन्तर्दारुणि लङ्घयो वह्निर्न तु ज्वलित ॥ स ९/१७६ ॥

रत्नकी पेटी और साढनी को छोड़ कर राजा नगर में भोजन सामग्री लेने के लिये गया.

राजकन्या और रत्नपेटी का हरण

इधर उस नगर में रहनेवाली रूपश्री नामकी नगरकी नायिका वेश्या उस उद्यान मे आई, पेटी तथा साढनी के साथ राजकुमारी को लेकर वह अपने घर चली आयी। वह वेश्या रूपश्री मनमें सोचने लगी, "यह कन्या अत्यन्त रूपवती है, इस लिये अब इस के द्वारा मेरे घरमें हमेशा राजकुमार और बडे बडे धनीलोग आवेंगे" वह वेश्या उस राजकुमारीको कहने लगी "मेरे घरमें आये हुए पुरुषों को तुम प्रसन्न किया करो. यहाँ हम लोगों को राजाकी स्त्रियों से भी अधिक सुख होता है"

यह सुन कर राजकुमारी कहने लगी, "मैं दुर्गति देनेवाला तुम्हारा धर्म कदापि स्वीकार नहीं करूँगी. क्यों कि —

'मदिरा मांस खास भोजन है, जिस कुलटा नारी जनका,
नहीं ठिकाना कहीं कुच्छ हैं, जिस अभागिनी तन मनका;
कौन महान पुरुष चाहेगा, उस वेश्या सग वास कभी,
वेश्या के संग रहनेवाले, होते विट नट धूर्त सभी.'

चरपुरुष, भट, चोर, दास, नट, विट, आदि से चुम्बित वेश्या के अधर पल्लव का कौन कुलीनपुरुष चुम्बन करता है? +

\+ कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।
चारभटचोर चेटक नटविट निष्ठीवन शरावम् ॥ स ३/१८२ ॥

। जो अनेक प्रकार के विट समूहों से झूठा है तथा मद्यमांस में नीरत और अत्यन्त नीच, वाणी से कोमल और चित्त से दुष्ट वैश्या को कौन विशिष्ट—सदाचारी पुरुष स्वीकार करता है?[1]

वेश्यायें इसलोक में सदा नीच पुरुषों की सगति करती है; इसलिये वह दूसरे जन्ममें अवश्य नरकगामिनी होती है."

इस प्रकारके अच्छे विचारोंवाली उस राजकुमारीको वेश्याने कोतवाल पुत्रको अर्पण कर दी. राजकुमारी सोचने लगी, "मैं किस प्रकारके संकटमें पड़ गई? अपने पूर्वजन्म से कोई भी व्यक्ति छुट नहीं सकता. मैंने पूर्वजन्ममें ऐसा कौनसा दुष्कर्म किया होगा? जिससे मुझे अत्यन्त दुःख देनेवाली यह विपत्ति प्राप्त हुई है.

'काला करम न रुसीइ देव न दीजइ दोस;
लिखिउं लाभइ सिरतणउं अधिक न कांजइ सोस.'

"प्रातःकाल में तुमसे विवाह करूंगा." ऐसा कह कर उस कोतवाल पुत्रने राजकुमारीको घरके झरोखेमें बैठा कर भोजमानन को वह समान वयके लड़कोंके साथ क्रीडा करनेके लिये समीपके बगीचेमें गया. वहाँ बालकोंके साथ क्रीड़ा करते हुए, बिल्लीके मुखमें एक चूहेको देखकर मिट्टीके ढेलेसे मार कर लड़कोंसे कहने लगा, "तुम लोग मेरे बाहुबलको देखो, क्यों कि मैने अभी एक ही मिट्टीके ढेलेसे चूहेको मार डाला. मेरे समान बलवान संसारमें कोई नहीं है!"

---

[1] या विचित्र विटकोटि निघृष्टा मद्यमांस निरताऽति निकृष्टा
कोमला वचसि चेतसि दुष्टा तां भजन्ति गणिका न विशिष्टाः स. ९ ॥१८४॥

इस लिये कहा है कि तुलाका दण्डमान और दुर्जनका व्यवहार समान ही हैं; क्यों कि ये दोनों थोडेमें ही ऊपर जाते है और थोडे में ही नीचे हो जाते है. किसीने ठीक कहा है—

"तानसेनकी तानमें, सब हान गुलतान,
आप आपकी तानमें, गदृधा भी मस्तान."

इधर कोतवाल के पुत्र के कार्य झरोखे से देखकर अपने पूर्व कर्म की निन्दा करती हुई राजकुमारी सोचने लगी, "एक यह भी पुरुष है, जो अपने इस साधारण कार्य पर भी इस प्रकार अभिमान प्रकट करता हुआ अपने बाहुबल का गर्व कर रहा है. कहाँ यह अभिमानी व्यक्ति और कहाँ वह पहला पुरुष जिसने एक एक बाण में सिंह तथा बाघ को मार कर भी मुझको कहा था कि 'किसी के आगे यह वृत्तांत कहना नहीं.' अपने गुणों का वर्णन करना और न करना इन दोनों कारणों से नीच और उत्तम व्यक्ति का अन्तर जाना जा सकता हैं, जैसे कि काक और हंसमें सियाल और सिंहमें, अश्व और गर्धवमें, देव और दैत्यमें, अमृत और जलमे, बबूल और आम्रमें, राजा और सेवकमें, सरोवर और सागरमें राहू और चन्द्र में, बकरी और हाथी में, दिन और रात्रिमें, ग्राम और नगरमें, तेल और घृतमें, इत्यादि वस्तुओं में जितना अन्तर है ठीक उतना ही इस पुरुष में और उस पुरुष मे है."

मन ही मन ये सब बातें सोचकर वह राजकुमारी वेश्याके पास जाकर कहने लगी, "तुम मुझको जिस किसी मनुष्यको क्यों देना चाहती हो? यदि पहलेका देखा हुआ पुरुष मुझको नहीं मिलेगा तो मै शीघ्र ही चितामें प्रवेश कर मर जाऊंगी.

यदि तुम जबरदस्ती मुझको जिस किसी मनुष्यके पास छोड़ दोगी तो मैं यहाँके राजाके पास जाकर इसके लिये फरियाद करुंगी. जो पुरुष मुझे इस नगरमें लाया है उसीके साथ मैं, विवाह करुंगी. अन्य किसी धनिकके साथ भी मैं विवाह करना कदापि नहीं चाहती हूँ."

यह सब बात सुनकर डरती हुई वेश्या राजा के पास आकर बोली, "मेरी कन्या पति के वियोग से जल कर मरना चाहती है."

राजाने कहा, "स्त्रियों को जल कर मरना उचित नहीं. चितामें जल कर आत्महत्या करने से जीव दुर्गति को प्राप्त करता है; यदि पति के मोह से स्त्री चितामें जलना चाहती है, तो उसको कौन रोक सकता है!"

इस प्रकार राजा की आज्ञा प्राप्त करके मनमें प्रसन्न हो कर वेश्या सोचने लगी, "यदि वह कुमारी चितामें जल कर मरेगी तो रत्न से भरी हुई पेटी और सादनी भाग्ययोग से मेरे घरमें रह जायगी." इस प्रकार अपने मनमें दुष्ट विचार करती हुई वह वेश्या राजभवन से अपने घर आई. जगत में दिखाई दे रहा है कि तृणसे जीवन निर्वाह करने वाले मृग का शत्रु शिकारी, जल मात्रसे निर्वाह करनेवाली मछलियों का शत्रु मच्छीमार, सन्तोष से रहने वाले सज्जन का शत्रु दुर्जन, ये सब विना किसी कारण के ही शत्रु होते है। +

+ मृगमीनसज्जनानां तृणजल सन्तोषविहित वृत्तीनाम्।
लुब्धक धीवरपिशुना निष्कारण वैरिणो जगति ॥ ध. ९/२११ ॥

इसके बाद राजा की आज्ञा से उस कन्या को घोडे पर चढ़ा कर जब वह वेश्या मार्ग में जा रही थी तब उस नगर के राजाने उसको देखा. उसका सुंदर रूप देख कर राजाने पूछा, "तुम किस की कन्या हो?"

लक्ष्मीवतीका सुन्दर रूप देखकर राजाने पूछा 'तुम किसकी कन्या हो?'
चित्र नं ११

उस कन्याने उत्तर दिया, "मैं इसकी कन्या नहीं हूँ, यह वेश्या है और इसने मुझको छलकपट करके फसा रखा है. इस नगर में दीन-दुखी मनुष्यों का रक्षण करनेवाला कोई अच्छा मनुष्य नहीं है. राजा भी दीन और अनाथ आदि का पालन करनेवाला नहीं है उसे कर्तव्य अकर्तव्य का जरा भी खयाल नहीं है. दुर्बल, अनाथ, वृद्ध, तपस्वी, अन्याय से पीडित आदि का रक्षक तो राजा ही हो सकता है"

यह सुन कर राजाने कहा, "हे बालिके! तुम ऐसा क्यों बोलती हो! मै सतत न्यायमार्ग से ही प्रजा और पृथ्वी का पालन कर रहा हूँ!"

कन्याने कहा, "क्या कर्तव्य या अकर्तव्यका विचार नहीं करना इसीको आप न्यायमार्ग मानते हो!"

राजाने पूछा, "तुम कौन हो? किस की पुत्री हो और कहाँ जा रही हो?"

इस पर कन्याने कहा, "बहुत बोलने से मुझे प्रयोजन नहीं. ताम्रलिप्ति नगर से जो पुरुष मुझे यहाँ ले आया, उसे छोड़ कर मै दूसरे से कदापि विवाह नही करूँगी."

इस पर राजाने पूछा, "वह कहाँ है? अथवा अभी वह कहाँ गया है?"

कन्याने कहा, "वह इसी नगर में भोजन सामग्री लेने गया था, इसी बीच यह वेश्या मुझे छल कर के नगर में ले आई, अतः अब उस पुरुष का पता मुझे नहीं हैं; अर्थात उसको कहीं देखती नही हूँ. उसके वियोगमें मैं बडी दुःखी हूं."

यह सुन कर राजाने कहा, "तुम शरीर को क्यों व्यर्थ ही भस्म करना चाहती हो? जीवन्त नर मनोइच्छित को शीघ्र प्राप्त कर सकते हैं, इसी लिये हे बालिके! इस नगरमें तुम अपने अभिलषित पुरुष को पहचान कर उसका स्वीकार करो."

राजा की यह बात सुन कर वह कन्या बहुत प्रसन्न हो कर, आस पासमें जो नगर जनता खडी थी उस तरफ देखने लगी. इधर राजा विक्रमादित्य नगरमें से भोजन सामग्री ले कर नगर बहार जिस स्थान पर राजकुमारी को छोड कर गया था, उस स्थान पर आकर देखा तो कन्या और पेटी कुछ नही था. सोचने लगा. "क्या करूँ? कहाँ जाउँ? किसको कहूँ? बहुत परिश्रम से उस रत्न पेटी को लाया था, परन्तु उस के साथ साथ पेटी भी चली गई।"

पुन विचारने लगा, "इस प्रकार तो अधीर-कातर लोग सोचा करते हैं, साहस करना चाहिये फिर जो होना है, वह होगा ही, जैसे नारियल मे जल हो आना और जिसको जाना है वह जायगा ही, जैसे राज हाथी से खाया हुआ कपित्थ कैथका फलका गर्भ नष्ट हो जाता है जिस का किसीको समझ में भी नही बैठता है" इस तरह मन ही मन सोचता और राजकन्या को खोजता हुआ, महाराजा विक्रम नगर में प्रवेश कर जहाँ राजकन्या, वेश्या रूपश्री और नगर का राजा तथा लोगों का समूह खडा था वहाँ आया.

विक्रमादित्य का लक्ष्मीवती से पुनः मिलाप—

राजकुमारी चारो ओर देख कर अपने अभीष्ट पुरुष को खोज रही थी, दूर से महाराजा विक्रमादित्य को देख कर हर्षित होती हुई बोली, "हे राजन्! वे आते है, यही मेरे अभीष्ट-स्वामी है. किसी कविने कहा है,

"नृपनों की गति अलख है, कोई नहीं समझाय;
खास लोग को त्याग कर, सस्नेही पर जाय."

इस नगर के सिंहराजाने महाराजा विक्रमादित्य को देखते ही शीघ्र भक्ति से उनके चरणकमलों में प्रणाम किया. राजा विक्रमादित्य कहने लगा, "तुम्हारे नगर में इसी प्रकार का अन्याय होता है? तुम शिष्ट और अशिष्ट की कोई परीक्षा ही नहीं करते हो।"

विक्रमादित्यने कहा, "तुम्हारे नगरमे इसी प्रकारका अन्याय होता है!"
चित्र न.१२

महाराजा विक्रमादित्य के इस प्रकार के शब्द सुन कर राजा सिंह कहने लगा, "इसी स्त्रीने चितामे जलने के लिये प्रार्थना की परन्तु मैंने मूर्खता से इसकी परीक्षा नहीं की. हे स्वामिन्! मेरा बहुत बड़ा अपराध हो गया है; इस के लिये क्षमा करें." ऐसा कह कर वह सिंह राजा महाराजा विक्रमादित्य के चरणो में गिर पड़ा.

महाराजा विक्रमादित्यने कहा, ' हे राजन्! इसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है, यह सब अज्ञान से ही हुआ है. इस के लिये दुःख न करो. मैं अपने कार्य के लिये ताम्रलिप्ति नगरीमें गया था. वहाँ से रत्नसे भरी पेटी तथा इस कन्या को ले आया हूँ "

फिर बाद में सिंह राजाने सब समाचार जान करके महाराजा विक्रमादित्य का उस कन्या से पाणिग्रहण का उत्सव विस्तार से कराया.

महाराजा उस वेश्यासे रत्न पेटी ले रहे है चित्र नं १३

तदुपरांत वेश्या को अभयदान दे कर उससे रत्न पेटी लेकर, उस लक्ष्मीवती प्रिया के साथ अपने नगर प्रति महाराजा विक्रमादित्यने चल दिया. सच है-अपने और पराये का विचार क्षुद्रबुद्धिवाले करते है, उदार पुरुष तो समस्त पृथ्वी को अपना कुटुम्ब समझते हैं. जैसे अजलिमें

स्थित पुष्प दोनों हाथों को सुवासित करता है. ठीक उसी प्रकार उदार विचारवाले अनुकुल या प्रतिकुल में समान ही व्यवहार रखते हैं.

इस प्रकार रत्न पेटी के साथ लक्ष्मीवती को लेकर महाराजा विक्रमादित्य उज्जयिनीपुरी के मनोहर उद्यानमें पहुँचे. बहुत बड़े उत्सवके साथ वहाँ से नगर प्रवेशकर राजमहल गये. उस नवीन रानी लक्ष्मीवती के लिये एक शोभा सम्पन्न महलमें रहने के लिये अलग व्यवस्था कर दी गई.

नागदमनी को बुलाकर वह रत्न की पेटी दे दी और कहा, " मैंने तुम्हारे आदेश को पुरा कर दिया है अब तुम पांच दण्डवाला छत्र बनाओ."

नागदमनी ने महाराजा विक्रमादित्य से उत्तर में कहा, " हे राजन्! केवल इन रत्नो से पाँच दंड वाला छत्र नहीं बन सकता. ये रत्न तो केवल उसकी जाली ही बनाने के काममें आयेंगे इस लिये अब आप मेरे दूसरे आदेश को पूरा करें, ताकि आप शीघ्र ही उस पाँच दंडवाले छत्र को देख कर अपनी इच्छा पूर्ण कर सको."

महाराजा विक्रमादित्य ने नागदमनी से कहा, "तुम शीघ्र ही अपना दूसरा आदेश भी सुनाओ. चाहे वह आदेश कठिन हो या सरल मैं उसे पूर्ण कर अपने मनकी अभिलाषा पूर्ण करना चाहता हूँ. अतः तुम मुझे 'पाँच दंड' शीघ्र ही प्राप्त हो वैसा उपाय करो."

पाठक गण! आपने अपने चरीत्र नायक महाराजा विक्रमादित्य द्वारा अपनी इच्छा पाँच दंड वाले छत्र की प्राप्ति के लिए नागदमनी के आदेशानुसार ताम्रलिप्ति नगरी जाकर चंद्राजा की पुत्री के महल से रत्न

पेटी के साथ साथ उसी राजकुमारी लक्ष्मीवती को भी लाये तथा बादमें सिंह राजा के द्वारा उसके साथ विवाह आदि करने का रोचक हाल पढ़ ही गये हैं. अब आगे महाराजा विक्रमादित्य का नागदमनी के आदेश के अनुसार दूसरे आदेश को पालन करने हेतु श्रीसोपारक नगरमें जाना तथा सोमशर्मा पंडितकी पत्नी उमादेवी का चरीत्र देखना आदि रोमांचकारी हाल आगामी प्रकरण में पढ़े.

किसी भी व्यक्ति द्वारा सफलता प्राप्त करने में केवल उसकी बुद्धिमानी, शक्ति आदि पर निर्भर नहीं. पर उसके कई पूर्व जन्मसंचित किये पुण्य तथा वर्तमान काल के उपकार या पुण्य कार्य के सहारे की भी आवश्यकता होती है. अन्यथा सब कार्योंमें सफलता पाना महान् दुष्कर है. किसीने ठीक ही ललकारा है—

"राज्य भोग संपत्ति सकुल, विद्या रूप विज्ञान;
अधिक आयु आरोग्यता, प्रगट धर्म फल जान."

जो पराये काम आता, धन्य है जगमे वही।
द्रव्य ही को जोडकर, कोई सुयश पाता नहीं ॥ १ ॥
नर जन्म उस का व्यर्थ है, जो प्रेम का भूखा नहीं।
जो प्रेम का करता निरादर, सुख नहीं पाता कहीं ॥ २ ॥
पारस में और संतमें, बड़ा ही अंतर जान।
एक लोहा कंचन करे, एक करे आप समान ॥ ३ ॥

पेंतालीस्वाँ प्रकरण

उमादेवी

जगत के सभी पदार्थोमे सद् और असद् का भेदभाव दिखाई दे रहा है, जैसे अमृत और विष, सज्जन और दूर्जन. उसी तरह नारी जातिमें श्रेष्ट और दूष्ट स्वभाव का भेद दिखाइ देता है. इस लिये एक अनुभवी कविने नीच स्वभाववाली नारीयों के लिये कहा है,

"नारी विष की वेलडी, नारी नागन रूप;
नारी करवत सारीखी, नारी डाले भव कूप."

पाठक गण! आपने गत प्रकरणमें महाराजा विक्रमादित्य द्वारा नागदमनी के प्रथम आदेश को पूर्ण करन का हाल पढा. अब आप इस प्रकरणमें नागदमनी के द्वारा दूसरा आदेश की पूर्ति में महाराजा को क्या क्या करना पड़ा उस पर से नारी चरित्र का अनोखा मनोरंजन हाल पढें.

अपने दूसरे आदेशमे नागदमनीने कहा कि "श्री **सोपारक नगरमें सोमशर्मा** नामके ब्राह्मण की **उमादेवी** नाम की प्रिय बोलनवाली प्रिया-स्त्री है. उस नगर मे जा कर उसका चरित्र स्वय जान कर आओ."

ऐसा सुनकर राजा विक्रमादित्यने शीघ्रही उस और चल दिया. मार्गको काटता हुआ राजा श्री सोपारक नगरकी सीमामें उपस्थित हुआ, अत्यन्त सुन्दर उद्यान और महलों को देखे. अनेक प्रकार के वृक्ष तथा

फल पुष्पादि शोभित लताओंसे, निर्मल जलसे भरे हुए जलाशयों से, हस आदि अनेक पक्षियोंके मधुर स्वरों से, स्वच्छ जलवाले सातसौ सरोवरोंसे तथा श्री जिनेश्वरके प्रासादों से युक्त उस श्री सोपारक नगर को देखा. श्री शत्रुञ्जय महातीर्थ की तलहट्टी में स्थित उस नगर का महात्म्य हीनबुद्धि मनुष्य क्या कह सकते है? जिस स्थान की मिट्टी के स्पर्श मात्र से ही मनुष्य आदि सकल प्राणी मोक्ष का लाभ प्राप्त करते है

श्री जिन मंदिर मे प्रभू पूजा

इसके बाद नगरकी शोभा देखता हुआ महाराजा विक्रमादित्य श्रीआदिनाथ प्रभुके मन्दिर मे गया नाना प्रकारके पुष्पों से प्रभु की पूजा की और भक्तिभावसे इस प्रकार स्तुति करने लगा, "देवता तथा दानव और राजाओं से जिनका चरण सदा पूजित एव वन्दित है, ऐसे श्री सोपारक नगर की वाटिका के भूषणरूप श्रीऋषभदेव प्रभुकी मै स्तुति करता हूँ हे प्रभो! तेरे चरणकमलकी सेवा जो करते है, वे शीघ्र ही परमानन्दको प्राप्त करते है, हे प्रभो! तुम जिसके हृदय में वास करते हो उसके पापरूपी अन्धकार को नष्ट कर देते हो. हे आदिनाथ प्रभु! आज आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया हूँ हे नाभि राजाके नन्दन! सुवर्ण के समान शरीर की कान्ति धारण करनेवाले! अपने चरण के समीप मुझे स्थान दो. अनन्त ससार में भ्रमण करता हुआ तथा अनेक दु:ख को प्राप्त कर के मैंने भाग्य से ही आज तुमको प्राप्त किये है"

इस प्रकार स्तुति करने के बाद राजाने वहाँके पूजारी से पूछा, "यहाँ सोमशर्मा नामके ब्राह्मणका घर कहाँ है?"

पूजारीने कहा, " यहाँ सोमशर्मा नामके व्यक्ति अनेक हैं. किसके विषयमे आप पूछ रहे है ?"

राजाने कहा, " जिसकी स्त्रीका नाम उमादेवी है. उसके विषयमें मैं पूछ रहा हूँ."

तब उसने कहा, " सोमशर्मा ब्राह्मण तिरसठ विद्यार्थीओको अपने तरफसे भोजन देकर बिना कुछ धन लिये ही विद्या पढाता है, भीमपाटकमें उसका मनोहर मकान है."

इस प्रकार सोमशर्मा के घरका सपूर्ण पता लगाकर राजा विक्रमादित्य लेखनी तथा पाटी लेकर छात्रके वेशमें वहाँसे चला. रूप परावर्तनी विद्याके बलसे अट्ठारह वर्षका अपना रूप बनाकर नगरकी शोभा देखता हुआ सोमशर्मा के घर समीप पहुँचा.

श्री सोमशर्मासे परिचय—

जब विद्यार्थी वेशमें राजा पडित सोमशर्मा को प्रणाम करके खडा हो गया, तब सोमशर्माने पूछा, "तुम कौन हो और किस प्रयोजनसे यहाँ आये हो ?" तब उस छात्र रूपधारी राजाने कहा, "आपका नाम सुनकर आपसे विद्याध्ययन करने के लिये ही आया हूँ.' ब्राह्मणने प्रसन्न होकर कहा, "यथेच्छ पढो. यहाँ द्रव्य की भी कोई आवश्यकता नहीं है"

इस प्रकार उमादेवी का चरित्र जानने के लिये राजा विक्रमादित्य बड़ी सावधानीसे छात्र रूपमें वहाँ रहने लगा. उमादेवी मधुर स्वरसे बोलनेवाली तथा वस्त्रसे अपने मुखको सतत ढका हुआ रखती हुई अपने पतिकी सेवा करती थी उमादेवीके चरित्र देखनेके लिये प्रयत्न करने पर भी वह विक्रम—छात्र वस्त्रसे मुख आच्छादित रहनेके कारण

उमादेवीका मन नहीं जान सका. क्यों कि समुद्रका पार प्राप्त किया जा सकता है, आकाशके नक्षत्रोंकी गणना हो सकती है, किन्तु नारी-चरित्रका सहज ही में यथातथ्य ज्ञान प्राप्त कर लेना आसान नहीं, अर्थात् छल-दम्भ करनेवाली स्त्रीका कोई पार नहीं पा सकता है किसीने सच ही सुनाया है—

"नारी वदन सुहावना, मीठी बोली नार;
जो नर नारी वश हुआ, भग हुआ घरबार."

एक दिन जब प्रहर रात बीत गई, पंडितके साथ साथ सब छात्र सो गये, तब उमादेवीने एक दण्ड लिया. इधर राजा विक्रमादित्य, जो इसका चरित्र देखने ही आया था; वह चुपचाप उठ कर उसके चरित्र को जानने के लिये सावधानीसे एकान्तमें रह कर देखने लगा

महाराजा विक्रम सावधानीसे उमादेवीका चरित्र देख रहे हैं। चित्र नं. १४
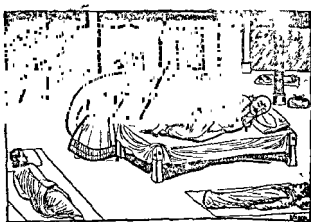
उस उमादेवीने दण्डको तीन वार घुमाया और पतिका नाम लेती हुई उसकी शय्याके समीपमें आघात किया. इसके बाद हुँकार करती हुई अपने घरसे बहार निकली. उसके पीछे पीछे चुपचाप साव धानीसे राजा विक्रमादित्य भी निकला घरसे कुछ दूरी पर एक धात्रीका वृक्ष था उस पर उमादेवी अतिशीघ्र चढ कर वृक्ष पर दण्डसे तीन वार आघात किया. क्षणमें ही वह वृक्षके सहित उमादेवी आकाशमें उड गई. राजा दूरसे यह सब कुछ देख कर विस्मयपूर्वक वहाँ पर ही

उमादेवी वृक्षके सहित आकाशमें उड गई. चित्र नं. १५

खड़ा रहा. थोडी देर के बाद उसी वृक्ष पर चढी हुई, वह ब्राह्मणकी स्त्री वापिस लौट आई वृक्ष–पूर्वकी तरह अपने स्थान पर स्थिर हुआ और उमादेवी वृक्ष परसे निचे उतर कर अपने घर आई, राजा भी चुपचाप उसके पीछे पीछे सावधानीसे घर आया घरमें आकर सोये

हुए अपने स्वामि की शय्याके उपर पूर्वको तरह तीन बार दण्ड घुमा-कर अपने स्थान पर जाकर सो गई. राजा भी अपने स्थान पर सो गया.

यह सब वृतान्त देख कर हृदयमें कुतूहल–अचम्भा करता हुआ राजा विक्रमादित्य प्रात काल उठ कर पुन पूर्वकी तरह अपना पाठ पढ़ने लगा.

उमादेवीका देवसभामें जाना—

दूसरे दिन राजा वृक्षकी गुहा–कदरामें गुप्त होकर बैठ गया उमादेवी पूर्व दिनकी तरह ही सब दण्ड भ्रमणादि कार्य करके उसी वृक्ष पर चढ़ कर दक्षिण दिशाको चली गई. पर्वत, नदी, वन आदिका उलघन करती हुई वह उमादेवी अनेक उद्यानसे शोभायमान जम्बू द्वीपम पहुँची. वहाँ वृक्षको स्थापित करके नीचे उतर कर देवीके प्रासादमें देवीको प्रणाम करनेके लिये गई राजा भी अग्निवैतालकी सहायतासे अदृश्य रूप होकर उसके पीछे पीछे गया और सब वृतान्त देखने लगा. वहाँ सीकोत्तरी के पास चोसठ योगिनी और बावन क्षेत्रपाल आदि अनेक देवता आकर अपने स्थान बैठ गये. इस के बाद उमादेवी न सीकोत्तरी देवी व योगिनी और क्षेत्रपालोंको नत मस्तक करके सभी को पृथक् पृथक् प्रणाम किया. तब सीकोत्तरी आदि देवियोंने कहा, "हे उमादेवी! अब इस सभा को अलकृत करो." तब उमादेवी वहाँ सभाम बैठ गई. तब क्षेत्रपालने क्रोधित होकर उमादेवी से कहा, "मुझ से मनोहर 'सर्वरस' दण्ड लेकर तुम चली गई परन्तु पूर्व कथनानुसार अब तक मेरा

पूजन क्यों नहीं कर रही हो! इधर उधर के बहाने बताकर तुम समय बीता रही हो."

उमादेवीने कहा, "अभीतक सब सामग्री प्राप्त नहीं हुई थी; परन्तु भाग्य से अब मिल गई है; बत्तीस लक्षणों को धारण करनेवाले मनोहर चौसठ छात्र पूरे हो गये हैं. एक मेरा पति है. एक पृथक् पृथक् योगिनीयों को और मेरे पति है वह तुम्हें चढ़ा दूँगी. अब आप कोपित न होवे अब आप स्पष्ट रूपसे बलिदान की विधि बतावें."

क्षेत्रपालने कहा, "कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि को एकान्तमें विद्यार्थीओंके लिये चौसठ मण्डल और एक अलग मण्डल अपने पति के लिए बनवाना. उन सब के बैठने के लिए पैंसठ विशाल आसन करना. भोजन करने के लिये उतने ही पक्वान्न बनाना और पैंसठ पात्र लाना. विद्यार्थीयों को गलेमें पहनाने के लिये करवीर के पुष्प की पैंसठ मालायें बनवाना. उन सब के सिरमें पृथक् पृथक् तिलक करके हाथों में रक्षा सूत्र बांधकरके उन लोगों के उपर अक्षत डाल देना. यह सब करने के बाद जब जलकी तुम कल्पना करोगी तब हम लोग उन लोगों का भक्षण करेंगे."

उमादेवीने मनमें सोचा, "मैं कपट करके पति के पाससे पहले सब सामग्री मंगवा लूंगी." फिर प्रगटमें बोली—दोनों हाथ जोड़कर क्षेत्रपालको कहा, "तुम्हारे कथनानुसार सब कार्य मैं शीघ्र कर लूंगी."

ये सब बातें सुनकर विक्रमादित्य दंग हो गया—चमत्कृत हो मनमें सोचने लगा, "इस संसार में स्त्रीयाँ क्या क्या करती है! यह ब्राह्मणी न जाने क्या करेगी; अरेरे, यह सभी छात्रोंमें मेरा भी मृत्यु होगा, अब क्या

किया जाय! महाराजा को मन ही मन कई विचार आ गये. मृत्यु का भय किसको नही है! परन्तु पुनः साहस और धैर्य को धारण कर महाराजाने मनमें निश्चय किया; "यह बेचारी ब्राह्मणी क्या करेगी! मैं इस प्रकार कार्य करूंगा जिससे सब सुखी हो जायेंगे. क्योंकि–उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये 'छ' जिस के पास हैं, उसका देव भी कुछ नहीं कर सकते."

कोई पर्वत के शिखर पर चढे अथवा समुद्र लाँघ जाय, पाताल में चला जाय परंतु स्वय के किये हुए कर्म के अनुसार–विधिसे कपाल में जो लिखा गया है, उस का फल प्राणीओं को भोगना ही पडेगा. और कहा भी है—

'सूर्य उदित पश्चिम में होवे-अग्नि किसीः को नही दहे;
सभी असंभव हो सकते हैं-किन्तु कर्म यह अटल रहे.'

यदि सूर्य पश्चिम दिशामें उदित होने लगे, पर्वत के शिखर पर यदि कमल विकसित होवे, मेरु पर्वत चलने लगे, अग्नि शीतल हो जाय, फिर भी भावि होनेवाली कर्म की रेखा बदल नहीं सकती है."+

यह सब विचार कर महाराजा विक्रमादित्य देवी का मन्दिर देख कर पहले ही वृक्ष पर चढ़ने के लिये वहाँ से चल दिया. वहाँ से आकर वृक्ष पर चढ़ कर वह चुपचाप बैठ गया. इधर उमादेवी भी वृक्ष

+ उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां,
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायाम्,
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्नि-
रुदयति न चलतीव भाविनी कर्मरेखा. । सर्ग १/११.

पर चढ़ी और विशाल आकाश का लंघन करती हुई, अपने स्थान पर आकर पूर्ववत् सो गई. राजा विक्रमादित्य भी वृक्ष से उतर कर अपने प्राणों को बचाने का उपाय सोचता हुआ अपने स्थान पर आकर सो गया. सोते हुए वह सोचने लगा, " नागदमनी के कथनके अनुसार मैं गुप्त रूपसे इसका सब चरित्र देखूँगा !"

प्रातःकाल उठ कर वह विक्रमादित्य जंगल जाने के लिये पण्डित सोमशर्मा के साथ बाहर गया और कहने लगा, " हे पंडितजी ! आप कौन कौन शास्त्र जानते हो ? "

ब्राह्मणने कहा, " मैं अनेक शास्त्रोंको अर्थके साथ जानता हूँ, जैसे लक्षण, अलंकार, छन्द, नाटक, गणित, काव्य, तर्क—न्यायशास्त्र और धर्मशास्त्र आदि."

तब विक्रमने पूछा, " क्या आप अपना मरण भी जानते हो !"

पण्डित सोमशर्माने कहा, " हे वत्स ! मैं अपना मरण कब होगा, यह तो नहीं जानता हूँ !"

तब विक्रमादित्यने कहा, " तब तुम क्या जानते हो ? यदि अपना मरण नहीं जाना तो दूसरा जाननेसे भी क्या लाभ !"

तब सोमशर्माने पूछा, " हे छात्र ! क्या तुम सद्गुरुके प्रसादसे मृत्युक सब विषय जानते हो !"

विक्रमादित्यने कहा, " हाँ, मैं गुरुकी कृपासे मरण जानता हूँ."

सोमशर्मा पूछने लगा, " मेरा मरण कब होगा ? वह कहो ! "

विक्रमादित्यने कहा, " इस कृष्ण चतुर्दशी के दिन आपका मृत्यु है, और हम चौसठ विद्यार्थीओं का भी तुम्हारे साथ साथ मृत्यु निश्चित है, अर्थात् अपने पेंसठ व्यक्तियों का ही योगिनी एवं क्षेत्रपालों को बलिदान दिया जानेवाला है." यह सुनकर पण्डित सोमशर्मा कुछ घबराया. बादमें महाराजा विक्रमने पण्डितजीको धैर्य धारण करने कहा और उमादेवीके साथ द्वीपगमन, चौसठ योगिनीयों तथा बावन क्षेत्रपालोंके पास जाना और वहाँ क्षेत्रपालका कथन आदि जो कुछ देखा और सुना था, वह आदिसे अन्त तक का सब वृतान्त पण्डितजीसे कह सुनाया.

इन सब बातोंको सुनकर घबराया हुआ पण्डित कहने लगा, "हे छात्र ! अब इस प्रकारके संकटसे अपने प्राणों की रक्षा कैसे होगी ?"

छात्र के रूपमें रहे हुए विक्रमादित्यने कहा, "हमें डरना नहीं चाहिये, यहाँ पर कुछ न कुछ उपाय करना ही चाहिए. विपत्ति में कायर व्यक्ति घबराते हैं, बुद्धिमान व्यक्ति कदापि नहीं डरते. क्यों कि हरेक प्राणीने अपनी पूर्व अवस्था में जो शुभ या अशुभ कर्म किया है, उसके फलका भोग करना ही पडता है, इस में कोई संदेह नहीं.

आपको आपकी पत्नीका चरित्र जानने की इच्छा हो तो, उस वृक्ष पर मैं तुम्हें पहूँचा दूंगा और उस वृक्ष पर गुप्त हो कर बैठ जाना. मैं वेश बदला दूंगा ताकि आप सब हाल खूद देख सकोगे."

उमादेवी के चरित्र जाननेका सोमशर्मा का यत्न—

छात्र की ये सब बातें सुनकर वह ब्राह्मण लौट कर घर आया और पत्नी से कहने लगा, "मैं धन के लिये चन्द्र नामके गाँवमें जाता हुँ, प्रात काल आ जाऊँगा." ऐसा कहकर वह रात्रिमें निर्भय होकर

(सोमशर्मा भात्री के वृक्षपर जाकर गुप्त रूप में बैठ गया चित्र न १६)

उस धात्री के वृक्ष पर जाकर गुप्त रूपमें बैठ गया. रात्रिमें छात्र द्वारा बताये हुए सारे सारा दृश्य देख, पुन प्रात काल घूमते घूमते घर आया. एकान्तमें उस छात्रसे कहने लगा, "तुम्हारे कथन के अनुसार रात्रि में मैंने सब दृश्य देखे है. अब किसी भी तरह अपने प्राण नहीं बच सकेंगे"

विक्रम ने कहा "तुम धैर्य रखो और साहस करो. तुम्हें विजय लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होगी. चतुर्दशी की रात्रिम मैं जो कुछ करु.

वह सब छात्रों के साथ तुम भी शंका रहित हो कर करना. क्यों कि विद्वानोंने शंका को महाविष कहा है यह तुम्हारी स्त्री जो कुछ करना चाहे वह करे।" इस प्रकार सब छात्रों को भी समझा दिया.

दूसरे दिन प्रातःकाल उमादेवीने पण्डितजी से कहा, "हे स्वामिनाथ! आज कुलदेवीने स्वप्नमें मुझको कहा कि इस चतुर्दशी के दिन यदि तुम चौसठ छात्रों के साथ अपने स्वामी को बलिदान को श्रेष्ट विधिसे भोजन नहीं कराओगी, तो सब छात्रों का और तुम्हारे पतिदेव का भी मरण होगा"

पण्डितजीने कहा, 'हे प्रिये' अपने प्यारे छात्रों को आदर-पूर्वक अवश्य भोजनादि करावो, इससे क्या अधिक है!"

चतुर्दशी का दिन निकट आने पर उमादेवी जो कुछ सामग्री माँगती वे सब वस्तुएँ उस को पण्डित ला देता था

फिर बादमें पैंसठ मण्डलों पर क्षेत्रपाल द्वारा बताइ हुइ, विधि के अनुसार उमादेवीने सब छात्रों के सहित सोमशर्मा को भी बैठाकर 'सर्वरस' नाम के दण्ड को पृथ्वी पर रखा और हाथमें जलपात्र लेकर, जब अर्घ्य देने लगी-जल छाटने लगी तब महाराजा विक्रम उठा और उठकर वह 'सर्वरस दण्ड' लेकर वहाँसे भाग चला. पण्डितजी और सभी छात्रों से युक्त राजाविक्रम के पाछे पाछे उमादेवी भी कुछ दूरी तक भागी किंतु वे सब लोक बहुत दूर निकल गये थे, उन लोगों से मिलना असंभव देख, वह निराश हो कर पुनः अपने घर को ओर लौट आई।
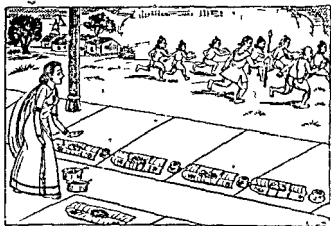
सभी छात्रों से युक्त पंडितजी विक्रम के साथ भागे. चित्र नं. १७

विक्रमादित्य का श्रीपुर में पहुँचना

तेंसठ छात्रों और पण्डितजी के साथ चलते चलते राजा विक्रमादित्य सोपारक नगरसे बहुत दूर तक आये, थोड़ा समय इधर ऊधर व्यतीत करने की अभिलाषा से जहाज में बैठ कर और निर्भय हो कर सभी कटाह नाम के द्वीप की ओर चले. क्रमशः कटाह द्वीप–बंदरगाह पर आये, किनारे पर उतर कर सभीने स्नान, नास्ता आदि कर वृक्ष की छायामें थोडा बहुत आराम किया. बादमें सभी को साथ ले कर राजा विक्रमादित्य आगे चले, चलते चलते एक नगर के पास आ पहुँचे. नगर के आसपास का वातावरण मानव रहित शून्यतामय दिख रहा था, यह देख राजा को मनमें विस्मय हुआ, साहसिक शिरो-

मणि महाराजा विक्रमादित्य इस नगर के विषय में जानना चाहते . उत्सुक थे; किन्तु बहुत समय तक वहाँ पर आता जाता कोई मानव नहीं मिला.

उस नगर के बहार उद्यानमें पण्डितजी और छात्रो को छोड़कर राजा नगर देखने गया. नगरमें प्रवेशकर निर्भय होकर चारो ओर घूमते घूमते बड़ी बड़ी शून्य हवेलीयाँ और बाजारमें शून्य दूकानोमें वस्तु-समूहों को देखता हुआ; महाराजा राजमहलमें आ पहुँचा. क्योंकि उत्तम मनुष्य कहीं भी जाते हैं, तो डरते नहीं है जैसे बलवान सिंह किसी भी पर्वत कन्दरा-गुहामें जाते हुए डरते नहीं है. +

जब महाराजा विक्रमादित्यने उस राजमहलमें प्रवेश कर, राज-महलकी बेनमून कला-कारीगरी का अवलोकन कर, आस-पासमें देखा तो कोई नोकर चाकर दिखाई नहीं दिया, राजाने मनही मन सोचा कि इतना सुंदर राजमहल होते हुए कोई भी रक्षक क्यों नहीं है? सुंदर कलात्मक और शून्य राजमहल देखते देखते महाराजा क्रमशः सिड़ी चढ़ कर राजमहल की सातवीं मंजिल पर जा पहुँचा, वहाँ एक कमरेमें अत्यन्त दिव्यरुप को धारण करनेवाली एक नवयौवना कन्या को देखा. देखकर राजा सोचने लगा, 'यह कन्या एकाकी यहाँ क्यों है? अथवा किसी नगरमें से कोई राक्षस इसे हरण कर यहाँ लाया होगा' रूप और आकार से निश्चय यह कोई राजकन्या सी मालुम पड़ती है!'

+ "नरोत्तमा हि कुत्रापि मजन्तो गिरिगह्वरे।
न बिभ्यति मनाक् सिंहा इव सारबलोत्कटाः" ॥ स. ६/३५६ ॥

जिस प्रकार चन्दमाँ को देखकर चकोरी प्रसन्न होती है, उसी तरह दिव्यरुप और श्रेष्ट आकार वाले राजा को आते देखकर वह प्रसन्न हुई. और आसनपर से खडी होकर सन्मानपूर्वक मधुर भाषामे बोली, "हे नरश्रेष्ट! आप शीघ्र पाछे लौट जाइए, अन्यथा आप को विना कारण ही विघ्न उठाना पडेगा."

राजाने पूछा, "मुझको क्या क्या विघ्न होगा वह कहो?"

तब वह कन्या लज्जासहित बोली, "हे नरोत्तम! आप सुनो यह श्रीपुरनामका नगर है, इस नगरमें न्याय नीति परायण विजय नामक एक राजा थे, उनकी राणीका नाम भी विजया था, चन्द्रावती नामकी उनकी मैं कन्या हूँ भीम नाम के दैत्य राक्षसने इस नगरको उजाड कर दिया, सब लोग अपने अपने प्राण बचाने की इच्छासे दशों दिशाओंमें भाग गये हैं. उस राक्षसने मेरे साथ विवाह करने की इच्छासे मुझको ही यहाँ रखा है, इस राक्षस से मेरा छूटकारा होना असंभव है. यह राक्षस दुष्ट और मनुष्यों से दु साध्य है अर्थात्—यह किसी मनुष्य द्वारा मारा जाना असंभव है. क्यों कि—विधाताने विच्छू के पूंछ में, सर्पके मुखमें, और दूर्जन के हृदयमें सदा के लिये विभाग कर के विष रखा है +

इस लिए उस राक्षससे मेरा उद्धार होना दुष्कर है." तब महाराजा विक्रमादित्यने कहा, "हे राजकन्ये! डरो नहीं, साहस रखो! जैसे प्राणियों

+ वृश्चिकानां भुजगानां दुर्जनानांच वेधस।
विभज्य विषं न्यस्तं विषं पुच्छे मुखे हृदि" ॥ स ६/१६६॥

को दुःख बिना बुलाये ही आता हैं, वैसे हो सुख भी बिना बुलाये प्राप्त हो जाता है; इसलिये अब ज्यादा-चिन्ता करने जैसी बात नहीं है; हे बालिके! मैं निर्भय होकर वैसा ही कार्य करुंगा, जिससे तुमको वह दुष्ट राक्षस क्षणमें ही छोड़ भागेगा. यदि तुमको उस राक्षस को मारने का कोई उपाय मालूम हो, तो कहो!" ऐसा राजा के पूछने पर चन्द्रावतीने बताया, "वह बड़े बड़े देवताओं से भी दुःसाध्य है वह अपने इष्ट देव की पूजा-पाठमें बैठता और पुष्पों से पूजा करता है; उस अवसर पर अपना वज्रदण्ड पृथ्वी पर रख कर, स्नान आदि से पवित्र हो कर पूजा पाठ करने बैठता है, उस समय उसको ध्यान से कोई देवता या राक्षस भी विचलित नहीं कर सकता है, और उस समयमें उससे पूछने पर भी वह किसी से नहीं बोलता है; यदि उसी समय कोई मनुष्य उस के मस्तक पर जोर से प्रहार करे तो, उस की मृत्यु अवश्य हो जायें. कदाचित् वह राक्षस देवकी पूजा करके शीघ्र उठ जाय, तब तो इन्द्र भी उस को जीत नहीं सकते. दूसरे मनुष्यों की क्या बात करें!" यह सब बात सुनकर राजा मनमें प्रसन्न हुआ.

राजाने कहा, "राक्षस इस प्रकार पृथ्वी पर दण्ड को रख करके दृढ भावसे देवपूजा करता है, तो मेरा मनोरथ अवश्य सिद्ध हो ही जायेगा." इतनेमें राक्षस का आने का समय होने आया, तब राजकन्या बोली, "हे नरवीर! राक्षस अभी आ जायगा, इस लिये आप गुप्त रूप से कुछ समय तक छिप जाइए."

भीम राक्षस से युद्ध का आह्वान:—

"तुम डरो नहीं." इस प्रकार उस राजकन्या से कहकर राजा

यदि तुमको अपने प्राण बचानेकी अभिलाषा हो तो, इस कन्याको छोड़कर यहाँ से अपने स्थानको चले जाओ।"

राजा विक्रमादित्य की निर्भय वाणी सुनकर क्रोधसे लाल नेत्र करके धम-धमाते राक्षसने तीन कोस ऊँचा विस्तारवाला भयंकर अपना रूप बनाया। चरण के आघात से पृथ्वी को कम्पित करता हुआ देव और दानवों को डराता हुआ वह राक्षस राजाको मारने दौडा अग्नि वैतालकी सहायता से राक्षस के शरीरसे भी दुगना शरीर बनाकर राजा क्रोधसे लाल नेत्र कर के राक्षस के कंधे पर चढ़ बैठा और उसीके 'वज्र दण्ड'से उसके शिर एक ऐसा जोरसे प्रहार किया कि जिससे वह दुराशयवाला राक्षस क्षण मात्रमें ही दुर्गति को प्राप्त हो गया × कहा भी हैं कि— "घी रहित भोजन, प्रियजनोंका वियोग, अप्रियजनोंका संयोग यह सब पापका फल हैं." तीन वर्ष, तीन मास, या तीन पक्ष और तीन दिन में ही अत्यत उग्र पाप या पुण्य का फल यहाँ ही प्राप्त हो जाता है, कहा भी है कि—

× वास्तवमें जैन धर्मानुसार भूत-प्रेत-पिशाच-राक्षस आदि सब व्यन्तर जातिमें गिने जाते है, उस व्यन्तर जातिमें हलके स्वभावके देव होते, वे कुतुहली-कुतुहल-प्रीय होनेके कारण दूसर प्राणीओं के शरीर में अथवा कोई कोई स्थानोंमें प्रवेश कर अनेक चेष्टाए द्वारा लोगोंको कभी कभी दु खी करते और आनद विनोद मानते हैं। उन्हों को कोई मनुष्य मार नही सकते क्योंकि उनका आयु अनपवर्तनीय-निश्चल होता है किन्तु कोइ महापुण्यशालि व्यक्ति क्षणमें उनको मार भगाता-वहाँ से दूर हठाता हैं। भूत-प्रेत-आदि व्यन्तर जातिके देव होने के कारण कुतुहल प्रिय जरुर है किन्तु मास-दारु वगेरे का वे आहार नहीं करते केवल चेष्टा करते रहते हैं।

'कुत्सित बुद्धिसे राजा नष्ट हो जाता है. समय आजाने पर फल पकता है. जठराग्नि से अनाज पकता है और पापीजन अपने पाप से ही नष्ट हो जाता है.'+

यह विस्मयकारक दृश्य देख कर राजकन्या विचारने लगी, 'क्या यह कोई देव, कदर्प अथवा राजा ही मेरी रक्षा करने आया है ?'

अग्निवैताल उस मरे हुए राक्षस के सब अंगोको खाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ. चन्द्रावती राजकन्या भी राजाके पराक्रमको देख कर मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुई.

श्रीपुर नगर का पुन स्थापनः--

इसके बाद राजाने अग्निवैतालसे कहा, "सब लोगों को ला कर इस नगरको फिरसे अभी का अभी बसा दो. इस नगर के राजा विजयको भी जहाँ हो वहाँसे शीघ्र ले आओ. यह राज्य उसे ही दे दूँगा."

राजाकी आज्ञा प्राप्त कर के अग्निवैताल शीघ्र ही राजा तथा प्रजाको लाने के लिये चल दिया और थोडे ही समयमें उस नगरको पुन-पूर्ववत् बसा दिया. राजा विजय मनमें सोचने लगा, 'यह विस्मयकारक सब वृतान्त कैसे और किस तरह अति शीघ्र बन गया. यह जिज्ञासा पूर्ण करने कि अभिलाषा से महाराजा विक्रमादित्य से राजा विजयने पूछा, "आप कौन हो और कहाँ से आये है ? यह बात बताईये."

महाराजा विक्रमादित्य बोला, "आपको यह पूछनेसे क्या लाभ ? और क्या प्रयोजन है ?"

+ "कुमंत्रैः पच्यते राजा—फलं कालेन पच्यते ।
अग्निना पच्यते चान्न-पापी पापेन पच्यते ॥ सर्ग ९।४०६ ॥

इसके बाद राजा विक्रमादित्यके उपकारसे और विलक्षण पराक्रमसे राजा विजयने समझ लिया, 'यह कोई असाधारण उत्तम पुरुष है.' फिर बादमें प्रसन्न होकर राजा विजयने आग्रह पूर्वक धामधूमसे उत्सव करके अपनी पुत्री चन्द्रावतीका महाराजा विक्रमादित्यके साथ विवाह कर दिया.

इधर पंडितजी आदि सब छात्र इधर-उधर देखते हुए नगरमें राजाके महलमें पहुँचे. वहाँ राजाका उपकार करनेवाले और अद्भुत स्त्रीके साथ विक्रमादित्यको देखकर वे लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये, उन्होंने राजाके चरणकमलमें सप्रेम प्रणाम किया.

इसके बाद विक्रमादित्यने वैतालसे कहा, "शीघ्र जाओ और विप्रपत्नी उमादेवीका सोपारक नगरमें जाकर सब समाचार ले आओ."

महाराजाकी आज्ञानुसार अग्निवैतालने उमादेवीका हाल जानकर राजासे कहा, "योगिनी तथा क्षेत्रपालोंने उमादेवीको भक्षण कर लीयें है".

राजा विक्रमादित्य राजा विजयको पूछकर पंडित, छात्र और अपनी प्रिया चन्द्रावतीके साथ अग्निवैतालकी सहायतासे पुन सोपारक नगरमें आ पहुँचे. और पंडित तथा छात्रोंको बहुतसा द्रव्य देकर संतुष्ट किये. वहाँ इसके बाद जिन मंदिरमें जाकर श्री आदिनाथकी भाव-भक्तिसे स्तुति करके प्रसन्न हुआ.

बादमे महाराजा क्रमशः सोपारक नगरसे अवन्तीनगरीमें आया, 'वज्रदण्ड' और 'सर्वरसदण्ड' वे दोनों दण्ड नागदमनीको दे दिये. दण्डोंको देकर राजाने नागदमनीको कहा, "अब छत्रके लिये आगेका कर्तव्य कहो."

पाठकगण ! आपने महाराजा विक्रमादित्यके द्वारा किये गये साहसपूर्ण कार्यका हाल पढा जो नागदमनीके द्वारा बताये गये. दूसरे आदेशके पालनके हेतु किया गया था. महाराजाने अपनी चातुरीसे किस प्रकार त्रेसठ विद्यार्थी और गुरुको बाल-बाल बचाकर उस विप्र पत्नी उमादेवीका सदाके लिये अंत कर दिया.

सच है कि एक पुण्यशाली सारी नावको तिरा देता है और एक पापी पूरी नावको डूबा देता है. धन्य है महाराजा विक्रमादित्यको जिसने अपनी जान खतरेमें डाल कर भी अनेक व्यक्तियोंकी रक्षा की हैं. किसीने ठीक ही कहा है.

"जो पराये काम आये-धन्य है जगमें वही,
द्रव्यही को जोडकर-कोई सुयश पाता नही."

अधिकारपदं प्राप्य नोपकारं करोति यः;
अकारो लोपमात्रेण ककारद्वित्वतां व्रजेत् ॥ १ ॥
अधिकार कुं पायके – करे न पर-उपकार,
अधिकारमें से अ गया – बाकी रहा धिक्कार ॥ २ ॥
देखत सब जग जात है, थिर न रहे इहाँ कोय;
इसुं जाणी भलु कीजिए, हैये विमासी जोय ॥ ३ ॥
अखियां खुली है जबलग, तब लग ताहरुं सब कोय;
अखियां मींचाणा पीछे, और ही रंग ज होय ॥ ४ ॥
जीवन-जोबन राजमद, अविचल रहे न कोय;
जो दिन जाय सत्संगमें, जीवन का फल सोय ॥ ५ ॥

छियांलीसवाँ प्रकरण

मंत्रीश्वरका देश निकाल व महाराजा का पाताल प्रवेश

"उद्यम किजे जगतमें, मिले भाग्य अनुसार।
मोती मिले कि शंख पर, सागर गोतामार॥"

पाठक गण! आपने गत प्रकरणोंमें नागदमनी के आदेशानुसार महाराजा विक्रमादित्य द्वारा दिखाई गई महान् वीरता व साहस और अद्भुत आश्चर्यकारी–चमत्कारी कार्यो के विवरण को पढा. महाराजाने अपने इच्छित फल 'पच–दंड वाले छत्र' की प्राप्ति के हेतु क्रमश: रत्नपेटी, सर्वरसदड तथा वज्रदंड को प्राप्त किया अब आप तीसरे आदेश का रोचक हाल पढें.

महाराजा विक्रमादित्य ने पुन: नागदमनी को याद दिलाते हुए कहा, "हे नागदमनी! अब तुम मुझे तीसरे आदेश–कार्य को बताओ ताकि मैं उसे भी शीघ्र पूरा कर लूँ"

इस पर नागदमनीने उत्तर दिया, "हे राजन! आपका मत्री जो **मतीसार** है उसे अपने सकुटुम्ब के साथ देश निकाल दे दो"

मंत्रीश्वर का पूर्व परिचयः—

मतीसार के तीन पुत्र हैं, जो उत्तम विद्वानों से शिक्षा आदि प्राप्त कर, स्वयं ही विद्वान बन गये है. इनके नाम क्रमश: **सोम, चंद्र,** और **धन** है. इन तीनों पुत्रों के विवाह बडे बडे धनीकों की

पुत्रियों के साथ हो चुके है. जिनमें सब से छोटे पुत्र घन की स्त्री अति बुद्धिमानी है.

"धार्मिक जन के ही होते हैं, विनयवान सुत सरल यहाँ,
न्याय उपार्जित धन और सुन्दर-वधू भली मिलती ही कहाँ?"

उन तीनों पुत्रों में छोटे पुत्रकी स्त्री सब पक्षीयोंकी भाषा भी जानती थी. श्वसुर और सासु की भक्ति करने म सदा तत्पर और चतुर थी. बिना भाग्य के विनयी तथा पुण्यात्मा पुत्र प्राप्त नहीं होता है, वैसे ही बिना भाग्य के यायमार्ग से उपार्जित धन और विनयवान पुत्रवधू भी प्राप्त नहीं होते

एक दिन वह मंत्रीकी पुत्रवधू म या कालमें अपनी हवेली के ऊपर बैठी थी. उस समयमें पूर्व दिशामें अकस्मात् सियाल का शब्द सुनकर वह विचारन लगी, ' क्या मेरे श्वसुर मतीसारको बिना अपराधके आजसे छै महिनों के बाद राजा देश निकाल का दण्ड देगा ? अत उसका कुछ उपाय सोचना चाहिये क्यों कि जो भविष्य की चिन्ता करता है वह सुखी होता है, और जो भविष्य की चिन्ता नहीं करता वह अवश्य दु खी हो जाता है

चतुर सियार-लोमडीकी कथा

जैसे जगलमे वसनेवाल सियार लोमडी ने गुहाकी वाणी से अपनी आत्मरक्षा की.

किसी वनम एक सिंह रहता था एक दिन भक्ष्य नहीं मिलने से भूखसे पीडित हो कर गुहाम आकर वह सोचने लगा, ' रात्रिमें इस गुहामें आकर पशु रहेंगे, तब मे उनको खाकर अपनी भूख शान्त

करूँगा.' इस के बाद रात्रि होने आई तब उस गुहामें रहने के लिये एक सियाल आया. परन्तु गुहाके बाहर सिंह के चरण चिह्न--पगले देखकर वह विचारने लगा कि इस गुहामे अवश्य पहिले सिंह गया होगा. इस लिये यहाँ रह कर गुहासे सिंह के आनेका समाचार पूछता हूँ. यह सोच कर वह सियाल बोला, 'हे गुहे! बोलो तो अभी मैं अन्दर आऊँ या न ?'

बाहरमें सियालका शब्द सुनकर सिंह सोचने लगा, 'यदि यह गुहा अभी नहीं बोली तो यह सियाल भीतर नहीं आयेगा, इस लिये मैं ही प्रत्युत्तर देता हूँ.' यह सोचकर सिंह बोला, 'हे सियाल! आओ आओ शीघ्र चले आओ.'

पुत्रवधूने रत्न कण्डोमें थाप दिये

सियाल गुहाको पूछने लगा. चित्र न. १९-२०

सिंहका शब्द सुनकर अन्य वनके पशु जाग गये. सियाल भी बारंबार यह पढ़ने लगा, 'अनागतकी चिन्ता करनेवाला कदापि दुःखी नहीं होता.' वनमें रहते रहते मैं वृद्ध हो गया; परन्तु गुफाकी वाणी तो कभी नहीं सुनी." इस प्रकार सोचकर वह सियाल बुद्धिके प्रयोगद्वारा मृत्युसे बच गया."

मतीसार—मंत्रीश्वरकी पुत्रवधूने मनमें निश्चय किया कि 'मैं भी वैसाही उपाय करुंगी.' यह सोचकर एकएक रत्नको प्रत्येक कण्डेमें—ठाणामें रखकर थापने लगी, परिवारके लोगोंके निषेध करने पर भी जब उसने अपने कार्यक्रमका त्याग नहीं किया; तो लोग उसकी हँसी उड़ाने लगे. वे लोग कहने लगे, '**वाह! यह कुलवधू अपने कुलका उद्धार करेगी?**' लोगोंका इस प्रकार व्यंग सुनकर भी वह मंत्रीकी पुत्रवधू अपना कार्य नहीं छोड़ती थी. क्योंकि 'सर्वथा अपने हितका आचरण करना चाहिये; अधिक बहुत बोलकर क्या करेंगे ' ऐसा कोई भी कार्य नहीं है. जिसमें सब लोग संतुष्ट ही रहे !'+ वह मनमें सोचती थी, " यदि मैं किसीके आगे अपने मनकी बात कहूँगी तो भी कोई मानेंगे नहीं, और और की क्या बात करें! मेरे श्वशुर और सासु भी यह बात मानेंगे ही नहीं, दुनीया दुरंगी है. " ऐसा सोचकर किसी भी बातका विचार न करके अपना कार्य बराबर करती रही, इस प्रकार उस मंत्रीकी पुत्रवधूने दूसरोंकी बातोंका अनादर करके उसने अनेक रत्न कण्डोंमें थाप दिये.

+ 'सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः ।
विद्यते स नहि कश्चिदुपायः सर्वलोक परितोषकरो यः ॥ह० ५/४४९॥

इस तरह समय आनंदपूर्वक बीत रहा था, मंत्रीश्वर राज्य का कारभार बराबर कर रहे थे, महाराजा भी मंत्रीश्वर के उपर प्रसन्न रहते थे; सियाल की भविष्य वाणी को करीब छ मास बीतने आये.

मंत्री मतीसार को देश निकाला :—

बराबर छ मासके अन्तमें अकस्मात् मतीसार को बुला कर महाराजाने कहा, 'मुझको तुम राज्यका हिसाबवही बताओ, अन्यथा मेरे राज्य से बाहर चले जाओ.' इस प्रकार राजा की आज्ञा मान कर जब मंत्री हिसाब देने लगा तब राजाने निष्कारण ही छल-कपट-से क्रुद्ध हो कर उस की सब संपत्ति ले ली और उस को अपनी राज्य की सीमा-हदसे बाहर चले जाने की आज्ञा फरमाई.

मंत्रीश्वर तो स्वमानी था. क्यों कि श्रेष्ट पुरुषों को मान ही धन होता है राजाज्ञा—अनुसार अवंती छोड चला, किन्तु बुद्धिमती उसकी पुत्रवधू घर का सारभाग उन उपलों को समजकर वह लेकर घरसे निकली, और सभीने कुछ थोडासा सर सामान ले अपने नशीब के भरोसे चल पडे. कोई कहते थे कि यह चतुर है इसलिये किसी मतलब से ही कण्डों को लेकर जा रही है. कोई कहते थे कि आज तक प्रजाको मंत्रीने अति कष्ट दिया है, उसी दुष्कर्म का यह फल है. कोई कहते थे कि यह मंत्री अत्यन्त भला है और इसने किसी को भी दुःख नहीं दिया है, न जाने राजाने इसको देशनिकालका भयंकर दण्ड क्यों दिया? कोई कहता कि सच ही आज कल भलाईका जमाना नहीं है? कोई कहते थे कि इस मंत्रीने इस जन्म मे तो कोई पाप

नहीं किया परंतु यह कोई पूर्व जन्म के पापोंका ही फल है. क्यों कि
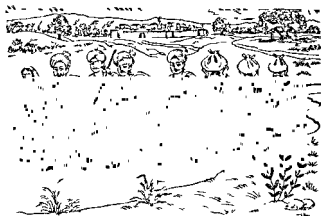
(राजाज्ञानुसार मंत्रीश्वर का सकुटुंब अवंती से प्रस्थान करना चित्र न. २१)

किसी भी प्राणी के सुख अथवा दुःख का कर्ता या हर्ता कोई अन्य नहीं है; सब अपने अपने पूर्व जन्म के किये गये कर्मों का ही फल भोगते हैं. कोई कहते थे कि यह राजा नागदमनी से प्रेरित होकर शिष्ट व्यक्तियों का भी इस प्रकार अपमान करता है. इस प्रकार नगरमें लोगों की तरह तरह की बातें सुनाई देती थी.

एक वृद्धने कहा, "भाई! सुनो मैं एक दोहरा सुनाता हूँ–

"जोगी किसका गोठिया, राजा किसका मित्र;
वैश्या किसकी इस्तरी, तीनों मित्र कुमित्र."

मंत्री मतीसार का रत्नपुरमें जाना:—

मंत्री अपने परिवार सहित दूर देश चला गया. क्रमश जाते जाते वह कुटुम्ब के साथ कोई एक नगर के समीप पहुंचा. और विचारने लगा कि अब हमलोग किस प्रकार जीवननिर्वाह करेंगे वहाँ पर किसी मनुष्य से पूछा, "भाई! इस नगर का क्या नाम है? और नातिमार्ग से पालन करनेवाला राजा कौन है? इसकी रानी तथा कुमार और कुमारी का क्या नाम है?"

तब वह मनुष्य कहने लगा, "यह **रत्नपुर** नामक नगर है, इस के राजा का नाम **रत्नसेन** है. और इसकी रानी का नाम **रत्नवती** है. **चन्द्रकुमार** नामक विद्वान् पुत्र है और कुमारी का नाम **विश्वलोचना** है." यह सब सुनकर मतीसार मंत्री उसी नगरी मे धनोपार्जन का उपाय करने लगा. परन्तु इससे उनका निर्वाह न होता था. ठीक ही कहा है कि दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और सेवक ये पाचों जीते हुए भी मरे तुल्य हैं. उस मंत्री का कुटुम्ब भूख से पीडित होकर परस्पर कलह नित्य करता रहता था. इस प्रकार कुटुम्ब को कलह करते देखकर, उस छोटी पुत्रवधूने कण्ठे में से एक बहु मूल्य मणि निकाल कर निर्वाह के लिये अपने श्वसुरजी को दिया.

अपने पतिदेव और उनके दोनों बड़े भाईयोंको भी एक एक बहु मूल्य रत्न दिया. ये लोग रत्न लेकर दूर देशोंमें व्यापारके लिये चले गये.

उन लोगोंको गये जानकर वह सोचने लगी, 'श्वसुर आदिके बिना हम कैसे अपना समय वितायेंगे' धन देने पर भी ये लोग हमसे दूर चले गये. आपत्ति आने पर प्राणीका कोई भी आत्मीय नहीं होता. अथवा इन लोगोंका कोई दोष नहीं है. यह तो अपने पूर्व जन्मके किये गये कर्मोंका ही दोष है. तो भी जब तक यह दुर्भाग्य दूर न हो जाय, तब तक वेष बदलकर गुप्त रहना ही अच्छा है. क्यों कि बिना पतिके स्त्रियोंका शील रक्षण अत्यन्त दुष्कर है.' यह सब मनमें सोचकर वह छोटी पुत्रवधूने अपने पतिके बड़े भाईयोंकी स्त्रियोंके साथ रात्रिमें दूसरे नगरको जानेके लिये प्रस्थान किया. और दूसरे नगरमें जाकर शील रक्षाके लिये उसने पुरुष वेषको धारण कर तथा एक रत्न वेचकर एक वृद्ध स्त्रीके घरमें वे सब रहने लगी, उस वृद्धाके द्वारा अन्न आदि सामग्री मगवाती थी.

प्रतिदिन भोजन करके पुरुष वेषवाली वह पुत्रवधू झरोखेके पास बैठती थी. एक दिन झरोखेमें बैठे हुए उसने अपने श्वसुरको थोडे दूरमें रोते हुए देखा और वृद्धासे कहा, "वह रोते हुए मनुष्यको यहाँ ले आओ."

धनसारका कुटुम्बसे पुनः मिलन—

वृद्धाने उसके पास जाकर कहा, "उस झरोखे में बैठा हुआ एक कुमार तुम्हे बुला रहा है" इस प्रकार कहकर लकड़ीके भारेको उठाये हुए उस वृद्ध मनुष्यको वह बुढ़िया अपने घरमें ले आई. इसके बाद उस कुमार-वेषधारी पुत्रवधूने कहा, "तुम क्यों इतना

रुदन मचाते हो? यदि तुम मेरे घरमें कार्य करोगे तो तुम्हारा सब दुःख मैं दूर कर दूँगा"

वृद्धने कहा, "मैं तुम्हारे कथनके अनुसार सब कार्य करुंगा. क्योंकि पथिक जिस किसीका क्या क्या कार्य नहीं करता? किस किसको प्रणाम नहीं करता? इस दुर्भर पेटके लिये सभी कुछ करना पडता है. पैदल मुसाफरी करने जैसा कोई कष्ट नहीं, क्षुधा–भूख के समान कोई रोग नहीं है, मरणके समान कोई भय नहीं और दारिद्रयके समान कोई शत्रु नहीं है

"अधिक चले तो वृद्ध हो–भूख समान न रोग;
मृत्यु बराबर भय नहीं–दारिद्र से बद कर रोग."

इसके बाद वह पुरुषवेशधारी–कुमार उस वृद्ध को बराबर साधारण कार्य करने को कहता और अच्छा अच्छा भोजन देता था इस प्रकार क्रमशः अपने पति आदि तीनों भाईयोंको भी उसने अपने घरमें नौकर बनाकर उत्तम भोजन आदि देकर सुखसे रखती थी. अपने परिवार को एकत्रित देखकर मतीसार मंत्री की पुत्रवधूने पुनः अपना स्त्रीका रूप बना लिया यह देखकर मतीसार अपने मनमें अत्यन्त चकित हो गया

तब पुत्रवधूने पूछा, 'हे तात! सवालाख मूल्य का रत्न तुम्हारे पास था, तो भी यह दुदशा तुम्हारी क्यों हुई?"

मंत्री कहने लगा, "मैं मणि लेकर बाजारमें गया और कहा कि मेरे पास एक लाख का हीरा है" यह सुनकर झवेरीने कहा,

'दिखाओ' तो, तब मैंने उसे दिखाया. देखकर उस व्यौपारीने लापरवाहीसे हँसकर कहा, 'तुमको साधारण पत्थर देकर किसीने ठग लिया.'

तब मैंने कहा, 'मेरी पुत्रवधूने निर्वाह के लिये मुझे दिया है.'

व्यौपारीने कहा, 'तुमको उसने ही ठग लिया' बादमें मैं दूसरी दूकान पर गया और उसे दिखाया. परंतु उस व्यौपारीने भी पूर्ववत् ही कहा और मेरी खिल्ली उडाई. इस प्रकार मन घूम घूम कर बहुत से व्यौपारियों को दिखाया परंतु सभी ने कहा, 'यह पत्थर है.' तब मैंने सोचा, 'दुष्कर्म के प्रभाव से ही रत्न भी साधारण पथर बन गया.' बादमें खिन्न होकर मैं बजार के बाहर आया क्यों कि —

'फलता नहीं कदापि जगतमें कुल शील मति सुन्दरता;
पूर्व जन्म कृत कर्म वृक्ष ही फलते सुख दुःख परपरता.'

'किसी को भी सुंदररूप कुल शील, विद्या अथवा सेवासे फल नहीं मिलता बल्के वृक्ष की भांति पूर्व कृतकर्म और तपस्या निश्चय से फल देते हैं.'+

+ नैवाकृति फलति नैव कुलं न शीलम्,
विद्या च नैव न च जन्मकृता च सेवा।
कर्माणि पूर्व तपसा किल सचितानि
काले फलन्ति पुरुषस्य यथेह वृक्षा ॥ सर्ग १/४९९॥

बाजारके बाहर आकर जब मैंने अपने परिवारके किसी भी मनुष्यको नहीं देखा तब दु खी होकर पुन नगरमें गया और लकडी वेचकर तथा दूसरोंका काम करके बडे कष्टसे अपने पेटको भरता हुआ, फिरता फिरता यहाँ आया. इस प्रकार पूर्वकृत कर्मके फलको भोगता हुवा इधर–उधर भटकता ही था, कि तुमने मुझे देख लिया"

पुत्रवधूने पूछा, "उस रत्नको फेंक दिया या आपके पास है।"
मंत्रीने कहा, " वह मेरे वस्त्रमें बधा हुआ सुरक्षित है."

पुत्रवधूने कहा, " वह मणि मुझको दिखाइये." इस प्रकार पुत्रवधूके कहने पर मत्रीने उस रत्नको दिखाया. उस मणिको स्वभावसे तेजस्वी देखकर वे दोनों चौकन्ने रह गये–विस्मय हो गये.

इसी प्रकार मंत्रीके तीनों पुत्रोंको भी उसने पूछा और उन लोगोंने भी वैसा ही उत्तर देकर अपना अपना रत्न उसको पुन दे दिया. वे रत्न भी अपने वास्तविक तेजसे युक्त दिखाई दिये इसके बाद वह मतीसार अपनी छोटी पुत्रवधूको पूछ पूछ कर ही सब कार्य करने लगा क्यों कि—

" जो अपने बुद्धयादि गुणोंसे विशिष्ट होते है, राजा, माता तथा पिता भी उनका सदा सन्मान करते है."+

इस के बाद एक लाख मूल्य में एक रत्न वेचकर मत्री अपने कुटुम्ब के साथ सुखसे अपने दिन बिताने लगा. क्यों कि पतिव्रता स्त्री,

+ यो बुद्धयादि गुणै शिष्टविशिष्टो जायते जन ।
सन्मान्यते महीपाल मातृपित्रादिभि सदा ।।सर्ग ५५०८ ।

विनयी पुत्र, उत्तम गुणोंसे युक्त पुत्रवधू, बंधु, प्रधान, उत्तम मित्र ये सब लोगों को धर्मके प्रभावसे प्राप्त हो सकते है. किसी ने ठीक ही कहा हैं कि—

'पतिव्रता स्त्री विनयी बालक भली वधू प्रेमी भाई;
मित्र निच्छली[1] धर्म किये पर मिलते हैं सब सुखदाई.'

बराबर छ मास के अन्तमें एक दिन सियाल का शब्द सुनकर पुत्रवधूने कहा, "प्रात काल पूर्व दिशामें चन्द्र नाम के सरोवर पर राजा विक्रमादित्य तुमसे मिलेंगे इसलिये अभी सब कार्य को छोड़कर उसके पास चले जाइये. अपनी बुद्धिमति पुत्रवधू के कथनानुसार मंत्रीश्वर शीघ्र तैयार हो कर, उस ओर चल दिया

विक्रमादित्य द्वारा मतीसार मंत्री का पुनः सन्मान—

इधर राजा विक्रमादित्य नागदमनी को बुलाकर पूछने लगा, "तुम अपना चतुर्थ आदेश कहो."

नागदमनीने कहा, "हे राजन्! रत्नपुर में शीघ्र जाकर अपने मंत्री मतीसार को सन्मानपूर्वक शीघ्र ही ले आओ" इस प्रकार राजा नागदमनी के कहने पर मंत्री को लाने उस ओर चल दिया राजा जब चन्द्र नामके सरोवर पर पहुँचा तो ठीक उसी समय मतीसार मंत्री भी उस के सामने हो आया. राजा मंत्री को बहुत आदर से भेट पड़े और खूब हर्षित हुआ. मंत्री ने महाराजा का भक्तिपूर्वक सन्मान किया. और महाराजा को बहुत आदर सहित अपने घर ले आया महाराजा विक्रमादित्य मंत्री की सम्पत्ति देखकर चकित हो गया.

राजा को आश्चर्ययुक्त देख कर मंत्रीने कहा, "आपकी कृपा और

[1] निष्कपटी-निर्मल चित्तवाला

पुत्रवधू की बुद्धिमत्ता से यह सब सम्पत्ति हुई है, और पूर्व जन्म में किये गये बुरे कर्म के फल को भोगकर अब सुखी हुआ हूँ.
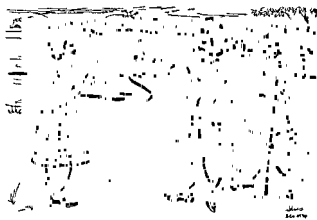
(चन्द्र नामके सरोवर पर महाराजा और मन्त्रीश्वरका मिलन. चित्र न. २२)

राजाने कहा, "पुत्रवधू की बुद्धिमानी से है? कैसे व क्या हुआ?"

मंत्रीने पुत्रवधू की बुद्धिमानी और दूर-दर्शिताका सब हाल कह सुनाया.

राजाने कहा, "मैंने तुमको देश निकाला दे दिया था, इसलिये इस सम्पत्ति की प्राप्तिमें मेरी कोई कृपा नहीं है."

इधर उसी समय नगरमें पटह का शब्द सुनकर राजाने मंत्रीसे कहा, "इस नगरका राजा अभी क्यों पटह बजवा रहा है?"

तब मंत्रीने सब समाचार जानकर महाराजा विक्रमादित्य को कहा, "पहले इस नगरमें एक एन्द्रजालिक आया था, उस समय

राजा सभामें ही था. ऐन्द्रजालिकने राजा से कहा, 'अगर आप की आज्ञा हो तो अपना कौशल दिखाऊँ.'

राजाने कहा, 'तुम अपना कौशल अवश्य दिखाओ.'

इस प्रकार राजा की आज्ञा पाकर ऐन्द्रजालिकने अनेक प्रकारके खेल करके अपना कौशल दिखाया, और इसने राजासे कहा, 'हे राजन्! यदि आपकी रुचि हो तो नित्य फल देनेवाली आम की वाडी दिखा दूँ.'

राजाने कहा, 'इससे बढ़कर और क्या चीज देखने योग्य हो सकती है?'

इस प्रकार राजाकी उत्कट इच्छा देखकर ऐन्द्रजालिकने नित्य फल देने वाले आमकी गुटिकाका रोपण करके आमकी वाडी बना दी, और इसके समीप एक रम्य पर्वत बनाया वाटिकाके मध्यमें एक नदी प्रवाहित कर दी. नदीके जलसे वृक्षोंको सींच करके पत्र, पुष्प और फलोंसे उसे परिपूर्ण किया. उपरोक्त विस्मयकारक कार्यको देख सभी लोग चकित हो गये.

इस प्रकार सदा पके हुए फलवाले आमोंकी वाटिका बनाकर राजासे कहा, 'यदि आपकी आज्ञा हो तो इन आमोंके फलोंको शरीरकी पुष्टिके लिये आपके परिवारको दूँ.' 'दो' इस प्रकार राजाके कहने पर ऐन्द्रजालिकने आश्चर्य करनेके लिये उन लोगोंको दिया. उन फलोंको परिवार सहित खाकर राजा सोचने लगा, 'यदि इस ऐन्द्रजालिकको मार दूँ तो यह सब योंही रह जाय' राजाने इस प्रकार सोचकर उसे मरवा दिया, और अपने सेवकोंको वाटिकासे फल लानेके लिये भेजा. जब वे

लोग फल लेने गये तो उनके हाथोंमें फलके बजाय पत्थर आने लगे, और नदीका जल लेने गये तो हाथोंमें धूल आने लगी. यह देखकर राजाने शान्तिक क्रिया करवाई तो भी धूल और पत्थर ही मिले, राजा सोचने लगा, 'यह मैंने अच्छा नहीं किया. जो ऐन्द्रजालिकको मरवा दिया इस लिए कुछ भी हाथ न लगा.' ठीक ही कहा है, बिना विचारे सहसा कोई कार्य नहा करना चाहियें. क्योंकि बिना विचारके कार्य करनेस आपत्तिका ही सामना करना पड़ता है. विचारकर कार्य करनेसे गुणोंको चाहने वाली सम्पति खुद ही मिलती है, बिना विचारके कार्य करनेवाले प्राणी दु खी होतें हैं.

वह ऐन्द्रजालिक मरकर तत्काल देवयोनीमें गया और देव होकर उसने इस वाटिकाको मटिआमेट—नाश कर दिया. राजाने मंत्रियोंके साथ विचार कर नगरके चारों तरफ पटह बजवा कर कहलाया, 'जो कोई इस वाटिकाको पुन फलयुक्त और इस नदीको जलसे पुन प्रवाहित करेगा उसको राजा बहुत सम्मानित करेगा. साथ ही साथ अच्छा उत्सव कर, आधा राज्य उसे समर्पित करेगा. अधिकमें अपनी कन्या त्रिधलोचनाकी उसके साथ सादा–विवाह करेगा."

यह सब बातें सुन कर विक्रमादित्यने कहा, "हे मंत्री! तुम जाकर पटहका स्पर्श करो, बाद में सब कुछ कर दूँगा! मुझको कुछ भी लेनेकी चाह नहीं है." जब मंत्राने जाकर पटहका स्पर्श कर लिया, तब राजा विक्रमादित्यने अग्निवेतालकी सहायता से वाटिकाको पूर्ववत् बना दिया. क्योंकि मनुष्य से असाध्य कार्यको भी देवताकी सहायता से लोग क्षणमात्र में ही साध्य कर देते हैं.

महाराजाका विश्वलोचनासे विवाह—

राजाकी आज्ञासे अग्निवेतालने उस व्यन्तर को भी दूर कर दिया और वाटिका से फल लाकर राजा को दिया. राजाने भी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपना आधा राज्य उसे दे दिया. क्योंकि

'मेरु हिमालय हिल सकता है–जलधि करे मर्यादा भग; लेकिन सज्जन नही बदलते–अपनी बात को किसी प्रसंग.'

' आलस्यमें आकर भी सज्जन व्यक्ति जो बोलते है, वह पत्थर मे टक से लिखे गये अक्षरों के समान कभी भी अन्यथा नहीं होते हैं. इस लिये कुल और शील ज्ञात नहीं रहने पर भी राजाने विश्वलोचना नामक अपनी कन्या विक्रमादित्य के व्याह दी, राजाके इस कार्य पर कई लोग कहने लगे, 'कुल या शील को जाने विना ही राजाने अपनी कन्या विदेशी को दे दी यह अच्छा नहीं किया मूर्ख भी ऐसे अज्ञात व्यक्ति को कन्या नहा देता, तो फिर विद्वान् हो कर भी राजाने एकाएक ऐसा क्यों किया ?'

ये सब बाते सुन कर मत्री मतीसारने राजा रत्नसेन को कहा, "यह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है. यह राजा विक्रमादित्य है, कि जिसने खर्पर और अग्निवेताल को अपने वशमें कर लिया है. यह महाराजा विक्रमादित्य का मुझको बुलाने के लिये यहाँ एकाएक ही आना हुआ है "

इस प्रकार मत्री की वात सुनकर राजाने नगरके कोने कोनेमें उत्सव मनाया, और अग्निवेतालकी सहायतासे उन सदा फलनेवाले

आम्रों के बीज लेकर मत्री और अपनी स्त्रीके साथ राजा विक्रमादित्य भी अपने नगरमें आया. और नागदमनी को बुलाकर आम्रों के बीज दिये तथा मत्रीश्वरको आदर सहित अपन प्राचीन पद पर स्थापित किया. इसके बाद राजा विक्रमादित्यने नागदमनी से कहा, "अब तुम अपना पचम आदेश–काय का निर्देश करो."

"सभी दानोंमें सुपात्र-दान सर्व श्रेष्ट कहा;
सन्मान पूर्वक देता–वही मोक्ष निदान कहा."

इस ससारम प्रचुर पुण्य एकत्र करना सभी प्राणियकि लिये बहुत आवश्यक है, क्योंकि मजबुत नींवके सिवाय मकान भी नहीं टीकता है, तो फिर इस ससारमें सभी प्राणियों सुख प्राप्त करने चाहते हैं और वह सुख पुण्यके सिवाय ओर कोई प्रकार अपनी इच्छासे प्राप्त करना अशक्य है, इसी लिये महाराजा विक्रमादित्य तो प्रथमसे ही बडी उदारतासे दान दे रहे थे.

तथापि नागदमनीने पचम आदेशके रूपमें महाराजा विक्रमादित्यसे नम्र निवेदन किया, "हे राजन्! आप सर्व प्रकारके दानोंमें जो श्रेष्ट सुपात्र दान सर्वत्र प्रसिद्ध है वह सुपात्र दान अधिकत्तर रूपमें देना आरभ करें."

सुपात्र दान याने क्या? सुयोग्य सदाचारसे युक्त जो सद्गुणी व्यक्ति हो उसको सन्मानपूर्वक दान देना उसीको सुपात्र दान शास्त्रमें कहा गया.

सुपात्र-दान—

राजाने सुपात्र की परीक्षा के लिये प्रथम ब्राह्मणों को बुलवाये और पूछा, "तुम में से सुपात्र कौन है?"

ब्राह्मणोंने कहा, "हम सब सुपात्र ही हैं."

राजाने पूछा, "आप लोगों को क्या क्या दान दिया जाय वह बतलाइये?"

वे लोग कहने लगे, "लोग अपनी सद्गति के लिये, पृथ्वी, रत्न, पत्नी, गाय, यंत्र तथा मुशल आदि का दान देते हैं."

महाराजाने कहा, "जो तीव्र तपस्या करके ब्रह्मका अन्वेषण करते है, वे ही ब्राह्मण है, आत्मज्ञान के लिये चक्रवर्ती राजा भरतने जिनको स्थापित किया वे ब्राह्मण कहे जाते है. दूसरे नहीं, और पुराण में भी कहा है, कि ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण और शिल्प से शिल्पी होते हैं, अन्यथा गोकुलगाय पर इन्द्रगोपक नामके जन्तुके समान वह नाममात्र के लिये ही हैं."

ये सब बातें सुनकर ब्राह्मण लोग अत्यन्त क्रुद्ध हो कर कहने लगे, "हे पापिष्ठ! आप ऐसा क्यों कह रहे हो. नागदमनी के संग से ही तेरी बुद्धि बिगड़ी हैं." इस प्रकार ब्राह्मणोंकी बातें सुनकर राजाने विचार किया, 'ये ब्राह्मणलोग व्यर्थ ही अहंकार से भरे हुए हैं. ये अपने आपको बहुत बड़े मानने लग गये हैं. यदि देखा जाय तो

+ "ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिन'
अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपक कीटवत्" ॥ स. ९/५६७॥ +

लोकमें प्रसिद्धि के कारण या परंपरा के कारण और कर्म–विवाह आदि में उपयोगी होनेसे लोग इन्हें दान दे रहे हैं, किन्तु ब्रह्म का अन्वेषण याने सदाचार से युक्त हो कर सत्यकी खोज करना भूल गये हैं, खैर कैसे भी हो.' वैसा मनमें सोच ब्राह्मणों को नौकर के द्वारा दान दिला कर रवाने किये.

इस के बाद जैन साधुओंको बुला कर राजाने पूछा, तब साधुओंने कहा, "दो प्रकार के गुरु होते हैं, एक कर्मकाण्ड, विवाह, शान्तिक आदि कर्म करानेवाले वे गृहस्थ कर्मगुरु कहलाते है, और दुसरे जो स्वयं निष्पाप होकर उत्तम धर्म उपदेश करते हैं. क्योंकि महाव्रत के धारण करनेवाले बड़े धीर और भिक्षा मात्र से जीवन निर्वाह करनेवाले तथा सामायिक में स्थित धर्मोपदेशक सद्‌गुरु कहलाते हैं. किन्तु सब वस्तुओंकी अभिलाषा करनेवाले, सब वस्तुओंको भक्षण करने वाले, परिग्रह रखनेवाले, ब्रह्मचर्य से रहित और मिथ्या उपदेश करने-वाले वैसे सद्‌गुरु कदापि नहीं हो सकते. कहा भी है कि :—

'चार वर्ण में जो उत्तम है–शील सत्य गुण से संयुक्त,
दान उसी को देना चाहिये–जिसको देने से हो मुक्त.'

'चारों वर्णों में जो शील सत्य आदि से युक्त हो, मोक्ष की अभिलाषा करनेवाले हों उन्हें ही दान देना; वह ही सुपात्र दान है. '+

ऐसे निस्पृही साधुओं की ये सब सुन्दर बातें सुनकर राजाने विचार किया, 'निष्पाप, निरहंकार और तप करने में तत्पर ये लोग ही

+ "चतुर्वर्णेषु ये शील सत्यादि गुण संयुताः ।
तेष्वेव दीयते दानं जनैर्मोक्षाभिलाषिभिः ॥ स. ५/५७६॥

दानके योग्य हैं.' राजाने अंजलीबद्ध हो कर नमस्कार करके साधुओं को कहा, "आप लोगोंको जो कुछ वस्त्र आदि लेना हो वह लीजिये."

तब वे लोग मुहपत्ती–मुखवस्त्रिका से मुखको आच्छादित करके कहने लगे. "हे राजन्! जैन धर्ममें चौवीस तीर्थंकर भगवंत हुए हैं, उसमें दूसरे तीर्थंकर से लगाकर तेवीसवें तीर्थंकर प्रभु तक के बावीस मध्यम तीर्थंकर प्रभु के साधुओंको **राजपिण्ड+** खप शकता है; किन्तु प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ और अन्तीम तीर्थंकर श्री महावीर देव के साधुओं को 'राजपिण्ड' खपता नहीं है, यह जैन शासन में सदा के लिये आज्ञा याने मर्यादा है."

शास्त्रोंमें दान के पांच प्रकार बताये है–"अभयदान और सुपात्रदान मोक्ष देने वाला है, और अनुकंपादान, उचित दान एवं कीर्ति दान ये तीन दान भोग सामग्री को देनेवाले है. इसलिये हे राजन्! दीन दुःखी आदि लोगों को अपनी इच्छा के अनुसार दान दो. दीनों को दिया हुआ दान भी कल्याणकारक होता है." राजाने यह सुनकर दीनों को दान दिया. और बाद में अपना हाल जानने की इच्छा से अंधेर पछेडा ओढकर वह रात्रिको नगरी में घूमने निकला.

महाराजा घूमता घमता जब पुरोहित के घर के पास लोकविचार सुनने को खड़ा हुआ तो देवदमनी की बहन 'हरिताली' नाम की उत्तम आभूषण और वस्त्रों को पहने कर वहाँ आ गई. और जह्नु नाम की मालिका को उत्सुकतापूर्वक जाती देखकर उससे पूछा, "अभी तुम इतनी शीघ्रता से कहाँ जा रही हो?"

+ राजपिण्ड-राजा की ओर से वस्त्र पात्र और भोजन आदि लेना

जइतु कहने लगी, "पाताल मे नाग श्रेष्ठि के पुत्रका विवाह आज रात्रि में बडी धूम–धामसे होगा अतः नाग कुमार लोग एकत्रित होंगे वहाँ मैं यह पुष्पोंसे भरी छाब लेकर जा रही हूँ."

हरितालीने कहा, "हे सखि, मुझे भी वहाँ निमत्रण है इसलिये "वसुधास्फोटनदण्ड" पृथ्वी को फोडनेवाला दण्ड लेकर बाहर उद्यानमें योगिनियों के साथ मैं कुछ काल तक क्रीडा करुंगी अतः पुरोहित की गोमती नाम की कन्या को "विषनाशक"–विषापहार नामक दड के साथ बुलाकर बाहर उद्यान में तुम आजाओ. वहाँ सब कोई मिलेंगे और बाद मे चले जायेंगे." यह कहकर हरिताली बाहर उद्यान में चली गई.

जइतु पुरोहित के घर जा कर उस की कन्या को साथ लेकर पुष्पकी छाब लेकर जा रही थी परतु फुल छाव के भारसे पीडित हो कर जइतु गोमतीसे कहने लगी, " यदि कोई बटुक मिलता तो इसे कुछ मेहनताना देकर यह छाब उठवाती."

यह सब सुनकर राजा विक्रमादित्य बटुकका स्वरूप लेकर उसके पास प्रगट हो गया. मालिनीने इसे देखकर कहा, "रे बटुक! तुम इस भारको ले लो तो तुम्हें योग्य मजदूरी दिला दूँगी "

महाराजाका बटुक वेष–

बटुकने कहा, " मै अपने मस्तक पर रख कर आपका सभी भार उठा लूँगा." बटुकसे इस प्रकार योग्य मेहनताना ठहरा कर मालिनीने अपने पुष्प छाब उसके सीर पर रख दिया. बादमें ये दोनो उद्यानमें चले गये जहाँ हरितालीका थी, वहाँ जाकर देखा तो हरि-

तालिका चौसठ योगिनियोंके साथ नृत्य कर रही है. हरितालिकाके ोडा कर लेने पर वे तीनों एक वृक्ष पर चढे और इन दोनोंके साथ रितालिका और योगिनियों हुंकार करती हुई आकाश मार्गसे वर्णद्वीपमें गई. वहाँ वनमें क्रीडा करके कुछ दूर आगे जाकर वज्रदंडसे गघात करके पृथ्वीको फोड दिया तथा पातालके विवर–बाम्बी द्वारमें वेषनाशक दण्डसे सर्पोंको दूर करती हुई और अत्यन्त भयानक सर्पोंको हाथमें धारण करती हुई, उन दोनोंके साथ हरितालिका आदि सब पाताल नगरके समीप चली गई.

वहाँ जाकर उन्होंने पुष्पको छाता, और दोनों दण्ड बटुकको सोंप दिया और आप तीनों सरोवरमें स्नान करने गई. बादमें यहां पर विक्रम–बटुकने उन सब वस्तुओंको लेकर कौतुकवश पाताल नगरकी शोभा देखने चला गया. नागकुमार सब नाना अलंकारोंसे भूषित होकर जलूस रूपमें बाजारमें आया; ठीक उसी समय बटुक भी वहाँ पहुँचा. विक्रमादित्य–बटुक अग्निवेतालकी सहायतासे नाग-कुमारोंको अदृश्य करके और स्वयं सुन्दर रूप बनाकर उसके मनोहर घोड़े पर सवार हो गया. हार, कंकण, आदि आभूषणोंको धारण करनेसे मानों एक नागकुमार सा ही दीखने लगा और *मायनमें–स्यचौरा मातृगृहमें जाकर 'श्रीद'की पुत्रीसे पाणिग्रहण कर लिया.

इधर हरितालि आदि तीनों स्त्रियाँ जब स्नान करके बाहर आई तो बटुकको वहाँ नहीं देखा; अतः वे सब निराश होकर उसे खोजती

*मायरा–सारे–मायरा–विवाहसे पहले मातृका और पितृनिमन्त्रणका कृत्य।

हुई नागपुत्रोंको देखनेके लिये श्रीदके घर पहुँची. वहाँ अग्निवेतालकी सहायतासे विक्रमादित्य पुन बटुकका रूप धारण कर बैठा था. वहाँ मायनमें-माताके घरमें विवाह करते हुए बटुकको देखकर इन्होंने कहा, "हमलोगोंका दण्ड आदि समान लेकर हमें ठगकर यहाँ आकर तुम क्या कर रहे हो? हमारे दोनों दड दे दो अन्यथा तुम पर भारी सकट डाल दूंगी" यह सुनकर विक्रमादित्य अपने असल रूपमें प्रगट हो गया. विक्रमादित्यको देखकर वे सब कन्यायें ताज्जुब सी हो गई और लज्जित होकर कहने लगी कि "हम लोगोंसे भी पाणिग्रहण कर ली" श्रीद श्रेष्ठि भी विक्रमादित्यको देखकर अति प्रसन्न हुआ और उस चारों कन्याओंका पाणिग्रहण राजासे करा दिया.

महाराजा का सुरसुन्दरी से विवाह—

नागकुमारों के पिताने कहा, "कृपया हमारे कुमारोंको प्रगट कर दो." यह सुनकर दयालु राजाने वेताल की सहायता से नागकुमारों को प्रगट कर दिये बादमें नागकुमारोंने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर सुरसुन्दरी नाम की कन्या को मणि दड के साथ राजा विक्रम को समर्पित कर दी.

चन्द्रचूड नागकुमारने कहा, "हे राजन, लक्ष्मी के समान गुणवाली कमला नामक मेरी कन्या को आप स्वीकार कर लो." राजाने वह कन्या स्वय न लेकर नागकुमार को दिलवा दी. इस प्रकार पाच स्त्रियों के साथ पाणि ग्रहण करके मनोहर विघ्नाशक भूस्फोटक और मणिदड को लेकर वहांसे चलदिया भूमिस्फोटक दड के प्रभाव से पाताल नगर से उत्सव के साथ अवन्ती में आगया. वहाँ आकर राजने तीनों दण्ड नागदमनी को दे दिये. "नागदमनीने उन पाचों दण्डों में अच्छा"

छत्र बनाया. इस छत्रमें पूर्वमें लाये गये मणियों द्वारा बड़ी चतुरता से जाली बनाई.

नागदमनीने राजा के महल के पास सदा फल देनेवाले आमोंका गीचा बना दिया और इसमें स्फटिक से एक सुन्दर सभागृह बनाया. इसमें उत्तम रत्नों द्वारा सुन्दर सिंहासन बनाया. राजा शुभ मुहूर्तमें उस सिंहासन पर बैठा और पांच दंडवाला छत्र धारण
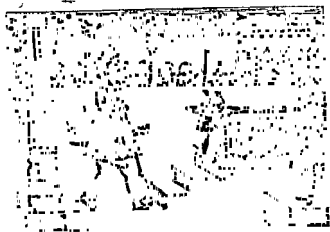
दंदण्डवाले छत्र से युक्त सिंहासन पर महाराजा विराजने जा रहे हैं. चित्र नं. २३

किया. उस समय राजाने याचकों को बहुतसा दान देकर धनी बना दिये. कोई कहते हैं कि प्रचुर दान देकर राजा विक्रमादित्य बत्तीस पुतलिओंसे युक्त सिंहासन पर बैठा. राजा विक्रमादित्यने राज्य कर सब छोड़ दिया और न्याय मार्ग से राज्य करने लगा. उनको सौभाग्य से पांच दंड

वाला छत्र प्राप्त हुआ, जिससे, क्रमशः महाराजा को राज्यलक्ष्मी दिनोदिन बढ़ने ही लगी. और आप नीति से प्रजा को पुत्रवत् पालन करने लगा.

पाठक गण! आपने महाराजा द्वारा नागदमनी के पाँचों आदेशों के पालन का रोमांचकारी हाल पढ़ ही लिया है. इस नवमें सर्ग में पांच–दंड वाले छत्र की मनोहर कथा पढ़ कर आपने कई प्रकार के अनुभव प्राप्त किये होंगे. यह सब महाराजा के पुण्य बलका ही प्रताप है. इससे प्रत्येक व्यक्ति को अपना पुण्य बल प्राप्त करने के लिए यथा शक्ति धर्म–ध्यान में मन लगा कर पुण्य संचित करना चाहिए.

धर्म वधन्ता धन वधे, धन वधे मन वध जाय।
मन वधे मनसा वधे, वधत वधत वध जाय॥

तपगच्छीय–नानाग्रंथ रचयिता कृष्ण सरस्वती बिरुदधारक–
परमपूज्य–आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरीश्वर शिष्य पंडितवर्य
श्री शुभशीलगणि–विरचिते श्री विक्रमादित्य–
विक्रमचरित्र–चरिते पञ्चदण्डवर्णनो
नाम नवमः सर्ग समाप्तः

卐

नानातीर्थोद्धारक–आबालब्रह्मचारि–तपोगच्छाधिपति शासनसम्राट्
श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरशिष्य–कविरत्न शास्त्रविशारद–पीयूषपाणि
जैनाचार्य-श्रीमद् विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्यः
वैयावच्च करणदक्ष मुनिवर्य श्री खान्तिविजयस्तस्य
शिष्य मुनि निरञ्जनविजयेन कृते विक्रम-
चरितस्य हिंदीभाषाया भाषानुवादः
तस्यच नवमःसर्ग समाप्तः॥

[द्वितिय–भाग–समाप्त]

वाली विभूषण मनमोहन श्री पार्श्वनाथाय नमोनमः

संवत् प्रवर्तक

महाराजा विक्रम

(तृतीय भाग)

सेंतालीसवें प्रकरण

(दशम–सर्गका आरंभ)

कवि कालीदासका इतिहास

"भाग्य बनाता पुरुषको धन बल बुद्धि निधान,
यत्न करने पर मूर्ख भी हो जाता विद्वान."

अवंतीपति महाराजा विक्रमादित्य अपने सुविख्यात मालवदेशकी गद्दीको सुशोभित करते हुए राज्यकार्य बड़ी बुद्धिमता एवं पराक्रमसे चला रहे हैं. अपने सभी शत्रुओंको सदाके लिए पराजित कर राज्यको निष्कंटक बना दिया है. महाराजा नित्य ही अपनी राजसभामें आते हैं और जगत् विख्यात बत्तीस–पूतलीवाले उस सिंहासन पर बिराज कर न्यायपूर्वक कार्य करते हैं. यह दिव्य सिंहासन–पंच–दंड–वाले

छत्रसे ओर भी अधिक शोभा पा रहा है. जब महाराजा इस सिंहासन पर विराज कर राज्यकार्य करते हैं, तो उस समय उस सिंहासन के प्रभाव से महाराज की बुद्धि और भी अधिक प्रखर हो जाती है, इससे महाराजा को अपने प्रत्येक कार्यमें सफलता ही प्राप्त होती है.

महाराजा का राजदरबार भी अनेक विद्वानोंसे परिपूर्ण है और होना ही चाहिए, कारण कि जो राजा स्वय विद्वान है, वही विद्वानो का आदर भी करना जानता है और विद्वान लोग भी ऐसे आश्रय की खोज किया करते हैं.

भारत-प्रसिद्ध "नौ रत्न" महाराज की राजसभा की *शोभा बढ़ा रहे हैं, जिसमें सुप्रसिद्ध कवि काली दास* इन सब का शिरोमणि है।

एक बार कवि कालीदासने मालवपति महाराजा विक्रमादित्यके राज्य का वर्णन करते हुए कहा है, विद्वद्जन निम्नलिखित काव्यसे भली प्रकार जान जायेंगे कि कालीदास कितना महान विद्वान था और विक्रमादित्य महाराजा का राज्य-कार्य कैसे चलता था।

कवि कालीदासजीने कहा है,

"वन्यो हस्ति स्फटिक घटिते, भित्ति मार्गे स्वबिम्बम्,
दृष्ट्वा दूरात्प्रतिगज इति त्वद्द्विषां मंदिरेषु;
हत्वा कोपाद्गलितरदनस्तं, पुनर्वीक्षमाणो,
मन्दं मन्दं स्पृशति करिणीशंकया साहसाङ्क. ॥ स. १०/२ ॥

हे राजन् ! आपके शत्रुओंसे रहित उनके स्फटिकमणिके राजमहलोंको मानवरहित देख कर जंगल के हाथी उनमे प्रवेश कर जाते हैं, स्फटिकमणिमे अपनी छाया देख कर उनसे वे भिड़ जाते हैं और तब तक टक्कर ले ते ही रहते हैं जब तक कि उनके बडे बडे दाँत टूटकर गिर न जाते, बाद मे अपने दाँत रहित छवि प्रतिबिम्बको देख, वे उन्हें हस्तिनी समझ, अपनी सूड उठाकर उन्हें चूमते हुए प्रेम करते हैं

इस प्रकार काव्यके रचयिता का परिचय कौन जानना नही चाहेगा ? यदि महान पडित कालीदास का जीवन इतिहास पूर्ण रूपसे लिखा जाय तो संभव है कि एक महान ग्रंथ बन जाय तो कोई आश्चर्य नही

ग्रंथकार यहाँ उनका संक्षेप मे परिचय देते हैं:—

राजकुमारी प्रियंगुमंजरी

अपने चरित्रनायक महाराजा विक्रमादित्य को एक पुत्री थी, जिसका नाम प्रियगुमजरी था राजकन्या बडी ही सुन्दरी थी एक योग्य पिताकी सतान होने के नाते वह बचपन से ही बडी चतुर थी इसकी स्मरणशक्ति बडी तीव्र और मधुरभाषी होने से प्रत्येक व्यक्ति को वह प्रिय लगती थी

जब प्रियंगुमजरी आठ वर्ष की हुई तब महाराजाने पढानेका प्रबन्ध किया. अपने नगरके महान विद्वान् पडित श्री वेदगर्भको अपनी पुत्री के गुरुपद पर नियुक्त किये वेदगर्भ एक प्रखर पंडित थे. सभी शास्त्रो के वे पूर्ण जानकार थे

प्रियंगुमंजरी ने अपने गुरुसे शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ किया अपनी प्रबल बुद्धिसे प्रियंगुमंजरी नित्य ही अपना पाठ समय पर याद कर गुरु को सुना देती कुछ ही कालमे इस बुद्धिमती कन्याने अपने गुरु से सभी शास्त्रो का अध्ययन पूर्ण कर लिया, और स्वयं न्याय व्याकरण आदि के साथ साथ स्त्रीसमाज की चौसठ कलाओंमे भी निपुण हो गई

शनै-शनैः प्रियगुमंजरी बडी होने लगी, और क्रमशः यौवनावस्था को प्राप्त हुई अब वह अपने महल मे ही रहता और अपनी सखी-सहेलियों के साथ राजमहल, उद्यान और सुन्दर क्रीडाविहारादि स्थानों में समय व्यतीत कर रहा हैं उसे अब भले बुरे का भी ज्ञान होने लगा था. बड़ा का आदर छोटे के प्रति स्नेह, नौकर-चाकरो के प्रति वात्सल्यभाव तथा अन्य व्यवहारो को भी वह समझने लगा था

वेदगर्भ द्वारा शाप प्राप्तिः—

वसंत ऋतु थी, ठंडी ठंडी सुगंधित हवा चल रही थी, प्रत्येक व्यक्ति इस सुन्दर समय मे अपने मन को प्रसन्न करने हेतु सुवह-शाम घूमने जाते थे इस ऋतु मे प्रत्येक प्रकारकी वनस्पति फल-फूल आदिसे सुशोभित हो जाती है, यह ऋतु एक सुखदायक ऋतु होती हैं. कोयल की कूक, फूलोंकी महक और शीतल वायु चल रहा हो उस समय किसका मन मोहित नही होता? फलों का राजा आम इसी

समय पककर विश्व को तृप्त करता है.

ऐसे सुन्दर समय में एक दिन मध्याह्न मे प्रियंगुमंजरी अपने महल के झरोखे मे बैठी हुई आमों का रसास्वादन कर
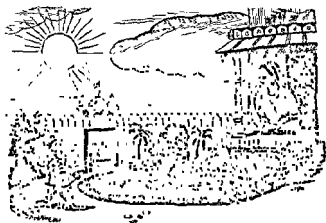
राजकुमारीने अपने गुरु को आते देखा चित्र नं. १

रही थी ठीक उसी समय प्रियंगुमंजरी के गुरु श्री वेदगर्भ कहीं से आ रहे थे. कड़ी धूप में चलने से थक कर उसी झरोखे के नीचे छाया मे बैठे. प्रियंगुमंजरीने अपने गुरु को नीचे बैठे हुए देख कर, प्रश्न किया, "हे गुरुदेव! आप यहाँ कैसे विराज रहे हैं? आप की क्या इच्छा है? कृपया मुझे कहिये."

वेदगर्भ—हे राजकुमारी! मुझे आम खाने की इच्छा है.

प्रियंगुमंजरी—आप कैसा आम खाना चाहते है ? गरम या ठंडा ?

वेदगर्भ—मै गरम फल खाना चाहता हूँ.

प्रियंगुमंजरी—अच्छा लीजिये, ऐसा कह कर राजकुमारीने अपने झरोंखे से आम नीचे गिरा दिया. झरोखेसे आम इस चतुराईसे डाले कि पंडितजी के वस्त्र में न पड़कर धूलवाली जमीन पर गिर पडे. वेदगर्भ उन्हे उठा कर उनकी धूल फूंकने लगे यह देखकर प्रियंगुमंजरी ने हास्य करते-व्यंगपूर्वक विनोद करते हुए कहा, "गुरुदेव क्या आम अधिक गर्म है ? जिससे आप उन्हें मुखसे फूक मार मार कर ठंडा कर रहे है ?"

इस बात को सुनकर पंडितजी अप्रसन्न हो गये, और उन्होंने अपना यह अपमान समझ राजकुमारी को शाप दिया, "हे राजकुमारि ! तुमने अपने गुरु का अपमान किया है इस लिये तुम्हें एक गोपाल एवँ मूर्ख पति मिलेगा." ऐसा कह कर पंडित वेदगर्भ वहाँसे चल दिये.

अपने गुरुदेव के मुख से शाप सुनकर वह दुःखी हुई. साथ ही मन मे यह निश्चय किया. "मैं सर्व विद्या विशारद के साथ ही विवाह करूँगी, अन्यथा अग्नि मे जलकर मर जाऊँगी."

समय धीरे धीरे व्यतीत होने लगा. इधर राजकुमारी प्रियंगुमंजरी दिनों दिन वृद्धि को प्राप्त करती हुई पूर्ण यौवनावस्थामें पहुँच गई.

योग्य वरकी खोजः—

एक दिन नीति एवं धर्म के ज्ञाता महाराजा विक्रमादित्यने अपनी पुत्री को पूर्ण यौवनावस्था में देख उसके पाणिग्रहण कराने की चिंता उत्पन्न हुई, इस लिये महाराजाने अपने दूतों को इधर-उधर किसी योग्य विद्वान एवं शक्तिशाली राजकुमार की खोजमें भेज दिया. किसी ने ठीक ही किया कहा है—

"मात, पिता, विद्या विभव, वयस रूपकुल प्रीत;
इन गुणवालो के यहां कन्या दीजे मीत."

प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वह अपनी कन्या के लिये कुलवान, शीलवान, कुटुम्बवान, विद्वान, धनवान, समान अवस्था एवं आरोग्यवान इन सात बातो को अवश्य ही वरमें देखे मूर्ख, निर्धन, परदेशी,, शूरवीर, वैरागी-मुमुक्षु और कन्यासे तीन गुणा अधिक उम्रवाले व्यक्ति को कन्या नहीं देनी चाहिए उपरोक्त बातो को सब देख कर ही कन्या देनी चाहिए, आगे तो फिर कन्या अपने भाग्य के अनुसार सुख या दुःख को प्राप्त करती है

राजा अपनी पुत्री के लिये योग्य वर की चिंता में रहने लगे. एक दिन राजसभा में राजा को चिंताग्रसित देख वेदगर्भ ब्राह्मणने महाराजा से प्रश्न किया, "हे राजन्! मैं आपको कई दिनों से चिंताग्रसित देख रहा हुँ, आप कृपया मुझे अपनी चिंता का कारण कहें."

महाराजा ने वेदगर्भ को उत्तर दिया, "विप्रदेव! आप बिलकुल ठीक कहते हैं. मुझे अपनी प्रिय पुत्री प्रियंगुमंजरी के लिए योग्य वरकी चिंता लगी हुई है."

वेदगर्भने उत्तर दिया, "राजन्! आप इसकी चिंता न करें, मैं शीघ्र ही प्रियंगुमंजरी के योग्य किसी विद्वान नर को खोज लाऊँगा." इस प्रकार कहकर वह अपने मनमें इस उचित अवसर के लिये बड़ा ही प्रसन्न होने लगा. अब उसे निश्चय हो गया कि अब मेरा दिया शाप शीघ्र मेरे द्वारा ही पूर्ण रूपसे सफल होगा."

पुनः बोला, "हे राजन्! राजा लोगों के कार्य तो उनके सेवक ही करते हैं. तथा राजा लोग स्वयं भी अपने सेवकों से ही करवाते हैं. और अन्य सभी लोग अपना कार्य अपने ही हाथों से करते हैं. अर्थात् आपने मेरे योग्य कार्य सौंपा हैं. वह कार्य अच्छी तरह करूंगा."

वेदगर्भ की मूर्ख ग्वाले से भेंटः—

एक दिन वेदगर्भ ब्राह्मण महाराजा विक्रमादित्य की आज्ञानुसार प्रियंगुमंजरी के वर की खोज के लिए निकला. अनेक नगर, वन, पहाड़ आदि मे ढूंढने लगा. पर उन्हें कहीं भी अपनी इच्छानुसार वर नहीं मिला. एक दिन वह पंडित एक जंगल के रास्ते जा रहा था, चलते चलते उसे प्यास लगी. पानी की खोज मे वह चारों ओर देखने लगा, पर उसे कहीं भी पानी दृष्टिगोचर नहीं हुआ. थोड़ा आगे

बढ़ने पर उसे गायों को चराता हुआ एक ग्वाला-गोपाल दिखाई दिया, उसे देखते ही वेदगर्भ पंडित शीघ्र उसके पास पहुँचा, और उससे प्रश्न किया, "हे गोपाल! मुझे बड़ी जोर से प्यास लगी है, मुझे कोई कुआ, तालाब या नदी दिखाय कि जिससे में वहाँ जाकर जल पीकर अपनी प्यास शान्त करुं."

गोपालने उत्तर दिया, "यहाँ निकट में कोई जलस्थान तो नहीं है." उसे अधिक प्यास से व्याकुल देख ग्वालेने पुन कहा, "हे ब्राह्मण! अगर तुझे खूब प्यास लगी है, तो करचंडी बना, मैं अभी अपनी गायों के दूध से ही तेरी प्यास बूझा दुँगा."

गोपालका उत्तर सुनकर पंडित बड़ा ही प्रसन्न हुआ पर उसे 'करचंडी' शब्द का अर्थ समझ में नहीं आया. बहुत विचारने पर भी वह 'करचंडी' शब्दका अर्थ नहीं समझने पाया इससे वह और भी अधिक.उदास हो गया. और अपने आपको धिक्कारता हुआ मनमें कहने लगा, 'मैं एक मूर्ख गोपाल के 'करचंडी' शब्दका भी अर्थ नहीं जान पाया, मुझे व्याकरण आदि शास्त्र पढने से क्या लाभ ?' इस तरह वह किंकर्तव्य-विमूढ हो गया.

पंडित को अधिक समय तक चुप और उदास देख गोपालने पुनः पंडित से कहा, "हे ब्राह्मण! क्या तुम्हें दूध पीकर अपनी प्यास नहीं बुजानी है ? तुम चुप क्यों हो?

शीघ्र ही अपने दोनों हाथो को इकट्ठा कर मेरी तरह कर-पात्र बनाईये, और मैं आपको अपनी गायों के स्तनसे दूध निकाल कर पिलाता हूँ." ब्राह्मणने तुरंत ही गोपाल के बताये अनुसार करपात्र बनाकर गायके पास बैठ गया. और गोपालने बडे आदर और प्रेमके साथ पंडित को दूध पिलाया. वेदगर्भने पेट भर दूध पिया और वह तृप्त हो गया.

दूध पीकर वह खडा हो गया और गोपालकी चतुराई पर विचार करने लगा. उसने निश्चय किया, "वह गोपाल ही प्रियंगुमंजरी के योग्य वर है मेरा भी मनोरथ इससे पूर्ण हो जायगा. अतः इसके साथ ही राजकुमारीका विवाह कराना चाहिये" इस प्रकार वह विचार कर ग्वालेको समझा-बुझा कर अपने घर ले आया. और उसे छ मास तक अपने पास रखकर उसे स्नान करने, सुन्दर कपड़े पहनने, सुन्दर शुद्ध, और मिष्ट भाषामें वार्तालाप करने, ब्राह्मण के अनुसार "स्वस्ति" शब्दसे आशीर्वाद देने, राज्य सभामें बैठने उठने का भली प्रकारसे ज्ञान कराया.

एक दिन समय पाकर पंडित वेदगर्भ उसी गोपाल को अपने साथ महाराजा विक्रमादित्य की राज्यसभा मे ले गया. वेदगर्भने राजसिंहासन पर विराजे हुए महाराज को स्वस्ति शब्द कह कर आशीर्वाद दिया. परन्तु पास ही खड़ा वह गोपाल तो स्वस्ति शब्द को भूल गया और बदलेमें 'उपरट' शब्द बोला,

महाराज विक्रमादित्य उस अपूर्व शब्द 'उपरट' को सुन बहुत आश्चर्यचकित हुआ महाराजाके भाव को वह चतुर पंडित वेदगर्भ ताड गया, और तुरंत ही उनको सम्बोधित कर कहने लगा,

"हे राजन्! इस नवीन पंडितने आपको अपूर्व आशीर्वाद दिया है. आप इस अपूर्व आशीर्वाद का अर्थ सुनिये.

इस आशीर्वाद में जो प्रथम उ शब्द है, जिसका अर्थ उमा-पार्वती होता है, और 'श' अक्षर से शंकरका बोध होता है 'र' अक्षर से रक्षतु और 'ट' अक्षर से टकार अर्थ निकलता है। संपूर्ण शब्द का यह अर्थ होता है कि हे राजन्! उमा-पति त्रिशूलको धारण करनेवाले शंकर तुम्हारी रक्षा करे, और तुम्हारी कीर्ति टंकार चारों ओर फैले यह आशीर्वाद इस ब्राह्मणने दिया है "×

वेदगर्भ के द्वारा इस प्रकार उस अपूर्व आशीर्वाद के गूढार्थ को सुन कर महाराजा बड़े ही चकित हुए और कहने लगे, 'यह कोई सरस्वती पुत्र तो नहीं है?"

प्रियंगुमंजरीका विवाहः—

राजा के इस प्रकार का वचन सुन वेदगर्भने उत्तर दिया, "हे राजन्! मैं सरस्वती की आराधना कर आपकी

× उमया सहितो रुद्रः शंकरः शूलपाणियुक् ।
रक्षतु तव राजेन्द्र, टणत्कार करं यशः ॥ स १०/३८ ॥

प्रिय पुत्री प्रियंगुमंजरी के लिये यह योग्य वर खोज लाया हूँ. इस प्रकार अपनी वाक्चातुरी से महाराज को वेदगर्भने प्रसन्न कर लिया. कुछ समय पश्चात् राजाने शुभ दिन के शुभ मुहूर्त में प्रियंगुमंजरी का विवाह उस गोपाल के साथ कर दिया.

इधर उस गोपाल का विवाह प्रियंगुमंजरी के साथ होनेसे वेदगर्भ अपनी सफलता पर अति प्रसन्न हुआ. उसने उस गोपाल को यह भी कह दिया, "तुम कुछ समय किसीसे नही बोलना, तेरे इस प्रकार मौन रहेने से तुम्हें लोग पंडित समझने लगेगें."

राजपुत्री अपने पतिको पुस्तक संशोधनार्थ देती है. चित्र न. ?

वेदगर्भ की आज्ञानुसार वह गोपाल अब बिलकुल मौन रहने लगा. चारा और राजा के जमाई की इससे प्रशंसा होने लगी पर प्रियगुमजरी को अपने प्रिय पति के साथ बात करने की अति उत्कंठा होने लगी कारण कि वह स्वयं भी तो पंडिता थी अतः वह विद्वान पंडित के साथ वार्तालाप अति शीघ्र करना चाहती थी पर उसे मौन देख वह हताश हो गई

एक दिन प्रियगुमजरी स्वरचित एक नवीन ग्रंथ संशोधन के लिए पतिदेव को दे कर प्रार्थना करने लगी, "हे स्वामि ! आप इस पुस्तक का संशोधन करने का कष्ट करे." राजकुमारी के आग्रह से वह पुस्तक उसने लेली और उसमे अपने बडे बडे नाखूनों से कई कॉट-कॉट कर दी, कई अक्षरों की मात्राओं को मिटा डाला और कई स्थानों पर अनुस्वार आदि हटा दिये, जिससे वह ग्रंथ कुछ का कुछ अशुद्ध बन गया

राजकुमारीने बडी प्रसन्नतापूर्वक वह ग्रंथ लिया, पर ज्योंही उस ग्रन्थ को उठा खोलकर देखा तो एकदम उदास हो गयी, वहाँ तो अर्थ का अनर्थ ही हो गया था, और उसके मनमें यह निश्चय हो गया, "यह तो कोई मूर्ख है, क्या वेदगर्भ पंडितजी का शाप सफल हुआ ?" इससे वह मन ही मन बहुत दुःखी हुई

एक दिन राजकुमारीने अपने पति के कुल आदि की

दान दे, मुझे विद्वान बना, अन्यथा मैं अब तेरे ही चरणोंमें अपने प्राणोंका बलिदान कर दूंगा, मैं तो तेरा पुत्र-सरस्वती पुत्र प्रसिद्ध हो चुका हूँ." इस बातकी लाज रख. परन्तु इन सब बातों को कहने पर भी देवी प्रसन्न नहीं हुई.

जब कालीका देवी से कुछ भी उत्तर न मिला तब वह गोपाल भी अपनी प्रतिज्ञा-निश्चय के अनुसार देवीके सन्मुख ही बैठा रहता और अपने मनकी इच्छाको बारबार दुहराता रहता. इस प्रकार वह कई दिनों तक भूखा-प्यासा रहने से दुबला-पतला हो गया.

यह खबर अवंती नगरी मे तुरंत ही सर्वत्र फैल गई कि महाराजा विक्रमादित्य का जमाई देवीके मन्दिर में अपनी इच्छा को पूर्ण करने के उद्देश्य से आराधना मे बैठा है.

वह कई दिनों से जल-अन्नादि त्याग कर चुका है. यह खबर अवंतीपति महाराजा विक्रमादित्य को भी लगी, और वे स्वयं उसे देखने वहां पधारे. उसका शरीर देख कर महाराजा चिंतातुर हो गये, उनके मनमें नाना प्रकार के विचार उठने लगे. 'कहीं यह मर न जाय और मेरी प्रिय पुत्रीका वैधव्य याने विधवापना मुझे देखना न पड़े!' इस प्रकार अपने जामाता की प्रतिज्ञा पर अटल देख जाने भी अपनी ओरसे एक दिन महाकाली की बडी पूजा का आयोजन किया. ताकि संभव है देवी प्रसन्न हो जाय,

महाराजाने अपने निश्चय के अनुसार अपनी देख-रेख में अपने कई दास-दासीयों सहित महाकाली की अपूर्व पूजा का आयोजन किया. अनेक प्रकार की विधिपूर्वक महाकाली की पूजा करवाई परन्तु अन्तमें महाकाली को प्रसन्न न होते देख महाराजा स्वयं भी हताश हो गये. अंतमें उन्होंने एक और उपाय सोचा उन्होंने अपनी एक चतुर दासी को बुलाया, जिसका नाम भी काली ही था महाराजाने उसे समझा कर काली के मन्दिरमें भेज दिया वह दासी गुप्त रूप से काली के मन्दिर मे प्रवेश कर महाकाली की मूर्ति के पीछे छिप गई
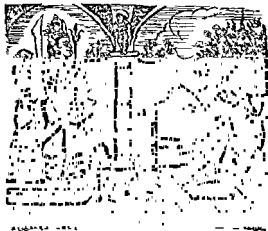
महाराजका जमाई काली माता के मंदिरमें अड्डा जमाकर बैठे चित्र नं. १

जब वह गोपाल अपनी प्रतिज्ञा को पुनः पुनः दोहरा कर महाकाली की प्रार्थना करने लगा, उसी समय महाकाली के पीछे छिपी उस दासीने कहा, "हे नर! मैं तुझ पर अत्यंत प्रसन्न हुँ, मैं तुझे विद्या दूँगी."

गोपाल को काव्य कलाकी प्राप्ति

इस प्रकार काली के वचन को सुन वह ग्वाल अति प्रसन्न हो गया. परन्तु महाकाली देवी स्वयं इस प्रकार दासी द्वारा किये गये कपट से चिन्ता व्यग्र बन गई, अर्थात् सोचने लगी, 'अपने नाम से इस प्रकार दिये गयें वरदान को अगर मैं सत्य नहीं करुंगी, तो वह मेरे लिये ही अहितकर होगा, कारण कि कई वर्षो से जो मुझे प्रतिष्ठा अवंती निवासीयों से मिली है, वह सब चली जायगी. और मुझे बादमें कोई नहीं मानेगा-पूजेगा.' इस प्रकार वह किं-कर्तव्य-विमूढ हो गई. अंत में महाकाली देवीने निश्चय किया, 'मुझे अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए भी उसे विद्वान बनाना ही पडेगा, अन्यथा मेरे लिए यह महान अहितकर होगा.' ठीक है नीतिकारोंने भी यही बताया है कि ऐसा मूर्ख कौन होगा जो एक छोटी सी खीली के लिए अपने मकान को तोडेगा? थोडे से लोहे के लिये पूरे जहाज को काटेगा? एक धागे-दोरे के लिये गले के सुन्दर रत्नहार तोडेगा और भस्म जैसी तुच्छ वस्तु के लिए रेशमी वस्त्र या चंदन जैसे मूल्यवान काष्ठ को जलायगा? मिट्टी के एक

छोटा सा टुकडा के लिये कामघट[1] कौन तोड़ेगा ? ,

देवी द्वारा दिये गये वरदान की खबर चारों ओर हवा की तरह फैल गई. साथ यह खबर प्रियंगुमंजरी को भी लगी. और प्रसन्न हो उस महाकाली के मंदिर में शीघ्र जा पहूँची. उसने जाकर अपने पति को देवी के पास बैठा देखा उसने पति से प्रश्न किया, "क्या आप पर काली माता प्रसन्न हो गई ?' इस प्रकार अपने पति के पास आई हुई, प्रियंगुमंजरी द्वारा कहे गये शब्दों को सुन महाकाली को और भी अधिक अपनी प्रतिष्ठा की चिंता हुई. अंतमें अब उसने अपने विचार के अनुसार प्रकट होकर उस मूढ ग्वाल को अपूर्व सुन्दर काव्य-कविता करने की शक्ति और अन्य विद्याएँ भी प्रदान कर दी. प्रकट रूपसे काली द्वारा पुन दिये गये वरदान को पा कर वे दोनों पति-पत्नी उत्साहसे अपने राजमहल की ओर चले वह ग्वाल तो सीधा ही राजसभा में जाकर राजा के पास पहुँचा. अपने जामाता को आते हुए देख विक्रमादित्यने हसते हुए कहा, "हे कालीदासीपुत्र पधारिये, और कोई सुदर काव्य सुनाइये"

जमाई—मै कालीदासी पुत्र नहीं हूँ, किंतु मै अपने भाग्यवश कालीदेवी का दास बना हूँ, अर्थात् मैं कालीदास हूँ.

कालीदासकी महाराजा तथा प्रियंगुमंजरी द्वारा परीक्षा

महाराजा विक्रमादित्यने अपने जामाता कालीदास को

[1] कामघट यानि कामकुम्भ—सब इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला घट.

विद्वान जान उस की परीक्षा के लिये उसके सामने एक समस्या रखी.

विक्रम महाराजाने कहा, "वाहनोपरि तरंति समुद्राः" अर्थात् वाहन पर बैठ कर समुद्र तरते हैं. आप इस समस्या की पूर्ति कीजिये."

इस समस्या की पूर्ति का उत्तर कालीदासने शीघ्र ही दिया.

"पर्वत उपर उठे मेघको, देख अधिक जल भरते;
बुधजन कहते गिरिवाहन पर, बैठ उदधि है तरते."

अर्थात् जल से परिपूर्ण मेघों को पहाड़ों पर बरसते देख विद्वान लोग कहने लगे कि समुद्र पहाड रूपी वाहनों से तरते हैं." ×

इस प्रकार राजा विक्रमादित्य द्वारा दी गई समस्या को शीघ्र ही पूरी करते देख वहाँ की राजसभा के सभी उपस्थित लोगों के साथ साथ महाराजा विक्रमादित्य को भी बहुत आश्चर्य हुआ, और साथ ही सभी कालीदास की चमत्कारपूर्ण विद्यासे प्रसन्न हो गये.

राजसभा से निवृत्त हो वह कालीदास सीधा अंतःपुर में अपनी प्रिया पियंगुमंजरी के पास गया. अपने पतिको आया

*"मेदनीधरशिरस्सु पयोदान् वर्षतो जलभृन्भरलोऽलम् ।
वीक्ष्य पंडितजना जगुरेवं वाहनोपरि तरन्ति समुद्राः ॥ स. १० ॥७१॥

देख प्रसन्न होकर प्रियंगुमंजरीने उसका स्वागत किया. साथ ही अपने पति को निवेदन किया, "हे पतिदेव! * क्या आप का मुझसे कुछ वाग् विलास करने की इच्छा है ?"

कालीदासने उत्तर में अपनी प्रिया को एक संस्कृत काव्य कहा जो गूढार्थ से पूर्ण था जिसका भाव निम्न लिखित है.

"पर्वत राज दिशा ऊत्तर में, देव स्वरूप हिमालय है,
मानदंडसा शोभित भू का, शंकरका ससुरालय है.

अर्थात् हे प्रिये! भारत देश के उत्तर में हिमालय नाम का एक विशाल पर्वत है जो कि पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा तक फैलता हुआ समुद्र का स्पर्श करता है उसे से देख यही ज्ञात होता है, मानो वह पृथ्वी का माप लेने का एक माप-दंड हो, और उसे किसीने पृथ्वी के माप के वास्ते पृथ्वी पर लगाया हो !" ×

अपनी प्रिया को पुन आगे कहते हुए कालीदासने कहा, 'हे प्रिये! जो तुमने अपने वार्तालाप में 'अस्ति' "कश्चिद्" ओर "वाग्" यह तीन शब्दों का प्रयोग किया उनके आधार से मैं तीन काव्यों की रचना करूँगा इस प्रकार

---

* "अस्ति कश्चिद् वाग्विलासो भवतो इचिर. पत !"

× "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड.
स. १० ॥ ७१ ॥ कुमारसंभवे प्रथम श्लोक.।

कालीदासने प्रतिज्ञा कर अपनी प्रिया को अपनी विद्वत्ता द्वारा प्रसन्न किया.

महाकाव्योंकी रचना

कालीदासने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बाद में समयानुसार "अस्ति" शब्द पर "कुमारसंभव" "कश्चिद्" शब्द पर "मेघदूत" और "वाग्" शब्द पर रघुवंश जैसे महान् काव्यों की रचना की, जो आज भी विश्वमें अद्वितीय काव्यों की श्रेणी में गिने जाते हैं. इस प्रकार कालीदास की चमत्कारपूर्ण काव्य कला से अवंती की जनता तथा उसकी प्रिया और महाराजा आदि प्रसन्न हो उसे महाकवि कालीदास कहने लगे. सच है मनुष्य की प्रशंसा उस विद्या के आधार पर ही होती है. अन्यथा उसे जगतमें कोई नहीं पूछता है.

परम कृपालु माँ सरस्वती के भंडार की तो अपूर्व महिमा है. अन्य प्रकार की वस्तुएं तो उपयोग और खर्च करने से घटती हैं, परन्तु यहाँ तो संसार के इस नियम के विरुद्ध ही कार्य होता है. विद्या का जितना ही उपयोग किया जाता है उतनी ही विद्या बढ़ती है. जैसे किसी कविने भी ठीक ही कहा है.

"हे सरस्वति आपके भंडारकी बड़ी अचंभी बात;
ज्यों खरचे त्यों त्यों बढे, बीन खर्चे घट जात."*

---

* अव्यये व्ययमायाति, व्यये याति सुविस्तरम् ।
अपूर्वः कोऽपि भंडारस्तव भारति दृश्यते ॥

पाठक गण! आपने इस प्रकरण से भली प्रकार जानकारी प्राप्त कर ही ली होगी, कि पंडित वेदगर्भने अपनी चतुराई से किस प्रकार अपने शाप की पूर्ति की, तथा प्रियंगुमंजरीने किये गये गुरु अपमान के अपराध में मूर्ख पति पाकर कितना कष्ट भोगा, पर महाकाली के आराधन से वही ग्वाल मूर्ख होते हुए भी एक महान् पंडित हो गया. अतः प्रत्येक मानव को अपना व्यवहार आदर्श रूपमें बनाना चाहिए ताकि प्रियंगुमंजरी की भाँति हमें भी कहीं कष्ट न भोगना पडे. गुरु की महिमा तो अपार है अत: उनके आगे तो सदा विनीत भाव से ही रहना चाहिए,

साथ ही प्रत्येक को विद्वान भी बनने का अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिये. कारण कि विद्या से ही विनय और सद्ज्ञान प्राप्त होता हैं.

अब आप आगामी प्रकरण मे महाराजा द्वारा पंचरत्न को लेकर विचित्रनगर में पहुँचना और विचित्र न्याय देने का रोचक हाल पढ़ेंगे.

जिस घर जिन मन्दिर नही.
जिस घर नही मुनिदान;
जिस घर धर्मकथा नही,
वो नही पुण्य का स्थान.

अडतालीवाँ-प्रकरण

महाराजा विक्रम का देशाटन के लिये जाना

"सज्जन दुर्जन ज्ञान हो, जानत विविध चरित्र,
देशाटन खुदको करा, देता अधिक पवित्र,"

देशाटन करने से अनेक प्रकार के अनुभव होता हैं, अनेक प्रकार के मनुष्यों का परिचय होता है और कई प्रकार के नविन स्थान आदि देखने से उस की बुद्धि तीव्र हो जाती हैं. इस प्रकार की बातें विद्वानों से सुनकर महाराजा विक्रमादित्य को देशाटन करने की ईच्छा हुई.

एक दिन राज्यकार्य से अवकाश लेकर महाराजा अपने भंडारमें से अपूर्व पाँच रत्न को साथ में ले देशाटन के लिये निकल पड़ा.

अवंतीनगरी से प्रस्थान कर अनेक शहरों, जंगलो, पहाडों और नदीयों आदि को पार करते हुए एक अज्ञात देशमें जा पहूँचा. घूमते फिरते वह सुन्दर शहर मे पहूँचा. लोग जिस को "पद्मपुर" कहते थे. यह नगर वास्तव मे "यथा नाम तथा गुणाः" के अनुसार सुन्दर भी अधिक था; परन्तु इसमें बसनेवाले सभी निवासी ठग थे. यहाँ का जो राजा उसका नाम अन्यायी और इस का मंत्री भी सर्वभक्षी और पाषाण-हृदय नाम से प्रख्यात था. इस प्रकार की नगरी की जानकारी

प्राप्त करने के लिये नगर में भ्रमण करते हुए किसी साहुकार की दुकान पर महाराजा जा पहुँचे. उनके पहुँचने के साथ ही उसी दूकान पर एक तापस भी आया और उसने दूकानदार से 'एक' सेर घी की याचना की. तापस की याचना को सुनकर सेठने उस तापस को एक सेर घी के बजाय 'दो' सेर घी दे दिया.

तापस वह घी लेकर सीधा अपने गुरु के पास गया, और उन्हें वह घी अर्पण किया. घी को अधिक देख गुरुने उस चेले को पूछा, "यह घी तो एक सेर से अधिक दीखता है." उत्तर में चेले ने कहा, "यह तो दो सेर घी है."

पुनः तापस के गुरुने शिष्य को रुखे स्वर से कहा, "तुम यह अधिक घी क्यों लाया? चोरी रुपी पाप वृक्ष का फल इस संसार में वध-फाँसी और बन्ध-कारावास आदि की प्राप्ति और परभव में नरक की प्राप्ति अर्थात् वहाँ पर नारकीय वेदनाओं को सहन करना पड़ता है.× तुम शीघ्र जाकर इस अधिक घी को वापस दे आ."

अपने गुरु की आज्ञा पाकर वह चेला घी लेकर उसी सेठ की दूकान पर आया. और उसे अपना अधिक घी को वापस लेने का आग्रह किया.

इस प्रकार तापस द्वारा अधिक घी के लोटानेकी क्रिया

× "चौर्यपापद्रुमस्येह बधबन्धादिकं फलम् ।
जायते परलोके तु फलं नरकवेदना" ॥ सं. १०/८६ ॥

आदि को देख विक्रमादित्य उस पर बहुत ही प्रसन्न हुआ. और उस तापस को निर्लोभी समझ उस के पीछे पीछे, उनकी परीक्षा करने के उद्देश्य से राजा उनके आश्रम पर गया.

तापस के आश्रम पर जाकर महाराजा विक्रमादित्य उन दोनों तापसों को नमस्कार किया. और अपने पास के पाँचों अमूल्य रत्न निकाल कर उन तापसों के आगे दिखा कर विनती करने लगा. "हे महात्मन् ! मैं देश भ्रमण करने के लिये निकला हूँ आपका नाम और जगत प्रसिद्ध कीर्ति सुनकर आपको वंदना करने आया हूँ, ये मेरे पास पांच अमूल्य रत्न है, पांच रत्न साथमें रखकर भ्रमण करनेमे मैं असमर्थ हूँ, अतः आप इन को अपने पास रखिये, कारण कि विद्वानोंने कहा हैं, 'जहाँ पर मनुष्यो की सुंदर आकृति–रूप है, वहाँ पर गुणों का समूह अवश्य ही आ जाता है. और जहाँ पर संपत्ति है, वहाँ पर भय भी निश्चित रहता है.' × इस लिये परदेश में भ्रमण करनेवालो को संपत्ति रखने से भय रहता है, अतः मैं यह पांचों रत्न आप के पास रख कर जाना चाहता हूँ, कृपा कर आप इन्हें अपने पास रख कर मुझे पर्यटन में भयमुक्त बनाने की कृपा करें. मैं वापस आ कर आपसे यह रत्न *ले लूँगा."* *उत्तर में तापसने मौन होकर अपने हाथों के इसारों* से कहा, "धन को देखने की बात क्या, हम तो छूते तक

× यत्राकृतिर्गुणास्तत्र जायन्ते मानवे खलु।
यत्र स्याद्विभवस्तत्र भीतिर्भवति निश्चितम् ॥ स. १०/९४ ॥

राजा विक्रम अपने पास के पाचों रत्न तापस को सभालने दे रहा है।
चित्र नं ४

नहीं हैं कारण कि साधुओं के लिए द्रव्यसग्रह करना बड़ा दोष है, कहा भी है—

" दोष मूल इन धन दौलत को, मुनियों ने है त्याज्य कहा,
अर्थ नहीं यह भी अनर्थ है, क्यों अनर्थ रखते हो यहाँ."

इस प्रकार उस तापसने उन रत्नों को अपने पास रखने से बिलकुल ईन्कार कर दिया और पुन आगे कहा, "हे भाई! अगर आप इन रत्नों को अपने साथ नहीं रखना चाहते तो इन्हे तुम्हारे हाथों से निकट के उस नाले में रख दें "

इस प्रकार उस तापस की निर्लोभता देख कर महा राजा विक्रमादित्य मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगा

" धन्यवाद है इन निर्लोभी तापसों को जो त्यागमय वृत्ति से अपने जीवन को सार्थक बना रहे हैं, एक सेर घी के बदले मे दो सेर आ जाने से उसे वापस लौटाना, पांच रत्न जैसी अमूल्य वस्तुओं को बडी खुशामद से देने पर भी अपने हाथ से उसे छूना तक नहीं, यह कोई कम त्याग है येहि सच्चे निर्लोभी, निर्मोही होने का प्रमाण है" इस प्रकार वे मन ही मन उस तापस की प्रशसा करने लगे

बाद मे तापस के बताये स्थानानुसार महाराजा विक्रमादित्य पास ही के नाले मे रत्नों को रख आये और तापस को प्रणाम कर अपने उद्देश्य के अनुसार ससार के कौतुक देखने के लिए वहाँ से प्रस्थान किया

महाराजा विक्रमादित्य के जानेके बाद उन तापसोने लोगों से ठग ठग कर काफी धन एकत्र कर लिया उस धनसे अपने लिये देवलोक के महलों से भी अनुपम एक मठ बनवाया उस मे वह तापस धर्म के आडम्बर मे लोगों को ठगता हुआ अपना समय बिताने लगा

बहुत दिनों के बाद महाराजा विक्रम अनेक देशों का भ्रमण कर पुन उस नगरमें आया अपने पूर्व निश्चित स्थान पर जा कर देखा तो एक नवीन विशाल सुन्दर मठ बना हुआ है उस मठ को देख कर आश्चर्ययुक्त हो गया उस मठ में प्रवेश करने पर उसे

यह बात मालूम हुई, यह तो उसी तापसोंने अपना मठ—मंदिर बनाया है.' तापस को प्रणाम कर उसने अपने उन रखे हुए पाँचों रत्नों की माँग की. परन्तु उत्तर में तापसने कहा, "तुम किस से रत्न माँगते हो? तुमने किसे रत्न सौंपे थे. तुम कौन हो? मैं तुम्हें नहीं जानता, तुम्हारी बुद्धि बिगड गई है क्या?" इस प्रकार वह तापस 'उल्टा चोर कोटवाल को दंडे.' उक्त कहावतानुसार विक्रम महाराजा से लड़ने लगा.

यह सब देख महाराजाने मनमे निश्चय किया, 'यह तो तापस ही ठग है-इस की नियत उन रत्नों को देने की नहीं है, वह उन्हें हजम ही करना चाहता है, शास्त्रकारोंने भी तो ठीक ही कहा है—

'कुछ भी करता नहीं किसी का, मायाशील पुरुष अपराध,
तो भी हम विश्वास न करते, उस पर सर्प सदृश पलआध.'

माया करने वाला पुरुष किसी का कुछ भी नहीं बिगाडता है, फिर भी लोग उस पर विश्वास नहीं करते. जैसे कि सर्प नहीं भी काटता हो तो भी लोग उस से तो डरते ही है* क्यों कि प्रकृति का ऐसा स्वभाव है कि ठग, वक्र, दुर्जन और घातक जन ये सभी बहुत सावधानी से अपना पाँव उठाते है, अर्थात ये बड़े चतुर होते है.

विचार करते महाराजा विक्रमादित्य को और भी एक

* मायाशीलः पुरुषो यद्यपि न करोति कञ्चिदपराधम् ।
सर्प इवाविश्वास्यो भवति तथाप्यात्मदोषहतः ॥ सं. १०/१०४ ॥

अति प्राचीन श्री रामचन्द्रजी का जीवन प्रसग याद आया वह ईस तरह जगत मे प्रसिद्ध है.

श्री रामचन्द्रजी अपने प्यारे भाई लक्ष्मण के साथ वन को जा रहे थे. रास्ते मे एक सरोवर आया, वहाँ पर एक बगुला अपना पाँव उठा कर शांति से खड़ा था. उसे दिखाते हुए रामचन्द्रजीने कहा, "हे भाई लक्ष्मण ! यह देखो, बगुला अपना पाँव कितनी चतुराई से धीरे धीरे उठाता व रखता है. कारण कि पाँव के ऊठाने-रखने से कहीं किसी जीव की हत्या न हो जाय इस बात को ध्यानमें रख अपना पाँव इस प्रकार उठता रखता, ईस प्रकार रामचन्द्रजी को लक्ष्मण से कहते सुन उसी

सरोवर की मच्छली श्री रामचन्द्रजी को कह रही है. चित्र न. ४

सरोवर की एक बड़ी मछलीने जलमे से अपना शिर निकाल कर कहा, 'हे महाराज! आपने तो केवल उस बगुले के बाहरी व्यवहार को ही देख उसे परम धार्मिक-दयालु मान लिया. परन्तु आपने उसके आंतरिक भावों को नहीं जाना है. इस दुष्टने इसी प्रकार छल करते करते हमारे पूरे कुटुम्ब को खा लिया है, अतः हे राजन्! बाह्य दृष्टि से किसी व्यक्ति का पूरा परिचय नहीं पा सकते! सहवास से ही उसका पूरा परिचय होता है.' ×

राजा पुनः तापस के पास जाकर विनम्र भावसे बोले, "हे तपस्वी, आप का दर्शन कर पवित्र हो कर जब मैं यहाँ से प्रस्थान करने लगा उस समय में मैंने अपने पाँचो रत्न आपके पास रखे उन्हे आप क्यों छिपाते हैं?" तापसने मीठे स्वर से उत्तर दिया, "हे पथिक! मेरे पास तुम्हारे रत्न नहीं हैं, किसी अन्य के पास रखा होगा, तुम भूल गये हो?" तापस की कपटभरी वाणी को सुनकर उससे अधिक वार्तालाप उचित नहीं समझा, वहाँ से चल दिया, परन्तु दोषी को दण्ड

× शनैर्मुञ्चयत पाद जीवानामनुकम्पया ।
पश्य लक्ष्मण! पम्पाया बक. परमधार्मिकः ॥ स. १०/१०७ ॥

पृष्ठत- सेवते सूर्यं जठरेण हुताशनम् ।
स्वामिन सर्वभावेन खलो वञ्चति मायया ॥ स १०/१०८ ॥

(तदा दिव्यवाण्या वृहन्मत्स्य उवाच—
शील संवासतो ज्ञेयं न शोलं दर्शनादपि ।
बकं वर्णयसे राम। येनाहं निष्कुलीकृतः ॥)

दिलाना अनिवार्य समज विक्रम इस नगर के पाषाणहृदयी मंत्री के पास अपनी बात सुनाने पहुँचा.

विक्रम राजा जब मंत्रीश्वर के पास पहुँचा तब उसे यह मालूम हुआ कि वे एक वणिकसे वार्तालाप कर रहे हैं, अतः राजा विक्रम उन दोनों की वार्तालाप को ध्यानपूर्वक सुनने लगा.

मंत्रीने 'हर' नाम के एक वणिक को एक लाख रुपये सूद-व्याज पर एक वर्ष के लिये दिये थे, परन्तु दूसरे ही दिन उसे पकड मंगवा कर एक वर्ष के व्याज मागने लगा, और उस वणिक को कारागार की सजा फरमाई, हताश हो उस विचारे वणिकने आखिर मे इस अन्यायी मंत्री को पूरे वर्ष का व्याज जब देने का कबुल किया, तब उस वणिक को कारागार से छोड़ा.

उन दोनों को बातों से राजा विक्रम को यह मालूम हो गया, 'यह मंत्री मेरा क्या न्याय करेगा? जब कि येह स्वयं ही अन्यायी है.' इस प्रसंग को देख महाराजा को अति दुःख हुआ और इस अन्याय के लिये बार बार अपने मनमें विचार करने लगा.

इस तरह मंत्री द्वारा उस हर वणिक को ठग कर धन लेते देख विक्रमादित्यने सोचा, 'इसी प्रकार के मंत्री तथा अपनी प्रजाके दुःख सुख पर ध्यान न देने वाले राजा के होने पर प्रजा दुःखी होती है, और वहाँ शान्ति नहीं होती, किसीने ठीक ही कहा है कि ऐसी हालत होने वाले राज्य की

प्रजा को चाहिए कि वह ऐसे राजा को छोड़ कहीं अन्य स्थान पर चली जाय. जैसे—

"राक्षसरूप महीप, मंत्रीगण व्याघ्र सदृश हो क्रुर;
ऐसा राज्य छोड़कर जनताको-भाग जाना चाहिये दूर."

महाराजा विक्रमादित्य इस प्रकार अपने मनमें तरह तरह के विचार कर ही रहे थे कि ईतने मे एक किसान आकर पाषाणहृदय मंत्री को अपनी प्रार्थना सुनाने लगा. वह कहने लगा, "हे मंत्रीराज! मेरे खेत को एक राहगीर ने अपने बैल छोड़कर रास्ते पर के खेत को खिला दिया है, कृपया आप मुझे नुकशान का बदला दिलाने की व्यवस्था करे." इस प्रकार वह अपनी बात सुना ही रहा था, कि वह राहगीर भी उसके पीछे पीछे वहाँ आ गया, और वह भी मंत्रीसे अपनी प्रार्थना सुनाने लगा, "हे मंत्रीश्वर, में अपने रास्ते रास्ते जा रहा था. मेरी गाडी, सामान से परिपूर्ण थी. अचानक ही उस गाडी का पहिया टूट गया. अतः मैंने अपने बैलों को खोल कर अपनी गाडी के साथ बांध कर अपनी गाडी सुधारने लगा. मेरे बैल बंधे होते हुए भी कैसे इसके खेत को खा गये? हे मंत्रीराज! यह मेरी झुठी ही फरियाद करता है. इसने बिना कारण क्रोधित होकर मेरी गाडी को उसे पापड की तरह तोड़ दिया. अब मैं आप की शरण मे हूँ. मेरा यहाँ परदेश में कोई नहीं है, अतः मेरा उचित न्याय कीजिए."

दोनों की बाते सुन मंत्रीश्वर ने अपना निर्णय दिया,

"जब गाडी के टूट जाने से तुमने अपने बैलों को गाडी से बाँधा तो यह निश्चय है कि तुम्हारे बैलोंने ही इसके खेत खाया है ?" अत मन्त्रीश्वरने इस अपराध मे उस राहगीर का सारा माल जप्त करने का आदेश दिया र हगीर इस आदेश को सुन बहुत रोया बार बार प्रार्थना की पर उसकी सुनवाई कौन करे ? पाषाणहृदय मन्त्रीने इस राहगीर का माल जप्त करवा ही लिया. आखिर वह निराश हो वहाँ से चला गया.

बाद में उस किसान को भी मन्त्रीने फटकारते हुए कहा, ' रे दुष्ट ' तुमने फिजूल ही उस राहगीर की गाडी को तोड डाला इस अपराध मे तुम्हारा भी घर जप्त किया जाता है. तुरंत ही मन्त्रीश्वरने अपने कर्मचारियों से उसके मकान का सारा ही माल मगवा लिया वह किसान भी बिचारा दुःखी होकर लौट गया

इस प्रकार इस अन्यायपूर्ण दृश्य को देख महाराजा विक्रम निराश हो वहाँ से राजा के महल की और चल दिये अब उन्होंने वहा के राजा को मिलने का निश्चय किया.

महाराजा विक्रम इस शहर मे अन्यायी राजा के पास पहुँचे ही थे, कि इतने मे एक वृद्धा वहाँ आई और रोती हुई कहने लगी, "हे राजन् ! आप के राज्य मे इस प्रकार का अन्याय होता है ? आप को प्रजा के दुःख सुख की कोई परवाह ही नही ? राजा का कर्तव्य है, कि वह दुष्टों को दंड दे और धर्म की रक्षा करे '

राज्य में मत्स्यगलागल न्याय (बडा छोटे को खाय) की तरह ही चलता रहा तो ससार शीघ्र नष्ट हो जायगा, राजाओं की शोभा उनके न्याय करने से है, नहीं कि केवल मुकुट-कुडल पहनने में मुकुट-कुडल आदि तो नट भी पहनते है"

इस प्रकार वृद्धा के द्वारा सत्य और कटु बाते सुनाने पर भी राजाने उस वृद्धा से कहा, "तुम्हारे मतलब की बात सुनाओ इतनी बाते कहने की क्या आवश्यकता?"

वृद्धा कहने लगी, "हे राजन्! मेरा पुत्र रात्रि को गोविन्द सेठ के मकान पर चोरी करने गया था जब वह उसके मकान की दीवार को तोडकर मकान मे घुसना चाहा उसी समय दीवार के गिर जाने से वह उसके नीचे दब कर मर गया. हे राजन्! अब मेरी वृद्धावस्था है, और वह मेरा एक मात्र सहारा था मै उसके आधार पर ही जीवित थी *अब मेरा सहारा कौन है? आप कृपा कर मेरी प्रार्थना* पर विचार कीजिये और मेरा न्याय कीजिये"

वृद्धा की बाते सुन राजाने गोविन्द सेठ को बुलवाया और उस से कहा, "हे सेठ! तुमने ऐसी कमजोर दीवार क्यों बनाई? जिससे कि इस वृद्धाका इकलौता पुत्र मारा गया? अत इस अपराध मे तुम्हे शूली की सजा दी जाती है" राज्यकर्मचारी उसे पकड़कर शूली पर ले जाने लगे, परन्तु उसी समय गोविन्द सेठने पुन. प्रार्थना करते हुए कहा, "हे राजन्! मेरी थोडी सी विनती सुन लीजिए, इस दीवार के गिरने

में मेरा कोई दोष नहीं है. यह तो दीवार बनाने वाले कारीगर का दोष है, जिसने दीवार को कमजोर बनाया है." राजा को गोविन्द सेठ की बात समजमें आई, और उसने गोविन्द सेठ को छोड़ देने की आज्ञा देकर उस दीवार बनाने वाले कारीगर को बुलआ कर कहा, "हे कारीगर! तुमने गोविन्द सेठ की दीवार को इतना कमजोर क्यों बनाई जिससे कि इस वृद्धा का इकलौता पुत्र मारा गया? अतः तुम्हें शूली की सजा दी जाती है." राजा का आदेश सुनते ही कर्मचारी उसे शूली पर ले जाने लगे. उसी समय कारीगरने रोकर गिडगिडाते हुए स्वरसे कहा, "हे राजन्! इस दीवार के कमजोर बनने में मेरा कुछ भी दोष नहीं है, कारण कि जिस समय में गोविन्द सेठ के *मकान की दीवार को बना रहा था, उसी समय* कामलता नाम की वेश्या उधर से नीकली, उसके आने से मेरा ध्यान उस ओर चला गया और इससे दीवार में कुछ ईंटो की कमी रह गई. अतः हे दीनानाथ! आप मेरी *प्रार्थना* पर ध्यान दें." राजाने कारीगर की *प्रार्थना* को उचित समझ कर उसे छोडकर 'कामलता' नामक वेश्या को बुलाने का आदेश दिया. राजाज्ञा से तुरंत ही कामलता को राजसभा में बुलाई गयी. उससे सब बातें कहकर उस को शूली पर चढ़ाने की आज्ञा दी. वेश्याने तुरंत दुःखी होकर *राजासे निवेदन किया,* "हे महाराज! मुझे आप इस अपराध में क्यों शूली का दंड दे रहे हैं. मैं निर्दोष हूँ, आप कृपा कर मेरी प्रार्थना सुनिये. जब मैं चौराहे पर होकर जा रही थी, उसी समय उसी

रास्ते पर एक नंगा साधु आ गया. उसे देख मैं लज्जित हो गई. अतः मुझे विवश होकर वह रास्ता छोडना पड़ा और दूसरे रास्ते से गई जो कि गोविन्द सेठ के मकान के पास से जाता है." इस प्रकार वेश्या की बातें सुन राजाने उसे भी निर्दोष समझ उसे छोड दिया और उस दिगम्बर को बुलाने का आदेश दिया.

दिगम्बर साधु के आने पर राजाने उस से प्रश्न किया, "तुम क्यों नंगे होकर घूमते हो? तुम्हे नंगा देख यह वेश्या अपना रास्ता छोड गोविन्द सेठ के घर के पास होकर गई और इस से उस कारीगर का मन विचलित हो गया. इस कारण से उसने दीवार को ठीक नहीं बनाया और दीवार के कमजोर रहने से इस वृद्धाका पुत्र मारा गया. अतः तुम्हे इस अपराध में शूली की सजा दी जाती है." तुरंत ही जल्लाद लोग उस दिगम्बर को शूली पर ले गये. शूली की फाँस बहुत बड़ी थी और दिगम्बर दुबला-पतला था, जब वह फाँस मे डाला जाता तो वह नीचे गिर जाता. इस प्रकार बारबार गिरने पर जल्लाद निराश हो मंत्री से सारा हाल कह सुनाया और मंत्री राजा के पास जा कर सारा वृत्तान्त कहने लगा, "दुबला-पतला है अतः राजन्! दिगम्बर साधु शूली की फाँस मे नहीं फँसता हैं, उसे तो फाँसी लगती ही नहीं है." राजाने उत्तर दिया, "किसी मोटे ताजे आदमी को पकड़कर लेजाओ जो कि उस फाँसी के फंदे के योग्य हो." इस प्रकार राजा की आज्ञा मंत्री द्वारा सुनकर जल्लादने उस दिगम्बर को तो

छोड़ दिया और किसी मोटे ताजे आदमी की खोज में निकला. ढूँढते ढूँढते उन्हें राजा का साला दिखाई दिया,

जल्लाद मोटा ताजा आदमी को ले आया चित्र न. ६

जो कि मोटा–ताजा था. उसे फाँसी के योग्य देख बलपूर्वक पकड़ कर ले गये और शूली पर चढ़ा दिया.

यह सब दृश्य विक्रमादित्य वहाँ बैठे बैठे देख रहे थे इस प्रकार इस अन्यायी राजा के न्याय को देख वे बड़े चकित हुए.

"अविचारी नृप सचिव गणों के, देख सभी कर्तव्य यहाँ;
विक्रमनृपने हृदय से शोचा, कैसा है अन्याय यहाँ ?"

इस प्रकार अविवेक से काम करने वाला राजा और मंत्री आदि अधिकारियों को देख कर विक्रमने विचार किया, "यहाँ तो अन्याय का ही बोलबाला हैं. यहाँ न्याय का तो नामनिशान भी नहीं है. अतः अगर मै भी अपने रत्नों की बात यहाँ निकालूंगा तो निश्चय ही मुझे लेने के बजाय देने पड़ जायेगें. अतः अब यहाँ से तो न्याय की आशा छोड़ अपनी ही बुद्धि से काम लेना चाहिए" ऐसा विचार कर विक्रम वहाँ से रवाना हो कामलता नामक उस वेश्या के यहा गये, वहाँ जाकर उन्होंने कामलता को तापस के द्वारा पांच रत्न ले लेने की सारी कहानी कह सुनाई. राजा की सारी बात सुन कर उस वेश्याने राजा विक्रमादित्य को आश्वासन देते हुए कहा, "हे महानुभाव! आप चिंता न कीजिये, मैं अपनी बुद्धिबलसे आपके पांचो रत्न उस तापस से आप को दिला दूँगी और उसने ओर यह भी कहा, "हे महानुभाव! मैं एक रत्नो का थाल भर कर उस तापस के यहाँ जाऊँगी, उस समय आप भी थोडी देर बाद वहा आकर तापस से अपने पांचो रत्नो को मागना." इस प्रकार विक्रमादित्य को युक्ति बतला कर दूसरे दिन आने का निश्चित समय बता दिया.

निश्चित समय के अनुसार दूसरे दिन वेश्या थाल भर कर रत्न ले उस तापस के वहा गई, और विनती करने लगी, "हे महाराज! मेरी पुत्री आग में जल कर मरने वाली है, उसके बिना मेरी सभी संपत्ति व्यर्थ है. मैं अब अपनी सभी संपत्ति दान-पुण्य मे लगा देना चाहती हूँ. अत मैं आपके

लिए इन अमूल्य रत्नोंसे भरा हुआ थाल लाई हूँ,आप इसे ग्रहण कीजिये." इस प्रकार इन दोनों की बातें हो रही थी, उसी समय महाराजा विक्रम भी पूर्व संकेत के अनुसार आ पहुँचे और उस तापस से अपने पांचों रत्न मागे. तापस अब ऐसी परिस्थिति मे फँस गया की उसकी गति सांप छुछुन्दर की सी हो गई. तापस सोचने लगा, "अब क्या किया जाय? अगर मैं इस आदमी के रत्न नहीं दूँगा तो इससे इस वेश्या पर यह प्रभाव पड़ेगा कि तापस कोई ठग है. ठग समझे जाने के साथ साथ मैं अमूल्य थाल भरे रत्नों को खो बैठूँगा. अतः अब तो पथिक को उसके रत्न लौटाने में ही लाभ है."

तापसने पथिक को उसके अमूल्य पांचों रत्न दे दिये चित्र न. ७

इस प्रकार सोच विचार कर उस ठग तापसने पथिक को

उसके पाँचों अमूल्य रत्न शीघ्र लौटा दिये पाचो रत्न ले कर महाराजाने एक रत्न प्रसन्नतापूर्वक उस तापस को भेट कर दिया.

इस प्रकार ये सब बातें हो ही रही थी कि वेश्या के पूर्व सकेतानुसार उस की दासीने आकर कहा, "हे बाईजी। आप की पुत्रीने जल कर मरने का विचार त्याग दिया है अत आप शीघ्र ही घर चलिए"

दासी की बात सुन उसे रत्नों का थाल देते हुए वेश्याने कहा "तू यह थाल लेकर चल, मैं भी पीछे पीछे शीघ्र ही आती हूँ" इस प्रकार वह रत्न भरा थाल ले कर दासी चली गई और वेश्या तापस से कहने लगी, "हे महाराज। आप मुझे आज्ञा दे तो मैं अपनी पुत्री से मिल कर उसका निर्णय जान पुन लौट आऊँ" इस प्रकार कहती हुई वह वेश्या अपने घरकी ओर चल पडी बहुत समय तक वह तापस वेश्या के लौट आने कि राह देखता रहा वह पथिक रूप विक्रम महाराजा भी कामलता के घर पहुँच गये, और उसकी बुद्धिमत्ता पर प्रसन्न होकर एक रत्न जो बहु मूल्य था वह उन्होने कामलता को दे दिया, रात्रि भर उस के यहा विश्राम कर प्रात काल अपनी नगरी अवंती की ओर प्रस्थान किया

जब महाराजा विक्रम अपनी नगरी की ओर जा रहे थे उस समय उन्हे रास्ते मे एक गरीब मनुष्य मिला महा राजा विक्रमादित्य को देख वह कहने लगा, "दारि[illegible]

उनपचासवाँ-प्रकरण

नया राम बनने की आकांक्षा

"बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल;
हीरा मुखसे ना कहे, लाख हमारा मोल.
वह अमात्य क्या जो भूपतिको नहीं दिखाता सुन्दर राह;
भूपति वह क्या मंत्रीश्वरकी जो सुनता नहि उचित सलाह."

महाराजा विक्रमादित्य अपनी राजसभा का कार्य नियमित रूपसे चलाते है, प्रजा के सुख-दुःख का पूर्ण ध्यान रखते हुए राज्य की देखभाल करने के साथ अपना समय सुख-शांति पूर्वक व्यतीत करते हैं. एक दिन महाराजा को बैठे बैठे अचानक यह विचार उत्पन्न हुआ, "मैं भी अपनी प्रजा का पालन रामचंद्रजी की तरह ही करता हूँ. उनके राज्य में किसी को कोई कष्ट नहीं था. अतः वह समय रामराज्य कहलाया, उस तरह मेरे राज्य मे भी कोई दुःखी नहीं हैं. अन्याय का नाम निशान तक नहीं, तो क्या मैं भी रामकी तरह प्रख्यात नहीं हो सकता ? इस लिये मैं भी अब अपना नाम "अभिनवराम" रखता हूँ ताकि मुझे भी संसार की सारी जनता "राजाराम ' कहे और मेरे राज्य को 'रामराज्य' के नाम से जान सके और राम के समान ही मेरा भं सन्मान करे." इस प्रकार महाराजा विक्रमादित्यने अपने गर्व पूर्ण विचार, अपने मंत्रीश्वर आदि के सन्मुख प्रदर्शित किये

मंत्रीगण ,राजा को गर्वयुक्त देख अप्रसन्न हो गये, और वे लोग राजा को किसी प्रकार शिक्षा मिले ऐसा उपाय सोचने लगे.

एक दिन अवसर पाकर महाराजा विक्रमादित्य को उनके मान्य मंत्रीओंने बातचीत के प्रसग मे कहा, "हे राजन ! इस ससार मे अनेक मनुष्य है, जो एक एक से बढे हैं पृथ्वी मे अनेक रत्न हैं जो एक एकसे अधिक मुल्यवान हैं अनेक बुद्धिमान हैं जो एक एक से अधिक चतुर है तथा कई बलवान, धनवान है, जो एक एक से बढ कर है, अत किसी भी मनुष्य को अपने ऐश्वर्य-ज्ञान, बुद्धिबल आदि पर गर्व नहीं करना चाहिए, गर्व किसी का भी न रहा है और न रहेगा

इस प्रकार समझाने पर भी महाराजा पर कुछ भी असर न देख मंत्री आदि अधिकारीयाने राजा को गर्व से मुक्त करने के लिये पुन कोई उपाय ढूंढनेका निश्चय किया, कारण कि किसीने ठीक ही कहा है

भद्रा राजा, सर्प ये; सन्मुख से भय देत;
दुश्मन, बिच्छु, वाणियो, पीछे से सन लेत.

"भद्रा-तिथि, राजा और सर्प ये सब सामने से बड़े भयकर होते हैं परन्तु दुश्मन, बिन्छु और महाजन-वणिक लोग पीछे से नुकशान देनेवाले होते हैं ये सामने तो

× भद्रा भूप भुअगम ए मुहि दुहिला हुंति।
वइरी वींछी वाणिआ ए पूठिइ दाइ दीयति ॥ स १०/१९९ ॥

कुछ भी नहीं करते किन्तु पिछे से हानि कर देते हैं. इस लिये हम लोगों को चाहिए कि हम महाराजा को गर्व से मुक्त करने का कोई ठोस उपाय खोजें"

कुछ दिन बाद सयोग से राजाने नगरी के पंडितों को बुलाकर कहा, "आप-लोगों में से कोई मुझे राम-राज्य की कथा सुना सकते हैं?" इसके उत्तर में एक वृद्ध मंत्री ने आगे आकर उत्तर दिया, "हे राजन्! अयोध्या नगरी में एक वृद्ध ब्राह्मण हैं, वह राम राज्य की कथा अच्छी तरह कुल परंपरासे जानता हैं, अतः आप उन्हें बुलाकर उन्हीं से राम-राज्य की कथा सुनिये."

वृद्ध मंत्री की बात सुनकर महाराजाने शीघ्र ही उस वृद्ध ब्राह्मण को बुलाने के लिये अयोध्या को दूत भेज दिया. जब दूत उस वृद्ध ब्राह्मण को लेकर आया तो उसका बड़ा आदर करके महाराजाने पुन अपनी इच्छा इस ब्राह्मण के आगे प्रगट की. उत्तर में अयोध्या निवासी ब्राह्मणने कहा, "हे राजन्! मैं आप को यहाँ रहकर रामराज्य की कथा भली भाँति नहीं सुना सकता अतः आप अयोध्या पधारें तो मैं आपको राम-राज्य की कथा अच्छी तरह से सुनाऊँगा

यहाँ पर रहते हुए श्री रामचंद्रजी का थोड़ा भी वृत्तान्त मैं अच्छी तरह नहीं कह सकता हूँ.' उस वृद्ध ब्राह्मण की सलाह मानकर और राज्य व्यवस्था का सब भार मंत्रीश्वर को सोंपकर महाराजा विक्रमादित्य अपना राज रसाला साथ

लेकर, उस अयोध्या निवासी ब्राह्मण के साथ ही अयोध्या की ओर चले. चलते चलते क्रमशः वहाँ पर पहुँचकर ब्राह्मणसे महाराजाने रामराज्य की कथा सुनाने का पुनः आग्रह किया.

तब उत्तर मे उस ब्राह्मणने अपने हाथ से संकेत कर एक पुरातन स्थान बताते हुए कहा, "हे राजन्! आप प्रथम इस स्थान को खुदवाईये." राजाने शीघ्र ही अपने साथ के नौकरों को आज्ञा दी कि वे इस स्थान को खोदें.

राजा की आज्ञानुसार वह स्थान खोदा गया, सात हाथ खोदने के बाद उस जमीन के अन्दर एक जुना पुराना मकान मिला, जो रत्नों की ज्योति से चमकता था, उसे देख राजा अपने सेवक सहित आश्चर्यचकित हो गये, उस घर मे एक स्थान पर अनेक मूल्यवान द्रव्यों से भरा एक घडा भी मिला थोडे दूर स्थान पर रत्नो से सुसज्जित एक सुंदर मंडप मिला. इसी प्रकार एक रत्न जडित सिंहासन जो रत्नों के प्रकाश से चारों ओर प्रकाशित हो रहा था छोटी बड़ी अनेक किंमती वस्तुएँ निकलती रही उस मे एक रत्नों से जडित मोजडी-जुति निकली, उसे देखकर राजा विक्रम और भी अधिक विस्मित हुए, उन्होंने आदर के साथ उस जुति के आगे अपना सिर झुकाकर उसे प्रणाम किया, आदरपूर्वक उसे हाथ मे लेकर अपने मस्तक और हृदय से लगाया.

यह देख कर उस वृद्ध ब्राह्मणने महाराजा विक्रम से कहा, "हे राजन्! आप इस जुति को इतना मान क्यो देते

महाराजा विक्रमने मोजडी को हृदय से लगाई. चित्र न. ८

है? यह जुति तो एक चमारिन की है, आप इस को शिरसे मत लगाईये." राजा सुनकर आश्चर्यचकित हो बोले, "इतनी सुन्दर और बहुमूल्य मणियों से जडित यह मोझडी चमारिण की है? हे विप्रवर! आप कृपा कर उस चमारिन का परिचय मुझे सुनाईये."

उस ब्राह्मणने कहा, "हे राजन्! श्री रामचन्द्रजी के समय में इस स्थान पर चमार लोगों का निवास था, वहाँ कई चमार लोगों के मनोहर घर थे, उन चमारों में भीम नामका एक चमार रहता था. उसकी स्त्री बड़ी कर्कशा और दुर्विनीता थी, जिसका नाम पद्मा था, वह अपने पति से लड़ती–झगडती थी, पति के आदेशों को भी अवज्ञा करती

एक दिन पति के वचनों से क्रुद्ध हो वह स्त्री एक ही जुति पहन कर अपने पीहर-पिता के घर चली गई, और एक जुति वहाँ छोड गई.

पीहर जाने पर उसके माता-पिता आदि के पास पति के दोष वह सुनाये, माता-पिताने उसे दो-तीन दिन रखकर आश्वासन दे कर बहुत समझाया, 'हे पुत्रि ! अपने पति की आज्ञा में रह कर, ससुराल में रहनेवाली स्त्री ही कुलवती कहलाती है, और कुलवती स्त्री को पतिका ही शरण श्रेष्ठ है, ईसी लिये तुम अपने ससुराल चली जा.' पर पद्माने नहीं माना, पद्माने पिताजी से कहा, 'मैं अपमान के कारण वहाँ नहीं जाऊँगी.' ईस तरह माता-पिता, भाई आदि के वचन भी नहीं माने. एक दिन उसके पिताने क्रुध्ध होकर कहा, 'क्यों तुझे राम-लक्ष्मण और सीता लेने आयेगें तब ही तु ससुराल जायगी ?' उत्तर मे पद्माने कहा, 'हां' उसने यह बात पकड ली उसे अब जब भी ससुराल जाने को कहा जाता तो उत्तर मे कहती, 'तुमहीने तो कहा था, कि राम-लक्ष्मण और सीताजी लेने आयेगें तब जायगी ! अतः अब तो मैं ईसी हालत मे जाऊँगी.'

यह बात धीरे धीरे सारी अयोध्या नगर मे फेल गई, और अयोध्यापति श्री रामचन्द्रजी के पास पहूँची. रामचन्द्रजीने अपनी प्रजा की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने का निश्चय कर अपने भाई लक्ष्मण और सीता के सहित उसके पीहरमे पहूँचे. पद्मा के पिताने अपने मकान पर एकाएक अयोध्यापति राम-लक्ष्मण-

सीता को आये देख अपना अहोभाग्य मानने लगा. उनके सत्कार के लिये रत्नजड़ित सिंहासन आदि का प्रबन्ध किया. महाराजा रामचन्द्रजी अपने एक गरीब प्रजाजन के इस प्रकार का अच्छा सत्कार और रत्नजडित सिंहासन, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त मणि आदि द्वारा बनाये गये अनेक घरों को देख बहुत संतोष माना कि अपनी साधारण प्रजा भी इतनी समृद्धिशाली हैं-मैं कृतकृत्य हूँ-धन्य हूँ!

पद्मा के पिताने महाराजा श्री रामचन्द्रजी से आने का कारण पूछा, 'हे राजन्! अपने प्रिय भाई लक्ष्मण और महाराणी सीता के साथ यहाँ पधारने का क्यों कष्ट उठाया? मेरे योग्य सेवा फरमाईये?' उत्तर में रामचन्द्रजीने कहा, 'हे भाई, तेरी पुत्री और गाँव के भीम चमार की स्त्री को मैं लेने आया हूँ, कारण कि उस की प्रतिज्ञा है कि जब मुझे लक्ष्मण, सीता सहित रामचन्द्र लेने आयेंगे तभी मैं ससुराल जाऊँगी, उसी कारण मुझे यहाँ आना पड़ा.' यह सुन कर चमार बहुत ही हर्षित हुआ.

उस पद्मा के पिताने घर में जाकर अपनी पुत्री से समाचार सुनाया, 'हे पद्मे! तेरी प्रतिज्ञा की टेक रखने और तुझे ससुराल पहुँचाने के लिये श्री रामचन्द्रजी, लक्ष्मण और सीता सहित यहाँ आये हैं?' पद्माने चकित होकर पूछा, 'आप क्या कहते हो? क्या सच ही रामचन्द्रजी मुझे लेने आये?' वह शीघ्र दौड़ती हुई दरवाजे की ओर आई और सचमुच ही रामचन्द्रजी आदि तिनों को कई मनुष्यों के बीच

मे रत्नजडित सिंहासन पर विराजमान देखे. नमस्कार कर आदरपूर्वक सीताजी को अपने घर मे ले आई.

सीताजी की साडी मे तेल का छोटा सा धब्बा देख, पद्माने सीताजी से प्रश्न किया, 'हे स्वामिनि ! क्या आपके महेलों मे तेल के दीपक जलते है ? जिस से आप की साडी से तेल की गंध आती है ?'

सीताजीने उत्तर दिया, 'हाँ, हमारे महल में तो तेल के ही दीपक जलते है, परन्तु तुम्हारे यहाँ किस वस्तु का दीपक जलते है ?'

पद्माने कहा, 'हमारे यहाँ तो रत्नों के दीपक जलते है, रत्नो से सारा घर प्रकाशमान रहता है' इस प्रकार सीताजी और पद्मा की बाते हो रही थी कि इतने मे रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण सहित आ गये और पद्मा को इस तरह समजाने लगे हे पुत्री, स्त्री जाति के लिये पति ही शरण है, अत तुम मान को छोड कर अपने पति के घर चलो. हम लोग इस लिये तुम्हारे घर आये है'

रामचन्द्रजी की बात सुन कर पद्मा शीघ्र ही मान गई. और उस रत्नजडित मोजडी–जुति को वहीं छोड महाराजा आदि के साथ रवाना हो कर अपने पति के घर पहुंच गई.

रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और सीताजी पद्मा को उस के पति भीम चमार के वहाँ पहूँचा कर, अपने राजमहल में पधारे, प्रजा का पुत्रवत् पालन कर न्याय मार्ग से राज्य को चलाते हुए-सुखपूर्वक समय बीताने लगे"

महाराजा विक्रमादित्यने रोमांचकारी इतनी कथा सुनकर इस वृद्ध ब्राह्मण से प्रश्न किया, "उस पद्मा की वह दूसरी जुति कहा है? जो कि वह अपने पिता के घर छोड आई थी?" उत्तर में वृद्ध ब्राह्मणने कहा, "वह तो उसके पीहर-वाले स्थान में ही है, अतः वहाँ की भूमि खोदने पर वह भी मिल सकती है" महाराजाने उस स्थान को भी खुदवा कर दूसरी भी प्राप्त की जो कि ठीक उसी के समान थी, जैसी भीम चमार के वहा निकली थी

महाराजाने उस वृद्ध ब्राह्मण से पूछा, "आपने ये सब बाते कैसे जानी कि ये जुति, सिंहासन, मंडप वगैरे इन इन जगहों पर है?" ब्राह्मणने कहा, "हे राजन्! ये सभी बाते परंपरागत कथनानुसार मुझे ज्ञात है. इन सब बातो से यह भली भाँति स्पष्ट होता है, कि महाराजा राम-चन्द्रजी कितने प्रजावत्सल-प्रेमी थे, तब कि प्रजा कितनी सुखी थी, अपने आप खुद सादाई से रहते थे और विनम्र थे कि एक चमार के घर तक गये, उसके घर में अतुल धन राशि देख राम, लक्ष्मण और सीताजी प्रसन्न हुए, किन्तु धन राशि ले लेने की भावना उन्होंने नहीं की, आप इन सब बातों को ध्यान में रख कर आप-स्वयं को "अभिनव राम" और अपने राज्य को "रामराज्य" कहलाने का या समझाने का मोह-मद छोड़ दें, हे राजन्! यह विचार भी कभी नहि करना चाहिये, कि मैं बडा राजा हूँ.

राम के तो स्मरण मात्र से ही अग्नि शांत हो जाती है, सैंकड़ो तरह के रोग नष्ट हो जाते है, जिसने बाल्यकाल में

पिताजी की आज्ञा को नहीं टाला और एक महान राज्य को छोडने मे अल्प दु ख का अनुभव तक नहीं किया, जिस महाराजा रामचन्द्रजी की स्त्री सीता भी अपने पवित्र शील गुण के कारण विश्वभर के स्त्रीसमाज के लिये आज भी आदर्श रूप हैं, जिन राम के हनुमान, सुग्रीव जैसे महान वीर सेवक हुए, उस रामचन्द्रजी की बराबरी आप कैसे कर सकते हैं? मेरी तो पुन आप से येही सलाह है, कि आप अपने गर्व को त्याग कर 'नवीन राम' बनने का विचार त्याग दीजिये. हे राजन्! श्री रामचन्द्रजी के जीवन का एक ही प्रस ग स क्षिप्त रूपसे वह सुनाया, मैं अधिक और रामचन्द्रजी के लिये क्या प्रश सा करुं?"

महाराजा विक्रमादित्यने ईन सब बातो को सुनते ही "नविन राम" बनने की अपनी भावना को छोड दिया, और अयोध्या से अपने रसाला व सेवको क साथ रवाना होकर अवती नगरी म आ पहुँचे. अयोध्या की सफल यात्रा की उपलक्षता म याचकों को बहुत उदारता से दान देने लगे

पाठकगण! आपो इस प्रकरण में महाराजा विक्रमादि य द्वारा किये गय गर्व का हाल पढा ही है उनका गर्व नहो रहा राजा विक्रमादित्य तो क्या? पर आजतक के इतिहास के देखने से यही मालुम होता है, कि 'गर्व किसी का भी न रहा है, और न रहेगा कारण कि इस विश्वरूप नाटकशाला म अनेकों नट आते हैं' जो अपना अपना कार्य कर चले जाते हैं, उनका कार्य एक एक से बढकर होता है, जैसा जिसका कार्यक्षेत्र होता है, वैसी ही उसकी प्रसिद्धि-ख्याति जगत में होती है अत किसी भी व्यक्ति को इस प्रकार का गर्व कदापि नहीं करना चाहिए कि, 'जो कुछ हूँ सो मैं हूँ' अगर कोई इस प्रकार करता भी है तो विद्वान

राज्यव्यवस्था का योग्य प्रबंध कर, एक दिन अपने पूर्व निश्चय के अनुसार महाराजाने अवंती नगरी से विदेशभ्रमण के हेतु प्रस्थान किया, अनेक स्थानों का भ्रमण करते और अनेक प्रकार के कौतुक देखते हुए वह अपने देश से बहुत दूर निकल गये. चलते चलते वह कोई एक सुन्दर नगर में पहुँचे, जिसका नाम 'चैत्रपुर' था, नगर में घूमते शहर की सुन्दरता देखते देखते आगे बढ़े, एक सुन्दर हवेली के समीप में कई व्यक्तियों को एकत्रित हुए देखे, उसी स्थल जा.कर महाराजाने एक आदमी से पूछा, "ये लोग यहां क्यों एकत्रित हुए है?"

उस नगरवासीने कहा, "आज ईस सेठ के यहां उत्सव है, इस सेठ का नाम धनद है, यह सेठ बड़ा ही धनवान है.'

विक्रमराजा—किस कारण से यह उत्सव करा रहे है?

नगरवासी—इस सेठको अभी तक कोई संतान नहि था, अनेक मनोरथो के बाद में प्रभु भक्ति और धर्म के प्रभाव से सेठ के यहां एक पुत्र का जन्म हुआ है, जिस का कल ही छट्ठा दिन है, उसके निमित्त यह उत्सव मनाया जा रहा है; कल यहाँ पर छठी का जागरण होगा, ईस नवजात शिशु के भाग्य को लिखने के लिये कल कर्म-अधिष्टात्रि देवी-विधाता यहां आयगी.

महाराजा विक्रम यह जानकर वहां से अपने विश्राम स्थान पर चले आये, और मनमें निश्चय किया कि विधाता कौन है? क्या कर्म लिखती है? आदि देखना चाहिए!

दूसरे दिन अपने निश्चय के अनुसार संध्या समय पर महाराजा विक्रमादित्य काले कपड़े पहन-अदृश्य होकर उस धनद् सेठ के मकान में आकर एकान्त में गुप्त रूप में रहे, कुछ रात्रि व्यतीत होने पर, कर्म अधिष्टात्रि देवी का आगमन हुआ, उसने धनद् सेठ के पुत्र की ललाट में कर्म का लिखना आरंभ किया. जब विधातादेवी कर्म लिख कर वापिस लौटने लगी तब विक्रम महाराजाने उसका हाथ पकड कर रोका, और पूछा, "इस बालक के भाग्य में क्या लिखा है ?"

महाराजाने कर्म-अधिष्ठात्रिदेवी का हाथ पकडा. चित्र नं ९

देवी—आप कौन हो? आपको ईस विषय से क्या मतलब?

राजा—मैं विक्रम हुँ, ललाट में क्या लिखा यह बताये बिना आप को नहि जाने दूँगा.

बहुत आग्रह करने पर विधाताने उत्तर दिया, "जब यह बालक बड़ा होकर धनवान् श्रेष्ठि की कन्या से विवाह करेगा, उस समय व्याघ्र–बाघ के मुख से उसकी मृत्यु होगी." यह कह कर वह शीघ्र ही चली गई

महाराजा विक्रम भी वहां से लौट कर अपने विश्राम स्थान पर आ गये

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर महाराजा नित्य कार्यादि से निवृत्त हो, उसी धनद सेठकी हवेली पर आ पहूँचे. सेठने अपने मकान पर आये हुए अतिथि का बड़ा आदरभावसे सत्कार किया, भोजन आदि करा कर उन्हे आदरपूर्वक बैठा कर पूछा, "आप कहां के रहेवासी हो ? और आपका क्या नाम है ?"

महाराजाने अपना परिचय देते हुए कहा, "हे सेठजी ! मैं अवंतीनगरी का रहेवासी हूँ. और विक्रम मेरा नाम है, मैं विदेश भ्रमण हेतु बाहर निकला हुँ. और घूमते घूमते यहाँ आया हूँ."

उस नगर से विदा होते समय सेठने विक्रम से कहा, "मेरे इस पुत्र के विवाह–शादी पर आने की आप कृपा करें."

विक्रमने कहा, "आप मुझे बुलाने आयेंगे तो मैं अवश्य ही आप के पुत्र के विवाह पर आऊंगा." इस प्रकार कह कर महाराजा यहा से रवाना होकर, अन्य देशो में अनेक प्रकार के कौतुक देखते कई देश–विदेशों का भ्रमण कर बहुत

समय बाद अवंती नगरी को पधारे, और पूर्ववत् राज्य कारभार चलाने लगे.

इधर चैत्रपुर मे धनद् सेठका पुत्र बड़े प्यारसे लालन कराता हुआ, दिन प्रतिदिन बड़ा होने लगा, एक विद्वान पंडित के पास धनद् सेठने पुत्रको विद्या पढ़ाना आरंभ किया. क्रमशः वह धनदकुमार शीघ्र ही विद्या ग्रहण करने लगा. इस प्रकार अल्प समय मे ही वह धार्मिक और व्यवहारिक शिक्षा आदि सकल विद्याओं में कुशल हो गया ठीक ही कहा है, प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि अपने बालक को विद्या अवश्य ही पढ़ावे और वह विद्या भी कैसी पढानी चाहिए इस के लिये विद्वानोने कहा—

"जीवन में शिक्षा ऐसी हो, जिसको पा सुख शांति रहे;
मृत्यु बाद भी आसानी से, परलोक गये पर शांति रहे."

प्रत्येक माता-पिताका कर्तव्य है, कि अपने घरमें जन्म प्राप्त करने वाले लड़के को दो प्रकार की शिक्षा दे, एक तो यह कि इस भव में न्याय-नीतिपूर्वक अपना कर्तव्य पालन करता हुआ जीवन व्यतीत करे, और दूसरी शिक्षा ऐसी देनी चाहिए कि अपने जीवन में धर्म-ध्यान, जप, तप, दया, परोपकार आदि सत्कार्य कर परलोक मे सद्गति को प्राप्त कर सके.* अर्थात् धार्मिक और व्यवहारिक विद्या प्रत्येक

* जायमि जीवलोए, दो चेव नरेण सिक्खअव्वाइं।
कम्मेण जेण जीवइ जेण मओ सुग्गइं जाइ ॥ स १०/२६८॥

व्यक्ति के लिये पूर्ण आवश्यक है, ताकि वह अपना ईह लोक और परलोक सफल बना सके.

"माता पिता उसे जानना, जानना प्यारा मित्र;
वडील उन्हे जानना. शीखवे धर्म पवित्र."

धनद् सेठने अपने पुत्र की विवाह योग्य उंमर को देख उस की शादी करने का मनमें निश्चय किया, कई स्थानो पर सुयोग्य कन्याकी तलाश करने लगे, तलास करते करते धनद् सेठने सोलह धनवान श्रेष्ठियों से अपने पुत्र के लिये सुन्दर और गुणी कन्याओं कि माग की.

शुभ दिन और शुभ मुहूर्त का निश्चय कर अपने पुत्र की शादी की तैयारी करने लगे परन्तु धनद् सेठ के प्रत्येक कार्यो में कुछ ने कुछ अपशुकन और विघ्न होने लगे, यह देख सेठ वडे सोच-विचार मे पड गया. काफी विचार करने पर उसे स्मरण हुआ, 'मैंने अवती नगरी के विक्रम को वचन दिया था, कि मैं अपने पुत्र के विवाह प्रसग पर आप को बुलाने आऊँगा, यह बातें भूल जाने की कारण ही ये अपशुकन होते होंगे?' ऐसा सोच शीघ्र ही सब कार्य छोड़, धनद् सेठने अवती नगरी को प्रस्थान किया

अवती नगरी में पहूँच उसने अव तीनिवासीयों से विक्रम का निवासस्थान पूछा, पर उन्होंने कहा, 'यहां तो कई विक्रम है, आप किस विक्रम के विषय में पूछते है?" धनद् सेठने विक्रम के रूप, रंग और शरीर, अवस्था आदि

सारी बातें बताई, तब अवंतीनिवासीयोंने निश्चय कर उत्तर दिया, "ये सभी लक्षण तो महाराजा विक्रमादित्य से ही मिलते हैं" अतः उन्होंने तो विक्रमादित्य के महल का रास्ता बता दिया।

राजमहल के पास जाकर देखा तो सुसज्जित हाथी पर आरूढ हो कर सवारी सामने आ रही थी, उसे देखते ही धनद् सेठने राजा को तथा राजाने भी धनद् सेठ को पहिचान लिया हाथी पर से ही महाराजाने धनद् सेठ से पूछा, 'हे धनद् सेठ! क्या आपने अपने पुत्र का विवाह कर लिया?' इस प्रश्न को सुनकर धनद् को निश्चय हो गया, कि यह तो वही विक्रम महाराजा अवंती नरेश हैं मैं ने तो इनका महाराजा के योग्य कोई आदरसत्कार अपने घर नहीं किया, इस प्रकार मनमें उस को चिंतित देख कर महाराजाने कहा, "हे सेठ! आप क्यों चिंतातुर दिखाई दे रहे हैं? आप अपने आने का कारण बतावे?" तब उत्तर में धनद्ने अपने आने का कारण बताते हुए अपने पुत्र की शादी की बात सुनाई और कहा, 'हे राजन्! मैं ने तो अपने घर पर आप का कोई योग्य सन्मान नहीं किया इस के लिए मैं आप से क्षमा याचना करता हूं"

इस प्रकार की वार्ता को सुन कर सभी मंत्री-अधिकारी आदि उस सेठ को देखने लगे और उसका परिचय जानने के लिये उत्सुक होने लगे यह जान कर विक्रम महाराजाने अपने पूर्व चरित्र को दोहराते हुए चैत्रपुर में जाना और धनद्

सेठ के अतिथि बनने की बातें कह सुनाई.

बाद में धनदने महाराजा से निवेदन किया; "मैं अपने घर में आप के पधारे विना अपने पुत्रकी शादी नहीं करुंगा, अतः आप शीघ्र ही अपने परिवार के साथ पधारें." उत्तर में विक्रमादित्यने कहा, "हे धनद! मेरे पूरे कुटुम्ब लावलश्कर के साथ चलने से तुमे व्यवस्था आदि मे काफी धन खर्च करना होगा."

धनदने उत्तर दिया, "हे राजन्! आप इसकी चिंता न कीजिये. मैं आप के गौरव के अनुसार आपका अवश्य ही सत्कार करुंगा, आप सपरिवार अवश्य पधारिये."

महाराजाने धनद को आश्वासन दे कर रवाना करते हुवे कहा, "मैं यहां का प्रबन्ध कर अपने परिवार और लश्कर सहित आता हूँ. आप चल कर कार्य प्रारंभ कीजिये."

इस प्रकार धनद अपने नगर में पहुँचा. धनद सेठने शीघ्र ही अपने घर से बहुत साधन-सामग्री लेकर, महाराजा विक्रम के आने के मार्ग में भोजन, विश्रामस्थान आदि की उसने सुन्दर व्यवस्था की, इस प्रकार की व्यवस्था देख राजा विक्रम भी आश्चर्यचकित हो गये. सेठने अपने नगर-चैत्रपुरी में भी महाराजा के ठहरने का और भोजन सामग्री, पीने का जल आदि की बहुत उत्तम व्यवस्था कर रखी. जब महाराजा विक्रमादित्य भी अपने वचनानुसार पधारें, तब धनद सेठने खुब धन खर्च कर प्रवेश उत्सव करके अपूर्व सत्कार किया.

चन्द्रपुर की सारी जनता भी ताज्जुब हो गई और सेठ की उदारता की प्रशंसा करने लगी.

. जैसे चन्द्र विकासी कमल-कुमुदीनी चन्द्रमा को देख खिल उठती है उसी प्रकार सपरिवार विक्रमादित्य महाराजा को देख धनद् अति प्रसन्न हुआ. धनद् सेठने स्वादिष्ट भोजन पेयपान, वस्त्र, आभूषण आदि से महाराजा का अपूर्व स्वागत किया. महाराजा के आने के पश्चात् सारे नगर को तोरण-पताका-आदि से सज्जित कर 'शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में विवाह का कार्य प्रारंभ किया गया, निश्चित समय पर बरात रवाना हुई; वर अपूर्व सुसज्जित रथमें बैठा था, विक्रम महाराजा अपने शस्त्रादि से सज्जित हुआ, और पूरे लश्कर के साथ होने से बरात की शोभा और भी ज्यादा बढ़ गई. धनद्कुमार का छठी का जागरण की बात पूर्ण स्मरण के कारण कर्म-अधिष्टायक देवी-विधाता के लेख के अनुसार कोई बाघ वरको न मार दें इस से सचेत-सावधान होकर महाराजाने लश्कर को ढाल, तलवार आदि नाना प्रकार के हथियारों से सुसज्जित कर वर-धनद्कुमार की रक्षा के लिये चारों ओर कड़ा पहरा का बंदोबस्त लगा दिया.

धनद्कुमार-वर महाराजा आदि से रक्षित होता हुआ, ठीक समय पर विवाह मंडप में पहुँचा. वहां विधिविधानपूर्वक विवाह कार्य होने लगा, बरात में आये हुए लोग भी मंडप में अपने अपने योग्य स्थान पर बैठ गये, उस समय भी महा-

राजा स्वयं अपने ढाल, तलवार सहित कई सेवकों के सा वरकी रक्षा करने लगे.

मंडप में सुचारु रूप से विवाहविधि चल रही थी, मंडप में चारों ओर आनंद का वातावरण दिखाई दे रहा था, सर्व की मुखमुद्रा प्रसन्न थी; धनद सेठ के स्वजन लोग और सारा परिवार अपार आनंद मना रहा था, उसके बीच में वर के पास में रक्षण के लिये खड़ा रहा हुआ सैनिक की ढाल में एकाएक अचानक बाघ का रूप उत्पन्न हुआ और धनदकुमार रूप उस वर को क्षण मात्र में मार डाला.

अपने प्यारे पुत्र को मरा हुआ देख धनद सेठ बेहोश हो गया, और सेठ का सारा परिवार बहुत दुःखी हो गया, *क्षणभर में ही नगरी की जनता में शोक का बादल फैल गया.*

यह तो निश्चित है कि अपने पुत्र के मृत्यु पर किसे दुःख नहीं होता, नीति में भी कहा है कि पिता, माता, पुत्र, पुत्री, पत्नी, भाई और मित्र आदि सर्व सम्बंधियों के वियोग से मनुष्य को बहुत दुःख होता है. ×

मनिप ।F ढा न म एकाएक म४ ग रूप उपर हुआ और धनदकुमार रूप उ र
र का क्षणमात्र म मार ाला।
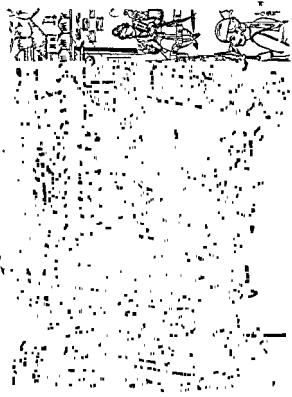
पृष्ठ ३७४

(मु नि वि सयोजित विक्रम चरित्र तृतीय भाग चित्र न १०)

दिन मैंने कर्म अधिष्टात्री विधाता-देवी से जान लिया था इसी लिये मैं इन की शादी में आने का स्वीकार किया था, और आप के पुत्र के संरक्षण के लिये मैं अपने साथ कई सैनिक आदि भी लाया था, बहुत व्यवस्था करने पर भी विधाता से लिखा लेख अन्यथा नहीं हुआ क्या करें ?" ईस प्रकार महाराजा धनद् सेठ को धैर्य देकर समझाते थे, पर धनद् सेठ अपने प्यारे पुत्रके वियोग से अति शोकातुर हो बहुत दुःखी होता था, और पुत्र के साथ साथ मरने की अभिलाषा करता था, विक्रम राजा अपने मित्र की यह दारुण दशा देख स्वयंभी बहुत दुःखी होता हुआ अपनी तिक्ष्ण तलवार म्यान से निकाल कर दैव-विधाता के प्रति बोला, "हे दैव-कर्म अधिष्टात्री देवी! यदि धनद् सेठ का पुत्र पुनः जीवित नहीं होगा तो, मैं यहां ही अपना बलिदान करूँगा"

महाराजा का इस प्रकार का साहस देख उसी समय कर्म-अधिष्टात्रीदेवी प्रगट हुई, शीघ्र ही महाराजा की तलवार पकड़ ली और बोली, "हे राजन्! ईस श्रेष्टिपुत्र को मैं किस तरह जीवित करूँ? क्योंकि ईस श्रेष्टि पुत्रने पूर्व जन्म में केसरी सिंह को मारा था, और आज उसी सिंह के जीवने इनको मारा है, ईसमें किसीका दोष नहीं, जैसा कि विद्वानोंने कहा है—

'दानव देव भूप मानव हो या गंधर्व यक्ष विकराल,
पापकर्म का भोग भुगाकर सबको करता वश में काल.'

जो जो जीवने अपने शुभ या अशुभ कर्म किये गये हो उसे भोगे विना उस पुण्य-पाप से छूटकारा किसी भी दशा म नहीं होता है"

कर्म की तो गति ही विचित्र है, ईस में दूसरी व्यक्ति क्या कर सक्ती है? कर्म और काल का तो नियम अटल है. ईस के आगे किसी का कोई उपाय नहीं चलता, जैसे जिस ब्रह्मा को संसार रूपी पात्र बनाने में कुम्भार के समान नियंत्रित किया है, रुद्र को कपाल-खोपरी जैसी अपवित्र वस्तु हाथ मे लेकर भिक्षा मागने क लिये विवश किया है, दशावतार रूप आवागमन से विष्णु को जिसने हमेशा संकट मे डाल रखा है, सूर्य को भी आकाश मे ही नित्य घूमने को नियत किया है, ऐसे कर्म को मेरा नमस्कार है" ×

यह सब सुनकर राजा विक्रमादित्यने विधाता से कहा, "हे देवी! ईस धनद के पुत्रने पूर्व जन्म मे जो सिंह को मारा था, उस संबंधी पाप कर्म तो ईस के मरने से अब नष्ट हो गया है, कारण कि ऐसी पाप से यह अभी मरा है, अब तुम ईस को पुन जीवितदान द दो, अन्यथा मैं

× ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे,
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारित,
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासंकटे,
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नम कर्मणे
॥ स १०/२०६ ॥

अपना प्राण त्याग दूँगा. ईस प्रकार महाराजा के निश्चय को देख विधाताने उस धनद् पुत्र को पुनः जीवित कर दिया, और क्षण में देवी अलोप हो गई. ईस प्रकार राजा विक्रमादित्य के प्रयत्न से धनद् कुमार को जीवित देख सभी लोग प्रसन्न हो गये.

सच है, रणमें, वनमें शत्रुओं के बीचमें, जलमें, अग्निमें, पर्वत की चोंटी पर, नींदमें हो या जागता हो, किसीभी विषम स्थानमें हो तो भी अपने प्रबल पुण्य प्रभाव उपरोक्त परिस्थितियों से रक्षा होती हैं

ईस प्रकार महाराजा विक्रमादित्य के अपूर्व साहस द्वारा पुनः जीवित कराये गये, पुत्र का धनद् सेठने पुनर्जन्म का बहुत आडम्बर से महोत्सव मनाया और लोगों को बहुतसा दान दिया. बड़ी धामधूम से पुत्र की शादी निर्विघ्न सानंद-संपन्न होने पर महाराजा विक्रम का बहुत बड़ा उपकार मान उन्हों को धन्यवाद देता हुआ महाराजा को तथा उनके परिवार आदि सेवक लोगों को वस्त्रालंकार से सन्मानित कर विदाई दी.

महाराजा अब वहाँ से प्रस्थान कर अपने लाव-लश्कर सहित अवंती की ओर चले, क्रमशः अवंतीनगरी में पधारे और अपना राज्यकार्य संभाला-चलाने लगे.

"जो पराये काम आता, धन्य है जगमें वही;
द्रव्य ही को जोड़कर, कोई सुयश पाता नहीं."

पाठकगण! आपने इस प्रकरण में महाराजा विक्रमादित्य का विदेश

भ्रमण के लिये निकलने का तथा धनद् सेठ से उसका परिचय होने आदि का हाल पढ़ा ही है महाराजा द्वारा कर्म अधिष्ठात्री देवी-विधाता से मिलकर उस सेठ के पुत्र के भाग्य-लेख का हाल मालूम कर उसकी मृत्यु का कारण जान कर ठीक उस की मृत्यु के समय विवाह कार्य में उपस्थित होकर अपने प्राणों का बलिदान देने तक की तैयारी प्रदर्शित कर संसार में परोपकार का एक अद्भुत उदाहरण उपस्थित करने आदि का रोमांचकारी हाल पढ़ ही लिया है आशा है, आप लोग भी विक्रम महाराजा के चरित्र से परोपकार का पाठ लेंगे

अब आप आगामी प्रकरण में महाराजा का मणि का मूल्य कराना आदि रोचक कथा पढ़ेंगे

ईक्कावनमाँ–प्रकरण

रत्न प्राप्ति व उसका मूल्यः—

" किंमत घटे नहि वस्तु की, भाखे परीक्षक मूल;
जैसा जिसका पारखा, वैसा करे मणिका मूल."

महाराजा विक्रमादित्य अपनी राजसभा में अपने अतुल बुद्धिमान, बलशाली और चतुर सभासदों के साथ सभा की शोभा बढ़ा रहे हैं. कालीदास जैसे महान् कवि के साथ नौ रत्न अपनी बुद्धि से मालवपति महाराजा की कीर्ति दिगन्त में फैला रहे हैं. सामने सुन्दर बत्तीस पुतलियों वाले सिंहासन पर महाराजा विक्रम विराज रहे हैं उसी समय एक वणिक् ने सभा मे प्रवेश किया, और सारी सभा को दिखाते हुए महाराजा के सन्मुख एक रत्न प्रस्तुत किया. यह रत्न बड़ा ही प्रकाशमान था, और देखने से अमूल्य सा प्रतीत होता था. उस रत्न को देख महाराजाने उस वणिक से प्रश्न किया, "हे वणिक ! तुम्हे यह रत्न कहाँ से मिला है ? "

वणिक—महाराज! मुझे यह रत्न खेडते हुए खेतमें से मिला है.

महाराजा—क्या तुम्हें ईस रत्न का मूल्य मालुम है ?

वणिक—जी नहीं ! मुझे इस का मूल्य मालुम नहीं है.

यह उत्तर सुन कर महाराजाने अपने सेवकों का भेज कर नगरी के प्रमुख जौहरी लोगों को रत्न की परीक्षा के लिये बुलाया. राजाज्ञा के अनुसार सभी प्रमुख जौहरी राजसभा में उपस्थित हुए.

महाराजाने उन जौहरी लोगों को वह रत्न दिखा कर कहा, "आप लोग इस रत्न को देखिये और ईस की परीक्षा कर ईस रत्न का मूल्य मुझे बताईये."

काफी समय तक सभी उपस्थित जौहरी लोगोंने उस रत्न को भली भाँति देखा, परन्तु कोई भी उस रत्न का मूल्य नहीं बता सका, काफी समय होने पर भी सभी को चुप देख

जौहरी मणि रत्न देख रहा है. चित्र नं. ११

महाराजाने पुनः पूछा, "आप लोग चूप क्यों है? आप मणि रत्न का मूल्य शीघ्र बतावें."

महाराजा के ईस प्रश्न के उत्तर में एक चतुर जौहरीने उत्तर दिया, "हे राजन्! हम लोग तो ईस रत्न का मूल्य नहीं बता सकते है, अगर आपको ईस रत्न का मूल्य जानना ही है, तो आप पाताल के राजा बलि के यहाँ पधारें, क्यों कि बलि राजा रत्नों के उत्तम परीक्षक है, वही आपको इस रत्न का यथार्थ मूल्य बता सकेगा दूसरों की ताकात नहीं. हमने तो आज तक न तो इस प्रकार का अपूर्व रत्न देखा है और न सुना ही है, फिर आप ही कहिये कि हम इस का मूल्य कैसे बता सके ?"

इन लोगों से इस प्रकार का निराशाजनक उत्तर सुन कर महाराजाने उस रत्न की परीक्षा कराने का निश्चय किया, रत्न लाने वाले वणिक को कहा, "मैं इस रत्न की परीक्षा कराने पाताल मे जाऊँगा, तुम अपने रत्न को दो दिन के लिये मेरे पास ही रहने दो." वणिकने वह रत्न महाराजा को सोंप दिया और अपने घर गया.

वणिक से रत्न लेकर महाराजा विक्रमादित्य अग्निवैताल की सहायता से पाताल मे पहूँचे, वहां जाकर वह राक्षसाधिराज बलि के महल मे गये; राजमहल के द्वार पर कृष्ण नामक एक द्वारपाल खड़ा था, उस द्वारपालने महाराजा से

कहा, "आप कौन हो ? किस कार्य के लिये आपका यहां आना हुआ है ?"

विक्रमने कहा, "मैं बलि महाराजा के पास सब कहूंगा हे द्वारपाल ! तुम अपने स्वामि से जाकर कहो कि आपसे मिलने के लिये एक राजा आया है."

यह सुन कर द्वारपाल महाराजा बलि के पास गया, और नमस्कार कर अपने स्वामि से निवेदन किया, "हे राजन् ! प्रवेशद्वार पर कोई राजा आया है, वह आपसे अभी मिलना चाहता है. उन को अंदर प्रवेश करने दूं या नहीं ?"

बलि राजाने द्वारपाल को कहा, "तुम उससे जाकर पूछो कि क्या आप राजा युधिष्ठिर है ?" राजा बलि की आज्ञा पाते ही द्वारपाल लौट कर दरवाजे पर आया और उसने विक्रम से कहा, "क्या आप राजा युधिष्ठिर है ?"

"ना, बलि राजा से जाकर कहिये कि मंडलिक आया है." ऐसा विक्रमने द्वारपाल से कहलाया तब द्वारपालने बलि राजा के पास जाकर कहा, "वह अपने को मंडलिक कहता है." यह सुन बलिराजाने द्वारपाल से कहा, "तुम जाकर उस से पूछो कि क्या आप मंडलिक याने दशमुख-रावण है ?"

तब कृष्ण सेवकने दरवाजे पर आकर उस से पूछा, "क्या आप राक्षसाधिपति-रावण है ?"

तब विक्रमने कहा, "ना, मैं महाराजा राम का भक्त सेवक हूँ" द्वारपालने पुनः जाकर बलि राजा से कहा, "वह महाराजा राम का भक्त सेवक हुँ, ऐसा कहता है" तब बलिराजा ने उस द्वारपाल से कहा, "तुम जाकर पूछ कर आओ कि क्या तुम हनुमान हो?" द्वारपालने फिर दरवाजे पर आकर उस को पूछा, "क्या आप हनुमान है?"

तब विक्रमने कहा, "ना, मैं कुमार हुँ, बलि राजा के पास कुछ कार्य के लिये आया हूँ" यह उत्तर सुन पुन बलि राजा के पास जाकर उसने निवेदन किया, "वह आने वाला अपने आप को कुमार बताता है" तब बलि राजा बोला, "क्या पार्वतीपुत्र-षँड्मुख कुमार है?" द्वारपाल वापिस लौट कर आया और पूछा, "क्या पार्वतीपुत्र-छे मुखवाले कुमार हो?"

उत्तर म विक्रमने कहा, "मैं शंकरसुत कार्तिकेय नहीं हुँ। मैं तो वर्तमान काल में पृथ्वी का रक्षण करनेवाला कोटवाल हुँ" यह सुन कृष्ण-द्वारपालने आकर बलि राजा से निवेदन किया, "वह तो अपने को कहता है. म वर्तमान मे पृथ्वी का रक्षक-तलार-कोटवाल हूँ" यह सुन कर बलिराजा विस्मय होते हुए विचारने लगे, 'वह पृथ्वीका राजा कहीं विक्रमादित्य तो नहीं है' ऐसा सोच कर अपने कृष्ण-द्वारपाल से कहा, "यह काव्य उन्हें सुनाकर जो उत्तर दे वह

शीघ्र ले आओ ×

द्वारपालने वह काव्य विक्रम को सुनाया—

"धर्मराज या दशमुख अथवा हनुमान या पण्डमुख;
अथवा विक्रमार्क भूपति! जो आया मेरे घर सुख."

उत्तर मे विक्रमने द्वारपाल द्वारा एक काव्य बलि राजा से कहलाया, "हे राजन्! उन्होने पूछने पर इस प्रकार उत्तर दिया है"

"राजा हूँ मैं मंडलिक हूँ, भक्त रामनृप शीतल का;
समझ कहो कुमार मुझे नृप—या नलार पृथ्वीतल का."

द्वारपाल के द्वारा लाया गया विक्रम राजा का काव्य से उत्तर सुन बलि राजा को निश्चय हो गया कि, वह पृथ्वी का राजा विक्रमादित्य ही है, अत उसे आदर सहित अंदर लाने का आदेश दिया

द्वारपाल भी बलि राजा के आदेश से राजा विक्रमादित्य को आदर और सन्मानपूर्वक राजमहल मे ले आया

× बलिनाक्त सूक्तम्-धर्मपुत्रो दशमुखो हनुमान् पण्डमुख पुन ।
विक्रमार्क इति पृष्ठ बलिना हरिसन्निधौ ॥ स १०/३२९ ॥

विक्रमोक्त सूक्तम्—

राजाऽहं मंडलिकोऽहं बटोऽहं रामभूनत ।
कुमारोऽहं तनातोऽहं द्वारस्थ जय यक्ष पुर ॥ स १०/३२८॥

विक्रमादित्य को आते हुए देख, बलि राजाने कुछ सामने आकर उन का बड़ा आदर-सत्कार किया. आसन पर बैठा कर, कुशल समाचार की पृच्छा करने के पश्चात् आने का कारण पूछा. उत्तर में विक्रमादित्यने कहा, "हे राजन्! मैं आपके पास एक रत्न की परीक्षा कराने के लिये आया हूँ." यह कह कर अपने पास का वह रत्न बलि राजा के सामने रख दिया. राजा विक्रम से लाया हुआ उस रत्न को हाथ मे लेकर देखा तब बलि राजा बहुत विस्मित हुआ और कहने लगे, "ईस अपूर्व रत्न का मूल्य कोई नहीं कह सकता."

विक्रम—हे राजन्! यह अमूल्य रत्न कहाँ से आया?

बलि राजा—पूर्वकाल मे-आज से ८४ हजार वर्ष के पहले अयोध्या नगरी मे सत्यवादी, धर्मात्मा, धर्म-कर्म कुशल आदि अनेक गुणों से युक्त युधिष्ठिर नामका राजा राज्य करते थे; धर्मकृत्य में सदा तत्पर युधिष्ठिर महाराजा न्याय नीतिपूर्वक राज्य चलाते थे और प्रजा का पुत्रवत् पालन करते थे. एक दिन महाराजा के सत्यवादिता आदि उत्तम गुणों से वरुणदेव प्रसन्न होकर उन्हे-युधिष्ठिर को बहु मूल्य-वान अपूर्व बहुत से कोटि अयुत-असंख्य रत्न दिये और युधिष्ठिर महाराज की प्रशंसा कर वरुणदेव अपने स्थान चले गये.

धर्मात्मा युधिष्ठिर ने राजा वरुणदेव से दिये गये उन सब अपूर्व रत्नों का उपयोग अपनी प्यारी प्रजा के कार्यो मे तथा

दीन-दुखी को दान में ही किया. ईस प्रकार उस परोपकारी कार्यो मे दिये गये रत्नों में से गिरा हुआ, यह एक अपूर्व रत्न है, वही रत्न आपके हाथ में आया हैं; हे राजन्! ईस अलौकिक-श्रेष्ट रत्न का मूल्य क्या बताऊँ? ईस अपूर्व रत्न का मूल्य कोई नहि कह सकता है."

महाराजा विक्रमने बलि राजा का उत्तर सुन कर उनसे पुनः निवेदन किया, "हे राजन्! यह तो मैं भी मानता हूँ कि वास्तव में यह रत्न अमूल्य है पर आप वर्तमान समय को देख ईस का कुछ न कुछ तो मूल्य बता दीजिये. ताकि मुझे इस से कुछ शांति मिले."

महाराजा विक्रम की मूल्य जानने की इस प्रकार की प्रबल इच्छा को देख कर बलि राजाने उस रत्न का मूल्य तीस करोड सुवर्ण-मुद्रा सोना महोर बताया यह सुन महाराजा विक्रम भी अत्यंत चकित हुए पर अपना मनोरथ सिद्ध जान कर प्रसन्नतापूर्वक बलि से विदा लेकर वैताल सहित अपनी नगरी मे पधारे. अवती में आ कर महाराजाने उस वणिक को बुलाया और अपनी राजसभा मे उस वणिक से उस रत्न का मूल्य बता कर वणिक् को तीस करोड सोना महोर के साथ साथ दस गाँव और पाच मनोहर घोडे इनाम-देकर आदरपूर्वक विदा किया. अब महाराजा विक्रम भी अपने राज्य को पूर्ववत् चलाने लगे.

पाठकगण ! आपने महान् परोपकारी विक्रम महाराजा का पाताल में राक्षसाधिराज बलि राजा के पास में जाकर उस अमूल्य रत्न के मूल्य का पता लगाना तथा युधिष्ठिर जैसे महान् सत्यवक्ता-धर्मनिष्ठ की कथा श्रवण कर उनके परोपकार की प्रशंसा का परिचय किया और महाराजा विक्रमने लौट कर वणिक को उस रत्न का मूल्य दे कर संतुष्ट करने आदि हाल आप भली भाँति जान गये होंगे.

अब आप आगामी प्रकरण में विक्रमादित्य राजा का सौभाग्यमंजरी और गगनधूलि से परिचय कर तथा उनकी रोमांचकारी कथा का हाल पढेंगें.

बावनवाँ-प्रकरण

एकदण्डियाँ राजमहल

"अन्तर अंगुली चारका, साच झूठ में होय;
सब मानत देखी कही, सुनी न मानत कोय."

एक दिन की बात है कि महाराजा विक्रमादित्य प्रजा के सुख-दुःख की जाँच करने के उद्देश्य से गुप्त वेश में अपनी नगरी में परिभ्रमण कर रहे थे. अंधकारमय रात्रि थी, सारी नगरी की प्रजा निद्रा की गोद में सोने की तैयारी कर रही थी. ऐसे समय में महाराजा अकेले गली गली में घूम रहे थे. उस समय घरके चोतरे पर दो कन्याएँ आपस में वार्तालाप कर रही थी, महाराजा मकान की ओट में खड़े रह कर चुपचाप, उन दोनों की बातें सुनने लगे. उन दोनों कन्या में से सौभाग्यसुंदरी नाम की कन्या बहुत चतुराई से बात करती थी, वह अपनी सखी से पूछने लगी, "हे सखि ! तेरे पिताजी तेरी शादी करेगें, और जब तु ससुराल जायगी तब वहाँ कैसे रहेगी ?" उसके उत्तर में कहा, "मैं जब ससुराल जाऊंगी वहाँ अपनी सास-ससुर और अपने पतिदेव आदि सभी का विनयपूर्वक सदा सेवा करूंगी, यही स्त्रीका आचार है, और क्या ?"

सौभाग्यसुदरी के प्रति उस की सखी बोली, " तुम भी तो यता कि, तु ससुराल जा कर क्या करोगी ?"

सौभाग्यसुदरी—हे सखि ! जब मेरी शादी पिताजी कर देगे तब मैं अपने सुसराल जा कर अपने पति को धोखा दे कर मनपसद पुरुषके साथ प्रेम करूँगी और मौज-विलास से समययापन करूँगी

दोनों कन्या की इस प्रकार बाते सुन कर महाराजा विक्रमादित्य बडी दुविधा-असमञ्जस मे पड गये मन ही मन स्त्रीसमाज की प्रशसा और कपटलीला की बाते सोचने लगे, कारण कि उनके सामने दोनों ही उदाहरण प्रस्तुत थे, चलते चलते काफी विचार विमर्श के बाद महाराजाने निश्चय किया कि, किसी भी प्रकार सौभाग्यसुदरी को अपनी बनाना चाहिए और उस की स्त्रीलीला को अवश्य देखना चाहिए अत उन्होंने अपनी इच्छा को प्रात ही कार्य रूप में परिणित करने का निश्चय किया, बाद मे महाराजा अपने महल मे आकर सो गये

प्रात काल होते ही मंगल शब्दों से उठकर नित्य कार्य और देव दर्शन-पूजा पाठ कर महाराजाने अपने सेवकों को बुला कर रात की सारी बाते उन्हे कह सुनाई और आदेश दिया, "तुम सौभाग्यसुदरी के पिता को मेरे पास बुला लाओ" साथ ही महाराजने उन्हे रात्रि के अपने अनुमान

आदि से स्थान-गली का संकेत बता दिया ताकि मकान का पता लगाने में सुविधा रहे.

महाराजा के आज्ञानुसार दूतगण-सेवक लोगने बताये गये संकेत के आधार पर जाकर शीघ्र ही सौभाग्यसुंदरी के पिताजी का मकान खोज लिया वहाँ पहुँच कर उन्होंने उस के पिताको महाराजा का आदेश सुना कर राजाजी के पास चलने के लिये कहा. यह सुन सौभाग्यसुदरी का पिता प्रथम तो व्याकुल सा हुआ, दूतों के आग्रह से उन्हों के साथ ही रवाना होकर महाराज की सेवामें उपस्थित हुआ. वहाँ आकर उन्होंने महाराजा से नमस्कारपूर्वक निवेदन किया, "हे राजन्! इस सेवक के लिये क्या आज्ञा है? फरमाईये में हाजिर हूँ."

महाराजाने कहा, "सेठजी! क्या आप की पुत्री का नाम सौभाग्यसुंदरी है?"

"जी हाँ." सेठजीने कहा.

बाद में महाराजाने सेठजी से कई प्रकार कि बातें कर के आखिर में महाराजाने बातों बातों में सेठजी से कहा, "आप की पुत्री के साथ विवाह करने की मेरी इच्छा है."

पहले तो सेठजीने आना-कानी की पर महाराजा के विशेष आग्रह को वह न टाल सका और अन्त में महाराजा की इच्छा स्वीकृति कर धूमधामसे शादी की उस सेठजी पर प्रसन्न होकर महाराजाने उसे बहुतसा धन दिया.

महाराजाने अपने पूर्व निश्चय के अनुसार उस की लीला देखने के हेतु, नगरी से कुछ दूरी पर सौभाग्यसुंदरी के लिये एक स्थंभवाले महल में रहने की सब व्यवस्था कर दी. साथ ही उसके चरित्र को देखने के लिये उस महल पर गुप्त पहरा लगा दिया, समय बीतने लगा, अवसर देख महाराजाने एक दिन सौभाग्यसुंदरी से आनंद-विनोद करते करते, पूर्व बात का स्मरण कराते हुए कहा, "हे सौभाग्य-सुंदरी! अब तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करो." यह सुन वह विस्मयसी होकर बोली, "पतिदेव! आप कौनसी प्रतिज्ञा के लिये कह रहे हो?"

महाराजाने कहा, "अपनी शादी के पहले एक रात्रि में जो कि तुमने अपनी सखी से कहा था, 'मैं अपने पति को धोखा देकर मनपसंद-परपुरुष के साथ प्रेम करुंगी.' ये सब बातो का स्मरण होते ही सौभाग्यसुदरी कुछ लज्जित हुई, किन्तु उसने मनमें निश्चय किया, "यह प्रतिज्ञा पूर्ण कर के दिखाऊँगी." उसने परस्पर चलती हुई बात से उपरोक्त बात टाल दी.

समय बीतने लगा, महाराज भी राज्य के अन्यान्य कार्यो में रहते थे, सौभाग्यसुदरी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने की फिकर में थी, और महाराजा भी उसकी कामलीला देखने चाहते थे, इस लिए उसकी ओर पूर्ण सभाल रखते थे.

अेक बार अवंती नगरी मे एक व्यापारी आया, जिस को लोग गगनधूली के नाम से बुलाते थे, वह प्रतिदिन अपने

गया. इस प्रकार वह बाद में रोज आनेजाने लगा. और दोनों में प्रगाढ़ प्रेम हो गया.

राजा विक्रमादित्य भी यहा समय समय पर आतेजाते थे. एकबार उन्होंने अपने साथ का दिनों दिन के प्रेम मे अंतर पाया अर्थात् प्रेम व्यवहार दिनों दिन कम होने लगा. अतः उसकी जाँच करने का महाराजाने निश्चय किया. अंत मे वह सौभाग्यसुंदरी के महल की वख्त बेवख्त एकाएक मुलाकात लेते थे, एक दिन अचानक महाराजा महल मे आ पहुँचे उस समय चारों ओर भोग सामग्री और पान-बीड़ा आदि प्रत्यक्ष पड़े हुए देख कर, महाराजा मनमे सोचने लगे कि यहाँ कोई पुरुष अवश्य ही आताजाता हैं; आखिर में बहुत सावधानी से पता लगाने पर गगनधूली और सौभाग्य-सुंदरी की प्रेमलीला रूप नाटक को संपूर्ण जान लिया.

महाराजा मनमें विचारने लगे, 'अपनी घरकी बात बुद्धिमान मनुष्योंको कहीं प्रकट नहीं करनी चाहिए. कुलटा स्रीयों के लिये कहना ही क्या? एक स्थल पर बताया है कि—

"सदा विचारते रहो क्षण क्षण पलटे रूप,
भारी दोष अनेक हैं वे हैं माया स्वरूप."

इस तरह विचार करते करते कोई एक दिन रातको उस एक स्थभियें महल से कुछ दूरी पर, जंगल मे एक जूना पुराणा टुटा हुआ खंडेर में कुछ प्रकाश दिखाई दिया, तब कुतुहल देखने

महाराजने उस तरफ चल दिया, वहाँ जाकर बीची के आड में खड़े होकर चुपचाप देखने लगे, तो वहाँ कोई आश्चर्यजनक बात दिखाई दी. एक जटाधारी योगीने अपनी जटामें से एक नवजवान कन्या को प्रगट की, और उस कन्या के साथ आनंद-विलास कर योगी सो गया. योगी के सो जाने पर उस कन्याने अपने लंबे लंबे बाल में से एक खुबसुरत मनुष्य को प्रगट किया, और उस मनुष्य के साथ उस कन्याने भी आनंद-विलास कर के मनुष्य को छिपा दिया.

यह सब आश्चर्यकारी वृत्तान्त देख महाराजा विक्रम मन ही मन चकित से हो गये और सोचने लगे, 'नारी चरित्र की लीला तो अपार है, इस का पार कोई नहीं पा सकता है.' इस प्रकार वे विचार करते करते अपने राजमहल में जाकर सो गये.

एक दिन महाराजा अचानक सौभाग्यसुंदरी के महल में ऐसे समय पर पहुँचे, जब कि गगनधूली सौभाग्यसुंदरी के साथ आनंद मना रहा था. महाराजा का आगमन जानकर शीघ्र ही सौभाग्यसुंदरीने उसे छिपा दिया, जब महाराजा महल में पहुँचे तब सौभाग्यसुंदरीने उन्हों का सुंदर स्वागत किया.

इस महल में जाते समय महाराजाने अपने दूतों को संकेत बता कर उस दंडधरवाले योगी को इस महल में बुला लिया और सौभाग्यसुंदरी से आदेश किया कि आज तुम

पांच मनुष्यों के लिये स्वादिष्ट भोजन सामग्री बनाओ और उन्हींके बैठने के लिये पाँच आसन भी लगा दो.

योगी के आने पर उसे भोजन करने के लिए आसन पर बैठने को कहा, जब योगी आसन पर बैठ गये तब महाराजाने कहा, "हे योगिराज! आप योगिनी बिना अकेले नहीं शोभते, अतः अपनी योगिनी को भी प्रकट करें."

योगी-हे राजन्! आप क्यों मेरा अपमान करते हैं, मेरे पास योगिनी का क्या काम? मैं तो स्वतः अकेला-अवधुत हूं.

महाराज-आप अधिक खुशामद न करावे, और शीघ्र ही योगिनी को प्रकट करें.

योगी मनमें समझ गया कि राजा किसी ने किसी तरह से मेरी माया-जाल जान गया है, और राजा का विशेष आग्रह देख कर अन्त में योगिराज को योगिनी प्रगट करनी ही पड़ी. अर्थात् योगीने झोलिका में से एक योगिनी प्रगट कर दिखाई. महाराजाने उस योगिनी को पास में बैठा कर योगिनी से कहा, "हे देवी! आप भी तो कुछ चमत्कार दिखावें; जैसे कि योगिराजने अपने प्रभाव से मुझे प्रगट कर दिखाया है."

योगिनी-मैं कोई चमत्कार नहीं जानती हूं.

महाराजा-वाह! यह कैसे हो सकता है, आप तो

तो कोई न कोई को प्रगट करें.

महाराज के इस प्रकार कहने से वह योगिनी भी मन में समझ गई कि पुरुष प्रगट करने की बात का पता महाराज को लग गया है. यह विचार कर, बिना आनाकानी किये शीघ्र ही उसने एक पुरुष को प्रगट कर दिया.

तीन आसन पूरे हो गये और चोथे आसन पर महाराजा स्वयं बैठ गये, अब एक आसन को खाली दिखा कर महाराजाने सौभाग्यसुंदरी से कहा, "हे प्रिये! क्या तुम भी कोई पुरुष प्रगट कर सकती हो?"

महाराजा एकदण्डया महल में सौभाग्यसुंदरी से कह रहे है.
चित्र नं. १३

सौभाग्यसुंदरी-महाराज! मैं कोई योगिनी थोडी ही

पांच मनुष्यों के लिये स्वादिष्ट भोजन सामग्री बनाओ और उन्हीके बैठने के लिये पाँच आसन भी लगा दो.

योगी के आने पर उसे भोजन करने के लिए आसन पर बैठने को कहा, जब योगी आसन पर बैठ गये तब महाराजाने कहा, "हे योगीराज! आप योगिनी बिना अकेले नहीं शोभते, अतः अपनी योगिनी को भी प्रकट करें."

योगी-हे राजन्! आप क्यों मेरा अपमान करते हैं, मेरे पास योगिनी का क्या काम? मैं तो स्वतः अकेला-अवधुत हूँ.

महाराज-आप अधिक खुशामद न करावे, और शीघ्र ही योगिनी को प्रकट करें.

योगी मनमें समझ गया कि राजा किसी ने किसी तरह से मेरी माया-जाल जान गया है, और राजा का विशेष आग्रह देख कर अन्त में योगिराज को योगिनी प्रगट करनी ही पड़ी. अर्थात् योगीने झोलिका में से एक योगिनी प्रगट कर दिखाई. महाराजाने उस योगिनी को पास में बैठा कर योगिनी से कहा, "हे देवी! आप भी तो कुछ चमत्कार दिखाएँ; जैसे कि योगीराजने अपने प्रभाव से तुम्हें प्रगट कर दिखाया है."

योगिनी-मैं कोई चमत्कार नहीं जानती हूँ.

महाराजा-वाह! यह कैसे हो सकता हैं, आप भी

तो कोई न कोई को प्रगट करें.

महाराज के इस प्रकार कहने से वह योगिनी भी मन में समझ गई कि पुरुष प्रगट करने की बात का पता महाराज को लग गया हैं. यह विचार कर, विना आनाकानी किये शीघ्र ही उसने एक पुरुष को प्रगट कर दिया

तीन आसन पूरे हो गये और चोथे आसन पर महाराजा स्वयं बैठ गये, अब एक आसन को खाली दिखा कर महाराजाने सौभाग्यसुंदरी से कहा, "हे प्रिये! क्या तुम भी कोई पुरुष प्रगट कर सकती हो ?"

महाराजा एकदण्डयो महल में सौभाग्यसुंदरी से कह रहे है
चित्र नं. १३

सौभाग्यसुंदरी–महाराज! मैं कोई योगिनी थोडी ही

हूँ जो इस प्रकार चमत्कार बताऊँ

महाराजा—वाह ! क्या तुम इस आसन को योंही खाली रक्खोगी ? अरे अपने प्रेमी गगनधूली को क्यों नहीं बुलाती ?

राजा के यह शब्द सुनते ही वह स्तब्धसी हो गयी, प्रथम तो वह योगी और योगिनी की मायाजाल को देख आश्चर्य में डूबी हुई थी, मन ही मन सोचने लगी 'क्या करूँ !' आखिर में उसने अधिक समय न लगा कर छिपाया हुआ उस *गगनधूली* को वहाँ बुला लीया, *गगनधूली* अति स्वरूपवान था, उसको पाचवे आसन पर बैठाया, सभीने बड़े प्रेम से भोजन किया और बाद में महाराजाने कहा, "हे योगीराज ! मैने सौभाग्यसुदरी को सखी से भ्वाते करते हुए सुन, उसकी परीक्षा के लिये यह सब रचना की हैं" कहते हुवे महाराजाने आदि से अत तक का सब वृत्तान्त स क्षिप्त रूप से कह सुनाया

महाराजाने सभी को अपराध की क्षमा प्रदान कर जीवित दान देकर पुन योगा से कहा, "जब आप जैसे योगी भी स्रीचरित्र में फंस जाते हैं, तो इस सौभाग्यसु दरी और मुझ जैसे की तो गणना ही कहाँ हैं !"

महाराजाने गगनधूली से पूछा, "हे श्रेष्ठीवर ! आप मुझे बताईये कि आप इस नगरी में कबसे आये हैं ?"

गगनधूली—मुझे इस नगरी में आये छै मास हो गये हैं."

गगनधूली के गले मे मनोहर सुगंधी फूलों की माला देख महाराजाने पूछा, "आप के गले की यह माला कुम्हलाती क्यों नहीं है?" उसके उत्तर मे गगनधूलीने अपना वृत्तान्त कहना शरू किया, "हे राजन्! चंपानगरी मे एक धन नामका शाहुकार रहता था, उसकी धन्या नाम की स्त्री थी, उसे एक पुत्र हुआ, उसका नाम बडे महोत्सव के साथ धनकेली रखा गया, जब वह पुत्र आठ वर्ष का होने पर उसे अनेक प्रकार की विद्याएँ पंडितो से पढाई गई, उसने विनय सहित विद्याएँ ग्रहण की, क्रमश उसने यौवनावस्था मे प्रवेश किया और वह व्यापार में अपने पिता को सहायता करने लगा, इस प्रकार धीरे धीरे उसने सारे व्यापार को अपने हाथ मे ले लिया तब व्यापार से निवृत्ति ले कर धनश्रेष्ठिने धर्म ध्यान में मन लगाया

एक दिन धनश्रेष्ठिने अपना सारा ही धनका विभाजन किया, जिस मे से अमुक हिस्सा धर्म कार्य में खर्चा, अमुक हिस्सा व्यापार कार्य के लिये रोकड हाथ पर रखा और अमूल्य रत्न-सोना-आदि घर की भूमि म खड्डा कर उस मे गाड़ा उन को गुप्त रूपसे छिपा दिया, क्यों कि अवसर पर या आपत्ति मे काम आ सकता है खड्डे में गाडा हुआ धन को विगत-स्थान और संख्या आदि की याद्दि का एक कागज लिखकर उस कागज को सोने के तावीज मे रखकर धनश्रेष्ठि अपने गले में रखने लगा

जब पुत्र धनकेली अपने व्यापार मे दक्ष हो गया, तब

वह विदेशों में व्यापार करने के लिये कई अन्य व्यापारी साथियों के साथ माल लेकर जानेआने लगा, वह धनवेली बड़ा धनवान था और सबसे अधिक उसका ही माल आता-जाता था, अतः उसके वाहनो के अधिक चलने से गगन में धूल बहुत उड़ती थी, उस के साथीयोंने उस धूली का गगन तक उड़ान होने के कारण उसको गगनधूली के नाम से संबोधित करने लगे. हे राजन्! मैं वही गगनधूली हुं."

गगनधूली आगे कहने लगा, "हे राजन्! माता पिता की इच्छा से कौशाम्बापुरी के चन्द्र नाम के श्रेष्ठि की पुत्री से जिसका नाम रुक्मिणी था, उससे अति विशेष समारोह के साथ मेरा विवाह हुआ, और नववधू के साथ मेरा समय आनंद से व्यतीत होने लगा. इस प्रकार कुछ समय मैं अपनी नववधू के स्नेह में ही रत रहा, पर मनोविज्ञान का साधारण सा नियम है कि सब समय एक सा रूप अच्छा नहीं लगता, कुछ नवीनता की चाहना लगी रहती है, इस नियम के अपवादमें से मैं भी न बच सका, कुछ समय पश्चात् मेरा कामलता नामक वेश्या से परिचय हो गया, उससे विमोहित होकर मैं उसके कथित प्रेम में विश्वास करने लगा, और आनंद विलास में रत हो, अपना जीवन व्यतीत करने लगा.

उस वेश्या में मोहित होकर सारा दिन मैं उसी के घर में रहता था, अपने घर से बहुतसा धन मंगा मगा कर व्यय किया करता था, मेरे माता पिता वृद्ध हुए थे, मुझे बहुत बार बुलाया करते थे किन्तु मैं एक बार भी घर नहीं

गया. कुछ दिनों के बाद मेरे वियोग के दुःख से दुःखी हो मेरे माता और पिता दोनों का अवसान हुआ, तो भी मैं-मूढ घर नहीं गया. मेरे पिता के गले का तावीज मेरी पत्नीने ले लीया और उस को अपने हाथ में बांधकर रखने लगी.

उस वेश्या के द्वारा मेरा धन क्रमशः खेंच लिया गया, और तब ही मेरी दरिद्र-अवस्थाका प्रारंभ हुआ, मेरे माता-पिता के अवसान के पश्चात् जन और धन दोनो के अभाव में दुःखी हो, मेरे जैसे अधम पति को छोड़ खाली घरसे मात्र वह सोने का तावीज लेकर रुक्मिणी कौशाम्बीपुरी में अपने पिता के घर चली गयी. क्योंकि—

"दुःखि या हो सुखि या कैसा भी—घर मातापिता प्यारा है;
संकटमें नारी लोगों का निज जननी जनक सहारा है."

जैसे कि-' फलों के गिर जाने पर वृक्ष को पक्षिगण छोड़ चले जाते हैं, सुखे हुए सरोवर को सारस पक्षी भी छोड़ देते हैं, बासी-कुम्हलायें हुए पुष्पों को भौंरें-भंवरें नहीं चाहते त्यज देते हैं, वन के जल जाने पर मृगादि-हरिण वगेरे उस वन को छोड़ देते है, कामी पुरुषों के गरीब हो जाने पर वेश्या उन्हें छोड़ देती हैं. राज्यभ्रष्ट राजासे सेवक लोग चले जाते हैं, इन उपर के उदाहरणों से ये ही समझना चाहिए कि बिना *स्वार्थ के कोई किसीको नहीं चाहता या मानता.* अर्थात् सब की पीछे स्वार्थ लगा ही रहता है, जगत में कोई भी निस्वार्थी नहीं होता हैं.

सर्वस्व अर्पण करनेवाले मुझ कामी को लक्ष्मी के चले जाने पर उस कामलता वेश्याने मुझ को अपने घरसे अपमानीत कर निकाल दिया.

शास्त्र का कहना ठीक ही है—

'मेघों-बादल की छाया, घास की अग्नि, दुष्टों की प्रीति, स्थल मिट्टी पर पड़ा हुआ जल, वेश्या का प्रेम, और स्वार्थी मित्र, ये छः पानी के बुलबुला-बुद्बुद् के समान क्षणिक होते हैं.'

इस प्रकार के विचार करता करता जब मैं घर आया, तब घर की भग्नावस्था देख कर मन ही मन बहुत दु खी हुआ, अपनी स्त्री को लाने मैं जब कौशाम्बीपुर में उस के मायके गया, तब वहां इस दरिद्रावस्था के कारण मुझे किसीने नहीं पहचाना, और श्वसुर के घरमें प्रवेश करने न मिला. तब मैंने भिक्षुका वेष लेकर अपनी स्त्री का चरित्र और व्यवहार को जानने के लिये श्वसुर के घर के पास मे रह कर वह रात्रि व्यतीत करने का विचार किया. आश्चर्य की बात तो यह है कि मुझे अपनी पत्नी के हाथ से भिक्षा ग्रहण करनी पड़ी. किन्तु उसने मुझे नहीं पहचाना.

मेरे सद्भाग्य से श्वसुर के घर की पास में ही एकान्त स्थान भी मिल गया. वहां चोतरे पर जागृत अवस्था में ही पड़ा रहा, ठीक मध्यरात्रि में मेरी स्त्री रुक्मणी लड्डु-मोदक से भरा थाल लेकर दरवाजा पर आई और द्वारपाल से

दरवाजा खोलने को कहा, किन्तु द्वारपालने उस दिन दरवाजा नहीं खोला, तब रुक्मिणी को पुनः अन्दर लौट जाना पड़ा.

दूसरे दिन मैं (गगनधूली) फिरसे भिक्षा लेने गया, भिक्षा देते समय रुक्मिणीने पूछा, 'हे भिक्षुक! तुम कौन हो? और कहा से आये हो?' मैंने कहा, 'कर्मयोग से मैं दरिद्र हो गया हूँ, किन्तु वणिक जाति में मेरा जन्म हुआ है' कम्पित स्वर से यह उत्तर दे मैं स्थिर और स्तब्ध रहा तब फिरसे उसने मुझे कहा, 'यदि तुम मेरा कहना मानो और किसी से यह बात नही कहोगे, ऐसी प्रतिज्ञा करो तो मै तुम को अपने पिता के घर मे नौकर रखवा सकती हूँ, और अच्छे अन्नादि से तेरे को सुखी करूँगी प्रतिज्ञा यह है कि, प्रतिदिन मध्यरात्रि के समय तुम्हे मेरे कहने पर द्वार खोलना पड़ेगा' मैन यह बात स्वीकार लिया. अपने पिता से कह कर रुक्मिणीने द्वारपाल की जगह मुझे दिलवा दी और मै द्वार पर रहने लगा उसी दिन ठीक मध्यरात्रि मे हाथ मे मोदक से भरा हुआ थाल लेकर दरवाजे पर रुक्मिणी आयी और मुझे एक मोदक देकर द्वार खोलने के लिये कहा, मैंने शीघ्र दरवाजा खोल दिया, रुक्मिणी आगे बढी, मैं भी उसका चरित्र देखने के लिये उसके पीछे पीछे चला.

चलते चलते रुक्मिणी सराफा बाजार में आकर रुक गई, मै भी चुपके से वृक्षके आड में एक स्थान पर खडा रह गया, आगे वा कृत्य देखने के लिये आतुर हो रहा था.

इतने में ही संकेत स्थान पर एक नवजवान पुरुष आया, आते ही उसने रुक्मिणी के गाल पर जोर से थप्पड़-तमाचा के मार कर कहा, 'कल रात्रि में तुम क्यों नहीं आई?' तमाचा मार से रुक्मिणी एकाएक नीचे गिर पड़ी, और गिरने से इस के हाथ में बांधा हुआ जो तावीज था, वह भूमि पर गिरा पड़ा.

थप्पड़ के मारने से रुक्मिणी भूमि पर गिर पड़ी चित्र नं १४

फिर सावधान होकर उसने कहा, 'हे प्रिय! इस में मेरा दोष नहीं, रात्रि में मैं तो आ ही रही थी. किन्तु द्वारपालने दरवाजा नहीं खोला इसी कारण मैं नहीं आ सकी. आज मैंने एक नये द्वारपाल को रख लिया है वह अवश्य ही सदा मेरे कहने से द्वार खोल दिया करेगा, और नित्य रात्रि में आ सकूंगी ? बाद में प्रेम विलास करके वे अपने अपने

स्थान को जाने के लिये अलग हुए, बाद मैं भी वहां गया, और वहां जो तावीज पड़ा था उसे उठा लिया. और आकर अपने स्थान पर सो गया घंटा भर समय के बाद रुक्मिणी आयी, मैंने दरवाजा खोला, वह घरमें जा सो गई.

प्रभात में जब उस तावीज को खोला तो उस में बंधे एक कागज में लिखा था, 'धनश्रेष्ठी के घर के बांये कोने में दस हाथ नीचे जमीन में चार करोड़ सोने के सिक्के गड़े पड़े हैं.' उस कागज को पढ़ते ही मेरे आनंद का ठिकाना न रहा. मैंने शीघ्र ही सोनेके उस तावीज को बाजार में बेच कर नये कपड़े आदि खरीद कर भोजन से निवृत्त हो चन्द्र सेठजी से छुट्टी ले चम्पानगरी की ओर प्रस्थान किया."

अपनी प्यारी प्रजाका सुख-दुःख देखना हरेक राज्य अधिकारी का परम कर्तव्य है इसी उद्देश से महाराजा विक्रमादित्य रात्री में नगरचर्या देखने जाते थे, एक समय महाराजा अन्धेर पछेड़ा ओढ़कर घूमते घूमते नगरी की एक शेरी में पहुंचे वहां दो सखियों का वार्तालाप सुन विस्मय प्राप्त किया, उन दोनों में से एक सौभाग्यसुंदरी का रोमांचकारी जीवन और चम्पापुरी निवासी गणधूली धेष्ठिने अपने जीवन का विस्मयकारी प्रसंगों का वर्णन महाराजा के आगे कहना तथा अपना श्वसुरालय कोशाम्बीनगरी से रवाना होकर चम्पापुरी के प्रति रवाना होना आदि वहां तक का जीवन वृत्तान्त इस प्रकरण में पढ़ने में आया अब आगे का रसमय जीवन आगामी प्रकरण में आपको पढ़ने मिलेगा

पाप छिपाया ना छिपे, छीपे तो मोटा भाग;
दाबी दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग.

तेपनवाँ–प्रकरण

गगनधूली का रहस्यमय जीवनवृत्तान्त चालु

"मन मेला तन उजला, बँगुला कपटी अंग;
तासे तो कौवॉ भला, तन मन एक ही रंग."

पाठकगण! आपने गत प्रकरण में महाराजा की सौभाग्यसुंदरी से शादी इत्यादि एक डण्डिया महल में गगनधूली का प्रवेश एवं जंगल के खंडेहरमें योगी की मायाजाल आदि आश्चर्यजनक बातें पढ़ी. गगनधूली द्वारा अपनी जीवन कहानी महाराजा से कहने का आरंभ करना, और अपना गगनधूली नाम कैसे प्रसिद्धि में आया आदि बताना, बाद में अपनी शादी होना, कामलता वेश्या के प्रेम में फँसना और धन, माल आदि से खुव्वार होना, धन नष्ट होने पर वेश्या द्वारा तिरस्कार पाना, दरिद्र-अवस्था में श्वसुर के घर जाना, वहां पत्नी के हाथ से भिक्षा लेना, वहा पर ही द्वारपाल की नौकरी करना, अपनी स्त्रीका दुष्ट चरित्र अवलोकन करना, सोना का तावीज हाथ लगना इत्यादि सब हाल रसमय रीती से आप लोग पढ़ चूके है, अब आगे का वृत्तान्त इस प्रकरण में बताया जा रहा है.

गगनधूली कहने लगा कि,

"अपने घर पहुँचते मैंने जमीन खोदा और इसमें से अतुल धनराशी को प्राप्त किया, बाद में घर वगैरे सुंदर बँधवाया; सवारी के लिये घोड़ा और घरमें अच्छे नौकर–चाकर आदि भी रखें. एक दिन मैं सुंदर वस्त्रालंकारादि से

सज्जित होकर कौशाम्बीनगरी मे अपने ससुराल गया, वहां पर पहले की बजाय मेरा अच्छा आदर-सन्मान किया गया, किन्तु मैंने अपनी स्त्री की परीक्षा के लिये नहीं बुलाया और न उस की ओर देखा मेरा यह बरताव देख वह-रुक्मिणी मन ही मन दुःखी हुई.

भोजनादि कर जब मैं रात्रि को सो रहा था, तब मेरी स्त्री-रुक्मिणी आई, और धीरे धीरे मेरे पाँव को दवाने लगी, थोड़ी देर के बाद मैंने एकाएक झपक कर आंखे खोल उसके प्रति कहा, 'हे प्रिये! तुमने ठीक नहीं किया, जो मुझे नींद मे से जगा दिया, मैं अभी एक सुंदर स्वप्न को देख रहा था.'

रुक्मिणी बोली, 'स्वामिनाथ! आप ऐसा कौनसा सुंदर स्वप्न देख रहे थे कि, जिसके विघ्न से आप इतने व्यग्र और दुःखी हो गये?'

उत्तर मे मैंने कहा, "यदि तुम सुनना ही चाहती हो तो सुनो! मुझे घरकी द्वाररक्षा के लिये एक स्त्रीने अभी नौकर रक्खा था, उस स्त्रीने मेरे खाने पीने का अच्छा इन्तजाम किया, और जब रात्रि मे वह बाहर जाती तब मुझे खाने के लिए एक मोदक दे जाती, बाद मे वह जब सराफा बाजार मे गई, मैं भी उसके पीछे पीछे गया.

वहां एक पुरुष आया. उसने उस स्त्री से कहा, 'कल

रात को क्यों नहीं आई?' और यह कहते कहते ही उसने उसको एक जोर का तमाचा मारा. तमाचे की मारसे वह स्त्री गिर पडी, उस स्त्रीने उठ कर कहा, 'क्षमा करें! द्वारपाल ने दरवाजा नहीं खोला. इस लिए नहीं आ सकी थी.'

जहाँ वह स्त्री गिरी वहाँ उसका एक तावीज गिर पड़ा था. और जब मैं उस तावीज को लेने के लिए झुका ठीक उसी समय तुमने मुझे जगा दिया, और मेरी आँखें खुल गई.' इस पर भी जब वह स्तब्ध रही तो मैंने गुस्से मे आँख लाल कर कहा, 'हे रुक्मिणी, मुझे स्वप्नावस्था से जगाकर तुमने ठीक नहीं किया-यह खानदानी लड़की के लक्षण नहीं हैं.'

अपनी पाप कहानी सुन कर रुक्मिणी का हृदय फट गया और वह उसी क्षण मर गई. यह देख मैं तो प्रथम घबराह गया. और सोचने लगा, 'क्या करूं?' आखिर मे मैंने संसार को जानने के लिए उस रुक्मिणी के उस मुर्दे को उठा के सराफा बाजार में जहाँ उस का जार से मिलन होता था, वहाँ ले जा कर रख दिया, और आड़ मे छिपकर एक जगह चुपचाप खड़ा रह गया.

थोड़ी देर बाद वही उसका-लम्पट जार पुरुष वहाँ आया; और नीचे पड़ी हुई रुक्मिणी को देख उसने समझा, 'शायद रुक्मिणी रुठ कर सो गई होगी' इस कारण गुस्से में आ उसने कहा, 'हे पापीनी! आज बहुत देर से क्यों आई?'

उसका उत्तर नहीं देने से दो चार लातें मारी, तब भी वह नहीं बोली तो उसने टटोल कर देखा. सावधानी से देखने पर उसने विचार किया कि, मर्मस्थल पर मेरी चोट लगने से इस की मृत्यु हुई है, आज मुझे स्त्रीहत्या लगी, उसका पश्चाताप करने लगा और घबराने लगा, पर घबराने से कोई काम न चलता देख बाद मे उसने उसको उठाया और एक खड्ढा में फेंक कर ऊपर धुल डाल–गाड़ दिया. इतना कर वह जार अपने स्थान पर चला गया.

हे राजन्! मैं अपनी स्त्री के इस हाल को देख कर बहुत घबराया! मेरा सारा शरीर कांपने लगा. नारी चरित्र पर आश्चर्यपूर्वक दुःखानुभव करता हुआ वहाँ से धीरे धीरे मैं अपने श्वसुर घर आकर चुपचाप सो गया.

जब सुबह हुई तब उसके माता पिता अपनी पुत्री रुक्मिणी को नहीं देख कर दुःखी हुए. मैंने उनको रातका सारा वृत्तान्त सुना दिया जो कि प्रथम से लेकर गत रात्रि में घटित हुआ था, वह सब सुनाकर बाद में श्वसुर की अनुमति ले वहाँ से जब मैं चलने को तैयार हुआ तब मेरे श्वसुर की दूसरी कन्या सुरुपा हाथ मे पुष्पमाला लेकर आई, और कहने लगी 'अब आप मुझे अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार कीजिये.' मैंने कहा, 'शायद तुम भी अपनी बड़ी बहन के समान ही निकलो तो? मुझे ऐसी पत्नी से कोई प्रयोजन नहीं है?' उस कन्याने विनयपूर्वक कहा, 'हे जीजाजी!

अपने पूज्य माता पिता को साक्षी रख कर मैं प्रतिज्ञापूर्वक आप के गले में यह वरमाला डालती हूँ. यह माला कभी भी शुष्क हो जाये तो आप समझ लेना कि, मेरे शील मे कुछ मलिनता आई है. मेरे शील के प्रभाव से यह माला सदा ताजी ही रहेगी.'

इस प्रकार कि जब उसने प्रतिज्ञा कि तो मैंने उस से *विधिपूर्वक विवाह कर उस को अपने घर ले आया.* अब मेरे विवाह के १२ वर्ष हो गये किन्तु हे राजन् ! अभी तक मेरी यह माला कुमलाई नहीं है, और मेरे गले में ही पूर्ववत् शोभायमान है."

यह बात सुन कर महाराजा विक्रमादित्य बहुत आश्चर्य में पड़ गये और कहने लगे, "स्त्रियों के चरित्र को कभी कोई नहीं जान सका-और न जान सकेगा, शास्त्र मे भी कहा है कि—

'घोड़ो की चाल, वैशाख मासकी मेघ गर्जना, स्त्रियों के चरित्र, भावि कर्म रेखा, वर्षा नहीं होना अथवा अति वृष्टि होना इस को देवताओं भी नहीं जानते फिर मनुष्य की तो गणना ही क्या ? अपार समुद्र को पार किया जा सकता है, किन्तु स्वभाव से हि महा कुटिल स्वभाववाली स्त्रीयों का पता पाना अत्यन्त कठिन है." ×

× अश्वप्लुतं माधवगर्जितं च स्त्रीणां चरित्रं भवितव्यता च,
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च देवा न जानन्ति कुतो मनुष्या
॥ प्र. १०/४३९ ॥

इस तरह मनमें सोच कर राजाने कहा, "हे गगनधूली! तुम बुरा न मानो तो तेरी स्त्री की मैं परीक्षा करवाऊँ ?" गगनधूलीने कहा, "हे राजन्! स्वेच्छा से आप मेरी पत्नी की सच्चाई की परीक्षा किसी भी प्रकार से कर सकते हैं." तब महाराजा विक्रमादित्यने अपने मूलदेव शशी आदि नामवाले चतुर सेवकों को बुलाकर गगनधूली कि स्त्री के शील महात्म्य की सारी कथा सुनाई.

इन बातों को सुन कर उस सेवकों में से एक मूलदेव नामक सेवकने राजासे कहा, "हे राजन्! आप आज्ञा दें तो, में गगनधूली की पत्नी की परीक्षा कर सकता हूँ, और मिनटों में मैं उस स्त्री को शील से चलित कर दूँगा."

महाराजाने कहा, "अच्छी बात है–मूलदेव तुम अपनी इच्छानुसार खर्चे के लिए द्रव्य ले जाओ."

अब मूलदेव महाराजा विक्रम से गगनधूली का पता लेकर चला, चम्पापुरी मे पहूँच कर उसने गगनधूली के घर का पता लगा दिया. गगनधूली के मकान के पास मे ही एक वृद्धा का घर था. उसको थोडा सा द्रव्य देकर वृद्धा के घर में वह रहने लगा, उस वृद्धा को कुछ और द्रव्य का लोभ देकर मूलदेवने कहा, "गगनधूली की स्त्री सुरुपा को मेरे साथ मिलन के लिए तुम आकर्षित कर सको तो, मैं तुम्हे और बहुतसा द्रव्य दूँगा ?"

वह वृद्धा लोभ में आकर गगनधूली के घर गई, और

आकर बोली, "मेरे घर एक देवकुमार के समान सुन्दर और रईस आदमी आया है, वह तेरी सुन्दरता पर मोहित हैं. हे सुन्दरी! तेरा पति बहुत दिनों से परदेश मे है, तुम अकेली रहा करती हो, चलो मन बहलाने के लिए मेरे घर मे विराजमान सुन्दर पुरुष से जरा बाते तो करो! या तुम कहो तो उसे यहाँ ले आउं–वह पुरुष बहुत रूपवान व धनवान है मिलो वो ठीक रहे?"

वृद्धा कि बाते सुनकर सुरुपाने कहा, "मैंने कभी पर-पुरुष का नाम तक नहीं सुना वह भले ही कितना ही सुन्दर क्यों न हों, मुझे उससे मिलने की क्या आवश्यकता?"

द्रव्य के लोभ मे फस कर वह कुटिल वृद्धा फिर भी बार बार सुरुपा के पास में आकर मूलदेव के समाचार और पत्र वगैरे लाकर दिया करती है और भुलाने वाली बात बार बार किया करती है, तब सुरुपाने सोचा, "उस पापी और कामी पुरुष को यहाँ बुलाकर क्यों न मजा चखाया जाय? अर्थात् जिससे वह किसी को शीलभ्रष्ट करने की बात ही जीवनभर कभी न करे?" ऐसा मन मं निश्चय कर सुरुपाने उस कुट्टीनी वृद्धा को चार दिनो का वायदा कर के कहा, "उस सुन्दर रईस पुरुष को चार दिन बाद लाना" वह वृद्धा अपने घर जा मूलदेव को सुरुपा के समाचार कह सुनाय.

सुरुपाने अपने घर में गुप्त रूपसे एक गहरा खड्डा खुदवाया, और उस पर जीर्ण रस्सीवाली चारपाई–खटिया

रखवाई, उस पर बिछौना डाल और शैय्या को सुन्दर-सुशोभित बनाई. बहार से सुंदर दिखाई देनेवाली, उस शैय्या पर बैठनेवाला व्यक्ति शीघ्र ही खड्डे में जा गिरे इस तरह सब व्यवस्था बनाई गई.

वह कुटिल वृद्धा सुंदर पान-बिड़ा लेकर सुरुपा के घर आई, पान-बिड़ा को लेकर सुरुपाने वृद्धा से कहा, "तुम कल उस सुंदर पुरुष को अवश्य लाना, मैं उन का पूर्ण आदर-सन्मान करूँगी."

प्रभात होते ही उस वृद्धा के साथ मूलदेव सुंदर वस्त्रालंकार से सज्जित होकर आया, वृद्धा के साथ आते मूलदेव को देखकर मधुर वचनों से आदर सन्मान कर उस को प्रसन्न कर दिया वह कुटिल वृद्धा मूलदेव को पहूँचा कर अपने घर लौट गई. क्यों कि उसका काम केवल वहां पहूँचाने का और मिलानेका था.

गगनधूली की प्रिया सुरुपाने उस को आनंद से बैठाया और प्रेम से भोजनादि से संतुष्ट किया, बाद उस खड्डेवाली सुंदर शैय्या पर, मूलदेव बैठने गया, ज्योंही मूलदेव उस शैय्या पर बैठा कि जीर्ण रस्सी टुट गई और वह खड्डे में धड़ाम से गिर पड़ा, अब वह खडडेसे बहुत प्रयत्न करने पर भी उपर नहीं आ सका.

उपर से सुरुपा बोली, "अरे! यह क्या हुआ?" बाद में सुरुपा उस को खड्डे में ही रोजाना खानेके लिये दिया

करती थी, और कहती थी, "देखा, अब कभी ऐसा मत करना, जैसे कि तुमने मेरा शील भ्रष्ट करने के लिये किया. क्यों कि—

"अपनी ध्वजा पताका जिसने—स्वर्ग लोक तक फहरावा;
उस रावण की बूरी भावना ने ही उस को नष्ट किया."

अपने पराक्रम से संपूर्ण संसार को जिसने वश में किया था, और जिस रावण का डर स्वर्गलोक में देवताओं को भी बना रहता था; उसी रावण ने जब कि पर स्त्री रमण की मनमें इच्छा होने पर, सीता के प्रसंग को लेकर अपने कुल को नष्ट कर दिया और खुद भी नरक में गया." ×

कुछ दिनों के बाद में उस वृद्धाने आकर पूछा, "हे सुरुपा! वह मूलदेव कहां है और कैसा है?" सुरुपाने उत्तर दिया, "वह मेरे दिये हुए अन्न, जल आदि से संतुष्ट होकर सदा मेरे घर में ही रहता है, और बालक की तरह आनंद विनोद कर समय बीताता है?"

इधर अवंतीनगरी में महाराजा विक्रमादित्य सोचते हैं, "बहुत समय होने पर भी मूलदेव का चंपापुरी से कुछ समाचार नहीं पा रहा हूं, क्या बात है?" यह जानने के लिए मूलदेव के भाई शशीभृत को महाराजाने राजसभा में बुला-

× विक्रमाक्रान्तविश्वोऽपि परस्त्रीषु रिरंसया ।
कृत्वा कुलक्षयं प्राप नरकं दशकन्धरः ॥ म. १०/४४९ ॥

कर अपने भाई के बारे में उस को पूछा, किन्तु कुछ समाचार नहीं मिले. जब महाराजाने मूलदेव की खोज करने जाने को कहा, तब महाराजा के समीप शशीभूतने प्रतिज्ञा की, "मैं शीघ्र गगनधूली की उस स्त्री को किसी भी तरह से शील से चलित करूँगा. और मेरे भाई को खोज लाऊँगा." इस प्रकार उसने भी फिरते फिरते चम्पापुरी में उसी वृद्धा के घर जाकर मुकाम किया.

उस वृद्धा के द्वारा मूलदेव का सब वृत्तान्त जान लिया. दूसरे दिन वह वृद्धा उसी प्रकार शशीभृत कि दूती बन कर आई और सुरुपा के आगे शशीभूत के गुण गाये. वह भी सुरुपा द्वारा उसी प्रकार छलसे उसी खड्डे में गिरा दिया गया. जब तीसरे दिन वह वृद्धा शशीभृत की खबर निकालने आई तब सुरुपाने उसे आदर सहित घर में लाकर, और प्रेम से दो चार मीठी बातें कर सदाकी जी खानेवाली इस पापकारी दुष्टा को भी उसी खड्डे में गिरा दिया. नीतिशास्त्र का कहना सच हैं कि—

"तीन वर्ष या तीन महीने तीन पक्ष या तीन दिवसमें;
अत्युत्कट धर्माधर्मो का फल पाता नर इसी लोक में."

'बहुत बडे-उग्रह पाप या पुण्य का फल मनुष्यों को यहां ही तीन वर्ष या तीन महीने या तीन पक्ष अथवा तो तीन दिन में ही प्राप्त हो जाता है.

सुरुपाने उन तीनों को थोड़ा थोड़ा अन्न जल देकर किसी प्रकार उस खड्डे में ही जीवित रख्खा और रोज कहती थी, "यह तुम्हारे पापों का तुम फल भोग रहे हो."
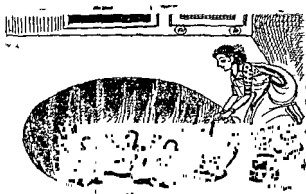
तीनों खड्डे में रो रोकर समय बिताते हैं चित्र नं. १५

इधर महाराजा विक्रमादित्य मूलदेव और शशीभृत की बहुत उत्सुकता से राह देख रहे हैं. दोनों की ओर से आज तक कोई समाचार ही नहीं आये, उसका कोई पता नहीं चलता, क्या करें ? एक दिन महाराजा गगनधूली से पूछा, "हे वणिक ! देखो मूलदेव और शशीभृत दोनों ही अभी तक नहीं आये हैं, और तुम्हारी यह माला भी नहीं सूखी है, यह बहुत आश्चर्य है, इस का कुछ कारण बताओ ?"

गगनधूलीने कहा, "हे राजन्! मेरा विश्वास है कि

आप के दोनो दूत वहां छले गये है, या हार गये हैं ! अथवा आपसे प्राप्त धन को लेकर कहीं अन्यत्र दूर देश में मोज मानने चले गये हैं. कुछ दिन बाद जब गगनधूलीने अपने देश जाने की बात कहीं, तब राजाने उससे कहा, "हे गगन-धूली ! देखो तुम्हारे वहां मैं भी चलूंगा, क्यों कि मेरे दूत भी नहीं लौटे हैं, और तुम्हारी स्त्री की परीक्षा भी हम करना चाहते हैं ?"

गगनधूलीने कहा, "हे राजन् ! आप जरूर पधारना, मेरी शक्ति के अनुसार मैं आपका आदरसत्कार करूँगा."

राजाजी सहित गगनधूली का चंपापुरी की ओर प्रस्थान

गगनधूली अपना व्यापार संबंधी लेना-देना आदि सब कार्य से निवृत होकर-धन का संचय कर अवंतीपति महाराजा विक्रमादित्य भी अपने दलबल सहित गगनधूली के साथ चंपा-पुरी के और प्रस्थान किया. मार्ग में गगनधूलीं महाराजा के आगे तरह तरह की बातें कर आनंद-विनोदपूर्वक समय वितावा था, क्रमशः प्रयाण करते करते महाराजा सहित गगन-धूली चंपापुरी मे आया. महाराजा को अपनी नगरी के सुंदर भवन मे ठहराने कि गगनधूली ने सब व्यवस्था किया, और खुद अपने घर को गया, प्रेमसे अपनी पियासे मिलने पर प्रश्न किया, "तुम्हारा शील मलिन करने के लिये मूलदेव और शशीभृत नाम के दो आदमी यहां कभी आये थे, क्या ?"

तब उत्तर मे सुरुपाने प्रारंभ से अंत तक के सारे ही समाचार अपने पतिदेव को सुना दिये. अपनी प्रिया से सब समाचार सुनकर 'गगनधूलीने कहा, "हे प्रिये! उन दोनो की खबर लेने के लिये महाराजा विक्रम खुद यहाँ आये हैं. तुम कहा तो उन्हे भोजन के लिये निमंत्रण दे यहां बुलाऊँ?"

सुरुपाने पतिदेव से कहा, 'घर मे सारा ही सामान विद्यमान है. मैं भोजन सामग्री तैयार करती हुँ, अतिथि आदि को भोजन कराना हमारा परम धर्म है, हमें अतिथि सत्कार समुचित प्रकार से करना ही चाहिए.' इस प्रकार पत्नी के साथ विचार विमर्श कर गगनधूलीने महाराजा विक्रम के पास आकर कहा, "हे राजन्! आपके दोनों बुद्धिमान सेवक मूलदेव और शशीभृत यहा आये तो अवश्य. लेकिन आने के बाद मेरी पत्नीने उन दोनों को तिरस्कार कर निकाल दिये. यह हकीकत कहने के बाद श्रीमान महाराजा से अपने यहाँ सपरिवार भोजन के लिए निमंत्रण किया, महाराजाने भी निमंत्रण का सहर्ष स्वीकार किया.

महाराज, मूलदेव और शशीभृत का मिलन

निमंत्रण दे कर गगनधूली शीघ्र ही अपने घर पहुँच गया. इधर पहले ही सुरुपाने मूलदेव ओर शशीभृत के पास जाकर कहा "देखो, मुझे देवताओंने यह वरदान दिया है कि, जो मेरा कहना नहीं मानेगा उसका उसी समय मस्तक के दो टुकड़े हो जायगें. यदि तुम मेरी बात को अक्षरश

मानने कि प्रतिज्ञा करते हो तो, मैं तुम लोगों को इस गर्ता-खड्डेमे से निकाल सकती हूँ"

उन तीनोने कहा, "हे सति! तुम जो कहोगी उसको हम अवश्य मानेंगे" तब सुरूपाने उन तीनो को खड्डे से निकाल कर स्वच्छ जल से स्नानादि कराया और उन को अपने घर के भोयरा-तलघर मे रक्खा और नीचे के कमरे म रसोई बनाने लगी

महाराजा विक्रम ठीक समय पर गगनधूली के वहा सपरिवार भोजन के लिये आ पहुँचे किन्तु राजाने भोजन सामग्री कहीं भी बनते न देख कर गगनधूली से कहा, "हे वणिक! भोजन का समय तो हो गया है, किन्तु कहीं रसोई बनती हुई नही दीख रही है और कुछ तैयारी भी नहीं मालुम होती है हम सभी भूख से बहुत पीढित है, यदि शीघ्र खाने का प्रबन्ध नही हुआ तो हम चले जायगे"

महाराजा से इस प्रकार की बात सुन कर मुसकराते हुए गगनधूली न सबको आसन पर बिठाया और नीचे से शीघ्र सारी सामग्री को मगवा कर जिमाना शुरू किया. स्वादु व मधुर सु दर मिष्टान आदि अपनी अपनी रुचि के अनुसार भोजन करक महाराजा विक्रम तथा उनके परिवार सभी आनदित हुए

भोजन के बाद महाराजा विक्रमने कहा, "हे गगन-धूली! तुमने इतने शीघ्र और इतना सुन्दर इन्तजाम कैसे

तब उत्तर मे सुरुपाने प्रारंभ से अंत तक के सारे ही समाचार अपने पतिदेव को सुना दिये. अपनी प्रिया से सब समाचार सुनकर ' गगनधूलीने कहा, "हे प्रिये ! उन दोनो की खबर लेने के लिये महाराजा विक्रम खुद यहां आये हैं. तुम कहो तो उन्हे भोजन के लिये निमंत्रण दे यहा बुलाऊँ ?"

सुरुपाने पतिदेव से कहा, 'घर मे सारा ही सामान विद्यमान है मैं भोजन सामग्री तैयार करती हुँ, अतिथि आदि को भोजन कराना हमारा परम धर्म है, हमें अतिथि सत्कार समुचित प्रकार से करना ही चाहिए.' इस प्रकार पत्नी के साथ विचार विमर्श कर गगनधूलीने महाराजा विक्रम के पास आकर कहा, "हे राजन् ! आपके दोनों बुद्धिमान सेवक मूलदेव और शशीभृत यहा आये तो अवश्य लेकिन आने के बाद मेरी पत्नीने उन दोनों को तिरस्कार कर निकाल दिये. यह हकीकत कहने के बाद श्रीमान महाराजा से अपने यहां सपरिवार भोजन के लिए निमंत्रण किया, महाराजाने भी निमंत्रण का सहर्ष स्वीकार किया.

महाराज, मूलदेव और शशीभृत का मिलन

निमंत्रण दे कर गगनधूली शीघ्र ही अपने घर पहुँच गया. इधर पहले ही सुरुपाने मूलदेव और शशीभृत के पास जाकर कहा "देखो, मुझे देवताओंने यह वरदान दिया है कि, जो मेरा कहना नहीं मानेगा उसका उसी समय मस्तक के दो टुकड़े हो जायगें. यदि तुम मेरी बात को अक्षरश

मानने कि प्रतिज्ञा करते हो तो, मैं तुम लोगों के इस गर्त–खड्डेमें से निकाल सकती हूँ."

उन तीनोंने कहा, "हे सति! तुम जो कहोगी उसको हम अवश्य मानेंगे." तब सुरुपाने उन तीनों को खड्डे से निकाल कर स्वच्छ जल से स्नानादि कराया. और उन को अपने घर के भोयरा–तलघर में रक्खा. और नीचे के कमरे मे रसोई बनाने लगी

महाराजा विक्रम ठीक समय पर गगनधूली के वहां सपरिवार भोजन के लिये आ पहूँचे किन्तु राजाने भोजन सामग्री कहीं भी बनते न देख कर गगनधूली से कहा, "हे वणिक! भोजन का समय तो हो गया है, किन्तु कहीं रसोई बनती हुई नहीं दीख रही है. और कुछ तैयारी भी नहीं मालुम होती है, हम सभी भूख से बहुत पीडित है, यदि शीघ्र खाने का प्रबन्ध नहीं हुआ तो हम चले जायगें."

महाराजा से इस प्रकार की बात सुन कर मुसकराते हुए गगनधूली ने सबको आसन पर बिठाया और नीचे से शीघ्र सारी सामग्री को मंगवा कर जिमाना शुरू किया. स्वादु व मधुर सुन्दर मिष्टान्न आदि अपनी अपनी रुचि के अनुसार भोजन करके महाराजा विक्रम तथा उनके परिवार सभी आनंदित हुए

भोजन के बाद महाराजा विक्रमने कहा, "हे गगन-धूली! तुमने इतने शीघ्र और इतना सुन्दर इन्तजाम कैसे

कर लिया ? और हमारे लिए भाँति भाँति के इतने स्वादिष्ट मिष्ठान्न कैसे तैयार कर लिए ?"

गगनधूलीने कहा, "हे राजन् ! मेरी पत्नी के पास दो यक्ष और एक यक्षिणी है, ये तीनों मिनटों में हजारो लोगों के लिए भोजन तैयार कर देते हैं. उसी का यह सब परिणाम है."

महाराजाने कहा, "हे गगनधूली ! आप उन यक्ष यक्षिणी को मुझे दे दो, मेरे रसोईघर का कार्य ठीक से चलेगा. इस आग्रह को मानकर गगनधूली की प्रियाने कहा, "हे राजन् ! आप अपने देशमे पहुँचने तक भोजनादि की सुविधा प्राप्त कर, पुनः यदि यक्ष यक्षिणी को वापिस यहां पहुँचा सके तो, मैं आप को उन्हे दे सकती हुँ, अन्यथा नहीं."

इस बातका महाराजाने स्वीकार करने पर उसने एक पेटी में खाने-पीने का सामान रख उस को चन्दनादि से सुवासित कर मूलदेव, शशीभृत और उस वृद्धा को उस में बैठा कर पेटी को सुरुपाने महाराजा को सोप दिया, उस पेटी को लेकर बड़े उत्साह से महाराजा विक्रम दल-बल के साथ वहांसे अपने देशकी ओर चले.

दूसरे दिन रास्ते में जब भोजन का समय हुआ, तब महाराजाने उस पेटी की पुष्पादिसे पूजा कर उस पेटी से भोजन सामग्री मांगा, लेकिन उस से तो कुछ नहीं प्राप्त हुआ.

बार बार महाराजा द्वारा भोजन सामग्री मांगने पर अन्दर से आवाज आया, "क्या भोजन तेरा बाप देगा ! मैं कहा से लाऊँ ?"

पेटी के अंदर से मूलदेव और शशीभृतने कहा, "हे राजन् ! सुरुपाने हम दोनो को और एक वृद्धा को इस पेटी में बन्द कर रक्खा हैं."

महाराजा विक्रमने पेटी में रहे हुए, उन परिचित व्यक्ति के शब्दों को सुन कर उस पेटी को खुलवाया, तो अन्दर से अपने प्यारे दोनों सेवक मूलदेव व शशीभृत और एक वृद्धा को अति कृश शरीर व दुर्बल दु:खी रूपमें पाया.

मन में लज्जित होते हुए मूलदेवादि ने बहुत दीन स्वरसे आदि से अन्त तक का अर्थात् खड्डे में गिरने से लेकर आज तक का सारा वृत्तान्त कहा और बोले, "हे राजन् ! क्या कहें, हमारी की हुई प्रपंच जाल में हम-ही फंस पडे." यह सुन महाराजा ताज्जुब हो गये.

महाराजा विक्रम सुरुपा के चरित्र पर आश्चर्य करते हुए अत्यन्त प्रसन्न हुए. गगनधूली को वहा बुलाकर कहा, "हे वणिक ! तुम धन्य हो, और बहुत भाग्यवान हो, क्योंकि तेरी पत्नी जैसी पतिव्रता स्त्री हमने अभीतक कहीं नही देखी, तुमने अपनी पत्नी के लिये, पूर्व मेरे पास जो कुछ भी कहा था, वह सब सर्वथा सत्य है; और सचमुच वह बडी ही पवित्र है.

हे गगनधूली! ऐसी सती स्त्री बड़े भाग्य से ही मिलती है, जो बड़ी सुन्दर एवं शीलवती हो, सदा अच्छे आचार विचार रख सकती हो, और वही सतियों के गुणों से सदा युक्त हो, इत्यादि."

इस तरह प्रशंसा करके गगनधूली के साथ उसके घर आकर पुनः सुरुपाके समक्ष उसकी फिर प्रशंसा किया और क्षमा याचना की और कहा, "हे स्त्री! तुमे धन्य हो, तुम *सतियों मे श्रेष्ठ हो, तुम्हारे मे हमको एक भी दोष देखने में* नही आया, निष्कलंक सदाचार में सदारत तुम इस संसार के लिये आदर्शरूप हो, और तुम्हारा निर्मल चरित्र जगत् प्राणी के लिये अनुकरणीय है."

गगनधूली के घर महाराजा का पुन. आग. चित्र नं. १६

इस प्रकार गगधूलीकी व सुरुपा की फिर से बार बार

हार्दिक प्रशंसा कर दोनों से प्रेमपूर्वक मिलकर महाराजा विक्रमने अपनी अवंतीपुरी की ओर प्रस्थान किया. अपने स्थानको आकर राज्य कारोबार संभाला.

प्रिय पाठकगण ! आपने इस प्रकरणमें गगनधूलीने अपनी स्त्री से आशीष प्राप्त करना तथा उसमें के पत्नाधारसे अखूट धनमाल प्राप्त करना, पश्चात् अपने ससुराल में जाना, वहाँ अपनी स्त्री से उदासीन रहना, स्त्री को पीर दवाने को आना और कल्पित स्वप्न की बात स्त्रीसे गगनधूली द्वारा कहना, उसे सुनकर उसकी स्त्रीका एकाएक हृदय फट कर देहान्त हो जाना पश्चात् गगनधूली को घर जाते समय पत्नी की छोटी बहन-साली-सुरूपाने आकर, अपने को अपनाने की अत्यन्त आग्रह सहित प्रार्थना करके कहा, "मेरी पहनाई हुई यह वरमाला यदि कभी भी कुमला शुष्क हो जाय तो, समजना कि मेरा शील कुछ मलिन हुआ है" ऐसा आग्रह करने पर गगनधूलीने सुरुपा का स्वीकार करना, उस विकसित पुष्पमाला को गगनधूली के कंठ में देख विक्रम महाराजा का पूछना गगनधूली का अपनी स्त्री का शील महिमा बताना, उस बात का महाराजा द्वारा अस्वीकार करना, और परीक्षार्थ अपने सेवक मूलदेवादि को भेजना, उसमें भी सफलता न मिलने पर, स्वयं विक्रम का गगनधूली के साथ उसके घर पर पहुँचना, वहां उसका यथाशक्ति शील गुण देख, उसकी सीमातीत प्रशंसा करना और वापिस महाराज का स्वदेश लौटकर राजकार्य संभालना इत्यादि विवरण पढा अब अगले प्रकरण में स्वामीभक्त अघटकुमारका अद्भुत रोमांचकारी रसमय वृत्तांत पढने मिलेगा.

" संत वचन बरसे सुधा, श्रोता कुंभ-समान
ढका गोद का ढकना, पडे न घटमें ज्ञान. "

चोपनवाँ-प्रकरण

स्वामीभक्त अघटकुमार

" भाग्यवान नृपको मिले, सेवक स्वामीभक्त;
रूपचन्द्र पर इसी लिये, विक्रम हुए अनुरक्त."

महाराजा विक्रमादित्य अपने पुण्य प्रभाव से बहुत अच्छी तरह राज्य कारभार चला रहे हैं, महाराजा की सेवामें एक पराक्रमी अघटकुमार नामका सैनिक रहता था, जिसने अपनी शक्ति से अग्निवैताल जैसे असुर को भी अपने वशमें किया था, अग्निवैताल को वश करने के कारन राज्य के अधिकारीयों में और सारी नगरी में उस की ख्याती बढी हुई थी; प्रत्येक स्थान पर प्रजादि में उसके पराक्रम की ही बातें हुआ करती थी.

उस का अघटकुमार नाम कैसे हुआ वह रसमय वृत्तान्त यहां पर निर्देशित किया जाता है.

वीरपुर नगरमें राजा भीम न्यायनीति से राज्य का पालन करता था, उसको पद्मा नाम की महारानी थी, उनसे जन्मा हुआ रूपगुणादि से युक्त एक रूपचन्द्र नाम का पराक्रमी पुत्र था. राजा भीम से सम्मानित चन्द्रसेन नामका एक शूरवीर कोटवाल था, जो कि परम राजभक्त था. उसी ही नगर में गंगादास नामका एक राजपुरोहित भी रहता था, उस को

मृगावती नाम की स्त्री थी.

एक दिन भीम राजा की आज्ञानुसार चन्द्रसेन किसानो के खेतों मे राज्य की हाँसीलानुसार का मालका बँटवारा करने गया था, उस समय खेतों के समीप में एक वृक्ष के नीचे बहुत से किसानों की भीड जमी हुई थी, उन्हो के बीच में एक ब्राह्मण बैठा था, वह सभी की हस्तरेखा देख देखकर भूत व भविष्य के फलको बता रहा था, उस भीड़ में चन्द्रसेन जा पहूँचा, और मोका पाकर उसने भी अपना हाथ उस भविष्यवेत्ता को बताया और फिर उससे प्रश्न किया, "मेरे भाई वगेरेह कुटुम्बी जन कितने हैं? सो बताईये ?"

ज्योतिषी चन्द्रसेन की हस्तरेखा देख रहे है चित्र न १७
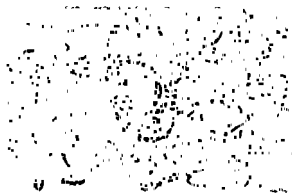
ज्योतिषीने प्रश्नलग्न पर विचार कर और हस्तरेखा को देख कर कहा, "हे महाशय! आप तीन भाई, एक बहिन और पांच सुंदर स्त्रीयों के स्वामी है." उस ब्राह्मण के सत्यतापूर्ण वचन सुन कर चन्द्रसेन बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उस ब्राह्मण से कहा, "हे विप्रदेव! इस खेतसे आप अपनी इच्छानुसार मुंग ले लीजिये." ब्राह्मणने अपने से उठाया जा सके उतने मुंग बांधा पश्चात् उसे उठाकर वह वहां से रवाना हुआ, रास्ते में ही संध्या हो गयी, तब वह ब्राह्मण वीरपुर नगर के निकटस्थ किसी देवमंदिर मे रात्रि बिताने के लिये रह गया

गंगादास पुरोहित की पत्नी मृगावती प्रथम से ही चन्द्रसेन कोटवाल से कामासक्त थी, इस लिये पूर्व संकेतानुसार मृगावती रात्रि के समय मोदक-लड्डु का थाल भर कर, उसी देवमंदिर मे आई, और ये सानेवाला चन्द्रसेन ही है, ऐसा समझ कर सोया हुआ उस जोषी ब्राह्मण को प्रेम से जगाया, और अच्छी तरह मोदक खिलाये, दिनभर का भूखा ब्राह्मण मौन धारण कर शान्ति से पेटभर मोदक मिल जाने से अति प्रसन्न हुआ. पर एक थालभर मोदक खा जाने से मृगावती को आश्चर्य हो रहा था. इस में उसने उसके अंग का स्पर्श करा, स्पर्श करते ही उसका शरीर को सुखी और रुक्ष चमड़ी होनेका अनुभव हुआ, इस से उसे पता चला कि यह तो कोई अन्य ही पुरुष है, चन्द्रसेन नहीं है.

तब मृगावतीने पूछा, "तुम कौन हो?" ब्राह्मणने उत्तर दिया, "मैं एक ब्राह्मण हुँ?" मृगावती बोली, "मुजे किसी पुरुष से बहका कर यहाँ क्यों ले आया है?" उस ब्राह्मणने कहा, "हे मृगलोचनि! कुछ भी हो, मैंने तो तेरे शरीर का स्पर्श तक भी नहीं किया है, तुमने ही मुझे जगाकर मोदक खिलाया यदि तुम मोदक का मूल्य लेना चाहती हो तो ये मेरे पास मुंग हैं, सो ले जाओ, पर व्यर्थ प्रपंच क्यों करती हो?" उस ब्राह्मण की निरस बात सुन उदास होकर मृगावती वहा से अपने घर लौट आई. और अपनी हवेली के झरोखेमे बैठ कर मनमें सोचने लगी, "आज चन्द्रसेन कहा सोयेगा?" इस बातका पता लगाने लगी.

कुछ देर के बाद झरोखे मे बैठी हुइ मृगावतीने दूरसे चन्द्रसेन को दीपक लेकर देवमंदिर की ओर जाते हुए देखा. तब वह भी पुनः मोदक का थाल भर के फिर से उस मंदिर की ओर चली शास्त्र मे कहा है कि—

"[1]उल्लु अंध दिवस में होता, रात्रि अंध होता है काक;
कामीजन तो सदा अंध ही, देखता नहीं है दिनरात."

उल्लु पक्षी को दिन मे कुछ नहीं दिखता, इसी तरह कौए को रात्रि मे कुछ नहीं दीख पडता है. किन्तु कामी पुरुष तो कोई अपूर्व प्रकार का अंधे है, जो कि रात और

१ घुवड पक्षी.

दिन सदा अंधा ही रहता है ×

चन्द्रसेन घूमता हुआ उसी देव मंदिर में आ पहुँचा, जो कि उस मंदिर में ब्राह्मण सोया हुआ था. चन्द्रसेनने उस ब्राह्मण को दूसरी जगह जाने को कहा, उस पर ब्राह्मणने कहा, "मुझे रात में कुछ दिखता नहीं, मैं रतांध हूँ, इस समय में कहाँ जाऊँ ?"

तब चन्द्रसेनने अपने नौकर द्वारा दीपक सहित उस ब्राह्मणको पासके ही भीमयक्ष के मंदिर में पहुँचा दिआ, और उसी मंदिर में दीपक को रख कर चन्द्रसेन का नौकर अपने स्थान लौट गया, वह ब्राह्मण भी प्रशान्ति से वहा सो गया.

जब मृगावति दूसरी बार मोदक का थाल लेकर चन्द्रसेन को मिलने के लिये आ रही थी, तब दूरसे भीमयक्ष के मंदिर में दीपक का प्रकाश देख कर वह वहा पहुँची, वहा वह ब्राह्मण एकान्त में सोया हुआ था उस को चन्द्रसेन की भ्रान्ति से जगा कर कहा, "हे प्रिय! मोदक खाओ" वह ब्राह्मण उठा और हाथ में एक मोदक लेकर खाने लगा, विशेष आग्रह करने पर भी उसने खाने से इन्कार कर दिया, क्यों कि उस विप्रका पेट पहले से ही भरा हुआ था.

मृगावतीने धीरे धीरे उस के समीप जाकर थोड़ा वार्ता-

× दिवा पश्यति नो घूकः काको नक्तं न पश्यति।
अपूर्वः कोऽपि कामान्धो दिवा नक्तं न पश्यति ॥ स १०/५२२ ॥

स्पर्श किया, और देह का स्पर्श करने से जान गई, 'अरे! यह तो वही ब्राह्मण है, फिर भी यह यहां कहां से आ गया?' काम मे अंधी होकर मृगावतीने कहा, "तुमने फिर से मुझे बहका कर यहां क्यों लाये? अब मेरी इच्छा को पूर्ण करो."

तब ब्राह्मणने कहा, "हे मृगलोचनि! तुम क्यों असत्य बोलती हो? मैंने तुम्हारे शरीरका स्पर्श भी नहीं किया; तुम्हारे दिये हुए मोदक खाये हैं, उसका मूल्य लेना हो तो ये मेरे मुंग ले जाओ, मैं तो अपनी स्त्रीको छोड कर पराई स्त्री की ओर देखता भी नहीं हुं. अन्य स्त्रियों को मैं अपनी मां-बहेन के समान मानता हूँ. इस लिये तुम मेरी बहन हो. मुझ से तुम्हारी बूरी इच्छा की तृप्ति न हो सकेगी, यहाँ से शीघ्र अन्यत्र चली जाओ."

यह सब सुनकर मृगावती निराश होकर जब पुनः अपने घर लौट आई, और मन ही मन इस घटना पर आश्चर्य करने लगी, पश्चात् मनमें संतोष धारण करके सो गई.

चंद्रसेन देवमंदिर मे मृगावती की राह देखता ही रहा, और आखिर में वह भी वहाँ ही सो गया, प्रभात होते ही अपने घर गया, और नित्यकार्य में लगा.

इधर प्रभात होने पर उस ब्राह्मणने उठकर स्नानादि कर नित्यकर्म और पूजापाठ किया, बाद में वह ब्राह्मण नगर की ओर जा रहा था. उस समय चंद्रसेन कोटवाल का सामने

मिलना हो गया, रात्रि मे मृगावती के दिये हुए पान चबाने से रक्त दन्तवाला उस ब्राह्मण को देख कर चंद्रसेनने कहा, "आज आप बहुत प्रसन्न मालुम होते हो?" तब उसने उत्तर मे कहा, "सब आप की कृपा है?" चंद्रसेनने कहा, "आज आप राजसभा मे अवश्य पधारना, वहां मैं राजाजी से आप को कुछ धन दिलवाऊंगा."

भोजन आदि से निवृत होकर उचित समय पर उसने दरबार में पहुँच कर राजा को सुंदर शब्दो में आशीर्वाद सुनाया. उसी समय अवसर पाकर चंद्रसेनने कहा, "महाराज! ये विप्रदेव अच्छे विद्वान हैं, लग्न आदि देख कर भूत, भविष्य और वर्तमान की सभी बातें बतला देते हैं."

राजाने पूछा, "अच्छा-कहिये विप्रदेव! कल मेरे राज्य में क्या होगा?" तब उस जोषीने शीघ्र ही प्रश्नलग्न देख उत्तर दिया, "कल आपका पट्ट हस्ती मर जायगा." इस वाक्य को सुन कर राजाने कहा, "क्या इसके लिये कुछ शान्ति का उपाय करना ठीक होगा?" भट्टमात्रने कहा, "राजन्! भावी को कोई नही रोक सकता, जो होनहार है, वह होकर ही रहता है." क्यों कि—

"मेरु पर्वत कभी चलायमान हो जाय, अग्नि कभी ठन्डी हो जाय, मानो कभी पश्चिम दिशा मे सूर्य उदित हो जावें-पर्वत के शिखर पर कमल खिल जाय, ये सब असम्भव घटनावें

शायद् कभी घटित हो जाय, किन्तु मनुष्य के भाग्य में लिखी हुई शुभाशुभ कर्म रेखा कभी भी मिथ्या नहीं हो सकती." *

तब राजाने उस ब्राह्मण को कल्ह के लिये सत्यासत्य का निर्णय होने तक अपने राजमहल मे अपनी पास ही रक्खा, और गजराज की रक्षा के लिये सैनिको को नियुक्त कर दिया. इतना प्रबन्ध होने पर भी भावि को कोई नहीं रोक सकता. इस युक्ति के अनुसार प्रभात होते होते तो वह पट्ट हस्ती मद से पागल हो गया. पावमें बंधी जंजीर-सांकल को तोड़कर नगर में जा, प्रजा के घर-द्वार को भग्न करता सम्पूर्ण शहर में उन्मत होकर फिरने लगा. प्रजा-लोगों मे घबराहट मच गई.

मेरु पर्वत से मंथने पर समुद्र का जल जैसे क्षुब्ध हुआ था. ठीक उसी तरह-वही दशा इस हाथीने आज सारे ही शहर की कर दी. उस मदोन्मत हाथी के पास जाने की कोई हिम्मत नहीं करता था, इस उपद्रवी हाथीने एकाएक कृष्ण ब्राह्मण की स्त्री को अपनी सूंड से पकड़ लिया, और ऊपर उठा कर आकाश मे चिंघाड़ने-ऊछालने लगा.

इस बात से राजा और सारी प्रजा मे हाहाकार मच

* प्रचलित यदि मेरु. शिता याति वह्नि,-
उदयति यदि भानु. पश्चिमाया दिशायाम्;
विकसति यदि पद्म पर्वताग्रे शिलाया,
तदपि च न हि मिथ्या भाविनी कर्मरेखा ॥ स १०/४४३ ॥

गया. किन्तु उस हाथी से ब्राह्मणी को छुड़ाने की हिम्मत किसी मनुष्य में नहीं थी, इस दयनीय दशा को देख कर राजपुत्र रूपचंद्रने उस ब्राह्मणी की रक्षा के लिये भाला लेकर हाथी के सामने जाकर जोर से कहा, "अरे, दुष्ट गजराज! तुम सबल होकर भी उस अबला को क्यों परेशान करते हो? यदि तुम्हारे में बल हो तो मेरे सामने आ जाओ." राजपुत्र की इस ललकार को सुन कर गजराजने ब्राह्मणी को छोड़ दिया. और शीघ्र राजकुमार को पकड़ना चाहा.

राजपुत्र रूपचन्द्र हाथी को पदकारता है. चित्र न. १८

गजराज क्रोध से धमधमता हुआ, रक्त नेत्र कर यम-राज की तरह राजपुत्र के ऊपर धस आया. किन्तु राजपुत्रने भी अपने बल और पराक्रम से उस का अच्छी तरह सामना

किया, बाद में राजपुत्रने गजराज को अपनी चालाकी से खुब घुमघुमाया और जोर से मर्मस्थान पर भाला मार कर हाथी को एक क्षण में ही पृथ्वी पर गिरा दिया.

इस प्रकार राजकुमार के द्वारा मदोन्मत्त गजराज को पल में गिर कर मरे हुए देख, महाराजा और एकत्रित सारी प्रजा राजकुमार की वीरता पर हर्षोन्मत्त हो गई, 'जय, जय की' ध्वनि से प्रजाने आकाश भर दिया सारा राज्य में राजकुमार के पराक्रम की तारीफ होने लगी, महाराजाने प्रसन्न हो अपने वीर पुत्र को अभिनन्दनार्थ अपने नगर को तोरण पताकादि से सुशोभित कर एक बड़ा महोत्सव मनाया, और एक विराट सभा बुलाकर उस सभा में महाराजाने राजकुमार को अघटकुमार के नाम से घोषित किया. क्यों कि राजकुमारने अपने पराक्रम से अघटित घटना को घटित कर दिखाया था, इसी लिये उस दिन से रूपचंद्र का अघटकुमार नाम लोकमें प्रख्यात हुआ

नगर की सारी प्रजाने भी अपने महाराजा को विशेष रूप से बधाई दी, महाराजाने उस भविष्यवेत्ता ब्राह्मण को बुलाकर उसका सम्मान कर खुब धन देकर विदाय किया.

उत्सव में राज्य के छोटे बडे सभी सम्मानित लोग बधाई देने आये किन्तु राज्य के प्रधान मंत्री सुमतिराज एक नहीं आये, इस से राजा को बुरा लगा, अतः इस बात को लेकर महाराजाने मंत्रीश्वर को कुछ भला बुरा भी कहा, मंत्रीने

उत्तर में शान्तिपूर्वक निवेदन करते कहा, 'हे राजन्! राजकुमार को राज्य का प्रधान हाथी मारना नहीं चाहिये था, क्यों कि वह राज्य का रक्षक हैं, जैसे राज्य के लिये हाथी महत्व का अंग माना जाता है, देखिये युद्ध के समयमें हाथी द्वारा शत्रु के नगर का दरवाजा तुड़वाया जा सकता है, और राज्य मे वह मंगलकारक माना जाता है.

हे राजन्! मैं अधिक क्या कहूँ, मुझे बहुत दुःख हो रहा है, अपने इस प्रधान हस्ती के मरने से आप के शत्रुओं द्वारा उनके राज्य मे मंगल मनाया जायगा. क्यो कि प्रधान हस्ती के मरने से सेना के बल मे कमी हो जाती है, इसी लिये राजकुमारने यह कोई अच्छा काम नहीं किया है, हाथी को तो किसी ढंगसे वशमें करने का था, पर उसे मारना उचित नहीं था, और आप इस अनुचित कार्य के लिये बड़ा उत्सव मना कर राजकुमार को प्रोत्साहन दे रहे हे, यह ठीक नही. हुआ.

राज्य के सभासदों को बुलाकर आप विजय की खुशियाँ मना रहे है. जब कि आप के शत्रु वर्ग आप की इसी विजय में आप की हार देखते है, मैं हस्ति को मारने के विषय को उचित नहीं समझता. इसी लिये मैं इस उत्सव में सम्मिलित नहीं हुआ, और कोई कारण नहीं है, क्यों कि—

"माता, पिता, मित्र, भाई, पुत्र, पुत्री आदि स्नेहीजन और हाथी, घोड़े तथा गाय वगेरे की मृत्यु होने से, और

प्रिय वस्तुओं के वियोग या नाश होने से हरेक प्राणी को दु:ख होता हैं"

सुमति-मंत्रीश्वर के उपरोक्त ये युक्ति युक्त वचन भीमराजा को उचित लगे, और मंत्रीश्वर का नहीं आने का रहस्य भी समझमें आ गया, बाद में एक दिन भीमराजाने राजकुमार को उस शब्दों के द्वारा उपालंभ दिया, 'जैसे कुपुत्र से युक्त कुल, अन्याय से उपार्जित धन और रोगों से घेरा हुआ शरीर ये बहुत दिनो तक नहीं रहते हैं.'

भीमराजा से अपमानीत होकर राजकुमार मन ही मन बहुत दुःखी हुआ, और मनमे सोचने लगा, 'अधम मनुष्य धन चाहते हैं, मध्यम मनुष्य धन और मान दोनों को चाहते हैं किन्तु उत्तम मनुष्य तो केवल मान ही की इच्छा रखते हैं.' अपनी प्रतिज्ञा की महत्त्वता को समजनेवाला राजकुमारने अपनी स्त्री को साथ लेकर और किसी को कुछ कहे सुने बिना ही रात्रि में घर से देशान्तर जाने के लिये प्रस्थान कर दिया.

राजकुमार और उसकी पत्नी चलते चलते वीरपुर से बहुत दूर निकल चूके थे, रास्ते में राजकुमार की पत्नीने शुभ मुहुर्त में सूर्य समान तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म दिया. क्रमशः घूमते घूमते अनेक छोटे बड़े गाम, नगर और वनों को उलघन करते करते रूपचन्द्रकुमार अपने पुत्र और पत्नी सहित अवंतीपुरी में आ पहुँचा. रूपचन्द्र पुत्र सहित अपनी पत्नी को बाजार में 'भोद' नामके शेठी की दूकान के बगल–

पास में बैठाकर वह नौकरी की खोज के लिये नगरी में घूमने लगा.

इधर पुण्यवान् उस बालक के प्रभाव से धीदू सेठ की दूकान पर माल लेने वाले-ग्राहक लोगों को भीड़ लग गई, जिस से धीदू सेठ की बिक्री उस दिन खुब हुई, और नफा भी अधिक हुआ, श्रीदू सेठ विस्मित होकर विचारने लगा, 'आज एकाएक इतनी बिक्री कैसे हो गई?' थोड़ी देर के बाद सेठने अपनी दुकान के पास में ही एक युवान स्त्री को अपनी गोद में बालक लेकर बैठी हुई देखा. उस स्त्रीके पास आकर उस वृद्ध सेठने पूछा, 'अरे बहन! तेरी गोद मे पुत्र है या पुत्री है सो कहो?"

धीदू सेठ के पूछने पर उस स्त्रीने अपना पुत्र उस सेठ को बताया. सेठ सूर्य जैसी कान्तिवाला सुन्दर बालक देखकर अति आनन्दित हुआ, और मन में सोचने लगा, 'इसी भाग्यशाली के प्रभाव से आज मेरी दुकान में इतनी अधिक बिक्री हुई और नफा भी खुब हुआ है!'

उसी समय रूपचन्द्र नगरी में से घूम घूमाकर वापस आया, और अपनी प्रिया से कहने लगा, "हे प्रिये! इस नगरी से चलो-यहाँ अपना निर्वाह होना असम्भव है. क्यों कि यहाँ कोई मुझे नोकरी रखने को तैयार नहीं है." उपरोक्त बातचीत को सुनकर सेठजीने कहा, "हे पथिक! आज आप मेरे यहाँ पाहुना-महेमान रहिये. जितने दिन सानुकुलता रहे

उतने दिन आप यहा मेरे घर रहिये." सेठजी के आग्रह को मानकर स्त्री सहित रूपचन्द्र भोजन कर रातभर वहाँ ही ठहर गया.

रात्रि मे सोये हुए राजकुमार को देख कर सेठजी के मनमें एक सन्देह उत्पन्न हुआ, उसने पास में सोये हुए अपने नौकर को धीरे स्वर से कहा, 'कहीं यह परदेशी रात्रि में चोरी तो नहीं कर जायगा?' कुमार की पत्नीने उपरोक्त बात सुन कर कहा, 'सेठजी! आपका ऐसा सोचना ठीक नहीं है, मेरे स्वामी वीरवृत्ति से कमाकर खानेवाले है, पर चोरी आदि नीच कर्म वे कभी नहीं करेगें, आप निर्भय रहें. क्यों कि—

"भूखा और दुबला जरासे जर्जरित,
सिंह क्या घास कभी खाता है?
महापुरुष अपनी मान मर्यादा का,
कभी उलंघन नहीं करतें हैं."

इस प्रकार रूपचन्द्र की पत्नी का कथन सुन सेठजी बहुत प्रसन्न हुआ, और रूपचन्द्र तथा सेठजीने परस्पर नाना प्रकार की बड़ी रात तक बातें निर्भय हो करके की और सब आनंद से सो गये.

पाठकगण! आपने इस प्रकरण में चन्द्रसेन कोटवाल का एक प्रसंग और राजकुमार रूपचन्द्र का रसमय स्वरूप पढा, भीमराजाने प्रथम अपने

प्यारे पुत्र के वीरतापूर्ण कार्य से प्रजा को भयमुक्त करने का प्रसंग देख बड़ा उत्सव मनाकर पुत्र को सम्मानीत किया, किन्तु सुमति-मंत्रीश्वर के विचारानुसार अपने विचार बदल कर, राजकुमार को कुछ कड़े शब्दों से उपालंभ दिया.

राजकुमार उसको अपमान समझकर किसी को कहे बिना ही अपनी पत्नी को लेकर परदेश की ओर प्रस्थान कर दिया. क्योंकि उत्तम स्वभाववाले व्यक्ति अपना मानभंग कभी सह नहीं सकते है फिरते फिरते एकदा उसका अवन्ती में आगमन हुआ, अब उसके बाद राजकुमार का महाराजा विक्रमादित्य से किस तरह समागम होता है, और आगे का जीवन कीस तरह बितता है, य सब आपको अगले प्रकरण मे बताया जायगा.

पचावनवाँ-प्रकरण

रूपचन्द्र की सत्त्व परीक्षा

" उदारता धनकी करे, एसा लाखो लोक;
टाणे शिर आगल करे, एसा विरला कोक.

करे कष्ट में पाडने, दुर्जन कोटी उपाय;
पुन्यवंत को वे सब, सुख के कारण होय."

श्रीद् श्रेष्ठी के घर में राजकुमार रूपचन्द्रने अपने पुः और पत्नी सहित आनंद से रात्रि बिताई, प्रभात होते ही निद्रा त्याग सब जागृत हुए जब की वे स्नान आदि नित क्रिया निपटा कर स्वस्थ हुए, तब प्रसन्न होकर श्रेष्ठीने रूप चन्द्र की पत्नी को बहु मूल्यवाली एक सुंदर साडी भेट दी, और रूपचन्द्र के लिये एक श्रेष्ट घोडी उपहार मे भेट दी इस प्रकार सेठजी श्रीद् और राजकुमार रूपचन्द्र का आपस आपस मे स्नेहसंबंध दृढ बना

रूपचन्द्रने विनयपूर्वक श्रीद् सेठजी से पूछा, " हे सेठजी! आप यह बतलाईये कि, मैं महाराजा विक्रमादित्य के दरबार मे कैसे प्रवेश कर सकता हूँ? और महाराजा की सेवा किस तरह करूँ?"

उत्तर मे श्रीद् सेठजीने कहा, " जो मनुष्य महामंत्री भट्टमात्र की छ मास तक नित्य सेवा करके यदि उनकी प्रसन्नता

प्राप्त करें तो बाद मे महामंत्री उस को महाराजा विक्रमादित्य के पास ले जाता है, और उसको महाराजा की सेवा प्राप्त होती है."

सेठजी का कथन सुनकर रूपचंद्रने मन ही मन कुछ सोच विचार कर, आज ही राजदरबार में जाने का निश्चय किया. महाराजा के आगे उपहार करने योग्य फलफलादि सामग्री लेकर रूपचद्र राजदरबार की ओर चला.

रूपचद्र राजसभा के द्वार पर आया और जब प्रवेश करने लगा, तो द्वारपालने उसे रोका, द्वारपाल को एक चपेटा मारकर जमीन पर गिरा दिया, और शीघ्र आगे बढा बड़ी अदबसे चलता हुआ निर्भयतापूर्वक राजसभाके बीचमें होता हुआ रूपचंद्र महाराजा के आगे आकर खड़ा हुआ

महाराजाने उस की ओर देखा तो रूपचद्रने शीघ्र ही अपने हाथ में का फलफलादि सामग्री महाराजा के चरणो में रख कर, विनय सहित नमस्कार कर अपने उचित स्थान पर खड़ा हो गया. प्रभावश भी चहेरा और मनोहर रूप देख महाराजा उस के प्रति आकर्षित हो गये, रूपचद्रने बड विनय सहित महाराजा से कुछ वातचीत की. उसकी वचन, चतुराई, विनय एवं वार्तालाप करने की रीति नीति देख प्रसन्न होकर महाराजाने रूपचंद्र को दश हजार सोना महोरें देकर, भट्टमात्र के प्रति कहा, "आप इस आगन्तुक के लिये रहने का सब प्रबंध कर दीजिये."

राजसभा विसर्जन होने पर भट्टमात्रने द्वारपाल से कहा, "इस अतिथि के लिये एक सुंदर घर आदि का प्रबंध करो"

वह द्वारपाल रूपचंद्र पर तो प्रथम से अप्रसन्न था ही, क्यों कि उसने उसी द्वारपाल को चपेटा मार गिराया था, फेर भी राज आज्ञा का पालन करना तो उस आवश्यक था, मन ही मन द्वारपालने विचारा, 'इस को अनर्थ में गर्त में डालने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है

अब ठीक मेरे हाथ अवसर आया है उस चपेट का बदला लेने का हृदय से सोचता हुआ द्वारपाल उस को साथ लेकर नगर मे चला चलते चलते जहां पर अग्निवैताल का निवासस्थान था, वहां आकर खड़ा हुआ और उस अग्निवैताल का घर दिखा कर रूपचंद्र से कहा "इस मकान में आप मुकाम कीजिये" ऐसा कहकर वह अपने स्थान पर लौट गया

बाहर से उस मकान को देख रूपचंद्र नंद सेठजी के घर मे रही हुई अपनी पत्नी का लेने के लिए चला रास्ते मे दीन, दु खी, गरीबों को दान देता हुआ श्रेष्ठ सेठजी की हवेली पर आ पहुँचा और अपनी स्त्री से मिल कर सारा वृत्तांत सुनाया

श्रेष्ठ सेठजी भी इस वृत्तान्त को सुनकर प्रसन्न तो हुआ किन्तु अग्निवैताल वाले घर में रहने की बात उसे अच्छी न लगी

राजा विक्रम से जो सोने की अशर्फियाँ मिली थी उन मे से बाँटते बाँटते केवल दो अशर्फियाँ पास रही थी. रूपचंद्रने दोनो अशर्फियाँ अपनी पत्नी को दे दी. उसकी पत्नीने भी स्वाभाविक उदारता से दोनो गिन्नियां उस सेठजी की पुत्रवधू को दे दी. श्रीद् सेठजी के हृदय मे इस बात की चिन्ता होने लगी, 'इस बिचारे पथिक की जान खतरे में पड गई.' किन्तु वीर रूपचंद्रने साहस कर श्रीद् सेठजी से कहा, "आप इस लिए चिन्ता मत कीजिये, मेरा सब कुछ अच्छा मंगलकारक होगा. आप प्रसन्नता से मुझे जाने की आज्ञा दीजिये."

श्रीद् सेठजीसे दी गई घोडी पर चढकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नी और पुत्र के साथ अग्निवैतालवाले घर में आ पहुँचा. रास्ते में लोग बोल रहे थे, "हा, यह बेचारा महान अनर्थ मे फंसाया गया, यह अग्निवैताल के मकान में कैसे रहेगा?"

उस घर में पहुँचते ही उस की पत्नीने कहा, "हे पतिदेव! घर मे बहुत कचरा पडा है, इस की सफाई कराने बाद यह घर रहने योग्य होगा"

उस मकान की सफाई करने लिए मजदूर की आवश्यक्ता थी, ढुंढने पर भी पास में कोई मजदूर न मिला, इसी लिए पत्नी को उसी घर में रख कर वह मजदूर की खोज करने नगर में गया. उस की पत्नी अपने प्यारे पुत्र को पालने मे सुलाकर सुलाती हुई गाने लगी, "अरे पुत्र, तू रोता क्यों है? देख, अभी तेरे पिताजी तेरे खेलने के लिये अग्निकां[1] को

[1] एक प्रकार की चिडियाँ या एक प्रकार का खिलौना.

पकड़ कर लाएंगे, तुम उस से खेला करना, थोडी देर शान्त रहो."

उसी समय द्वार पर अग्निवैताल आया और पशुओं में श्रेष्ठ घोड़ी तथा मनुष्य को आवाज सुनकर आनंद-मग्न हो गया. "आज मेरा भोजन अपने आप यहां आ पहूँचा है, आज आनंद से भोजन मिलेगा."

अग्निकने अपने गण, भूत, प्रेतादिकों से कहा, "इन प्राणियों के पास चलो." घोड़ी के मुख में लोह की लगाम लगी थी, घोड़ी को देख कर अग्निवैताल डर गया वह घोड़ी के पीछे गया. ज्योंही अग्निक घोड़ी के पीछे जाकर खडा हुआ कि घोडीने एकाएक लात मार दी, और अग्निवैताल उस आघात से गिर पड़ा. शीघ्र ही सावधानी से उठ खडा हुआ.

उठने के बाद अग्निवैतालने अंदर से पालना झुलाते हुए गाने की आवाज सुनी, और वह डर गया. उस को डरा हुआ देख कर पद्माने कहा, "तुम मत डरो, चिरंजीवी रहो, तुम कौन हो? यहां कैसे आये?" अग्निकने कहा, "मैं राक्षस हूँ." प्रत्युत्तर में कहा, "सुनो मे भेक्सी हूं और मेरा भक्ष्य राक्षस है.

सुंदर मुहूर्त में मैंने इस पुत्र को जन्म दिया है, पिताने इस का नाम मुकुन्द रक्खा है. एक ज्योतिषीने इस बालक के ग्रह नक्षत्रादि को देखकर कहा है, 'एक अग्निक

पद्मा और अग्निक परस्पर बात कर रहे हैं. चित्र नं. ९९

को मारकर उस का खून इस बालक को पिलाओ तो दीर्घायु होगा. इसी कारण मेरे पतिदेव यहां आये हैं, और अग्निवैताल की खोज के लिये इसी नगर में गये हैं."

पद्मा की बात सुनकर अग्निवैताल घबडाया हुआ सा बोला, "हे देवी! आपने अभी मेरे प्रणाम करने पर 'चिरंजीवी रहो.' ऐसा आशीर्वाद मुझे दिया है, फिर आप मुझे मारने की बात कर रही हैं, यह कैसी असंगत बात है?" स्त्रीने पूछा, "क्या तुम अग्निक हो?" अग्निकने कहा, "हाँ मैं अग्निक हुँ. श्रेष्ठ व्यक्ति जो कुछ भी एक बार कहते हैं, उस का मरते दम तक पालन करते हैं, आपने मुझे शुभा-

शीर्वाद दिया है, अतः मुझ पर कोई आपत्ति न आएँ ऐसा आप को करना चाहिए क्यों कि—

"एक बार ही राजा बोले, साधु पुरुष बोले एक बार,
कन्या एक बार दी जाती, ये तीनों नहीं बारम्बार."*

राजा तथा साधु पुरुष एक ही बार बोलते हैं, अर्थात् जो कुछ कहना या करना होता है, उसे प्रथम बार में ही कह या कर डालते हैं कन्यादान भी एक ही बार होता है, ये तीनों बातें बार बार नहीं होती"

इस प्रकार से अग्निवैताल के विनय प्रार्थना करने पर पद्माने कहा, "अच्छी बात है, तुम इस कडाह के नीचे छिप जाओ, मैं तुम्हें अपनी बुद्धि के प्रभाव से बचा लूंगी"

पद्मा की बातों पर विश्वास रखकर अग्निवैताल शीघ्र ही कडाह के नीचे छिप गया ठीक उसी समय रूपचंद्र बाहर से आया पद्माने घरसे बाहर आकर रूपचंद्रसे एकान्त में सारी घटना कह सुनाई रूपचंद्र जानबूझ कर ऊँचे स्वर से बोलने लगा, "देखो! वह अग्निवैताल अवश्य यहां आया हुआ है, कहाँ ठहरा है ? शीघ्र बताओ"

पद्माने कहा, "हे प्राणनाथ! वह तो आकर इसी

* सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति साधवः
सकृत्कन्या प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ स १०/५३९ ॥

घर के अन्दर ठहरा हुआ है" यह सुन कर अग्निक बहुत घबडाया और सोचने लगा, "मैं इस का कुछ नहीं कर सकता, क्यों कि यह प्रतापी वीर पुरुष है. इस के पूर्वोपार्जित पुन्य के कारण मुझ से भी वह अधिक बलवान है" ऐसा अग्निवैताल सोच रहा था, वहा पद्‌माने आकर उस दीन मानस अग्निवैताल का हाथ पकड कर अभयदान दे कढाह नीचे से बाहर निकाल कर, अपने पतिदेव के सामने लाकर खडा कर दिया

अग्निवैताल कापता हुआ खडा था रूपचंद्रने पूछा, "तुम कौन हो?" अग्निवैतालने कहा, "मैं राक्षस हूँ" रूपचद्रने कहा, "तुम मुझे पहचानते हो? मैं राक्षसो को मारनेवाला भेपस हूँ" अग्निवैतालने कहा, "हे भेपस!" बोलता हुआ कहने लगा, "आप की स्त्रीने मुझे अभयदान दे दिया है. आप मुझ से क्यों इस प्रकार कहते है?" रूपचंद्रने कहा, "यदि तुम मेरी बात मानने की प्रतिज्ञा करो तो मैं तुम्हे छोड सकता हूँ, अन्यथा मैं तुम्हे बिना मारे नहीं छोडूँगा, अपनी जिन्दगी मे मैंने कितने ही दुश्मनों का रण में वध कर डाले हैं"

रूपचन्द्र की बात सुनकर अग्निवैताल डर गया, और रूपच द्र की आज्ञा में रहने की प्रतिज्ञा की शीघ्र ही रूपच द्रने उस अग्निवैताल की नाक में एक कौडी लटका दी, और स ध्या के समय उस पर सवार होकर महाराजा विक्रमके पास जाने

के लिये चला रास्ते में जन समुदाय अग्निवैताल को इस तरह देखकर, आश्चर्यचकित, होकर कहने लगे, "अरे, इस वीरने तो वैताल की भी इस तरह बुरी दशा कर डाली ?"

रूपचन्द्र वैताल पर स्वार होकर राजसभा में जा रहा है चित्र न २०

आपस में लोग बोलते थे, "यदि कोई पुरुष इस रूपचन्द्र के विरुद्ध बोलेगा तो, वह उसे इस अग्निवैताल के द्वारा मरवा डालेगा देखो कितना आश्चर्य है कि, जो भूत प्रेत दूसरो के शिर चड कर जाते हैं, उस भूत, प्रेत को भी रूपचन्द्रने अपने वीरता से अपने वश मे कर लीया है."

ऐसी बात सुन कर नगर के व्यापारी तथा अन्य लोग भी अपना अपना कार्य छोड के देखने लगे थे. कितनेक दूकानदार आदि जनसमूह अग्निवैताल के भय से भागने लगे.

रूपचंद्र जब किसी वस्तु के लिये कहता था, तब वह दूकानो से उठा कर शीघ्र ला देता था.

जब रूपचंद्र अग्निवैताल पर चढ कर महाराजा विक्रम की राजसभा में पहूँचा तब महाराजा सहित मंत्रीगण रूपचंद्र के साहस से प्रसन्न तथा आश्चर्यचकित हो गये. रूपचंद्र जब अग्निवैताल के द्वारा मगवा कर सुंदर वस्त्रादि मंत्रियो को देने लगा तो, वे मंत्री लोग आदि भय से इधर उधर भागने लगे.

रूपचंद्रने मंत्रियों से कहा, "आप लोग भागते क्यों है? यह अग्निवैताल मेरे वश में है, यह मेरी आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता है आप लोग इन वस्त्रों को धारण कीजिये." तब मन्त्रिगण रूपचंद्र से दिये गये वस्त्र स्वीकार कर हर्षित हुए

महाराजा विक्रम रूपचंद्र की इस वीरता से बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होने उसका पूर्ण सन्मान किया. इस प्रकार अग्निवैताल और रूपचंद्र मे गाढ प्रेम हो गया अग्निवैताल जैसे रूपचंद्र के अधीन था, उसी प्रकार रूपचंद्र भी राजा का भक्त बन गया. राजा विक्रमने रूपचंद्र का नाम अघट रक्खा. क्यों कि उसने किसी से भी नहीं होनेवाला अघटित काम कर दिखाया था. तब से जनता में राजकुमार रूपचन्द्र अघटकुमार के नाम से प्रसिद्ध हुआ.

इधर अग्निवैताल से रूपचंद्र जो कुछ भी कहता था, उसे वह शीघ्र ही कर दिखाता था, क्यों कि 'वनका राजा जो सिंह उसका न कोई अभिषेक करता है, न कोई उस का संस्कार-शिक्षा पढाता है, न कोई चुनाव आदि करते है, फिर भी अपने पराक्रम से ही संपूर्ण जंगल का राजा बन कर, सिंह मृगेन्द्र की पदवी को स्वयं प्राप्त करता है.' ×

"उद्यम साहस धैर्य बल बुद्धि पराक्रम जिसके;
ये षड्गुण रहते है सन्मुख भाग्य सहायक उसके."

उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, बल और पराक्रम-वीरता आदि गुण जिन व्यक्ति मे होते है, भाग्य भी उसी का सहायक होता है.

महाराजा विक्रमादित्यने अघटकुमार को अपना अंग-रक्षक-बोडीगार्ड बना लिया

राजदेवी द्वारा विक्रम तथा अघट की परीक्षा—

"लगी राजदेवी लेने जब विक्रम अघट परीक्षा;
साहस परिचय दे उन्होंने पूरी की निज इच्छा."

शान्तिपूर्वक राज्य कार्य चल रहा था. सब शान्त और प्रसन्नचित्त होकर अपना अपना कार्य कर रहे थे. एक रात

* नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते मृगे.
विक्रमार्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥ पं. १०/१३४ ॥

महल के कुछ दूर से रोनेकी आवाज आई. राजाने कहा, "हे अपट! देखो तो इस मध्यरात्रि में कौन, कहाँ, क्यों रो रहा है?" अघट उस आवाज की दिशा मे चला. आगे चल कर देखा तो एक स्त्री पीपल के पेड पर रो रही थी. अघटने पूछा, "हे देवी! तुम कौन हो? क्यों रो रही हो?" उस स्त्रीने उत्तर दिया, "मैं इस राज्य की अधिष्ठात्री देवी राजलक्ष्मी हूँ, कल राजा विक्रम मर जायगा, तब मेरा क्या होगा? इस लिये रो रही हुँ."

अघटने पूछा, 'हे देवी, राजा विक्रम दीर्घायु बन सके इस का कोई उपाय है?" राजदेवी ने कहा, "यदि तुम अपने पुत्र की बलि मुझे दो तो इस अनर्थ की शाति हो सकती है. इस का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है." सुनते ही अघट अपने घर गया और स्त्री को जगा कर उस से पूछा, "हे प्रिये! राजभक्ति की परीक्षा है; तुम्हारा क्या विचार है?" अघटने देवी से कही गई सारी बातें सुना दी.

पद्माने साहसके साथ कहा, "हे प्राणनाथ! मुझे अपने पुत्र की बलि देने से महाराजा को शाति प्राप्त होती हो तो मैं ऐसा करने के लिये तैयार हूँ." अपनी प्रिया की साहस भरी वाणी सुन कर, उस के पास से अघटने अपने पुत्र को ले लिया, और उस पेड के नीचे आकर खुशी से अपने पुत्रकी बलि दी. देवी को पुत्र की बलि दे देने के बाद अघट अपने घर चला गया.

इधर राजा विक्रम भी छिपकर सब देख रहे थे. क्यों कि अघट की परीक्षा करने के लिए ही तो राजाने आधी रात में भेजा था. विक्रमादित्य अघट के साहस, राजभक्ति तथा त्याग को देख कर मन ही मन उसे धन्यवाद देते हुए उसी पेड़ के नीचे जाकर राजदेवीको संबोध कर तलवार से अपना शिर काटने के लिये तैयार हो गए.
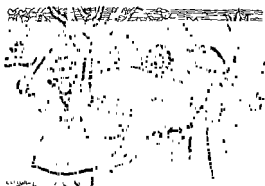
महाराजा विक्रम और राजदेवी चित्र न ४१

ज्यों ही विक्रमादित्यने अपना शिर काटने के लिये तलवार उठाई कि, देवी प्रत्यक्ष होकर बोलने लगी, "हे वीर, भूप ! तुम बड़े साहसी, दानवीर और बुद्धिमान हो, तुम अपना शिर मत काटो, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम अपनी इच्छा से-

वर माग कर सुखी रहो"

लंका पर विजय प्राप्त करनी थी, समुद्र में बांध बाँध कर पैर से चलकर पार करना था रावण जैसा दुर्जेय शत्रु था, सहायक दुर्बल वानर थे, फिर भी रामने लडाई मे सारे राक्षस वंश का नाश कर डाला इस से यही जान पडता है कि, महान पुरुषो के कार्यो की सिद्धि उनके पुरुषार्थ और सत्व से ही प्राप्त होती है वस्तु सपत्ति या साधन से नही. ×

शुभ कार्यो में महान् पुरुषों को भी अनेक विघ्न आते है, और अशुभ कार्य में प्रवृत्त होने पर तो शायद ही कोई विघ्न आ सकता है

राजा विक्रमने कहा, ' हे देवी ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो सर्व प्रथम अघटकुमार के पुत्र को जीवित कीजिये" देवी ने कहा, "हे राजन् ! अघटकुमार के पुत्र को मैं जीवित कर देती हुँ-लो विक्रमादित्य अघटकुमार के उस जीवित पुत्र को लेकर अपने महलम आए बच्चेको सुरक्षित स्थान मे रख कर-छुपा कर सो गए

प्रात काल ही पद्मा सहित अघट को अपने महल में

× विजेतव्या लङ्काचरणतरणियो जलनिधि-
विपक्ष पौलास्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपय ।
तथाऽप्याजौ राम सकलमवधीद्राक्षसकुल -
क्रियासिद्धि सत्वे भवति महता नोपकरणे ॥ स १०/६४८ ॥

बुलवाया. अपनी प्रिया पद्मा के साथ अघट को राज दरबार में जाते देख कर लोग आपस में कहने लगे, "देखो ने उसने आते ही राजा को अपने वश में कर लिया, महाराजा इसका कितना सन्मान करते है अपने महल में भी बुलवाने लगे"

अघटकुमार अब महाराजा के पास गया तो राजाने प्रेम से पूछा, "हे अघटकुमार, तुम्हारे कोई संतान है, या नहीं?" अघटने कहा, "हे महाराज! एक छोटा सा पुत्र है राजाने पूछा वह कहा है?" अघटने कहा, "वह अभी ननिहाल-मामा के घर पर है." इस तरह छिपाते छिपाते अन्त में राजा से अघटने सत्य बात बता दी "मेरा एक पुत्र था उसे मैंने महाराजा की शान्ति के लिये देवी को बलि चढा दी" राजाने रात का सम्पूर्ण वृत्तान्त मंत्रिया तथा सभा सदों को कहा सुन कर उस अघट-रुपचद्र को सभीने गले लगाया, और वह बालक जिसे अघटने रात में देवी को बलि दे डाली थी, सन्मानपूर्वक दे दिया

राजाने रूपचन्द्र को इस राजभक्ति तथा बहादुरी के लिये सन्मान किया, और ग्राम की जागीरी आदि उन्हे भेट मे दी. अब वह रूपचद्र सुखी हो गया विक्रमादित्यने उस से माता पिता के नाम ग्रामादि प्रेम से पूछा रूपचद्रने अपनी सारी कहानी कह सुनाई फिर बहुत सन्मान के साथ रूपचद्र को अपनी राजधानी मे पहुँचाया गया, इसके पिता अपने पुत्र के पराक्रम को सुन कर तथा लक्ष्मीसंचय को देख बहुत

प्रसन्न हुए. कुछ दिन के बाद महोत्सव के साथ रूपचंद्र को राजगादी दे दी गई. इस प्रकार महापराक्रमी अघट भूपति न्याय नीति से राम की तरह प्रजा का पालन करने लगा. रूपचंद्र को राज्य की प्राप्ति की खबर सुन कर विक्रमादित्य बहुत प्रसन्न हुए.

विक्रमादित्य और अघट में दिनानुदिन परस्पर प्रेम बढ़ने लगा. समय समय पर अघट राजा विक्रम के यहाँ आकर सूक्तियाँ सुन तथा सुनाकर अपने जीवन को आनंदमग्न करता था. कहा भी है. नीति तथा उपदेशात्मक वाक्यों का रसास्वादन करता हुआ पुलकित शरीरवाला कवि, कामिनी के बिना भी सुख प्राप्ति करता है. ×

इस तरह से और भी कितने-भट्टमात्रादि महामंत्री विक्रमादित्य के प्रख्यात यशस्वी सेवक हुए.

गुणवन्ता गंभीर नर दयावान दातार;
अंतकाल तक न तजे धैर्य धर्म उपकार."

न पाठकगण !

अघटकुमार-रूपचंद्र का श्रीद श्रेष्ठी के यहाँ ठहरना उस से विक्र[मादि]त्य के मिलने का उपाय पूछना, उस के बताये गये उपाय जो महा-

× सुभाषित रसास्वादबद्धरोमांचकन्चुकाः ।
विनाऽपि कामिनीसंगं कवयः सुखमासते ॥ स १०/६६४ ॥

मन्त्री भट्टमात्र की छ मास सेवा करने पर वह राजाजीसे मिलायेगा उस बात की उपेक्षा कर सिधा ही राजद्वार मे प्रवेश करना, उन के तेज प्रभाव देख, महाराजा द्वारा बहुमान होना उतारा के लिये आदेश करना, द्वारपाल द्वारा अग्निवैताल राक्षस का मन्दिर बताना, वहासे स्वर्ण द्वारा उस वैताल को वश मे करना, उस पर सवार होकर राजसभा मे जाना, महा राजा विक्रम का उनकी इस प्रकार की वीरता देख अत्यन्त प्रसन्न होना राज्य अधिष्ठायिका देवी तथा विक्रमादित्य द्वारा की गई परीक्षा मे उत्तीर्ण होना अघटकुमार के नाम से सबोधित करना, इत्यादि विवेचन आपने इस प्रकरण मे पढा

अब आगे का रहस्यपूर्ण महाराजा का पूर्व-भवादि वृतान्त अग्यारवे सर्ग से पढिवेगा।

तपागच्छीय–नानाग्रथ रचयिता कृष्णसरस्वती विरुदधारक–
परमपूज्य–आचार्य श्री मुनिसुदरसूरीश्वर शिष्य पडितवर्य
श्रीशुभशीलगणिविरचितेविक्रमादित्यचरित्रेसौभाग्यसुंदरी
परिणयनतत्परीक्षाकरणाय घटकुमार मिलनस्वरूपो
दशमः सर्ग समाप्त

नानातीर्थोद्धारक–आबाल ब्रह्मचारि–शासनसम्राट श्रीमद् विजयनेमि
सूरीश्वर शिष्य कविरत्न शास्त्रविशारद–पीयूषपाणि–जैनाचार्य–
श्रीमद् विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्य वैयावच्चकरणदक्ष
मुनिवर्य श्रीखान्तिविजयस्तस्य शिष्य मुनि निरंजनविजयेन
कृतो विक्रम चरितस्य हिन्दी भाषाया भावानुवाद
तस्य च दशम सर्ग समाप्त

मानवता

(३)

प्रगति बताकर जिस समाजमें होता मर्यादा का लंघन !
भीतर घोर विषमता है, पर समताका ही बाह्य-प्रदर्शन !

हा ! अनुशासहीन जहाँ है. पद-लोलुप जनता का शासन !
सुधरेगा समाज वह कैसे ? व्यक्ति व्यक्तिका कलुषित जीवन !

आह ! अराजकता है छायी, कैसे मिट सकती [1]बर्बरता !
हटा ! हटा ! इस महालय में घुसी जा रही है दानवता !

(४)

क्षण-भंगुर धन-जनके मदमें मनुज अरे क्यों अकड़ रहा तू ?
तुच्छ [2]स्वत्वके लिये परस्पर कुत्तों-सा क्यों झगड़ रहा तू ?

आह ! मोह-वश क्यों पापोंसे निज जीवनको जकड़ रहा तू ?
क्यों न छोड़कर अधम प्रेयको, परम श्रेयको पकड़ रहा तू ?

मृग-तृष्णामें प्यास बुझी कब ? बढ़ती नित गई विकलता !
रोक ! रोक ! तेरे जीते जी, कहीं मर न जाये मानवता !

(रचयिता : श्री. भवदेवजी झा. एम. ए शास्त्री
हिन्दी कल्याण के मानवता-अंकसे-साभार उद्धृत)

१ असभ्यता २. अधिकारके लिये.

श्री स्थंभनपार्श्वनाथाय नमः।

छप्पनवाँ-प्रकरण

(ग्यारहवाँ-सर्गका आरंभ)

महाराजा विक्रमादित्य का पूर्वभव श्रवण व प्रायश्चित

माया सुख संसारमें, वह सुख जगमें असार;
धर्म कृपा से सुख मिले, वह सुख जगमें सार.

एक दिन धर्मोपदेश श्रवण के बाद विक्रमादित्य महाराजाने श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी महाराजसे पूछा, "हे गुरुदेव! किस कर्म के प्रभाव से मुझे यह मनोहर राजलक्ष्मी की प्राप्ति हुई? और कौन से शुभ कर्म से अग्निवैताल सदैव मेरे पास रहकर मेरा कार्य करता है, तथा किस कारण से भट्टमात्र के प्रति मेरी प्रीति में दिनोंदिन इतनी वृद्धि होती जा रही है? अर्थात् इस अत्यधिक प्रीति का हेतु क्या है? खर्पर नामक बलशाली चोर किस धर्म के बल से सहज ही में मेरे से मारा गया?"

गुरुदेव बोले, "हे राजन् ! तुम अपने पूर्व जन्म के संबंध को सुनो-

गुरुदेव द्वारा पूर्व भव कथन

"आघाटक नामक नगर में चंद्र नाम का एक वणिक रहता था. उस के राम और भीम नाम के दो अतिशय प्रीतिपात्र मित्र थे. वे तीनो ही हमेशां प्रीतिपूर्वक साथ रहते थे. धीरे धीरे उन के पास का सारा धन खर्च हो जाने से वे तीनो दरिद्र हो गये. एक दिन दरिद्रता के दु ख से दु खित हो वे तीनो विचार करने लगे, 'जैसे लोग अपनी कन्या के लिये सत्कुल आदि की तलाश करके ही कन्या व्याहते हैं, इसी तरह विधाता भी अच्छे कुल, विद्याशील, शौर्य, सुरूपता की ठीक तरह से परीक्षा करके दरिद्रता देता है. ×

लोगो में कहा जाता है कि मरे हुए व्यक्ति तथा द्रव्य रहित होने से दुर्दशा को प्राप्त हुए दरिद्र व्यक्ति, इन दोनो व्यक्तियो मे मृत व्यक्ति अच्छा है, क्यों कि मृत को तो उसके संतान से पानी भी मिलता है लेकिन द्रव्यहीन को तो बिंदु मात्र पानी भी प्राप्त नहीं होता.

बुरा भाग्य ऋण आलस यहु सुत भूख पेट मे सदा रहे,
यह पाँचो दुर्गुण दरिद्र के, घर मे आठों पहर रहे.

× परीक्ष्य सत्कुल विद्या, शील शौर्य सुरुपताम् ।
विधिर्ददाति निपुण कन्यामिव दरिद्रताम् ॥ स ११/६ ॥

ऋण, दुर्भाग्य, आलस, भूख, और अधिक सन्तान ये पाँचो चीजें दरिद्रता के साथ उत्पन्न होती हैं तथा साथ ही उसका नाश होता है, अर्थात् ये पाँचो दरिद्रता के साथ ही रहनेवाली है.

और भी कहा है कि, हे पुत्र! तू ऋण मत करना. क्यों कि व्याधि या रोग इसी भव में और पाप कर्म परभव में दुःख देते है. लेकिन ऋण तो इस भव में या परभव मे दोनो ही जगह दुःखदायक होता है. इस लिये समझदार व्यक्ति को चाहिये कि कोई प्रकार का ऋण नहीं करना चाहिये. इस प्रकार का विचार कर वे तीनों ही मित्र उस स्थान को छोड कर लक्ष्मीपुर नामक एक रमणीय नगर की ओर जाने के लिये रवाना हुए. चलते चलते रास्ते में एक सुंदर सरोवर के किनारे पहुँचे. वहां वे तीनों आराम के लिये ठहर गये, और आराम के बाद अपने साथ लाया हुआ भोजन करने के लिये बैठे, उसी समय वहाँ पर दो मुनि महाराज दूर से आते हुए दिखाई दिये. जिन का शरीर तपस्या से कृश हो गया था.

चंद्रने अपने साथीओं से कहा, "अपने सद्भाग्य से ही ये दोनो पूज्य महात्मा पधारे है, अतः शुद्ध भावना से इन दोनो मुनिराजों को शुद्ध दान देना चाहिये. जैसे कि,

'ज्ञानदान से मनुष्य ज्ञानवान्, अभयदान से निर्भय अन्नदान से हमेशा सुखी तथा औषधदान से वह निरोगी' बनता है. लेकिन साधनसंपन्न होने पर भी दान न देने

से वह आगामी जन्म में दरिद्री बनता हैं दरिद्रतावश वह अनेक पाप करता है. पाप करने से वह नरक मे जाता है, और इस प्रकार बार बार वह दरिद्रता के चक्कर में ही घूमता रहता है ×

कृपणोपार्जित धन का भोग कोई भाग्यवान पुरुष ही करता है. जैसे की दांत बडे कष्ट से अन्न को चाबते है, लेकिन जिह्वा तो बिना प्रयत्न किये ही उसे निगल जाती है.

एक कविने कहा है, "इस जगत में कृपण के समान दाता न कोई हुआ है और न होगा क्यों कि कृपण तो बिना स्पर्श किये ही अपना सब धन दूसरो को दे देता है, अर्थात् दूसरे के लिये छोडकर मरता है

कृपण ही सच्चा त्यागी है; क्यो कि वह सब कुछ यहाँ पर ही छोडकर जाता है. मै दाता को ही कृपण मानता हूँ. क्यो कि वह तो मरने पर भी धन को नहीं छोडता. अर्थात् दान, पुण्य कर के परभव में पुन इस लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है

"कितना ही धनवान् कृपण हो, इस से क्या सुख लोगो को ?
फलफूलों से लदा ढाक तरु, क्या फल देता जीवों को ?"

× अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो, दरिद्रभावाद् वितनोति पापम् ।
पापं हि कृत्वा नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ॥ ११/१४ ॥

कृपण यदि समृद्ध हो तो भी उस के आश्रितो को क्या लाभ ? क्यों कि उन्हें इस की समृद्धि से कोई लाभ या फल प्राप्त नहीं होगा, किंशुक-पलाश के फलने पर भी भूखा तोता उस के फलों को क्या करे ? तोता भूखा होने पर भी पलाश के फल का भक्षण नहीं करेगा.

धनी होने पर भी जो दान नहीं कर सकते उन्हें मैं महा दरिद्रो में भी अग्रगण्य मानता हूँ. क्यों कि जो समुद्र कीसीकी प्यास नहीं बुझा सकता वह जल रहित (मरुभूमि) के समान ही है.

जगत में पाँच प्रकार के मुख्य दान हैं. अभयदान, सुपात्रदान, अनुकंपादान, उचितदान और कीर्तिदान. इन में अभयदान व सुपात्रदान ये दोनो ही मोक्ष सुख को देनेवाले या कर्मो से मुक्ति दिलाने वाले हैं, बाकी तीन प्रकार के दान भोग सामग्री देनेवाले है.

किसी के पास धन, साधनसामग्री होती है, किसी के पास चित याने उदार दिल होता है, और कहीं अन्यत्र चित व वित्त अर्थात् मन-भावना व धन दोनो होते है लेकिन धन, मन, और सुपात्र दान का संयोग ये तीनो तो किसी पुण्यवान् व्यक्ति को ही प्राप्त होते है. ×

× केसिं चि होई वित्त चित्तमन्नेसिं उभयमन्नेसिं ।
चित्त वित्त पत्तं तिन्नि विं केसिं च धन्नाण ॥ स ११/२१ ॥

इस तरह परस्पर विचार कर वे तीनों मित्र उठे, और सन्मानपूर्वक चंद्रने अपने मित्र सहित दोनों मुनियों को नमस्कार किया तथा चंद्रने अपने भाते में से शुद्ध अन्न का भावभक्ति सहित दान दिया. कहा भी है, "प्रिय वचन सहित दान, गर्व रहित ज्ञान, क्षमायुक्त वीरता, त्याग सहित धन, ये चारों कल्याण कारक प्राणीको मिलने इस जगत में दुर्लभ है.×
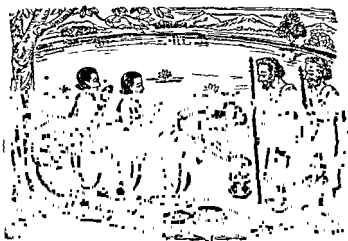
चन्द्र वणिक मुनिजो को भाव से दान दे रहा है. चित्र नं. २९.

एक समय वह चंद्र वणिक को वीर नाम के कोई

×वीर न होता क्षमायुक्त है, प्रेम सहित ना दान।
त्याग सहित ना धन मिले अहंकार बिन ज्ञान॥

व्यापारी के बीच कलह उत्पन्न हुआ, फल स्वरूप वीर की दृढ मुष्टि के प्रहार-आघात से चंद्र का उसी समय मृत्यु हो गई, वह चंद्र का जीव मर कर तूं राजा हुआ है. राम और भीम भी समय बितने पर, वहां से मृत्यु को प्राप्त हुए, और वे दोनों मर कर भट्टमात्र तथा अग्निवेतालके रूप में उत्पन्न हुए, अतः वे तुम्हारे पूर्वभव के संबंध से प्रीतिपात्र मित्रवर बने, तुम्हे मारने वाला वह वीर व्यापारी मर कर अज्ञानमय तप के प्रभाव से यहा खर्पर चोर के रूप में उत्पन्न हुआ था. जो देवताओं से भी दुर्दमनीय रहा.

हे राजन्! पूर्व कर्म के परिणाम स्वरूपमय खर्पर चोर तुम्हारे द्वारा मारा गया और पुनः दूसरी नरक मे गया. कहा है, "कर्म का फल, इस लोक में जो कर्म किया जाता उसी का परलोक मे मिलता है. क्यों कि वृक्ष के मूल में पानी देने से ही शाखाओं मे फल लगते है. किया हुआ कर्म सौ करोड कल्प के बीत जाने पर भी नष्ट नहीं होता, और किये गये शुभ या अशुभ कर्मों का फल जीव को अवश्य भोगना ही पडता है.

कर्म ऐसा बलवान है कि, उस ने किसी को नहीं छोडा. जिस कर्मने ब्रह्मा को ब्रह्माण्डरूप भाण्ड-बरतन बनाने के लिये कुंभार के रूप में नियुक्त किया, जिस कर्मने शिवजी को अपने हाथो में कपाल याने खप्पर लेकर भिक्षाटन करने को मजबूर किया, जिस कर्म के कारण विष्णु दशावतार के गहन-

वन रूप महा संकट में पड गये, और जिस के प्रभाव से सूर्य हमेशा आकाश मे घूमता है, उस कर्म को सदैव नमस्कार हो. और भी कर्म ही मुख्य है, कर्मो के आगे शुभ ग्रह भी कुछ नहीं कर सकते, क्यों कि वसिष्ठ द्वारा राजगद्दी के लिये निकाला हुआ सुंदर लग्न भी श्री रामचंद्रजी को बनवास देनेवाला बना
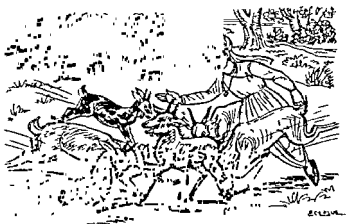
चन्द्र वणिक बकरीया से मारा जाता हुआ बकरे को बचाता है. चित्र न २३

हे राजन्! तुमने पूर्व जन्म मे बकरीयों से मारे जाते हुए एक बकरे को दया भाव से छुडा कर उस की रक्षा की थी, इस से तुम्हारी आयु सौ वर्ष की हुई." परमकृपालु गुरुदेव के मुखकमल से यह वृत्तान्त सुन कर महाराजा विक्रम जीवदया आदि कार्यों में विशेष रूप से संलग्न हुए. गुरुदेव

श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजीने पूर्वजन्म का वृत्तान्त पूर्ण कर आगे कहा, "हे राजन्! प्राणी जो पाप कर्म करते हैं उन पापों का बिना पश्चाताप व प्रायश्चित किये छुटकारा नहीं हो सकता."

गुरुदेव द्वारा प्रायश्चित लेने की आवश्यकता बताईः–

सिद्धसेन गुरुने बतलाया, पाप छिपाया नहीं करो;
पापालोचनसे होता है, दुःख दूर यह मनमें धरो.

शास्त्रों में कहा भी है, "किये गये पापों की आलोचना गुरु के पास करनी चाहिए." मनमें अलोचना लेनेकी धारणा करके गुरु के पास जा रहा हो, और यदि रास्ते चलते कदाचित् मृत्यु हो जाय तब भी वह–जीव आराधक ही कहलायेगा. ×

शरीर द्वारा जीवहिंसादि पाप लगे हो उनका कायासे तपश्या, काउसग्ग आदि अनुष्ठान द्वारा प्रतिक्रमण करना, वचन द्वारा कर्कश शब्दादिसे जो पाप हुए हो, उन का वचन से मिच्छामिदुक्कडं देकर प्रतिक्रमण करना, मन द्वारा संदेहादि से जो पाप बंधा हुआ हो, उस का मन से प्रायश्चित कर के प्रतिक्रमण करना. इस प्रकार सभी पापों का प्रतिक्रमण करना चाहिए. चपल स्वभाव के लोग माया, कपट, परवंचना,

× आलोअणापरिणओ सम्मं संपट्ठिओ गुरुसगासे।
जई अंतरावि कालं करिज्ज आराहओ तहवि ॥ स. ११/१२ ॥

करते हैं, तथा विश्वास रखने लायक नहीं होते, ऐसे पुरुष मर कर स्त्री बनते हैं, लेकिन जो स्त्री संतोषवाली, सुविनीत, सरल स्वभावी होती है, तथा हमेशा शांत, स्थिर व सत्य बोलनेवाली होती है, वह मर कर पुरुष रूप में उत्पन्न होती है.

दुर्वचनरूपशल्य को दूर करने की इच्छावाला वैरागी और संसार से उद्विग्न, अत्यंत श्रद्धावान जीव शुद्ध हेतुपूर्वक जो आलोचना करता है, वह जीव आराधक कहलाता है.

गूढ, अतिगूढ या तत्काल सुखदायक जो जो अशुभ कर्म या पाप किये हुए है, उन सब को गुरुदेव के सन्मुख प्रकाशित कर उन की निन्दा व गर्हा–अन्य के पास प्रगट करने से प्राणी उन सभी पापो से मुक्त हो जाता है. भव्यात्मा–पुरुष अपने एक जन्म के किये गये हुए पापों की आलोचना लेकर अनन्त भवो द्वारा उत्पन्न हुए पापो को भी अनायास ही नाश कर देता है. आलोचना मुक्तिसुख की परंपरा प्रदान करती है,"

महाराजा विक्रमने आलोचना के इन फलों को गुरुदेव के मुख से सुन कर भक्तिभावयुक्त हो उन्होने सम्यक् आलोचना ली, अर्थात् गुरुदेव के सन्मुख अपने पापों को कह कर उनका प्रायश्चित पूछा, गुरुदेवने भी विक्रमराजा के मुख से उसके किये हुए पापो को सुन कर उस की विशुद्धि करने के लिये उन अपराधानुसार प्रायश्चित बतलाया. उसे सहर्ष स्वीकार कर महाराजाने भी अनेक धर्मकृत्य करके, अपने पापो का उन्मूलन किया.

महाराजा के धर्मकृत्य और धर्मकरणी

महाराजा विक्रमादित्यने कैलास पर्वत के समान सौ जिनालय बनाये और उस ने सभी जिनेश्वरो के एक लाख जिनबिम्ब बनवाये-भरवाये.

वर्तमान जिनेश्वर श्री वर्धमान स्वामी के सभी आगमो व सिद्धातो को सोने और चादी के अक्षरों में लिखवाया उन्होने एक लाख साधर्मिक बधुओ को भोजन करवाया और उपर से सुदर अन्नपान वस्त्र आदि दे कर के उन्हे सतुष्ट किया प्रतिदिन वह श्री जिनेश्वर देव की त्रिकाल पूजा-अर्चा करता था. इस प्रकार प्रायश्चित पूर्ण करने के लिये तथा पापोच्छेदन के लिये राजाने तीन वर्ष तक पूजादिक नियम किये. शास्त्रों मे कहा भी है कि-कुसुम अक्षत, चदन, धूप, दीप, नैवेद्य, फल और जलादि अष्ट प्रकार से जो पूजा की जाती है, वह आठों कर्मो का नाश करनेवाली होती है. निश्चय ही वह राजा विक्रमादित्य सदैव प्रासुक-उबाला हुआ पानी ही पीता था. साथ ही निरतर परोपकार करता हुआ, वह जीवन व्यतीत करने लगा और कहा भी है, "बुद्धिमान लोग शास्त्र को ज्ञान प्राप्ति के लिये, धन को दान करने के लिये, जीवन को धर्म के लिये और शरीर को परोपकार के लिये ही धारण करते हे. "परोपकाराय सतां विभूतयः"

महाराजा विक्रमादित्य हमेशा ही नवकारसी आदि पच्चखाण करते और अष्टमी आदि पर्व तिथि के समय एकासन

आदि तप भी किया करते थे. वे सदा तीन सो नवकार गिनते थे और गुरु का योग होने पर वे गुरुवदन अवश्य करते थे

इस प्रकार गुरुदेव श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी से कहे गये सारे प्रायश्चित राजाने अगीकार कर सम्यक् प्रकार से श्री जिनेश्वरदेव के कथित धर्म का पालन करते करते वे क्रमश स्वर्ग व मोक्ष सुख को प्राप्त करते रहे जो तीनो लोकका आधार है, समुद्र, मेघ, सूर्य तथा चंद्रादि अपने अपने कर्तव्य बजा रहे है, जिस के प्रसाद से देव, दानव तथा नृपति अपने अपने सुखों को भोगते हैं, और जिस के आदेश से ही चि तामणी, कामधेनु, तथा कल्पवृक्ष आदि फल देते हैं, वह श्रीमज्जिनेन्द्र प्रणीत धर्म (जैनधर्म) आप की शाश्वत कल्याण लक्ष्मी को कुशल रक्खे.*

इस प्रकार विक्रमादित्य महाराजा जीवदया धर्म का पालन करते थे, वे स्वय तो पालन करते ही थे पर उनको देखने से अन्य लोग भी जीवदया पालन मे तत्पर रहते थे कहा है, "यथा राजा तथा प्रजा" अत. प्रजा भी उस का अनुकरण करती थी. लोग भी यथाविहित धर्म करते हुए सु-

---

* आधारो यस्त्रिलोक्या जलधिजलधरार्केन्दवो यन्नियाज्या,
भुज्यन्त यत्प्रसादादसुरसुरनराधीश्वैर सपदस्ता,
आदेश्या यस्य चिन्तामणिसुरसुरभिकल्पवल्यादयस्ते,
श्री मज्जैनेन्द्रधर्म कुशलयतु स व शाश्वती शर्म लक्ष्मीम् ॥
॥ स ११/५४ ॥

राज्य मे रहने के साथ तथा भयरहित अपने कामों को करते थे. और आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे.

पाठकगण ! इस प्रकरण में आपने महाराजा का पूर्वभव कथन गुरुदेव के मुखसे सुना, दयाभाव से चन्द्र वणिकने बकरीया से मारा जाता बकरे को बचाया उस पुण्य के प्रभाव से दूसरे भवमें सो वर्ष की आयु प्राप्त कि 'जियो और जिनेदो.' यह सिद्धान्त कितना जीवन में आदरणीय है, वह इस से प्रगट होता है

सतावनवाँ-प्रकरण

समस्या-पादपूर्ति

जो जामे निशदिन वसे, सो तामे परवीण;
सरिता गज को ले चले, उलत चलत है मीन.

इस भारतवर्ष में लक्ष्मीपुर नामक नगर में अमरसिंह नामके राजा राज्य करते थे. उन की प्रेमवती नामकी भार्या थी, कुछ समय के बाद राजा की भार्या को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिस का नाम श्रीधर रखा गया. और उसके अनन्तर एक पुत्री हुई, उसका नाम पद्मावती रखा. बहुत प्रेम से लालनपालन पाती हुई, वह पुत्री धीरे धीरे बड़ी हुई. महाराजा अमरसिंह के वहा एक कोई देवताई तोता था, वह बहुत ही बुद्धिशाली था. एक वख्त सुनने पर वह तोता हर

बात को कभी नहीं भूलता था. उसी तोते के साथ साथ पंडित के यहाँ वह कन्या पढने लगी. कुछ ही समय में वह पद्मावती विदुषी बन गई. कहा है—

जिस प्रकार पानी में पड़ा हुआ थोडा तेल भी अपने आप ही फैल जाता है, दुष्ट को कही हुई गुप्त बात भी सर्वत्र प्रगट हो जाती है, और सुपात्र को दिया हुआ अल्प दान भी अधिक फल देनेवाला होता है, उसी तरह बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त शास्त्र भी स्वयं ही विस्तार को प्राप्त हो जाते है, अर्थात् बुद्धिमान अपनी बुद्धि से ही शास्त्रों के अर्थादि विस्तारपूर्वक कह सकता है.

जब वह तर्क–न्यायशास्त्र आदि सभी विद्याओ में पारंगता बन गई, तब वह पंडित, राजकन्या व उसके सहपाठी तोते को साथ लेकर राजा के सन्मुख पहुँचा. राजकन्या के विद्या ग्रहण कर उपस्थित होने से राजा बहुत खुश हुआ, और उसने कन्या को अपने पास बिठाया, तदनंर अमरसिंह राजाने उस तोते से कहा, "हे शुकराज! तुम मेरी पुत्री से कोई समस्या पूछो." तब महाराजा तथा पंडितजी के सामने राजकन्या तथा शुकराजने परस्पर व्याकरण, छंद, अलंकार, आदि की समस्या पूछी. राजा अपनी पुत्री को विदुषी जानकर बहुत प्रसन्न हुए. कन्या को पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त एवं विवाह योग्य जानकर, राजाने शुकराज से पूछा, "हे शुकराज! किस भूपति के पुत्ररत्न के साथ इस कन्या का विवाह करना चाहिए?"
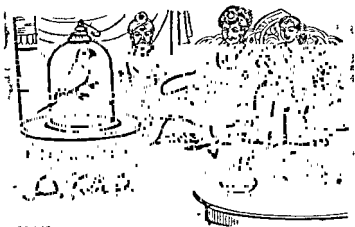
अमरसिंह महाराजा शुकराज से पूछते हैं चित्र नं २३

अमर भूप से शुक बोला "हे राजन्! यह बात सही;
कन्या का उत्तर जो देवे; शादी उस से करे वही.

जो राजपुत्र राजकन्यासे पूछी हुई चारों समस्याओं की पूर्ति करेगा, उसी के साथ राजकन्या का पाणिग्रहण कराना चाहिये. इस लिये हे राजन्! चारो दिशाओं मे दूतों को भेज कर राजपुत्रो को शुभ मुहूर्त मे शीघ्र ही बुलवाईये. उन राजपुत्रों में से जो शीघ्र ही इन समस्याओं की पूर्ति करेगा, उस के साथ राजकन्या का पाणिग्रहण होगा."

राजाने इस बात को मान लिया, और चारों दिशाओं में आमंत्रण देकर, राजकुमारो को बुलवाया, चारों दिशाओं

से शुभ दिन से राजकुमार आ गये. तब आते हुए राजकुमारों को राजा ने यथायोग्य आवास-ठहरने के लिये दिये. तब शुक राजा के पास गया, और हाथ जोडकर बोला, "हे राजन्! अब सभी राजकुमार आ गये हैं, अतः जो राजकुमार राजकन्या के पूछे हुए प्रश्नो का उत्तर देगा, अर्थात् समस्या की पूर्ति करेगा, उसके साथ अपनी पुत्री का उत्सव सहित पाणिग्रहण करवाये" तब राजाने शुक से कहा, "जैसो इच्छा है वैसा ही करो."

तब शुक राजा के पास से उठ कर पूर्वदिशा मे स्थित राजपुत्रो के पास गया और बोला, "राजकन्या द्वारा पूछी हुई समस्या की पूर्ति जो करेगा, उसे राजा अपनी पुत्री खुशी से महोत्सवपूर्वक देगे यदि आप मे से कोई समस्यापूर्ति न कर सकें तो अन्य व्यक्ति को दी जायगी."

यह सुन कर पूर्व दिशा से आये हुए राजपुत्र बोले, "हे शुक! तुम्हे जो ठीक लगे वह समस्या हमारे सामने कहो" शुकने समस्या का चतुर्थ पाद कहा, "एक ल्ली बहुएहि." अर्थात् भाषा मे स्पष्ट कर के शुकराजने कहा, "एक ही बहुतोसे." वे राजपुत्र समस्या के अर्थ को जानते नहीं थे. तब शुकराज उन राजपुत्रों से बोला, "हे राजपुत्रो! निश्चय ही कन्या आप मे से किसी को नही दी जायगी. अतः आप जैसे आये वैसे ही उठ कर चले जायें." तब खिन्न होकर वे अपने अपने स्थान को

चले गये. तब शुकराज दक्षिण दिशासे आये हुए और दक्षिण दिशास्थित राजकुमारों के पास पहुँचा, और उन राजकुमारों से इस प्रकार बोला, "हे राजपुत्रो! आप यदि मेरे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर देंगें तो राजा अमरसिंह अपनी पुत्री को उत्सवपूर्वक आप को प्रदान करेगें. यदि प्रश्न का प्रत्युत्तर नहीं दे सको तो दूसरे राजपुत्र मेरे प्रश्न का उत्तर देंगे उस के साथ राजा अपनी पुत्री का उत्सवपूर्वक विवाह करेगें."

तब उन राजपुत्रों ने कहा, "शुकराज। तुमे समस्या आदि जो पूछना हो वह कहो. तब शुकराज इस प्रकार बोला, "किं किज्जइ बहुएहिं."

समस्या का अर्थ नहीं जाननेवाले उन राजकुमारों को शुकराजने कहा, "हे राजपुत्रों। आप अपने घर जाइये." तब वे राजपुत्र खिन्नवदन होकर अपने अपने नगर की ओर चले गये. शुकराज भी पश्चिम दिशा से आये हुए और उसी दिशामें स्थित राजपुत्रों को सन्मुख यह समस्या बोला, "तहिं परिणी काह करेसि." इस प्रकार की समस्या को सुन कर उन्होंने लाख कोशीस की किन्तु समस्या की पूर्ति करने में वे असमर्थ रहे. शुकराज ने उन को प्रत्युत्तर देने में असमर्थ जान कर उत्तर दिशा से आये हुए और उत्तर दिशा में बैठे हुए राजपुत्रों से "कवण पीआऊँ खीर" यह समस्या पूछी; किन्तु वे राजकुमार भी समस्या पूर्ति का हल न होने पर निराश

होकर चारों दिशाओ के राजकुमार म्लान मुख हो अपने अपने देश लौट गये. राजा भी सभा से उठ कर अपने महल में चला गया. शुकराज भी राजकन्या के साथ राजमहल में लौट आया. तब अमरसिंह राजाने शुकराज को बुलाकर पूछा, "हे शुकराज! अब राजकुमारी के विवाह का क्या किया जाय? सब राजकुमार भी लौट गये हैं."

शुकराजने धैर्यतापूर्वक कहा, "हे राजन्! आप वृथा खेद न करें. महात्मा लोग आगे होनेवाले कार्यों के लिये खेद नहीं करते है, कहा भी है बुद्धिमान् लोग अतित काल अर्थात् बीती हुई बात का अफसोस नहीं करते, न भविष्य की ही चिन्ता करते है, वे केवल वर्तमानकाल पर विचार कर उसी समयानुसार कार्य करते हैं." ×

राजा और शुकराजने आगे क्या कार्य किया जाय तथा अपनी राजकन्या का लग्न किस के साथ कैसे हो इस संबंध मे सलाह की. सलाह कर के शुकराज उस राजकुमारी तथा अपने साथ कुछ मंत्री आदि परिवार को लेकर राजकन्या के लिये पति की शोध में परदेश की ओर चले. चलते चलते वे कई देशों में, घूमे और कई राजाओं तथा राजपुरों से समस्याएं पूछी पर कोई भी समस्या पूर्ति न कर सके. क्रमशः घूमते घूमते अवन्ती नगरी के बाहर उद्यान मे आ पहुँचे.

× अतीत नैव शोचन्ति भविष्य नैव चिन्तयत्।
वर्तमानेन कालेन, वर्तयन्ति विचक्षणा ॥ स. ११/१३ ॥

परिवार सहित राजकुमारी को उसी उद्यान मे छोडकर शुकराज महाराजा विक्रमादित्य के पास मे पहूँचा. महाराजा विक्रमादित्य की राजसभा मे पहूँच कर शुकराजने विनय सहित राजा को अपनी बात सुनाई. और कहा, "कन्या द्वारा पूछी हुई समस्याओं का उत्तर देने में अभी तक कोई राजपुत्र सफल नहीं हुआ. अतः हे राजन्! आप उन समस्याओं की पूर्ति कीजिये. इस से सारी पृथ्वी पर आप की कीर्ति फैल जायगी. अगर आपने इस समस्याओं की पूर्ति नहीं की तो सारी पृथ्वी पर आपका अपयश फैल जायगा."

विक्रमादित्य महाराजा बोले, "हे शुकराज! उस राज-कन्या को आप यहा ले आइये और समस्या बताईये"

महाराजा द्वारा समस्यापूर्ति

वह पद्मावती राजकुमारी शुक आदि मंत्री वगेरह के साथ अपने हाथ में सुदर वरमाला लिये हुए रवाना हुई. फिर राजसभा मे गोबर आदि से भूमि को पवित्र कर सुंदर चार गहूँलिये बनाई, और देवांगना के समान रूपवाली वह राजकुमारी राजसभा में उपस्थित हुई, उस समय नगर की अनेक स्त्रिया आदि उस राजकुमारी को देखने के लिये अपने अपने काम के छोड कर त्वरापूर्वक राजसभा मे आ पहूँची.

थोडी देर के बाद भूपति विराट सभा मे सपरिवार उपस्थित होने पर उस कन्याने " एकल्ली बहुएहिं " यह समस्या कह सुनाई.

समस्या के इस मनोरम चतुर्थ पद को सुनकर राजाने बडी खुशी से बहुत से लोगों के सन्मुख इस समस्या की पूर्ति इस प्रकार की—

" करि कमलि सरि जनोई, संझा जयइ ब्राह्मणा;
कुंवर पोपट इस भणइ, एकल्ली बहुएहिं. "

अर्थात् ब्राह्मण कमलके समान जनोई करके बहुतों के साथ [1]संध्या को जीतता है. अर्थात् संध्या पर विजय प्राप्त करता है और उस संध्या द्वारा अनेक प्रकारके पापों को नाश करता है. (उसी तरह् श्रावक लोक भी बहुतों के साथ एक प्रतिक्रमण-रूप–क्रिया कर के अनेक प्रकारके पापों का नाश करते हैं.)

तब दूसरी समस्या के इस पद को इस प्रकार कहा—
" किं कीजइ बहुएहिं."

महाराजाने इस सुंदर चतुर्थपाद को सुनकर इस समस्या की पूर्ति इस श्लोकद्वारा की–

" कुंति पांडव जाइआ, गांधारी (शत) सुपुत्र;
पाँचे सइ जि निरजिआ (ण्य) किं आए बहुएहिं."

---

१ हाथमें कमंडल या कमल–फुल लेकर, शरीर पर जनोई पहनकर संध्या सब एक ही गायत्रीमंत्र का जप अनेक ब्राह्मण लोक करते है. वह गायत्री एक होते हुए भी बहुतों से जपी जाती है. उसका मतलब यह है कि एक भी बहुतों को पवित्र करती है. यह सुन कर राज-कुमारी प्रसन्न हुई. प्रथम समस्या का दूसरी तरह यह भी भावार्थ हो सकता है.

अर्थात् कुंतीने पाच पाण्डवोंको जन्म दिया और गांधारी ने सो पुत्रों को. लेकिन पाच ही पाण्डवोने सो कौरवो को जित लिया, इस लिये बहुत पुत्रो को जन्म देने से क्या? वीरपुत्र एक भी अच्छा है.

तीसरी गहूली के पास खडी होकर राजकन्या तीसरी, समस्या के पाद को इस प्रकार बोली, "तेहिं परिणी काइ करेसि" इस सुदर पाद को सुनकर राजाने पुन' सब के सामने इस प्रकार समस्यापूर्ति की-

"पंचासवरिसनरपरिणावइ पांच वरसनी नारी;
पोपट ! नरिं इम भणइ ते परिणी काइ करेसि."

अर्थात्-हे शुकराज कुंवरी यह पूछती है कि पचास वर्ष का पुरुष पाच वर्ष की स्त्री से साथ विवाह कर के क्या करेगा?

इस बाद चोथी गहूंली के पास आकर कुमारीने कहा, "कवण पीआवू खीर" इस समस्या को कहा तब इस पाद की पूर्ति के लिये राजा इस प्रकार बोले,

जहीइं 'रांवणजाईउ दहमुह एकसरीर;
माई वीअंभी चींतवइ कवण पिआवूं खीर."

अर्थात्-जब रावण का जन्म हुआ तो उसके दस मुंह और एक शरीर था. अतः उसकी मा विचारमें पड गई कि किस मुख को खीर-दूध पिलाऊँ? (यह लोकमान्यता है रावण

को दस मुख थे यह जैन मान्यता नहीं है. उन्हो के गले में नवरत्न का हार था इस से दश मुख दिखते थे.)

राजपुत्री वरमाला हाथ में लकर महाराजा विक्रम के पास पहुँची
चित्र न २५

इस प्रकार जब महाराजा विक्रमने चारों समस्याओं की पूर्ति कर दी, तब राजपुत्रीने आगे बढ कर राजा के गले मे वरमाला पहनाई तदनन्तर प्रचुर धन के व्यय से सुंदर उत्सव-पूर्वक राजा विक्रमादित्यका राजपुत्री पद्मावती के साथ विवाह हुआ

पाठकगण ! अपने पुण्यबल से अकस्मात् कार्यों में जब सहज ही सफलता मिलती है, तब उसमें कोई कारण हो तो शुभ कार्यों से उपार्जन

कीया हुआ पुण्य ही है, क्योंकि जिस व्यक्ति के पास अदृश्य रूप में पुण्यभंडार भरा हुआ है उसको सहजमें ही कार्य सिद्धि प्राप्त होती है उसी तरह इसी प्रकरण में महाराजा विक्रमादित्यने अपनी बुद्धिमत्ता से गूढ -गुप्त समस्या भी सहज में पूर्ण कर दी, और जगत में यश का डंका बजवा दीया. इसी लिये हरेक प्राणी को चाहिये कि परोपकारी कार्यो में अपनी यथाशक्ति और यथामति प्रयास करते रहना परम जरुरी है.

धरम धरम सहु को करे, धरम न जाने कोय.
ढाई अक्षर धरम का, जाने सो पंडित होय.

अठ्ठावनवाँ–प्रकरण

गुलाब में कंटक—

महोब्बत अच्छी कीजिये, खाइये नागपान;
बुरी महोब्बत करके, कटाइये नाक और कान.

महाराजा विक्रम का पद्‌मावती से लग्न होने के बाद वे दोनो खूब आनंद मे दिन बिताने लगे. राजा का अधिक-तर समय पद्‌मावती के साथ ही बीतने लगा. यह देख कर अन्य रानियोंने राजा से कहा, "आप हम सब को समान माने. आप किसी का अधिक सन्मान और किसी का अपमान करें, यह आप के लिये उचित नहीं है"

देवदमनी आदि रानियों के इस प्रकार कहने पर भी राजा नहीं माने, तब उन्होंने कहा, "आप किसी रानी को

शुद्ध कुलवाली और किसी को अशुद्ध कुलवाली कैसे गिन सक्ते है? यह तो कदापि नहीं कहा जा सकता.
नीति में भी कहा है—

विष से भी अमृत को लेना, कंचन अपवित्र वस्तु से भी;
नीचों से भी उत्तम विद्या; कन्या रत्न कहीं से भी.

विष में से भी अमृत लेना चाहियें, स्वर्ण गंदे द्रव्यो में पडा हो तो भी ले लेना चाहिये, यदि उत्तम विद्या नीच व्यक्ति के पास होवे तो भी ग्रहण कर लेना चाहिये और कन्या रत्न दुष्कुल म भी होवे तो वहा से ले लेनी चाहिये."

महाराजाने कहा, मैं तो इस तरह नहीं मानता हुँ. लोग बोलते है, इस लिये मैं क्या करु?

इस पर देवदमनी आदि रानीयोंने मिल कर राजा को एक कथा कह सुनाई

"एक राजा हमेशा अपनी परमप्रिय स्त्री के हाथसे ही भोजन करता था, एकदा राजा और रानी साथ ही मे भोजन कर रहे थे उस समय रसोईयेने थाली मे पकाया हुआ मत्स्य परोस दिया यह देख वह रानी भोजन करते करते एकाएक उठ गई एकाएक उठने पर राजाने पूछा, 'हे प्रिये! तुम उठ क्यों गई?' तब उसने उत्तर दिया, 'हे राजन्! मैं आप के सिवा किसी परपुरुष का स्पर्श भी नहीं करती, और इस थाली में नर मत्स्य है."

मत्स्यका एकाएक हास्य

एकाएक रानी के इस प्रकार कहने पर वह मत्स्य हँसने लगा उसे हँसते हुए देख राजाने विस्मित होकर रानी से पूछा, 'तुम्हारे ऐसा कहने पर यह निर्जीव मत्स्य क्यो हँसा?' रानीने कहा, 'हे स्वामी! मैं इस के हँसने का कारण नहीं जानती.'

तदनन्तर उस राजाने राजसभा मे जाकर सब मंत्रिगण को रानिवास का वृत्तान्त सुनाते हुए मत्स्यहास्य का कारण पूछा, तब मंत्री लोग हाथ जोडकर बोले, 'अपने प्रियजन और विशेष कर अपनी स्त्रीयो की चेष्टाओं और उसके कृत्य के बारे मे अन्य किसी व्यक्ति से नही पूछना चाहिये कहा भी है, कि–

धनका नाश, मनका संताप, घरका दुश्चरित्र अथवा पत्नी आदि का दुराचरण, कोई दूसरो से ठगा जाना तथा अपमानित होना आदि बाते बुद्धिमान् व्यक्ति को किसी से नहीं कहना चाहिये हम लोगो से तो राज्य अथवा अपने द्वेषी राजाओ को जितने आदि सम्बन्धो की बाते ही पूछिये'

उस राजा को जब मंत्रियो से जवाब नहीं मिला, मनका संतोष नहीं हुआ और उसने अपने राजपुरोहित को बुलवाया और उसे मत्स्यहास्य का कारण पूछा, तब पुरोहितने कहा, 'हे राजन्! मैं मत्स्यहास्य का कारण नही जानता हूँ' राजा बोला, 'क्या तुम वृथा ही राज्य के ओरसे तनखा –वेतन खाते हो? जवाब क्यो नहीं दे सकते? हे पुरोहित!

यदि तुम इसका कारण नहीं बतलाओगे तो मैं तुम्हारा सारा कुटुम्ब नाश कर दूँगा, इसमें संशय मत करना.'

यह सुनकर राजपुरोहित मन ही मन दुःखी होता हुआ अपने घर आया, उस समय उसकी बालपंडिता नामक पुत्रीने उन्हे देखा तो उसे ज्ञात हुआ, 'निश्चय ही मेरे पिताजी आज उदास मालुम होते है, क्यों कि दुःखसे उनका चहेरा काला सा पड गया हैं. तब उस बालपंडिताने अपने पिता से पूछा, 'हे पिताजी! आज आप उदास क्यों दिखाई दे रहे है?' 'हे पुत्री! क्या कहूँ? मैं राजा से पूछे गये प्रश्न का उत्तर न दे सका, क्यों कि मत्स्यहास्य का कारण मुझे मालुम नहीं था.' राजा सन्मुख हुई वह सब बात संक्षिप्त रूपसे उसे कही, तब पुत्री बोली, 'हे पिताजी! आप खेद न करें, मत्स्यहास्य का कारण राजा के सन्मुख मैं स्वयं कहूंगी' अपनी पुत्री की बात से प्रसन्न होता हुआ भोजन कर पुरोहित पुनः राजसभा में गया और राजा से कहा, 'मेरी पुत्री आपको मत्स्य के हँसने का कारण बतायगी.'

तब राजाने राजपुरोहित की कन्या को मान पुरस्स बुलवायी, और चित्रशालामें बैठा कर वहाँ एक पर्दा डलवाया. पर्दे के पीछे रही हुई उस बालपंडिता को मत्स्य के हँसने का कारण पूछा, तब पुरोहित पुत्री बोली, 'यह बात आप अपनी रानी से ही पूछीये. क्यों कि मेरी लज्जा मुझे आप से यह बात कहने के लिये रोकती है.' राजा बोला, 'रानी यह बात नही बताती है; अतः यह बात तुम ही कहो.' पुरोहितकन्या

बोली, 'आप इस का कारण अभी ही जानना चाहते हैं, पर उसे अभी जानने से आप को 'मण्डक' की तरह पश्चाताप करना पडेगा-जैसे कि-

मण्डककी कथाः-

'श्रीपुर नामके नगर मे गरीब कमल रहता था. वह हमेशा जंगलसे लकडियां लाकर बेचता था. और इस प्रकार दुःख-पूर्वक अपना गुजरान करता था. कहा हैं-

अच्छा कुल, विद्या, शील, शूरता व सुंदरता की परीक्षा कर के जैसे कन्या दी जाती है, वैसे ही विधाता निपुण व्यक्ति को दरिद्रता देता हैं, लक्ष्मीभ्रष्ट पुरुष से रेती और भस्म भी अच्छे है, क्यो कि निर्धन को कभी कोई नहीं पूछता जब कि रेती और भस्म को तो लोग कभी किसी पर्व समय पर पूजते हैं

एकदा वह निर्धन कमल फिरता फिरता जंगल मे गया वहा एक देव मन्दिर मे उसने 'गणपतिजी' की एक काष्ठमय बडी मूर्ति को देखा. तब कमलने सोचा, 'इस मूर्ति के विशाल काष्ठ से मेरा निर्वाह कई दिनो तक चलेगा.' ऐसा दुष्ट विचार कर वह उसे तोडने को तैयार हुआ. अपनी मूर्ति को तोडने के लिये उद्यत कमल को देख कर, गणपति स्वयं प्रकट हुए, और उसे कहा, "तुम मेरी मूर्ति को मत तोडो. तेरी जो इच्छा हो वह माग लो.' तब कमलने कहा, 'हे गणपतिजी, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हुए हों तो मेरी बहु समय की भूखको अन्न देकर दूर कीजिये.' गणपतिजीने

कुहाड़ा लेकर कमल मूर्ति तोड़ने को तैयार हुआ. चित्र नं. २५

कहा, 'हे कमल! तुम हमेशा घी-गुड से मिश्रित पाच-मालपूआ-मण्डक और पाच स्वर्णमुद्रा यहां से लेते जाना. जब तक तुम उन मंडक को नहीं खाओगे तब तक वे समाप्त नहीं होंगे, और जब तुम उन्हे खाओगे तब वे पूर्ण होंगे, पर यह बात तुम किसी और से मत कहना. जिस दिन यह बात तुम किसी को भी कहोगें, उस दिन से मैं तुम्हे मंडकादि कुछ नहीं दूंगा.'

तदनंतर वह कमल हमेशा पांच सुवर्णमुद्रा सहित घी गुड मिश्रित-मालपूआ लाकर अपना और कुटुम्ब का सुखपूर्वक निर्वाह चलाने लगा. वह अपने सगे सम्बधियों को भी मण्डक आदि देता था, और बाद में वह स्वयं खाता था. इस प्रकार धीरे धीरे वह बहुत लक्ष्मीवान् बन गया. सगे

सम्बन्धियों को मण्डकादि हमेशा देने से कमल बजाय उसका 'मण्डक' नाम ही प्रसिद्ध हो गया. एकदा उसकी स्त्रीने उस से पूछा, 'आप यह प्रतिदिन मालपूआ-मण्डकादि कहा से लाते है.' तब कमलने कहा, 'हे प्रिये। यह कहने में मैं असमर्थ हुँ. मण्डकादि लाने का वृत्तान्त कह देने से हम सब दुःखी हो जायगे.' परन्तु उसकी स्त्रीने हठ पकडी और कहने लगी, 'यदि आप न कहेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूगी और उस हत्याका पाप तुम्हें लगेगा'

कहा है कि-वज्र का लेप, मूर्ख व्यक्ति, स्त्रियां, वन्दर, मछली, और शराब पीनेवाले व्यक्ति एक ही बात को पकडे रहते हैं और उसे वे कभी भी नहीं छोडते अपनी स्त्री के हठाग्रह करने पर उसने सारा वृत्तान्त कह सुनाया. प्रातःकाल होने पर जब वह गणपतिजी के पास गया, तब गणपतिजीने कहा, 'तूने मेरे कहने विरुद्ध कार्य किया है, अतः अब तुम यहाँ कभी मत आना, अगर वापस आयगा तो प्राणनाश का उपद्रव होगा.'

हे राजन्! ऐसा होने पर वह कमल पश्चाताप करता हुआ अपने घर आया. और अंत मे बहुत दुःखी हुआ. इसी तरह आप भी मत्स्यहास्य के कारण को जान कर दुःखी होंगे.'

इस प्रकार बालपंडिता की वार्ता मे एक दिन निकल गया. दूसरे दिन पुनः राजाने बालपंडिता को बुलाकर मत्स्य-

हास्य का कारण आग्रहपूर्वक पूछा, तब पुरोहितकन्याने कहा, "हे राजन्! इस का कारण जानने से आप सिंदूर प्राप्त करनेवाले पद्म के समान दुःखी होंगे, राजा के आग्रह पर पुरोहित कन्याने पद्म का वृत्तान्त कहना शुरू किया

पद्म की कथा :—

पहले किसी समय में पद्मपुर नामक एक नगर में पद्म नामक एक कौटुम्बिक किसान रहता था वह बहुत धन वान था धीरे धीरे उसके पास का सारा धन नष्ट प्राय हो गया तब वह अपने मनमें विचार करने लगा, 'जल रहित, कंटकयुक्त, और व्याघ्र समूह से भरा हुआ जंगल अच्छा है, घास पर सोना तथा पेड़ों की छाल के वस्त्र पहनना अच्छा है, लेकिन सगे संबधियों के बीच निर्धन होकर रहना अच्छा नहीं है'

यह विचार कर वह परदेश चला गया. किसी नगर के नजदीक में स्थित किसी एक सिद्ध पुरुष की सेवा करने लगा, वह सिद्ध पुरुष प्रसन्न हुआ और बोला, 'पद्म, तुम इस सिंदूर को ग्रहण करो यह उत्तम वस्तु है, और सुबह प्रार्थना करने पर पांच सौ सोना महोर देता है यदि तू किसी के भी सामने यह मैंने दिया है यह मत कहना यदि ऐसा कहेगा तो वह तुरंत मेरे पास लौट आयगा' उसके सामने पद्मने यह मंजुर किया, 'मैं किसी से नहीं कहूंगा' वह पद्म सिंदूर ग्रहण करके वहां से चला और नजदीक के नगर में

आया. और वेश्या के घर गया. वहां त्रैलोकसुंदरी वेश्या के साथ हमेशा बडे आमोद-प्रमोद में क्रीडा करने लगा. वहां वह सिंदूर से लक्ष्मी प्राप्त कर उसे देता और सुखपूर्वक रहता था.

एकदा उस वेश्या की माता—अक्काने अपनी पुत्री से पूछा, 'हे पुत्री! वह पुरुष हमेशा ही तेरी मांगी हुई लक्ष्मी कहां से लाकर देता है?' अंत में अक्काने अपनी पुत्री द्वारा उस की लक्ष्मी प्राप्ति का कारण क्या है वह जान लिया, तब वह छल कपट से उस सिंदूर को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगी. कहा कि—

वेश्या, अक्का, राजा, चोर, पानी, बिल्ली, बंदर, अग्नि और सोनी ये मनुष्यों को हमेशा ठगते हैं. त्रैलोकसुंदरी के हमेशा ही हठपूर्वक पूछने पर पद्मने अंत में सिंदूर द्वारा लक्ष्मी प्राप्ति का कारण उसे कह दिया. तब वह सिंदूर तुरंत पद्म की सारी सम्पत्ति सहित उस योगी पास चला गया. अतः पद्म पुनः दरिद्र बन गया, और बहुत पश्चात्ताप करता हुआ अपने घर लौट गया.

राजपुरोहित की पुत्री बालपंडिता बोली, 'हे राजन्! आप भी मत्स्यहास्य का कारण जानकर मंण्डक और पद्म की तरह दुःखी होंगे, और आप को पश्चात्ताप होगा, लेकिन फिर भी राजाने उससे मत्स्यहास्य का कारण बताने के लिये अति आग्रह किया. तब वह बालपंडिता बोली, 'हे राजन्!

मत्स्यहास्य का कारण जानने पर आप को रमा नामनी की स्त्री की तरह पश्चात्ताप करना पडेगा. जिस की कथा इस प्रकार है.

रमा की कथा :-

लक्ष्मीपुर नामक नगर मे मुकुन्द नामक एक क्षत्रिय राजा था. उसको रमा नाम की पत्नी थी. एकदा उसने पास ही के एक नगर के राजा चन्द्र को देख लिया, जिस से उसके रूप पर मोहित हो गई और उसे वरण करने की इच्छा करने लगी, अत वह हमेशा चिंतातुर रहने लगी. जब मुकुन्द उसे चिंतातुर रहनेका कारण पूछता तो इधर उधर की मिथ्या बाते वह कह देती कहा भी है कि,-*चिंतातुर लोगों को कहीं* सुख नहीं मिलता न उन्हे नींद आती है

राजा के थोडा बहुत बोलने पर भी वह उस पर बहुत गुस्से हो जाती एक दिन क्रुद्ध होकर उसने कहा, 'मैं अन्य राजा के साथ विवाह करूंगी' तब मुकुन्दने कहा, 'इस प्रकार बोलना उचित नहीं है, क्यों कि कामभोग की इच्छा से कोई स्त्री किसी दूसरे राजा के पास नहीं जाती कहा भी है—

ऐश्वर्य का अलकार मधुरता, शौर्य का भूषण वाणी पर काबु-संयम, ज्ञान का भूषण शांति, शास्त्र ज्ञान का भूषण, विनय, धन का भूषण योग्य सद्पात्र मे धन का व्यय करना, तपस्या का भूषण अक्रोध, प्रभाव-अधिकार का भूषण क्षमा, तथा धर्म का भूषण दंभ रहितता है लेकिन सभी मे उत्तम और सर्वगुणो का आश्रयस्थान शील-सदाचार ही परम भूषण

है.× अतः हे रानी, यदि तुम मुझे छोडकर जाओगी तो तुम्हारे लिये वह अवश्य अनर्थकारी होगा. बाद में और पश्चात्ताप ही करना होगा. यह सुन कर पत्नीने कहा, 'आप ऐसा न कहो. मैं वहां अवश्य जाउँगी, और उसके लिये आप मुझे "पान" याने विवाह के कर्तव्य से मुक्ति का चिह्न दे दें.' उसका ऐसा कहने पर राजाने भी उसे पान देकर बिदा कर दिया.

रमाने अपने पति से तलाक–छुट्टी लेकर राजा चंद्र के नगर में गई, उतने समय में अकस्मात् राजा चंद्र कि मृत्यु हो गई. तब वह पुनः लौटकर अपने पुराने स्वामी के पास आई. पर जब रमा चली गई थी, तो राजा मुकुंदने एक बुद्धिमती तथा विनयशील स्त्री के साथ विवाह कर लिया था. रमाने अपने को स्वीकार करने के लिये अत्यंत अनुनय विनय–प्रार्थना कि, इस पर मुकुंदने कहा, 'तुम जिस क्षत्रिय के साथ विवाह करने गई थी, उसी के पीछे काष्टभक्षण क्यों नहीं किया अर्थात् सती क्यों न हो गई? अब मैं तुम्हे अपने घर में नहीं रख सकता.'

हे राजन्! उन दोनों से त्यक्ता होने पर जिस तरह वह रमा नामक स्त्री अत्यंत दुःखी हुई, उसी प्रकार इस वृत्तान्त के सुनने पर आप भी हमेशां पश्चात्ताप करोगे.'

× ऐश्वर्यस्य विभूषणं मधुरता, शौर्यस्य वाकसंयमो,
ज्ञानस्योपशम. श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रेव्यय;
अक्रोधस्तपस. क्षमाप्रभवतो धर्मस्य निर्व्याजता,
सर्वेषामपि सर्वकामगुणितं शील परं भूषणम् ॥ ष. ११/१८३ ॥

इतना कहने पर भी राजाने अति आग्रह किया, तब बालपंडिता बोली, 'हे राजन्! पर स्त्री से ऐसी बात पूछना आपके लिये योग्य नहीं है. फिर भी यदि आप जानना ही चाहते हैं तो आप अपने 'पुष्पहास' नामक मंत्री को अभी बुलाकर पूछ सकते है.'

राजाने कहा, 'वह मंत्री तो जेल में डाला गया है.' बालपंडिताने कहा, 'उसे जेलखाने में से जल्दी ही बुला कर पूछ लीजिये, उस पुष्पहास मंत्री पर देवता प्रसन्न है. अतः उसके द्वारा आराधना करने पर देव सभी शुभाशुभ कह देते है.'

बालपंडिता के इस प्रकार कहने पर राजाने पुष्पहास मंत्री को जेलखाने से निकलवा कर अपनी सभा मे बुलवाया. सभा में आने पर जब वह मंत्री हँसा तब उस के मुख से फूलों का समुह गिर पडा.

मत्स्यहास्य का रहस्यस्फोट

राजाने कहा, 'हे मंत्रि! मत्स्य के हँसने का क्या कारण था?' राजा के द्वारा इस प्रकार पूछने पर मंत्रीने लेखनी, कागज और स्याहि मँगवाकर वहाँ रख दिया. तब देवने उस कागज पर स्पष्ट रूप से इस प्रकार लिख दिया, 'हे राजन्! तुम्हारी प्रिया महाबल के साथ प्रेमपाश में बंधी हुई है, यदि तुम्हे शंका हो तो उस के पीठ पर का वस्त्र उतार कर देखो, जिससे तुम्हारा संशय नाश हो जायगा.'

तब राजा अपनी रानी के पास जाकर एकान्त में उस के पीठ पर से वस्त्र हटा कर देखा. इस से देव कथनानुसार मार के चिह्न देख कर, उन के मन का संशय दूर हो गया. अपनी पत्नी को दुःशीला जान कर वह राजा मन ही मन चमत्कृत हुआ. पश्चात्ताप करने लगा."

जब राजा विक्रमने यह बात सुनी तो उन्हें भी आश्चर्य हुआ और तब से वह अपनी सभी पत्नियों को समान मानने लगा.

मन मोती और दूध रस इन का एही स्वभाव;
फाटे फिर वे नव मिले करो क्रोड उपाय.

लोलुपता दुःख का मूल है :—

उज्जैनी नगरी में धन्य नामक एक किसान रहता था. एकदा वर्षा ऋतु के दिन मे घर के समीप अत्यंत कीचड होने की वजह से तथा पैर फिसल जाने से गाढ कीचड मे कटी-भाग तक फंस गया. उसने बाहर निकलने के बहुत प्रयत्न किये, किन्तु कीचड से मुक्त नहीं हुआ, तब वह सहायता के लिये लोगों को चिल्ला चिल्ला कर बुलाने लगा.

उस समय अचानक महाराजा विक्रमादित्य उधर से निकल रहे थे, उन्होंने उस किसान को खिंच कर बाहर निकाला और पूछा, "तुम इस मे कैसे फंस गये." तब धन्यने जवाब दिया, "हे नृप! मेरे इस पंक मे डूबने का कारण सुनिये,

इस नगर में एक किसान कुटुम्ब रहता है, उस का नाम भीम और उस की स्त्रीका नाम लक्ष्मी है, क्रमशः उसके धन्य तथा सोम नामक दो पुत्र हुए. उसके घर पाँच भैंसे थी. उन के दूध से दस सेर घी बनता था. जिस में से भीम की पत्नी आठ सेर घी का संग्रह करती और दो सेर घी से अपने कुटुंब का निर्वाह करती थी.

धन्य के बड़े होने पर उसके पिताने द्रव्य खर्च कर के उस का विवाह कराया. धन्य भी चतुर किसान की तरह हल चला कर कृषि कर्म से जीवन यापन करने लगा. वर्षा काल में जब धन्य खेत में काम करता, तो उसकी माता अपनी पुत्रवधू के हाथ उसे खेत में भोजन भेजा करती थी. माता अपने पुत्र के लिये एक पलि–कछली घी हमेशां भेजती थी उसकी माता कुटुंब के प्रत्येक व्यक्ति को एक एक पलि से जरा भी अधिक घी नहीं देती थी. क्यों कि सारे कुटुंब की आजिवीका घी बेचने से व खेती से ही हुआ करती थी.

एक दिन माता किसी गाँव जा रही थी, तो उसने पुत्रवधू को आदेश दिया, 'अपने घर में जितने घी का व्यय होता है उतने ही घी से काम चलाना, अधिक घी का उपयोग मत करना.' सासु के चले जाने पर उस की पुत्रवधू ने गुप्त रीति से अधिक घी का उपयोग कर के सुंदर भोजन बना कर अपने पति को खिलाने लगी, साथ ही उसने अपने पति से यह भी कहा, 'यदि अब से आप इस परिवार से अलग होकर रहें तो मैं अधिक घी से हमेश आपका पोषण

करुंगी.' तब उस के पतिने कहा, 'मैंने आजतक एसा सुंदर भोजन कभी नहीं किया था.' तब हे राजन् ! मैंने पत्नी की बात का स्वीकार किया. स्त्री के वचनों में विश्वास करता हुआ माता के घर आने पर उन्हें मनचाहे शब्दों में बोल कर झगडा कर के मूढ मनवाला मैं माता पिता से अलग हो गया. तब मेरे पिताने मुझे एक भैंस, एक हल तथा पांच सौ रुपये दिये. पहले तो पत्नी मुझे खुब आदरपूर्वक स्नानादि करवा कर अधिक घी खिला कर सेवाभक्ति करने लगी. फिर कुछ समय जाने के बाद वही मुझे केवल थोडा ही घी देकर भोजन कराने लगी. तदनंतर धीरे धीरे घरनिर्वाह की चिंता द्वारा मेरा शरीर सुखने लगा. और इसी कारण निर्बलता से कीचड में गिर गया, और मेरी यह दुर्दशा हुई."

इस प्रकार उस किसान का वृत्तान्त सुनकर महाराजा विक्रमादित्य को किसान की दरिद्रता से दुःखी हालत देख करुणा आई, और अपने भंडार से एक करोड सुवर्णमुद्रा निर्वाहार्थ दी

पाठकगण ! इस प्रकरण में राणीओं द्वारा कही हुई बात में से यह सार लेना आवश्यक है कि कोई कार्य दीर्घ विचार किये बिना नहीं करना चाहिये, बीना विचारे कार्य करने से पश्चात्ताप करना पडता है, और अन्तिम में लोलुपता दु.ख का मूल है उस विषय से धन्य किसान की कहानी सुन महाराजा के दील में करुणा उत्पन्न हुई और अपने भंडार में से सहाय देकर सुखी कीया. अपनी शक्ति के प्रमाण में परोपकारी कार्यो में सहयोग देते रहना मानवमात्र का कर्तव्य समजे.

उनसाठवाँ—प्रकरण

पच परमेष्ठी छे जग उत्तम, चौद पूरवनो सार;
गुण जस कहेतां पार न आवे, महिमा जास अपार.

धन्यशेठ व रत्नमंजरी

एक समय विक्रम राजा नगरचर्चा सुनने के लिये रात्रि मे वेष बदल कर घूमने निकले, एक चौराहे पर लोगों आनद पूर्वक इस तरह की बातें करते हुए सुना—

"इस नगर में धन्य नामक एक धनाढ्य श्रेष्ठी है, वह धर्मध्यान के प्रति विशेष अनुरागी है, द्रव्य तथा भाव से त्रिकाल जिनेद्रपूजा करता है. उस की धर्मकार्य में मग्न, शीलवान् एक धर्मपत्नी है, उस स्त्री के समान इस समय पृथ्वी पर भी कोई अन्य सद्गुणी नारी देखने मे नहीं आती. लोगों के मुख से उस सेठ और स्त्री का बहुत बहुत वर्णन सुनकर राजा आश्चर्य पाता हुआ अपने स्थान पर आया और आनदपूर्वक रात्रि बिताई.

दूसरे दिन जब राजा राजसभा में आये तब उन्होंने मत्रियों से धन्य श्रेष्ठी का निवासस्थान वगेरह पूछा, इस पर मत्रियोंने कहा, "हे स्वामिन्! आपके नगर मे धन्य नामक कितने ही धनवान व्यक्ति हैं उन धनाढ्यो मे कोई सदाचारी है, कोई शराबी, कोई पापी तो कोई वेश्यागामी है,

कोई मांसभक्षी है, कोई शिकारी है, कोई परस्त्री लंपट, कोई झूंठ बोलनेवाला, कोई परद्रोह करनेवाला, कोई अनामत रकम खा जानेवाला, कोई झूंठी साक्षी देनेवाला, कोई कृपण और कोई निर्धन भी है.

साथ ही कुछ धन्य नाम के सेठ लोग धर्मकार्य में तत्पर, कोई स्वदारा संतोषी, कुछ पर स्त्री त्यागी, कुछ दूसरों की निन्दा न करनवाले, कुछ विचक्षण भी है, तो कोई मूर्ख भी है, पर इन सब में धन्य नाम का धनपति श्रावक है, जो पूरा धर्मिष्ठ, शीलवान, शांत तथा गुणों का भंडार है, वह श्रावक के २१ गुणों से युक्त है. +

और वह धनद् सेठ मार्गानुसारी के पेंतिश गुण से भी युक्त है. ×

× श्रावक के २१ गुण.–१ अक्षुद्र २ रूपवान् ३ प्रकृति से सौम्य ४ लोकप्रिय ५ अक्रूर ६ पापभीरु ७ अशठ ८ दाक्षिण्यवान् ९ लज्जालु १० दयालु ११ मध्यस्थ सौम्यद्रष्टि १२ गुणरागी १३ सत्यवादी १४ सुपक्षयुक्त १५ सुदीर्घदर्शी १६ गुणदाप को विशेष जाननेवाला १७ वृद्धानुसरी. १८ गुणवालो का विनय करनेवाला १९ किया हुआ उपकार को सदा याद करनेवाला कृतज्ञ २० परोपकारी २१ लब्धलक्ष

× मार्गानुसारी के पेतीश गुण –१ न्यायोपार्जित धनवाला, २ शिष्टाचार की प्रशसा करनेवाला, ३ समान कुल, शीलवान भिन्न गोत्र मे विवाह करनेवाला, ४ पापभीरु, ५ प्रसिद्धदेशाचारानुसार बर्ताव करनेवाला ६ राजादि की निंदा न करनेवाला, ७ जहॉं पडोशी अच्छे हो और न अत्यत

वह धन्य धीरे धीरे वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ, गात्र, शिथिल पड गये, दांतो को गिर जाने से मुह ढीला पड गया और धीरे धीरे सारे शरीर की सभी प्रकृतिओ मे कमी आने लगी. जरावस्था के लिये कहा भी है कि—

अवयव धीरे धीरे संकुचित होते है, गति धीमी पड

गुप्त, न अतिप्रकट स्थान में रहनेवाला, ८ अनेक द्वार वाले घर में नहीं रहनेवाला ९ सदाचारी के साथ-मैत्री करनेवाला, १० मातापिता का पूजक ११ उपद्रववाला स्थान का त्याग करनेवाला, १२ निंदनीय कार्यो से उन्मुख वान त्यागी १३ आयके अनुसार खर्च करनेवाला, १४ अपनी स्थिति अनुकूल वस्त्राभूषणादि पहननेवाला, १५ बुद्धिके आठ [1]गुणोको धर्ता-याने धारक १६ सुयोग मिलने पर धर्म सुनने वाला, १७ अजीर्ण होने पर भोजन छोडनेवाला, १८ उचित समय पर भोजन कर उसे अच्छी तरह पचानेवाला, १९ धर्म, अर्थ काम इन तीनो पुरुषार्थो का परस्पर बाधा न हो उस तरह साधन करनेवाला, २० अतिथि, साधु और दीनों को शक्ति-अनुसार सेवा करनेवाला, २१ कदाग्रह रहित, २२ सद्गुण पक्षपाती, २३ देशकाल के अनुसार निन्द्य आचार को त्यागनेवाला, २४ शक्तिअशक्ति को जाननेवाला, २५ व्रतधारी ज्ञानी वृद्धजनो का पूजक, आश्रित तथा अनाश्रितो का यथाशक्ति पोषणकर्त्ता, २६ दीर्घदर्शी, २७ कृतज्ञ, २८ विशेषज्ञ, २९ लोकप्रिय, ३० लज्जावान्, ३१ दयावान्, ३२ सौम्य, ३३ काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर को जीतनेवाला, ३४ परोपकारी, ३५ इन्द्रियों को वश में रखनेवाला अर्थात् ए पेतिश गुण जीवन में आचरीत हो जाय, तो मानवता को सुशोभित करने वाले है

१ सुश्रुषा, २ श्रवण, ३ ग्रहण, ४ धारणा, ५-६ उहोऽपोहा, ७ अर्थविज्ञान, ८ तत्त्वज्ञान की विचारणा.

जाती है, दाँत गिर जाते हैं, दृष्टि भी मंद पड जाती है, रूप का नाश हो जाता है, मुहमे से लार गिरती है, बंधु-जन-स्वजनादि भी उस वृद्ध का कहना नहीं मानते, यही नहीं पत्नी भी सेवाभक्ति कम कर देती हैं, अत धिक्कार ऐसी जरावस्थासे पीडित पुरुष को जिस की आज्ञा उस के पुत्र भी नहीं मानते. +

हाथ कापता है, सिर धुनता है, ऐसा व्यक्ति क्या करेगा, लेकिन जब उसे यमपुरी ले जाने के लिये कहता है तो वह उसे मना करता है, अर्थात् उस की ऐसी बुरी हालत होने पर भी वह मरना नहीं चाहता. अर्थात् जीना सभी का पसंद है, मरना किसी को भी अच्छा नहीं लगता है.

धर्महानि वृद्धापन सुत का मरण दुःख कहलाता है,
भूख महादुःख होता सब में क्यों कि उदर पिस जाता है.

इस प्रकार की वृद्धावस्था प्राप्त होने पर भी वह हमेशा षट्कर्म करता है, और त्रिकाल जिनेन्द्र पूजा तथा गुरु की सेवा कर के अपने अशुभ कर्मो का नाश करता है उसकी गुणसुंदरी नामक पत्नी थी जो गुणवती और पतिपरायण थी. अपनी सुशील पत्नी होने से वह अपने को धन्य सम-

+ गात्रं सकुञ्चितं गतिर्विगलिता दन्ताश्च नाशं गता,
दृष्टिर्भ्रश्यति रूपमेव ह्रसते वक्त्रं च लालायते,
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते,
धिक्कष्टं जरयाभिभूतपुरुषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते ॥ स. ११/१४१ ॥

ज्ञता था. उस के पास अट्ठारह करोड़ की सम्पति थी जिसे वह सात क्षेत्रों में खर्च करता था, और उनके दिन आनद में वीतते थे, लेकिन एक कमी थी, उस को कोई सतान नहीं था.

रत्नमंजरी—

उसी नगर मे श्रीपति नामक एक सेठ था, उसे श्रावक धर्म का पालन करनेवाली श्रीमती नामक स्त्री थी. लोग उन की खुब तारीफ किया करते थे, क्यों कि जो ऋद्धि, वृद्धि, कीर्ति और स्वजन समूह से युक्त होता है, उसी की लोग प्रशसा अधिक करते है अर्थात् ये सब चीजे उस के पास थी उस सेठ के सोम, श्रीदत्त और भीम नामक तीन पुत्र थे, उस के बाद सुदर तथा शुभलक्षणा एक पुत्री का जन्म हुआ, उस समय सेठने पुत्र जन्म से भी अधिक उत्साह के साथ उस का जन्मोत्सव मनाया, और उसने काफी द्रव्य खर्च किया, पुत्र जन्मका महोत्सव तो सभी करते है, लेकिन पुत्री के जन्म होने पर उत्सव तो कहीं भी देखने में नहीं आता कहा भी है—

पुत्री के जन्म होते ही शोक होता है, बडी होने पर उसे किसे देना इस की बडी चिता होती है, पुत्री का विवाह करने के बाद वह सुखी होगी या नहीं इस का तर्क वितर्क होता रहता है, सच है, कन्या का पिता होना कष्ट कर ही है. लेकिन इस श्रीपति सेठने तो पुत्र जन्म से अधिक हर्ष

के साथ अपनी पुत्री का जन्मोत्सव किया सभी स्वजन लोगों का वस्त्रालकार आदि से सन्मान किया और उस पुत्री का नाम रत्नमजरी रक्खा. क्रमश जब वह पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुई तब सुदर नारी के समान रूपवती दिखने लगी सुदर लक्षणों से शोभायमान, हमेशा सभी दोषो से दूर, खूब लावण्यवाली, हाथी के समान चालवाली और चोसठ कलाओं से पूर्ण वह रत्नमजरी इतनी सुदर दिखती थी कि सभी स्त्रियों को रूप ओर सौन्दर्य म उसन हरा दिया था अपनी सुदरता से वह साक्षात् कामदेव की पत्नी रति के समान मालुम पडती थी पूर्ण युवावस्था के प्राप्त होने पर भी उसके शरीर म काम विकार पैदा नहीं हुए थ उसे विवाह की जरा भी इच्छा नहीं थी उसे और वह देव गुरु की पूजा आदि धर्म क्रिया हमेशा करती थी, अर्थात् वह परम धार्मिक थी

पुरुष जाति से उस को कोई द्वप नहीं था, केवल धर्मक्रिया में उसके दिन व्यतित होने लग उस की माताने एक दिन अपनी गोद मे बिठाकर उसको पूछा, "हे पुत्रि! तुझे कैसा वर पसद है? अर्थात्–तू किस के साथ शादी करना चाहती है?" तब लज्जित होती हुई वह बोली, "देव, दानव, राजा, किन्नर, सेठ, कुबेर मुझे कोई भी वर पसद नहीं है" उसके माता–पिताने बहुतसे प्रयत्न किये, किंतु उसने शादी करना मजूर नहीं किया वह वणिक्सुता जगत को मोहित करनेवाली सुदर अवयववाली, शुक्ल पूर्णिमा के चद्रमा की तरह पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हुई थी यौवनमद से उन्मत्तः तारुण्य वृक्ष की मंजरी

के समान और लावण्य की खान समान उस रत्नमजरी की अवस्था शादी के योग्य हुई इक्कीस वर्ष की उम्र हो जाने पर भी उस के मन में विवाह करने की इच्छा नहीं हुई, साथ ही पुरुषो के साथ विकाररहित रहते हुए नि सकोच वार्तालाप किया करती थी

उसी बीच धन्य श्रेष्ठी की पत्नी गुणमजरी का समाधिपूर्वक देहान्त हो गया सेठने अपनी पत्नी की उत्तरक्रिया वगैरह की, उधर उस धन्यसेठ की उम्र ८० वर्ष की हो गई थी रत्नमजरी जो उस के पडोस मे ही रहती थी उसे वृद्ध और पत्नी रहित देख कर उसने मन मे उस धन्य सेठ को अपना पति बनाना चाहा, और एक दिन धन्यसेठ को आदरपूर्वक कहने लगी, "गृहस्थों का समय गुणवान स्त्री के बिना नहीं कटता ह धन्य सेठ! अपनी पूर्व पत्नी के शोक का त्याग करो मन को प्रफुल्लित करो, और किसी स्त्री के साथ विवाह कर हमेशा सुखी बनो" धन्यने कहा, "मेरा शरीर शिथिल हो गया है, और मैं अतिशय वृद्ध हो गया हूँ अत अब मेरे साथ कौन सी कन्या विवाह करेगी?" तब रत्नमजरी ने कहा, "किसी वृद्ध कन्या को विवाह द्वारा अलकृत करो, जिस से वह आप की हमेशा अच्छी तरह सेवा करेगी" धन्य सेठ बोला, 'उठने, चलने, बोलने और खडे रहने में भी मैं तो अशक्त हूँ, तो फिर स्त्री को ग्रहण कर क्या करूँ?" वह बोली, "यदि तुम्हारी इच्छा मेरे साथ विवाह करने की हो तो मैं अभी तुम्हारे साथ शादी कर के

अपनी कन्यावस्था का त्याग कर दूँ, पुण्य और कृपा के पात्र वृद्ध श्रेष्ठ पति को पाकर मैं जल्दी ही अपने स्वजनों को कृतार्थ करना चाहती हूँ. यदि आप मेरा पाणीग्रहण करें तो मैं अपने आप को आप के संग से कृतार्थ कर दूँ." रत्नमजरी की इच्छा जान कर धन्य सेठ बोला, "तुम सुरूपा है, सुंदरी यौवनशालिनी है, और रूप सौभाग्यादि गुणो से शोभित तुम्हारा मिलना देवों को भी दुर्लभ सा है, किन्तु मैं तो वृद्ध हूँ मेरे केश सफेद हो गये है, दांत गिर गये है, यौवन रूप नष्ट हो गया है, अब तो मैं घृणापात्र बन गया हूँ अतः हे गजगामिनी, यदि तुझे विवाह करना हो तो सुंदर यौवनवान व स्वरूपवान किसी अन्य वर को पसद कर तुम्हारे मेरे मध्य सरसव और मेरुपर्वत जितना अंतर है कहाँ मैं? और कहाँ तुम? कहा भी है

अनुचित फल की इच्छावाले अधमपुरुष का निवारण विधाता ही कर देते है जैसे अंगूर के पकने के समय मे कौओं के मुंह मे रोग उत्पन्न हो जाता है"

जब धन्यने रत्नमजरी को बहुत युक्ति से समझाया तब रत्नमजरीने कहा, "आपने जो कहा वह योग्य है, पर कन्या यदि चाहे तो अपनी स्वेच्छा से वृद्ध को अपना पति पसंद कर सकती है जैसे कि—

सुन्दर वर कन्या कहे, पिता कहे गुणवान;
माता धन को चाहती, और लोग मिष्टान्न.

कन्या केवल वर का रूप देख कर पसंद करती है, माता वर के धन को देखती है, पिता वर के विद्या तथा गुणों को और भाई आदि वर के कुल को देखते है. लेकिन अन्य स्वजन लोग तो केवल मिष्टान्न ही चाहते है. *जिस पुरुष में* सुंदर कुल, शील, भाग्यशालिता विद्या, धन, सुंदर शरीर और योग्य वर ! आदि गुण हो उस पुरुष को पिता अपनी पुत्री को दें.'

वर में माता-पिता तथा बांधव इन गुणो का होना पसंद करते है, लेकिन कन्या तो अपने मनपसंद पति की ही इच्छा करती है. कहा भी है—

कन्या तो अपनी रुचि के अनुसार चाहे वह राजा हो या रंक स्वरूपवान् हो या कुरुप उसे ही मन से चाहती है, हे धन्य सेठजी ? मैं भोगसुख के लिये या धन प्राप्त करने की इच्छा से व पुत्र प्राप्ति के लिये तुम्हें नहीं वरती हूँ, मैं केवल पुण्य की पूर्ति करने के लिये, शीलपालन के हेतु से तुम्हारे समान सुशील व्यक्ति को प्राप्त करके अपनी कौमार्यवस्था का त्याग करना चाहती हूँ अतः अब आप अपने हृदय में विचार करके अभी ही मुझे अंगीकार कर सुखी बने. मैंने मन, वचन और काया से आप को वरण कर लिया है, और आप के गले में मैं अभी ही वरमाला पहनाती हूँ. उसी समय आकाश मे देवदुंदुभी का नाद हुआ, और ऐसी मनोहर आकाशवाणी हुई कि इस कन्या का कथन सुंदर है, साथ ही अशोक, चंपा आदि पंचवर्ण के सुगंधित फूलों की उन दोनों

के मस्तक पर वर्षा हुई, साथ ही अकस्मात् एक पुष्पमाला रत्नमंजरी के हाथ में आई, जिसने प्रेमपूर्वक धन्य सेठ के गले में आरोपित कर दी.

रत्नमंजरी परम श्रद्धा धन्यशेठ के गलेमें आरोपित कर रही है.
चित्र नं २६

जब रत्नमंजरी के पिताने अपनी पुत्री के इस वृत्तान्त को सुना तो उसने भी शीघ्र ही उस वृद्ध धन्य श्रेष्ठी के साथ अपनी पुत्री का विवाह महोत्सव किया.

रत्नमंजरी की पतिसेवा

अपने पतिके चरणों को धोकर आनंदित मन से वह चरणोदक हमेशा पीने लगी, और हमेशा अपने पति को भोजन कराने के बाद ही वह भोजन करती थी.

मौनव्रतवाली, सदाचारी, सद्‌गुणों से युक्त अल्पक्रोधवाली, और अल्पभाषिणी वह हमेशा आनंद से अपने पति के साथ समय बिताने लगी. उस के पतिव्रत के प्रभाव से उसके चरण जल से वात, पित, कफ से होनेवाले तमाम रोग नष्ट हो जाते थे. उस के चरणजल से पुत्र रहितों को पुत्र प्राप्ति और चढा हुआ सर्पादि का जहर भी उतर जाता था. इस के दृष्टि मात्र से जंगल का सूखा वृक्ष भी नवपल्लवित हो उठता था. और उसके दृष्टि-मात्र से ही सर्प-माला, अग्नि-पानी, और सिंह-सियार बन जाता था. जहाँ जहाँ वह सुंदर गुणशालिनी रत्नमंजरी रहती थी वहाँ अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, तोते, स्वचक्र, परचक्र ये सात ईति-सात भय नहीं होते थे, मूलचरित्रकार ही कहते हैं, "उभी स्त्री का अद्‌भुत महात्म्य क्या कहें. वह चौसठ कला निधान, शीलरूप अलंकार धारण करनेवाली रत्नमंजरी साक्षात् लक्ष्मी की तरह उस घर में रहने लगी."

धन्य सेठ भी ऐसी प्रिया को पा कर, प्रिया सहित धर्म कर्म में खूब तत्पर रहता है. और इतना सुखी है कि उसे सूर्य के उदय तथा अस्त होने का भी पता नहीं चलता. सातों क्षेत्रों मे वह खूब धन का व्यय करता था.

इस प्रकार राजा विक्रम धन्य श्रेष्ठी व रत्नमंजरी का वृत्तान्त सुन कर आश्चर्यचकित हुए. फिर सभा विसर्जन कर अपने नित्य कर्मों को करते हुए शेष दिन व्यतीत किया. जब रात्रि हुई तब अपने आपको महासती रत्नमंजरी का रूप और

चरित्र देखने की इच्छा हुई, और उसे देखनेका विक्रम महाराजाने दृढ निश्चय मन ही मन कर लिया.

प्रिय पाठकगण ! अब यहां यह प्रकरण पूरा कर आगे का रहस्यमय वृत्तन्त अगले प्रकरण मे पढें

साठवाँ-प्रकरण

रत्नमंजरी व महाराजा विक्रम

'कीर्ति केरा कोटडा, पाडया नहीं पडंत.'

रात्रि मे विक्रमराजाने एक मुसाफिरका वेश धारण किया. अपने सखा के रूप मे एक छोटीसी तलवार लेकर निकल पडे उन्होने अपनी अगुली मे वेदारमुद्रा पहनी थी, योगी के योग्य वस्त्र पहने हाथ मे सुदर दण्ड धारण किये, और गंगा की मिट्टी से अपने बारह अंगो पर लेप करके इस प्रकार अपना वेष बदल कर धन्य के दरवाजे पर पहूँचे. पथिक रूपधारी राजाने वहां जाकर कहा, "हे सुभगे ! मैं नगर में घूमता हुआ तुम्हारे घर पर अतिथि रुप में आया हूँ." साथ ही अतिथि सत्कार का लाभ बताते हुए बोले, "जिस व्यक्ति के घर अतिथि को भोजन तथा रात्रि में रहने का स्थान मिलता है, सज्जनलोग उसी की प्रशंसा करते है. और मुक्तिरूपी स्त्री भी उस की इच्छा

करती है. अर्थात् वह जीव मुक्ति का अधिकारी बनता है. कहा भी है--

तृण सूखे घास का तिनका बहुत हलका होता है और उस से रूई हलकी होती है, लेकिन याचक तृन से भी हलका है. 'कवि कल्पना करता है फिर तो याचक को हवा क्यों नहीं उडा ले जाती? क्यों कि वह शोचती है, कि याचक मुझ से भी कुछ मांगेगा. गृहस्थ के लिये कहा है, 'तू हाथ के उपर अपना हाथ करना अर्थात् दान देना, पर किसीके हाथ के नीचे हाथ मत रखना. अर्थात् भीख मत मांगना. जिसदिन तूने भीक्षा मांगी वह दिन तू गिनती में मत लेना. राख भस्म से कौंसी का वर्तन, खटाई से ताम्बे का वर्तन, रजस्वला स्त्री पानी से अर्थात् चौथे दिन स्नान से और गृहस्थ दान से शुद्ध होते हैं' इस प्रकार उस मुसाफिर के कहने पर रत्नमंजरीने उस पथिक को सन्मान कर रात्रि में रहने के लिये अपने घर मे स्थान दिया.

धन्य सेठ की पत्नीने उस से पूछा, "हे पान्थ! तुमने शाम का भोजन कर लिया या नहीं?" वह बोला, "मैं रात को कभी भी कुछ खाता नहीं हूँ. रात्रि में भोजन करनेवाले पुरुष का अवश्य ही नरक गमन होता है. अतः आत्महित के अभिलाषी कभी भी रात्रिभोजन नहीं करते. कहा है कि—

"सूर्य के अस्त हो जाने पर पानी खून के समान और अन्न मांस के समान होता है, ऐसा मार्कण्डेय मुनिने अपनी

संहिता में लिखा है, जो बुद्धिमान् पुरुष रात में हमेशा आहार का त्याग करते है, उन्हे एक महिने में एक पक्ष १५ दिन के उपवास का लाभ मिलता हैं, और शास्त्र में नरक के चार द्वार है, 'जिस में पहला रात्रि भोजन है, दूसरा पर स्त्री गमन, तृतीय सन्धान केरी वगेरे का पाणी के अ शवाला आचार और चौथा अनतकाय कदमूल का भक्षण करना है वह'

यह सुन कर रत्नमजरी बोली, "हे पथिक! तुम बहुत पुण्यवान् हो और उत्तम पुरुष लगते हो, क्यों कि तुम्हारा मन धर्म मे दृढ है जो रात्रि भोजन नही करते वे अवश्य ही स्वर्ग-गामी होते हैं, और जेस रात मे खाते है वे नरकगामी होते हैं" इस के बाद उसने सुदर चित्रशाला में सुदर शय्या पर सुखप्रद बिछौना बिछाकर राजा के सोनेका प्रबंध कर दिया. विक्रमराजा भी पचपरमेष्ठी को मन में नमस्कार करके उस का चरित्र देखने के लिये कपटनिद्रा से सो गये पर कौतुक से जागते ही रहे

रत्नमजरीने अपने पति के चरणों को धोया, और फिर उस पानी से गंगाजल की तरह, अदर सहित अपने अगों को धोया गगा के समान पवित्र रूई की तरह कोमल, कर्पूर, कस्तूरी आदि से सुगधित की हुई सुदर शय्या पर अपने हाथ का सहारा देकर यत्नपूर्वक अपने पति को सुलाया, वह क्षणभर वहा उस के पास ठहरी तब उसने पैर और शरीर को योग्य रूप से दबाया. जब तक पति सुख से नहीं सो गये तब तक वहीं रही अपने पति को सोया जानकर वह

धीरे से उठी, और धर्मध्यान करने में तत्पर हुई, फिर दो घडी तक धर्मध्यान करके पुनः अपने पति के पास गई, और पति को पखे से हवा करने लगी.

इधर राजा जो कपटनिद्रा से सोये थे, रत्नमंजरी की पतिभक्ति देख कर विचार करने लगे, 'धन्य की प्रिया सतीरत्न है, यह सचमुच अपने पति से ही संतुष्ट है, और परपुरुष से विमुख है. गृहस्थ होते हुए भी सदाचारिणी है. अतः यह सती देवो की भी प्रशंसापात्र है.'

रत्नमंजरी का एकाएक पतन —

मध्यरात्रि बीतने पर कोई चोर द्रव्य हरण की अभिलाषा से धन्य सेठ के घर में गुप्त रूप से घुसा. अपने पति को निद्रावश जानकर, और उस सुंदर आकृतिवान चोर को देख कर कोई पूर्व भवके अशुभ कर्म संयोग से रत्नमंजरी सुध बुध खो बैठी. उस चोर के रूप को देख कर उस की काम अभिलषा एकाएक जागृत हो गई. उस स्वरूपवान नवयुवक चोर को देखते ही, कामबाण के प्रहार से विह्वल होकर, उस चोर को धीरे धीरे कहा, "यह घर, धन और मेरी यह देह इन सब को तुम भोग-सुख प्रदान कर के कृतार्थ करो. हे परम आनन्द के देनेवाले, शरीर सौन्दर्य से कामदेव को भी निरस्कृत करनेवाले, मेरी देह से भोग भोग करके मुझे कृतार्थ करो."

उस की उस बात को सुनकर चोरने डरते हुए धीरे स्वर मे कहा, "तुम इस प्रकार मत बोलो, जैसा कि—

गंदी जगह के कीडे, देवलोक के इन्द्र को, एवं गरीब को और राजा को, सभी को मृत्यु का भय समान होता है. मैं जुआ खेलने वाला, चोरी करनेवाला और व्यसन सेवन करनेवाला हूँ. अतः माता, पिता, सज्जनों और सकल लोक द्वारा त्यक्त हूँ. फिर तुम सुंदर शरीरवान एवं पतिवाली और शीलवान हो, अतः तुम्हें चोर के साथ ऐसी इच्छा रखना योग्य नहीं. एक तो चोरी करते समय मन में भय होता है, और दूसरा भय तुम्हारे साथ बात करने से मेरे हृदय में

चोर और रत्नमंजरी के बिच वार्तालाप चित्र नं २७

उत्पन्न हुआ है. फिर तुम जागती हो, अतः मेरा चोरी करने का प्रयास निष्फल हुआ. क्यों कि लोग जागते हैं, वहां से चोर कभी धन ग्रहण नहीं कर सकता." जब चोरने इस प्रकार

कहा, तो धन्य की पत्नी जो उस समय तीव्र कामबाण से पीडित थी, उसने अपनी कुलमर्यादा छोडकर कहा, "मैं कामबाण से अत्यंत पीडित हूँ. तुम्हारे भोगरूपी अमृत के बिना मैं मरी हुई ही हूँ. ऐसा तुम्हें समझना. रागरूप समुद्र में बसे हुए मेरे मनरूप मत्स्य को भोगरूप अन्न का दान करके संतुष्ट करो. जैसे हाथी स्पर्श में, भ्रमर गन्ध में और मृग शब्द में आसक्त होता है, वैसे ही मैं अभी तुम से हुई हूँ. अतः मेरे साथ विलास करके अपने मनुष्य जन्म को सफल करो. तथा मेरे शरीर को अंगीकार कर के निश्चय ही इस घर में रहते हुए विपुल द्रव्य को ग्रहण करो."

इस प्रकार इन दोनों को बातें करते सुनकर महाराजा विक्रम संसार का स्वरूप इस प्रकार विचार करने लगे—

"इन्द्रियों में जीभ, कर्मों में मोहनीय कर्म, व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत और गुप्ति में मन गुप्ति ये चारों बडे कष्ट से ही जीते जा सकते है, ऐसा जो आगम में कहा है वह सच है. जिस में कभी किसी अन्य पुरुष को अंगुली बताने जितनी सहिष्णुता नहीं थी, वही कामवश नरवीर-पुरुष स्त्री के चरणों में गिर कर क्षणमें उसका दास बन जाता है. यतियों के द्वारा वर्णित स्त्री का चंचल मन भी भोगसागर मे स्नान करने के लिये स्थिर होता दिखाई देता है.

सच ही कहा है—

यौवन, धन, सम्पत्ति, प्रभुत्व तथा अविवेकिता, ये एक एक अनर्थ करनेवाले होते है, और जब चारों ही एकत्र हो

जाय तो कहना ही क्या? अर्थात् तब तो अनर्थ की सीमा भी नहीं रहती. +

ये विषय भोग आदि दुःख से युक्त हैं, विषमय है, मायामय है, इन से अधिक निंदापात्र संसार में कौन है? इन से अधिक विरूप क्या है? विषयों में लालची बना हुआ मन को निवारण करने पर भी विषयों में स्पृहायुक्त-आशा-युक्त बनकर दौडता हैं, अतः हे मन! तुझ को क्रोडवार धिक्कार है.'

इधर रत्नमंजरी के कामुक शब्दों को सुन कर चोर बेला, "हे ललने! वृद्ध जराग्रस्त पति को छोडकर तुम मुझे चाहती हो यह ठीक नहीं. परस्त्रीगमन दोष के पाप से तथा दोनों लोक के विरुद्ध इस पाप कार्य से मुझे नरकगति मिलेगी. फिर तुम्हारे पति के जीते ही मैं तुम्हारे साथ सगम नही कर सकता, जैसे कि सिंह के वृद्ध हो जाने पर भी मृग उस की अवहेलना-तिरस्कार नहीं कर सकता."

चोर का ऐसा कहने पर वह बोली, "अभी मेरा स्वामी मर गया है. यदि तुम्हें विश्वास न हो तो पास में आकर इस का श्वास देख लो.' चोर उसे देखने जाता है. इतने में तो रत्नमंजरीने निद्रित पति के गले को अंगुठे से दबा

× यौवन धनसम्पति प्रभुत्वमविवेकता,
एकैकमप्यनर्थाय कि पुनस्तच्चतुष्टयम् सर्ग ११/३९७ ॥

कर मार डाला इसी तरह ससारमे मोह राजा नाटक भजवाता है

पत्नी के कर से मृत पति को, देख नृपति मनमे जाना,
नारी चरित कठिन है निश्चय, इस में पड कर पछताना.

पत्नी द्वरा पति के मारे जाने पर महाराजा सोचने लगा, "अहो ! नारी चरित्र बड़ा हीं दुर्घट है अरे ! जिन के अचल के पवन से रोग की वृद्धि है, उन के आलिगन से मृत्यु होने में आश्चर्य ही क्या ?

पानी मे मछली की पद प क्ति–पदचिह्न मार्ग आकाश में भी पक्षी के पद चिह्न और महिला क हृदय का भाव ये तीनो ही मार्ग अगम्य है कोई नहीं जान सकता हैं +

हल, स्त्री और पानी का स्वभाव एक सा है, तीनो ही उपर से नीचे की तरफ जाते है कामातुर–पापी स्त्री अपने पति, पुत्र और स्वजन का नाश करती है, और क्रमश खुद का भी नाश करती है"

रत्नमजरीने अपने मृत पति को चार पाई से नीचे रख दिया, और उस चोर से कहा, "अब तुम कृपा कर मुझे भोग सुख दो ' चोर बोला, "आज मैं तुम्हारे साथ विषयसुख का सेवन नहीं करूँगा अत हे स्त्री ! आज तुम सतोष धारण

+ जलमज्झे मच्छपय आगासे पक्खिआण पयपती
महिलाण हिअयमग्गो तिन्नि वि मग्गा अमग्गत्ति ॥ स ११/४०७ ॥

करे." ऐसा कह कर चोर जाने लगा तो उसने उसे रोका, इस पर वह बोला, "अभी मुझे जाने दो, कल जो तुम कहोगी वही करूँगा."

इन दोनों की इस बातचीत को सुन कर क्रोधवश राजा विक्रमादित्य हाथ में तलवार लेकर घर के दरवाजे पर तैयार होकर खडे हो गये, लेकिन उनने मन में विचार किया, "इन दोनों को मारने से मुझे क्या लाभ होगा? बल्कि प्राणीयों को मारने से निश्चय ही मुझे पाप लगेगा."

जब वह चोर दीवार मे किये हुए छिद्र द्वारा वहा से जाने लगा तो उसे रत्नमंजरीने कहा, 'तुम घरके दरवाजे में होकर ही सुख से जाओ.' जब वह दरवाजा खोला तो चोर उसमे से जाने लगा इतने मे अकस्मात् किंवाड गिर जाने से एकाएक वह चोर वहीं मर गया. कहा है कि—

द्रौपदी वचन से सो कौरवों के वंश की मूल का नाश हो गया. सुग्रीव को मारने के लिय आतुर वाली अपनी स्त्री तारा द्वारा मारा गया, सीता के प्रति आसक्त होने के कारण त्रिलोकविजयी रावण मृत्यु को प्राप्त हुआ. प्रायः स्त्री वचन के प्रपंच में पडे हुए अथवा आसक्त सभी नष्ट होते है.' ×

× द्रौपद्यावचनेन कौरवशतं निर्मूलमुन्मूलितम्;
सुग्रीवस्य वधायमोहमतुली ल) वाली हतस्तारया.
सीतासक्तमनास्त्रिलोकविजयी प्राप्तो वधं रावण,
प्राय स्त्रीवचनप्रपंचनिरतः सर्वं क्षयं यास्यति ॥ स. ११/४१७॥

दुष्ट आशयवला स्त्री आंख से किसी दूसरे पुरुष को देखती है, तो वाणी द्वारा किसी अन्य से वार्तालाप करती है, यदि किसी के साथ आलिंग करती हो तो उस समय मे फिर अन्य का ही मन मे ध्यान करती है. जैसे-स्त्री को छोड कर कहीं भी एक स्थान पर विष और अमृत साथ नहीं प्राप्त होते. आसक्त होने पर सेवा रूपी अमृत से भरी होती हैं, और विरक्त होने पर वही विषमयी वन जाती है. राक्षस के समान दुष्ट आशयवाली चंद्र कि रेखा की तरह तेडी कुटिल, संध्या की समान क्षणधर राग रखनेवाली और नदी की तरह नीच पुरुष के प्रति जानेवाली होती है.

इस प्रकार उस स्त्री का चरित्र जान कर और चोर को मरा हुआ जान कर, महाराजा विक्रमादित्य अपने स्थान पर आकर, इष्ट देव का स्मरण करते हुए सो गये.

इधर चोर को इस तरह मरा हुआ देख कर वह चोर के पास जा कर आंसू गिराने लगी. और इस तरह विलाप करने लगी, "हे पति! मुझे छोडकर तुम इस समय कहां गये? हे नाथ! हे प्राणाधार! हे वल्लभ! हे प्रियतम! विरहाग्नि में मुझे जलती छोडकर तुम कहां चले गये?"

थोडी देर रोने के बाद वह जब स्वस्थ हुई तब विचार करने लगी, 'मेरे दोनों पति मर गये, मेरा यह लौकिक-लोकविदित पति भी मर गया, और यह लोकोत्तर-सुंदर पति भी मर गया, मेरा सती धर्म भी गया, और मेरे पल्ले केवल

अपयश ही रहा. अरे ! अपने पति को मारने और अन्य पुरुषको आलिंगन करने की इच्छा इन दोनों पापों से अनंत दुःखदायी किस नरक में मेरा पात होगा ? हाय रे ! सुबह में पति रहित हो जाउँगी, तब मेरी क्या दशा होगी ? परलोक में भी नरक में गिरने से मैं महान दुःख को कैसे सहूँगी ?

कुत्सित वस्त्रवाली, अलंकार रहित, पति रहित विधवा बनी हुई मैं पापिनी अपना मुंह किसे दिखाउँगी ? मैंने पति की हत्या करके जो पाप किया है, वह लज्जा से मैं किसी को नहीं कह सकती. अब तो मेरे लिये कोठी में मुंह ढाल कर रोना ही रहा यदि उच्च स्वर से रोती भी हूं, तो मेरा सब धन राजा ले लेता है, अतः अब तो पति के साथ मेरा मरना ही अच्छा है. सुबह इस के लिये कोई प्रपंच करना पडेगा. अग्निप्रवेश कर के या जल में डुब कर मर जाना अच्छा है, लेकिन विधवा होकर जीवन धारण करना मेरे लिये उचित नहीं है.

यदि स्त्री शुद्ध स्वभाव की हो, विविध प्रकार के दान देती भी है, तब भी पतिरहिता स्त्री निन्दा के पात्र बनी ही रहती है.' इस प्रकार विचार कर उसने अपने पति के मृत शरीर को, भूमि पर पडी हुई दोनों लाशों पर कपडा ढक दिया. फिर प्रातःकाल रत्नमंजरी रोती हुई लोगों के आगे इस प्रकार कहने लगी, "हाय ! हाय ! रात को मेरे घर में कोई चोर घुस गया, उस नीचने मेरे पति और एक पुण्यशाली अतिथि की हत्या कर डाली. उस अतिथिने मेरे पति की रक्षा करने के

लिये उस चोर के साथ युद्ध किया, उस बीच उस के मर्म-स्थान पर उस चोरने ऐसा प्रहार किया कि, वह अतिथि तुरंत ही मर गया. अत अब मेरे लिये मरने के सिवाय कोई उपाय नही है. इस लिये मैं अब जल्दी ही अपने पति तथा अतिथि को लेकर जंगल मे जाती हूँ. पति के मर जाने पर कोई स्त्री रोती है, तो कोई मर जाती है, कोई अन्य पति करती है, तो कोई घर में ही रहती है पर मैं अपने पति के साथ लोगो के सामने उसी चिता मे जल कर मरुंगी, और परलोक जाकर निर्मल यश प्राप्त करुगी. कहा है कि–' सच्ची सती वही है, जो पति के पेर धोकर पीती है, और प्रिय के परलोक जाने पर अपने पति के शरीर के साथ ही स्वयं भी उसी चिता मे जल मरती है ' जैसे--

साची सती स मानीइ, पति पग धोई पिअंति;
प्रिय परलोकपंथीइ दहइ देह जि दहंति.

ऐसा कह कर उसने उस चोर तथा अपने पति के शरीर को शुद्ध पानी द्वारा स्नान करा कर साफ किया. सुबह धन्यप्रिया रत्नमंजरीने धर्मकार्य में धन का व्यय किया, और सज्जनों की साक्षी मे वह काष्टभक्षण के लिये तैयार हुई. धन्य सेठ के मर जाने का समाचार तथा उस के साथ ही रत्नमंजरी के काष्टभक्षण की तैयारी के समाचार सुनकर उज्जयिनी नगरी के लोग उस सती के दर्शनार्थ आने लगे. उस सब की आंखो में आंसु थे. लोग सती को नमस्कार कर के

बारबार इस प्रकार कहने लगे, "हे माता! तुम्हारे विना हमारा समय किस प्रकार बीतेगा? तुम्हारे विना जगत शून्य हो जायगा. यह अवन्ती नगरी विधवा बनेगी. लोगों की आशा रूपी लता सूख कर नष्ट हो जायगी, और हम सबपे आप के मरने से भारी दुःख आ पडेगा, अतः आप सती बनने का विचार सर्वथा छोड दें."

इधर कुछ लोग महाराजा विक्रमादित्य के पास गये और राजाजी से कहा, "धन्य की पत्नी सती रत्नमंजरी अपने पति के साथ कर स्वर्ग में जाने को तयार हुई है. वह रत्नमंजरी प्रत्यक्ष कामधेनु, कल्पलता और कामकुंभ समान है. हमरे लिये तो रत्नमंजरी कल्पवृक्ष के समान ही है, क्यों कि उस के पादप्रक्षालन (पैरधोने) से वात, पित्त, व कफ से उत्पन्न होनेवाले तथा विषजन्य और दुष्कर्मजनित कई रोग नष्ट हो जाते हैं, वस से पुत्ररहित स्त्री पुत्र को प्राप्त करती थी, निर्धन लोग धनवान् हो जाते थे, अभागे लोग सौभाग्यवान तथा कुरूप सुरूप बन जाते थे' लोगों की यह बात सुन कर शीलरत्नविभूषित महाराजा विक्रमादित्य की रानी श्रृंगारसुंदरी राजा से कहने लगी, "हे राजन्! मैं भी अपने शरीर को उस के चरणोदक से पवित्र करुं, जिस से मेरा वंध्यत्व —वांझपन नष्ट हो जाय, और कुल की वृद्धि हो."

रानी की यह बात सुन कर रत्नमंजरी के स्वरूप को जानने वाले राजा अंदर से मनमें हसने लगे, और ऊपर से बोले,

"उस सती शिरोमणि का चरणोदक तेरे पुत्र प्राप्ति के लिये मैं लेकर आउंगा." उपर से गंभीरता बताते हुए राजाने लोगो से कहा, "जल्दी ही उस सती शिरोमणी के लिये उस के सती होने का उत्सव करे. मैं अभी वहां आता हूँ. अतः मेरे आने तक आप सब लोग नदी तट पर ठहरें, मैं भी सती के पास जाकर अपने मन की कुछ बातें पूछना चाहता हूँ. क्यों कि जो स्त्री इस प्रकार सती होती है, और काष्टभक्षण करती है. वह जो कुछ बोलती है वह सत्य होता है."

वे लोग सती का महोत्सव करने के लिये धन्दश्रेष्ठी के घर वाद्य आदि बजाते हुए आनंदपूर्वक गये. उस समय रत्नमंजरी एक सुंदर पात्र मे चीनी-सकर सहित क्षीर का भोजन करने के लिये प्रसन्न मन से तैयार होकर बैठी थी. भोजन करने के बाद उसने अपना सब धन सात क्षेत्रों में खर्च कर, गुरु को साक्षी कर के दस प्रकार की अंतिम आराधना की. फिर श्रीजिनेश्वर देव को प्रणाम कर के लोगों से क्षमा-याच करती हुई रत्नमंजरी घोडी पर सवार होकर सती होने के लिये राजमार्ग से रवाना हुई.

उस के रवाना होने पर बाजें बजने लगे, बाजों के स्वर को सुनकर लोग अपना अपना काम छोडकर सती स्त्री रत्न-मंजरी को देखने के लिये आने लगे. उसने जो अक्षत फैंके उसे लोग, "मैं लूं, मैं लूं" कहते हुए संतान प्राप्ति के हेतु से ग्रहण करने लगे, अंत में वह रेवा, नदी के तट

पर पहुँची, वहां पर मणिभद्र यक्ष का मंदिर था. उसके पास जाकर रत्नमंजरी घोडी पर से नीचे उतरी, भिक्षुकों को दान में बहुत द्रव्य दिया, अंत मे प्रसन्न मन से चिता के पास आ पहूँची. इतने मे महाराजा विक्रमादित्य भी बहुत से नौकरों के साथ आ पहूँचे, और उन्होने लोगों के द्वारा सती का सुंदर महोत्सव कराया.

राजा विक्रमादित्य को आया हुआ देख कर रत्नमंजरी बोली, "हे राजन्! तुम चिरजीवी रहो चिरकाल यश प्राप्त करते हुए, भूमि का पालन करो, और चिरकाल धर्म मे रुचि रक्खो लोगों का जिस तरह तुमने उपकार किया है, उसी तरह चिरकाल तक उपकार करते रहो, और पुत्रपौत्रवान बनो."

रानी शृंगारसुंदरी भी वहां उस सती के पास आई, और उसे प्रणाम करके उसने पुत्रप्राप्ति के लिये उससे चरणोदक मांगा. तब सतीने थालीमें से एक मुट्ठी गीले चावल-अक्षत रानी को देकर कहा, "तुम पति के साथ पुत्र पौत्र से युक्त होकर चिरकाल तक जय प्राप्त करो."

तत्पश्चात् राजा विक्रमादित्य बातें करने के लिये सती के पास गये, और उस के कान मे कहने लगे, "तुम तीनों काल को जाननेवाली हो, और राजा की भी हितकारिणी हो, और अपने शील के प्रभाव से तुम लोगो को संतान देती हो, तुम्हारे चरणोदक से लोगों के शरीर से रोग नष्ट हो जाते है लेकिन तुमने रात्रि में चोर-अन्य पुरुष को सेवन करने की इच्छा से

अपने पति के गले को अंगुठे से दबाकर मार दिया था. तुम्हे चोर के साथ संभोग की जो इच्छा की थी, अब उस सुखेच्छा को छोडकर तुम्हे अग्नि मे गिरने से सुख कैसे होगा? तुम अब अग्नि प्रवेश कर के क्यों मरती हो? तुम नया पति कर के अपने यौवन को कृतार्थ करो. मृत्यु प्राप्त करने से भी जीव अपने किये हुए दुष्कर्म से कभी छूट नहीं सकता. हे रत्नमंजरी! तुम अभी तो काष्ठभक्षण के लिये तैयार हुई हो, लेकिन रात्रि में तो तु-ने अपने पति को मारा है. अतः तुम स्त्रीचरित्र किये विना मेरे आगे सत्य बात कहो, मैं तुम्हारा चरित्र किसी से नहीं कहूंगा."
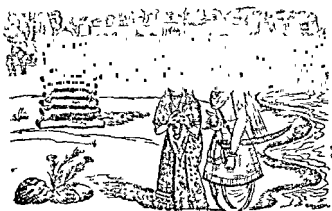
महाराजा विक्रमादित्य और रत्नमंजरी वार्तालाप करते हैं. चित्र नं. २९

'विक्रमादित्य राजाने अतिथि रूप से रात्रि का मेरा सब वृत्तान्त जान लिया है,' ऐसा जान कर रत्नमंजरी बोली,

"हे राजन्! यह बात मुझ से मत पूछो, क्यों कि जैसा समय आता है, अर्थात् जिस समय जैसा कर्म-उदय में आता है, वैसा मनुष्य का वर्ताव भी हो जाता है. हे राजन्! तुम अपने पैरों के निचे जलती हुई आग को नहीं देख पाते. कहा है कि—

दूसरे के राई और सरसों जैसे छिद्र देखते हो, लेकिन अपने बिलफल जितने बडे बडे छिद्र भी नहीं दिखते. + विष्णु, शंकर और कपिल आदि मुनिगण, चक्रवर्ती तथा मनुष्य आदि सभी स्त्रीयों के दास हैं.

गुरु, गाय, सेना, पानी, स्त्रियों और पृथ्वी ये छ निन्दा के योग्य नहीं हैं. इन की निन्दा करनेवाले स्वयं निन्दा के पात्र बनते हैं.

हे राजन्! आप को स्त्रीचरित्र जानने की इच्छा है, तो उसे जानकर तुम्हें दुःख होगा। पहेले भी वाचन के आदेश से तुम्हारी बहुत निन्दा हो चुकी है, और अब तुम मेरे पास से स्त्रीचरित्र सुन कर निन्दित होगें. तुमने बिलों में जगह जगह चूहे तथा सर्प देखे होंगे, पर अभी दृष्टि विष सर्प नहीं देखा होगा, जिस के देखते ही प्राण नष्ट हो जाता है.

तुमने समुद्र में छीप, शंख, कौडी देखी होगी, लेकिन कौस्तुभमणि नहीं देखा होगा. हे राजन्! नीम कंथेरी, करीर,

---

+ राईसरसवमित्ताणि परछि आणी पास से।
अप्पणो बिल्लमित्ताणि पिच्छतो न वि पाससे ॥ सर्ग ११/४८४ ॥

धतूरे आदि के अनेको पेडों को तुमने देखा होगा, लेकिन कल्पवृक्ष को कभी नहीं देखा होगा.

रसभूमि, विषभूमि, तथा मरुभूमि तुमने अवश्य देखी होगी, लेकिन कहीं भी रत्न और मोती से भरी हुई भूमि नहीं देखी होगी. हे राजन्! न मैं अधम हूँ, न जड हूँ और न मै स्त्रियों मे शिरोमणि हुँ, लेकिन मैं मर कर पृथ्वीतल पर अपने यश को छोडकर सुरलोक को जाउगी." यह सुन कर राजा बोला, "हे रत्नमजरी! तुम कुछ तो स्त्रीचरित्र कहो" रत्नमजरीने कहा, "तुम अपने नगर के अंदर रहनेवाली कोची हलवाइन को पूछो, वह कोची मेरा तथा अन्य स्त्रियों का भी चरित्र जानती है, अत अवन्तीपुरी मे रहनेवाली कोची हलवाइन से स्त्रीचरित्र पूछना. हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो. और मिच्छा मि दुक्कड–मेरा पाप मिथ्या हो." इस प्रकार कह कर उसने दोनो पुरुषों के साथ चिता में प्रवेश किया सब अपने अपने स्वार्थ को रोते हुए लोगों के साथ महाराजा अपने नगर मे आये. रत्नमंजरी जल कर भस्म हुई, और स्वर्ग लोकमे गई.

याना जगमे आय के मत कर बुरा काम;
बडे मोज न पावत विरथा भये बदनाम.

पाठकगण! गत प्रकरण म और इस प्रकरणमे रत्नमजरी का अद्भुत रोमांचकारी जीवन का हाल एव मेहराजाने एक स्त्रीरत्न का किस तरह विडंबित कर स्त्रीचरित्र का उदाहरण जगत के सामने पेश किया, इसी लिये

अपने महापुरुषोने कहा है कि, जो कोई व्यक्ति कसोटीकाल में आपत्ति को पार कर शुद्ध सुवर्ण की तरह निर्मल होकर दीप उठते हैं, वही जगत में प्रशंसा को प्राप्त करते हैं. उसी तरह हरेकको चाहिये की आपत्तिकाल में धीरज धरे और अपने व्रत में अविचल रहेना, वही उन्नतिका एक श्रेष्ठ मार्ग हैं.

इकसठवाँ–प्रकरण

कोची हलवाइनके वहां महाराजा का पहूँचना

स्त्रीचरित्र जानने की उत्सुकतावाले राजा विक्रमादित्य कोची हलवाइन के घर जाने के लिये अपने महल से रवाना हुए बाजार मे आकर चोराहे पर राजाने लोगों से कोची हलवाइन का घर के बारे में पूछा, तब लोगोंने कहा, "इस बाये तरफ के रास्ते से जाइए, और वहां आप परदेशी को भोजनशाला मिलेगी. पास मे ही कोची हलवाइन का घर है. आप को वहां पर उत्तम प्रकार के पकवान् श्रेष्ठ चावल, दाल, व्यंजन और शाक आदि, दहीं–दूध से संयुक्त सुंदर भोजन सामग्री द्रव्य देने पर मिलेगी. और निर्धन को मुफ्त भोजन मिलता है तथा अल्प दाम से मध्यम प्रकार की भोजन सामग्री मिलेगी. वहा इस प्रकारकी अच्छी व्यवस्था हैं.

वहां चन्द्रमणि और सूर्यमणि के समूह से बनाये हुए एक मंजिल से लेकर सात मंजिल तक के सुंदर महलो की परंपरा है, जो इस प्रकार दिखती है, मानो अपने मित्र सूर्य तथा चंद्रको मिलने के लिये आनंदपूर्वक आकाश में जा रहे हो. पंचवर्णोवाले मणियों से बंधे दर्पण की तरह निर्मल भूतल मे लोग अपना प्रतिबिंब देखते रहते हैं. जहां द्राक्ष के आसव स्वरूप अमृत जल से भरी हुई तथा सुख से उतरने के लायक सुंदर सोपानो से युक्त मनोहर वावडिया है.

जहां भिखारियों को सदा दान देनेवाली प्रत्यक्ष कल्पलता के समान कोची हलवाइन रहती है इसके पाससे भोग की इच्छावाले भोग प्राप्त करते हैं, भोजन की इच्छावालों को भोजन मिलता है, और पुत्र की इच्छावालो को पुत्र भी मिलता है. वह कोची कोपायमान होने पर चंडिका जैसी भयकर और संतुष्ट होने पर ईष्ट को देनेवाली है" इन सब बातो को सुनकर राजा मन में चमत्कृत होते हुए, अपना वेष बदल कर उस कोची हलवाईन के घर के द्वार पर आकर खडे हो गये उसके घर में अनेक दरवाजे हैं और अनेक प्रकार के लोग वहां है पांच प्रकार की ध्वनि करनेवाले मनोहर बाजें बज रहे थे, देवविमान जैसे तथा सैकडो स्त्रियों से भरे हुए उन मनोहर घरों को देख कर राजा अपने मन में बहुत खुश हुए

अदृश्य रूप कर के राजा विक्रमादित्य घर के अन्दर गये, वहां सोने के सिंहासन पर बैठी हुई कोची हलवाईन को देखा याचकगण उस की स्तुति कर रहे थे कामदेव की पत्नी रति और प्रीति के समान उस का मनोहर रूप को देख कर राजा अपने मन में विचारने लगे, "क्या यह साक्षात् इन्द्राणी है? या देवांगना है? किन्नरी है? या कोई पातालकुमारी है?" ऐसा विचार कर रहे थे कि दासी उन्हे कोई परदेशी समझ कर स्नानागार में ले गई, और स्नानपीठ पर बिठा कर कोटीपाकादि तैलों द्वारा मालिश करके कस्तूरी आदि सुगंधित मिश्रित जल से स्नान कराया राजा विक्रमादित्यने पुनः पर

देशी का ही रूप धारण किया और फिर दासी उसे भोजन-स्थान मे ले गई, जब उसने भोजन करने के लिये कहा तो राजा बोले, "मैं रात्रि मे भोजन कभी नहीं करता. क्यों कि-श्री कृष्णने युधिष्ठिर से कहा, 'जो धर्मश्रद्धा से युक्त कोई गृहस्थी हो या विवेकवान हो, उनको रात्रिभोजन नहीं करना चाहिए, तपस्वी जन हो उस को विशेष प्रकार से रात्रि भोजन त्यागना आवश्यक है. जो व्यक्ति सदाकाल रात्रि भोजन त्यागता है उसको एक मास मे पंदरा दिन के उपवास का श्रेष्ठ फल मिलता है' इस प्रकार जानकर मै रात्रि भोजन नहीं करता हूँ, सूर्य होते तक दिन में दो ही वार भोजन करने का मुझे नियम है" उस के बाद चदन का विलेपन कर हार और पुष्प समूह से शोभायमान उस राजा को वह दासी कोची के पास ले गई राजाने विनयपूर्वक कोची को नमस्कार किया, इतने मे तो उसने राजा का नाम लेकर कहा, "हे राजा विक्रमादित्य! पधारिये निरतर प्रजाका न्याय करनेवाले, आप कुशल तो है? आपकी पत्नी और मेरी पुत्री सदृश परम शीलवती देवदमनी कुशलपूर्वक तो है? किस कारण से आपने यहा तक आने का कष्ट किया?

जगत मे सभी प्राणियों को अपना ही कार्य प्रिय होता है, दूसरे किसी का कार्य प्रिय नहीं होता आप अपने कार्य से आये है, अथवा अपने मन का संशय निवारण करने आये है, सो कहो. कोची पुन बोली:

जिस स्त्रीने अपने पति के साथ अग्नि प्रवेश किया है,

वह रत्नमंजरी उत्तम सतीरत्न थी, लेकिन कल किसी कुकर्म के उदय से और पापरूप राक्षस से प्रेरित होकर चोर के साथ क्रीडा करने की इच्छा से उसने अपने पति को गुप्त रूप से मार डाला. बाद मे चोर और अपने पति को मरा जान कर उसे खूब पश्चाताप हुआ. अपने किये हुए दुष्कर्मो की निन्दा करती हुई उसने अग्निप्रवेश किया–क्यों कि–क्षण में आसक्ति, क्षण मे मुक्तता, क्षण मे क्रोध, क्षण मे क्षमावान् ऐसा मन, मोहादि की क्रीडा से बंदर की तरह चपलता को प्राप्त करता है अर्थात् मन बन्दर की तरह चपल होता है, और परस्पर विरोधी भावों की क्षण क्षण मे ग्रहण करता है.

अग्नि मे प्रवेश करते समय नदी तट पर रत्नमंजरीने आपको सत्य ही कहा है कि, 'आप पर्वत पर दूर जलते हुई आग–अग्नि को देख सकते है, लेकिन अपने पैरो के पास जलती हुई आग को नहीं देख पाते. हमेशा निश्चल बुद्धि से शास्त्र का चिंतन करना चाहिये, आराधित राजाके प्रति भी निशंक नहीं रहना चाहिये, अपनी गोद में रही हुई स्त्री की भी बडी सावधानी से हमेशा देखभाल करनी चाहिये, क्यों कि शास्त्र में कहा है, राजा और युवती कभी भी वश में नहीं रहती. ×

+ शास्त्र सुनिश्चितधिया परिचिन्तनीय-
माराधितोऽपि नृपतिः परिशङ्कनीयः ।
अङ्कस्थिताऽपि युवतिः परिरक्षणीया,
शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुत स्थिरत्वम् (वशित्वम्) ॥ स ११/५३८॥

इच्छित स्थान को पहोंच जायगी." कोची के कथनानुसार विधि करने से मंत्री पेटी सहित वहां से आकाश मार्ग द्वारा मदनमंजरी के निवास स्थान पर पहुँचा.

नृपप्रिया मदनमंजरी अपने मन के इष्ट व्यक्ति मंत्री को आया देख कर उठ खडी हुई, और आसन देकर बोली, "हे मंत्रीश्वर! आज तो आप बहुत दिनों से यहां पधारे है." मंत्री बोला, "हे प्रिये! मेरे लिये हमेशा आना संभव नहीं है." रानी बोली, "हे वल्लभ! आप के वियोग से जलता हुवा मेरा मन बिलकुल आप में आसक्त हो रहा है, और दूर रहने पर भी मैं आप के समीप हुँ, आप के सुख मे सुखी और दुःख मे दुःखी हूँ, क्योंकि आप के वियोग मे जो दिन निकलता है वह अपरिमित है, आप के वियोग में बीतनेवाला मेरा जन्म ही व्यर्थ है." कह कर मदनमंजरीने मंत्री को स्नान करवाया, और मंत्री को विविध रसवाला स्वादिष्ट भोजन करवाया, पानादि खिलाकर सुंदर शय्या की तैयारी की. कई प्रकार के शृंगारादि से भोग रूपी अमृत के दान से और कर्णप्रिय वचनों से रानी ने मंत्रीश्वर को खुश किया. भोगों को भोगते हुए रात्रि के बीत जाने पर रानीने मंत्री को कहा, "हे स्वामिन्! एक क्षण की तरह आज की रात्रि बीत गई है." तब मंत्री बोला, "अब मुझे जलदी ही जाना चाहिये, क्यों कि कदाचित् राजा यहां आ जावे तो हमारी क्या गति होगी?" मंत्री के वचन सुन कर रानीने कहा, "आप अपना मन यहां छोड जाएँ,

और मेरे अंतःकरण को अपने साथ ले जाएँ, क्यों कि मैं अबला ठहरी. मैं आपके स्थिर मनोबल से ही बल प्राप्त कर जीवित रह सकती हूँ. अन्यथा आपके बिना मैं मरी हुई हूँ ऐसा समझें. आप अधिकतर रातों मे आकर मेरे वियोग-रूपी अग्नि को शांत कीजिये. हम दोनों का संयोग करनेवाली कोची हलवाइन का दोनों पैर पकड कर मेरा प्रणाम कहियेगा."

यह सब देख कर राजा विक्रमादित्य अपने चित्त में इस प्रकार विचार करने लगे, 'अहो मदनमंजरी का चरित्र तो पापमय है.' कहा है कि—

कामान्ध औरत देखती क्या, कुल प्रतिष्ठा सुजनता,
मानमर्यादा स्वयं की भी न रखती कुशलता;
स्वच्छंद मन व्यभिचारिणी जो काम करती कठिन है,
वह काम नागिन (सर्प) मत्तगज या सिंह से भी कठिन है.

इस लिये संसार को दुःख देनेवाली हथिनी की तरह ऐसी स्त्रियों का दूर से ही त्याग करना चाहिये. ऐसे किसी मंत्र की तथा ऐसे किसी देव की उपासना करनी चाहिये कि जिससे यह स्त्री रूपी पिशाचिनी शीलरूपी जीवन को न खा सके. मान लो जगत का संहार करने की इच्छा से क्रूर विधाताने सर्प के दांत, अग्नि, यमराज की जिह्वा और विष के अंकुर इन सब को मिला कर स्त्रियों को बनाया हो! कदाचित् संयोग से बिजली

(१) पति की वल्लभता (२) पाच पर की स्थिति (३) नई नई इच्छाएं (४) सतीत्व (५) परदर्शन इस का जवाब द्रौपदीने इस प्रकार दिया. '(१) वर्षाऋतु का समय कष्टकारक है, लेकिन जीवनोपाय कृषिकर्म जलपानादि का हेतु होने से लोगों को वह समय प्रिय है. वैस ही–हे नारद! स्त्रीका भरणपोषण करनेवाला होने से ही पुरुष स्त्रीका वल्लभ–प्रिय है (२) सुदर पाँचो पाण्डव मुझे प्रिय है लेकिन मेरा चित्त छठे की तरफ आकृष्ट होता है. (३) जिस प्रकार गाय जंगल मे नये नये घास को खाने की इच्छा करती है, उसी प्रकार स्त्रियों को नये नये पुरुषों को प्राप्त करने की इच्छा होती है (४) जब तक एकान्त नहीं मिलता, वैसा क्षण नहीं मिलता, प्रार्थना करनेवाला पुरुष नहीं मिलता. हे नारद! तभी तक स्त्री का सतीत्व टिकता है, अन्यथा, सतीत्व नहीं बच सकता.

स्थान समय एकान्त का–और प्रार्थनाशील;
मिलता नहीं इस से बना, रहता नारी का शील.

(५) जिस प्रकार नया घडा जल भरा होने पर झरता रहता है, उसी प्रकार भाई, पिता, पुत्र, अथवा किसी भी स्वरूपवान् पुरुष को देख कर स्त्रीयोनि–आर्द्र हो जाती है.

एक समय किसीने पूछा —

हे प्राज्ञ! प्रसिद्ध कीर्तिवाले पाण्डु देव! श्रुत, कुल, और पुरुषों की रक्षा कौन करता है? राजा, धन और वनिता की रक्षा करने का क्या उपाय है? इस के जवाब मे कहते है, 'सतत

अभ्यास से श्रुत ज्ञान की रक्षा होती है, कुलका रक्षण वडिल पुरुषों की सतत सावधानी से होता है. पुरुष का रक्षण धर्मक्रिया से ही होता है, दान से राजाओं की और कुसुम–पुष्प से वनकी रक्षा होती है, लेकिन स्त्रीओं की रक्षा किस तरह होती है, यह मैं अर्थात् कोई नहीं जानता.

स्पर्शेन्दिय रूप महासर्प से ग्रस्त स्त्री या पुरुष अपने पति, माता, पिता आदि को ठगनेवाला कौनसा काम नहीं करता है ? स्पर्शेन्द्रिय के विष से व्याप्त श्री देवकी नन्दन कृष्णने गोपिकादि स्त्रियों के साथ क्या रमण नहीं किया है ? कामदेव के बाण के विष से विह्वल बने हुए महादेवजीने क्या तपस्वी-नी का सेवन नहीं किया था ? क्या कामबाण से विद्ध ब्रह्माजीने भी विह्वल मन होकर अपनी पुत्री ब्राह्मी के साथ विषय सेवन नहीं किया ? क्या इन्द्रने कामविह्वल हो कर अहल्या का सेवन नहीं किया ? क्या पाराशर आदि तापस भी कामग्रस्त नहीं हुए ? हे राजन् ! स्त्रियों में तो काम विशेष प्रमाण में होता है, तो फिर वह एक पति से कैसे संतुष्ट होगी ? क्यों कि—

पुरुष से स्त्री का आहार दुगुना होता है, लज्जा चौगुनी, कार्यव्यवसाय छगुना और काम आठ गुना होता है."

कोची की ऐसी सब बातें सुन कर राजा विक्रमादित्य का मन कुछ शांत हुआ और वे बोले, 'यदि स्त्री कामग्रस्त ही हो तो क्या किया जाय ?"

"संशयों का आवर्त, अविनय का घर, साहसों का

नगर, दोषों का भंडार, सैंकडो कपटों का स्थान, अविश्वास का क्षेत्र, श्रेष्ट व्यक्तिओं द्वारा भी न समझा जा शके वैसा, सर्व माया से भरा हुआ करण्डक और अमृतमय विष समान स्त्री रूपी यंत्र लोकधर्म के नाश के लिये किसने बनाया ?"+ कहकर आनंदित मनवाले राजा कोची को नमस्कार करके अपने स्थान पर आये. संसार के स्वरूप का स्मरण करते हुए राजाने बुद्धिसागर मंत्री और मदनमंजरी रानी दोनो को अपने देश से बाहर जाने का अर्थात् देशनिकाल का दण्ड दिया.

पाठकगण ! रत्नमंजरी के कथनानुसार महाराजा विक्रम काची हल-वाइन के वहां गये, और वहा क्या देखा, देख कर मनामन ही खिन्न हुए, राजराणी और मंत्रीश्वर आदि की अयोग्य कारवाही के हेतु देशनिकाल कर अपनी सारी प्रजा में न्याय का ऊच्चा आदर्श का उदाहरण बताया वासना कैसी बुरी है, मंत्रीश्वर और राजराणी को भी उसी वासना के कारण देशनिकाल होना पडा दुःखी होकर भटकना पडा, वाचक एसी वासना से सदा ही दूर रहना, वही सुख का परम श्रेष्ट मार्ग है.

नारी तो छेरी छुरी, मत लगावो अंग;
दश शिर रावण के कटे, परनारी के संग.
नागणी से नारी बुरी, दोनु मुख से खाय;
जीवता खाय कालजा, मुवा नरक ले जाय.

× आवर्त संशयानामऽविनयभवनं पत्तनं साहसानाम्,
दोषाणां सन्निधानं कपटशतगृहं क्षेत्रमप्रत्ययानाम्,
अग्राह्यं यन्महद्भिर्नरवरवृषभैः सर्वमायाकरण्डं,
स्त्रीयंत्रं केन लोके विषममृतमयं धर्मनाशाय सृष्टम् ॥ ११/१०० ॥

वासठवाँ–प्रकरण

नारी विष की वेलडी, नारी नागण रूप;
नारी करवत सारखी, नारी नाखे भवकूप.

छाहड और रमा

कदाचित् बुद्धिमान् लोग समुद्र–को पार कर लें, लेकिन स्त्रियों की चेष्टा–चरित्र का पार कोई नहीं पा सकते.

एक दिन राजसभा में बैठे हुए महाराजा विक्रमादित्य को कोई एक पंडितने आकर स्त्रीचरित्र के विषय पर छाहड की कथा सुनाई जो इस प्रकार हैं.

"श्रीपुर नामक नगर मे छाहड नामका एक किसान रहता था. धारानगरी मे रहनेवाले धन नामक कृपक की पुत्री रमा के साथ उस का विवाह हुआ.

एक समय छाहड अपनी पत्नी को पीहर से लाने के लिये सुंदर वेष धारण करके सुंदर रथ मे बैठ कर धारा-नगरी में गया. सासने अपने जमाई को अपने पुत्र की तरह अच्छे पक्वान, दाल, चांवल, घी आदि प्रेम से खिला कर उस का खूब स्वागत किया. सुंदर वस्त्र और आभूषणों से सत्कार पाकर अपनी पत्नी को अपने नगर में ले जाने के लिये छाहड तैयार हुआ.

रमा भी सुंदर वस्त्राभूषण पहन कर अपने स्वजन सबन्धियों से मिलने को गई. रास्ते में जिस प्रेमी व्यक्ति के

साथ रमा हमेशा विलास किया करती थी, वह मिल गया, उसने रमा से कहा, "तू तो अब अपने पति के साथ ससुराल जा रही है, अतः हम दोनो का एक समय वार्तालाप हो तो अच्छा." तब रमा बोली, "हे प्रिय! यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है, तो मैं तुम्हारा मनोरथ जल्द ही पूरा करुंगी. यदि तुम्हे मुझ से मिलने की इच्छा हो तो एक सुंदर रथ में बैठकर जल्दि ही हमारे जाने के रास्ते मे एक दो कोस दूर जा कर ठहरो. वहां एक ऊँचा तंबू खडा कर के और तंबू के एक तरफ रथ स्थापित कर के तुम अपने मित्र को युक्तिपूर्वक वहां खडे रखो. तुम स्वयं तंबू के अंदर रहना. तुम अपने मित्र को सिखा रखना कि, जब छाहड आकर यह पूछे, 'तुम यहां क्यों ठहरे हो.' तो वह यह जवाब दे, 'मेरी पत्नी को रास्ते मे अकस्मात् प्रसव का समय आ गया है. अभी उसे प्रसूति का दर्द हो रहा है, और मैं इसकी क्रिया जानता नहीं हूँ. अतः यहां ठहरा हूँ.' उसे इस प्रकार सिखा कर वह रमा अपने स्वजनों के घरो में घूम फिर कर खूब देर बाद प्रसन्न मुख अपने पिता के घर लौटी.

छाहड अपनी पत्नी को अपने रथ में बिठा कर सास ससुर को प्रणाम करके अपने नगर के प्रति रवाना हुआ. रास्ते में ऊंचे तंबू को देख कर सरल बुद्धिवाला छाहडने उस को पूछा, 'अरे भाई! यहां जंगल मे रथ को छोडकर क्यों खडे हो?' उसने जवाब दिया, 'अरे क्या कहूँ, यहां मेरी पत्नी को प्रसूतिकाल का दर्द हो रहा है. अतः इसी लिये अभी मैं

यहां ठहरा हूँ स्त्री के विना स्त्री का यह दर्द कौन शांत कर सकता है' तब छाहडने अपनी पत्नी से कहा, 'तू इसकी पत्नी के पास जा, और शांति का उपाय कर' यह सुन कर रमाने कहा, 'रास्ते में रुकना हम लोगों के लिये अच्छा नहीं है' तब छाहड बोला, 'हे प्रिये! क्या रास्ते में दर्द से पीडित स्त्री को छोड कर अपने घर जाना हमे शोभा दे सकता है?'

पति के कहने से रथ से उतर कर रमा उस ऊंचे तंबू के भीतर उस कपट स्त्री (अपने प्रिय) के पास गई, वहां उसे भोग विलासपूर्वक प्रसन्न कर उसकी पूर्वोक्त आशा पूरी करके शीघ्रता में अपनी कांचली उलटी ही पहन कर रमा जल्दि से अपने रथ में अपने पति की बांयी तरफ आकर बैठ गई

(रमा तंबु में जा रही है चित्र नं ३१)

उस की कांचली उलट देख कर छाहड बोला, 'तेरी कंचुकी उलटी कैसे हो गई है? और तेरी साडी मलिन क्यों हुई? और तेरा शरीर ऐसा क्यों हो गया?'

पति के प्रश्न को सुन कर रमाने कहा, 'मैंने कंचुकी खोले बिना ही पहनी थी और साडी में सल पहले से ही पडे

हुए थे.' इस पर छाहड बोला, 'मैं तुमसे यह पूछता हूँ, ये आखे किस से मिलाई और क्या उस स्त्रीने संतान को जन्म दिया है ?' तब वह रमा अपनी चतुराई का गर्व करती हुई बोली.'

छाहड छहा ते भला जेह नामिइं छहः;
रन्नि सिउ आवइं दिकरा खेडितउं वइल. ६३१

स्त्री के इस प्रकार के जवाब से छाहड अपनी पत्नी के दुष्ट चरित्र को मन में समझ गया. और उस पर अविश्वास रखता हुआ अपने नगर में आया. उसने किसी सिद्धपुरुष से एक अमृतकुंपिका प्राप्त की, और जब कभी वह बाहर जाता तो छाहड अपनी पत्नी को जला कर उसकी राख को एक पोटली में बाध कर रख जाता. जब वह घर आता तो उस अमृत+ से उसे जिन्दा कर अपना घर का काम करवाता.
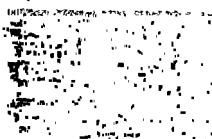
(छाहड भस्म की पोटली काठर में रख रहा है)
चित्र न. ३२

एक बार उसने अपनी पत्नी से कहा,

+ जैन मतानुसार यह बात योग्य नहि लगती, किन्तु मूल संस्कृत चरित्रकारने यह दन्तकथा के रूप से सुनी वैसी ही चरित्र में सग्रहीत की है. उसके अनुसार हमने भी अनुवाद में वैसी ही रखी है. जैन मतानुसार असमत है. वाचकगण यह शाचे — संयोजक

'मैं गया तीर्थ की यात्रा करने के लिये जाता हूँ. वहा से छ महिने बाद आउंगा. तब तक तू समाधि में रहे' कह कर अपनी पत्नी को जला कर उस की राख को एक पोटली मे बाध लिया, और अमृतकुपिका को साथ लेकर वह कोई विषम वन मे चला गया. जंगल में एक बडे वटवृक्ष की शाखा के कोटर मे अपनी स्त्रीकी भस्मको रखकर वह (छाहड) दीपावली के त्यौहार पर यात्रा करने निकला

इधर उस वटवृक्ष की छाया में बकरिया चराने के लिये एक ग्वाल सदा आता था. एक दिन उस शाखा के सूखे पत्ते देख कर वह वहा आया. उसने वह राख की पोटली देखी तो उसे नीचे उतारा उसे खोलते समय उस के अंदर की अमृतकुपिका में से एक बिन्दु उस मे गिर गया. इतने में वहा वस्त्राभूषण सहित एक सुंदर स्त्री खडी हो गई. इस से वह आश्चर्यचकित हो गया, और भयाकुल होकर वह वहा से भागने लगा. तब वह रमा बोली, 'तुम यहा आओ, और मुझे भोगदान देकर अपनी प्रिया बनाओ.' यह सुनकर वह ग्वाल वापस वहां आया, और उस से पूछा, 'तुम कौन हो? किस

(स्त्री को देख ग्वाला आतुर हो गया.)
चित्र नं. ११

कारण से किसने तुम्हे इस प्रकार कर दिया ?' उस के जवाव में रमाने कहा, 'मेरे पतिने मुझे जला कर मेरी भस्म को यहां रखा है, और वह दीपावली के दिन यात्रा के लिये गया है, छ महिने वाद वह आयगा. अतः उस के आने तक तुम मेरे साथ पति की तरह रहो.' तब वह ग्वाला उस के साथ आनंदपूर्वक रहने लगा, और वह उस से अपना घर का काम करवाता रहा.

समय बीतने लगा, रमाने एक बार उस ग्वाल से पूछा, 'दिवाली के बाद कितना समय बीता है ?' तब उसने समय जान कर कहा, 'अब एक दो दिन शेष है.' तब रमाने कहा, 'अब मेरा पति आयगा. अतः मेरी भस्म करके पूर्ववत् इस वृक्ष के कोटर के भाग में रख दो, और तुम अपने स्थान को जाओ; लेकिन मेरी प्रीति को मत भूलना.' तब उस के कथनानुसार उस की भस्म बना कर पोटली में बांध कर पूर्ववत् उस कोटर में रख दी, और अपने हृदय में उस के चरित्र को याद करता हुआ वह थोडे दूर जंगल में गया, और वहां अपने बकरें को चराने लगा. उधर छाहड अपनी यात्रा से लौटा. वह उस वृक्ष के नीचे आया और भस्म को नीचे उतार कर अपने अमृत से उसे पुनः जीवित बना दिया. उस समय रमा के वस्त्र से बकरी आदि के शरीर से निकलनेवाली गंध आ रही थी, यह जान कर उस छाहडने सोचा, 'क्या यह स्त्री किसी ग्वाले द्वारा भोगी गई है ?' इतना सोच कर वह जंगल में इधर उधर देखने लगा, और थट-

कते हुए थोडे दूर पर एक ग्वाले को वहा देखा. और उसके पास जा कर उस से पूछा, 'तुम यहा कैसे और कहा से आये हो?' तब उस ग्वालेने उत्तर दिया, 'जगल में भटकता भटकता मैं यहा आया था, तो एक अबला को वटवृक्ष के नीचे देख कर, और भोग के लिये प्रार्थना करने पर उसे बहुत दिन तक कई बार भोगा है, अब मैंने उस की भस्म कर के वटवृक्ष के कोटर में रख दिया है'

छाहडने अपनी पत्नी का विषम चरित्र जान कर उस के पास आया, और इस प्रकार से मर्म वचन कहा—

मई गई पलाइणी छापरी छारएण;
छाहड भणइ ते दाढ नर जे रत्ता तीअगुणेण.
॥ सर्ग ११/६२७ ॥

पति का ऐसा वचन सुन कर रमा बोली, 'आप ऐसा क्यों कहते हैं! मैं तो हमेशा आप के गुणो मे आसक्त बनी हुई रहती हूँ' तब छाहड बोला, 'मैं जानता हूँ कि तू बहुत से पुरुषों मे आसक्त है, अब तू मेरे आगे जूँठ क्यों बोलती है?' फिर रमा का त्याग कर वैराग्यवासित हो छाहडने कोई तापस के पास तापसी दीक्षा ग्रहण की और उस दीक्षा का पालन करने से आयु क्षय होने पर स्वर्ग में गया, और उधर रमा अनेको बार अपने शील खडन से तथा कुमार्ग सेवन से अति दुःखदायक नरक मे गई."

यह छाहड और रमा की कथा पडित से सुन कर निक-

मादित्यने राजभंडारी से उस पंडित को एक करोड सोनामहोरें दिलाई और रवाना किया.

नारी वदन सोहामणुं, मीठी बोली नार;
जे नर नारी वश पडया, लूंट्या तस घरबार.

एकदा विक्रम राजा अपनी सभा में बैठे, हुए थे, इतने में वहा एक बुद्धिमान और चतुर व्यक्ति आया, उसने कहा, "लोहपुर नगर मे रहने वाले सभी व्यक्ति धूर्त हैं. पंडित या मूर्ख सभी लोगों को ठगते है." उस के बाद राजा ने उसे उचित दान देकर विदा किया और स्वयं उस नगर को देखने के लिये उत्सुक हुए.

एक दिन राजाने अपने प्रिय मित्र और मंत्री भट्टमात्र को पूर्व दिशा मे उस नगर के प्रति जाने के लिये पहले रवाना किया. फिर स्वयं भी नमस्कार महामंत्र स्मरण कर रवाना हुए. कहा है, सिंह कभी शुकुन नहीं देखता, न चंद्रबल ही देखता है, वह अकेला ही लाखों से भिड जाता है, अतः जहां साहस होता है वहीं कार्य सिद्धि होती है. क्रमशः चलते चलते राजा एक जंगल में पहुँचे. वहा उन्होंने ठन्डे और गरम जल के दो कुंड देखे. कुंड देख कर वे वहां ठहरे ही थे कि, इतने मे वहां एक बंदरों का झुंड आया, उन्होंने ठंडे पानी के कुंड मे स्नान किया, जिस से वे क्षणभर में निर्मल शरीरवाले मनुष्य बन गये, पश्चात् आसपास के वृक्षों के कोटरों मे से वस्त्रों को लेकर पहना और पास के ही जिनेश्वरदेव के मंदिर में जा कर उत्तम सुगंधीत

राजा बंदरों का झुंड को स्नान करते देख रहे हैं चित्र नं ३४

फूलों से श्री जिनेश्वरदेव की पूजा की, तथा सुंदर स्तोत्रों से प्रभु की स्तुति कर के और अर्हंत प्रभु का ध्यान धर, बार बार नमस्कार कर के उन्होंने पाप समूह को नष्ट कर बहुत बडा पुण्य उपार्जन किया, कहा है कि—

जिसने एक भी पुष्प बहुमान पूर्वक प्रभु को चढाया है, उस मनुष्य को चिरकाल के लिये शिवसुख का फल हस्तगत होता है.

जब वे मनुष्य गरम जल के कुंड में नहाये इससे वे क्षणभर में पुनः बन्दर बन गये और श्री जिनेश्वरदेव को नमस्कार कर के अपने स्थान पर गये. यह देख कर महाराजा को मन में आश्चर्य हुआ. फिर स्वयं उन्हों ने भी ठंडे जल के कुंड में

नहाकर श्री जिनेश्वरदेव के मंदिर में सुंदर फूलों द्वारा भावभक्ति सहित प्रभु की पूजा की, और सुंदर राग से स्तुति आदि कर के वहां से आगे बढे.

राजाने आगे जाते हुए वनमें पांच चोरोंको देखा. वे आपस में लड रहे थे. राजाने उन्हें पूछा, "तुम लोग आपस में क्यो लड रहे हो ? लडने से तो केवल पत्थर हाथ आते हैं, मोदक नहीं, अर्थात् लडने से केवल हानी होती हैं, लाभ बिलकुल नहीं, कहा है—' वैर, अग्नि, व्याधि, वाद और व्यसन ये पांचो वकार वढने पर महा अनर्थ करते हैं. ×

चोरोंने यह सुन कर राजा से कहा, "हमने इस जंगल मे एक योगी के पास चार आश्चर्यजनक वस्तुएं देखी, उन्हे देख कर हमारा मन लेने के लिये ललचा गया. उन चारो वस्तुओं के नाम और गुण यों हैं—

(१) खडी से चित्रित एक घोडा है, जो क्षण में सजीव हो जाता है, और लकडी से मारने पर वह आकाश में हवा की तरह उडता है. उसे बेचने से एक लाख सोने की मुहरे मिल सकती है. (२) एक खाट है, जिसे स्पर्श करने पर वह दिव्य प्रभाव के कारण आकाश में उडने लगती है. (३) एक कन्था याने गुदडी है, जिसे पीटने पर उस में से ५०० सोना-

× वैरं वैश्वानरो व्याधिर्वाद व्यसन लक्षणा ।
महानर्थाय जानन्ते वकारा- पच वर्धिता. ॥ स. ११/६७८ ॥

मुद्रे निकलती है, और (४) चौथी एक थाली है जो आगे रखने पर मनुष्यो को इच्छित भोजन देती है

इन चार वस्तुओं को देख कर हमारा मन लोभायमान हो गया. लोभ मनुष्य या नारी के पास क्या क्या अशुभ –पाप नहीं कराता है? शरीर शिथिल होता है किन्तु आशा शिथिल नहीं होती है शरीर का रूप नष्ट होता है, किन्तु पाप–बुद्धि नष्ट नहीं होती है वृद्धावस्था आती है किन्तु ज्ञान नहीं आता है, धिक्कार है ऐसे प्राणीओं की लीला को हमने ये चारो चीजे योगी के यहा से ले ली है, और अब हम पाच है, अत हम मे इन चीजो को बाटने के लिये झगडा हो रहा है" राजाने उन लोगो की बात सुन कर कहा, "ये चारो चीजे मुझे द दो, और मैं विचार कर के तुम लोगो में बाट दूगा" फिर उन चारो वस्तुओ को प्राप्त करके राजा बोले, "तुम लोगोने उस योगी को मारा है अतः उस का पाप तुम्हे फलेगा' इतना कह कर राजा खाट पर बैठ गये और आकाशमार्ग से ऋद्धि–शोभा मे स्वर्गपुरी के समान मनोहर लोहपुर नगर मे शीघ्र पहुँच गये

लोहपुर मे विक्रम राजाने एक व्यापारी को अपना मित्र बनाया, और उसे थाली और खाट देकर नगर देखने गये उस नगर मे कामलता नामक वेश्या थी, जो व्यक्ति, उसे एक लाख रुपये आदरपूर्वक देता, वह उसक पास एक रात रह सकता था राजाने उस खडी चित्रित घोडे को सजीव

किया और उसे बाझार में बेचकर उस द्रव्य को देकर वे एक रात वेश्या के यहां रहे.

राजाने सुबह उस कन्था से ५०० सोनामुहरे प्राप्त की, और सुंदर वेष को धारण किया तथा गरीबों को योग्य दान दिया. वेश्या की अक्काने गुप्त रीत से यह सब जाना कि, वह खटिका अश्व देता है और कन्था द्रव्य देती है, तब उस अक्काने कपटपूर्वक राजा से दोनो वस्तुएं ले ली. फिर उसके पास धन न होने से उस वेश्याने उन्हें निकाल दिया. जिस से खेदीन हो कर वे शोचने लगे, 'जिस प्रकार शास्त्र मे वेश्या का वर्णन है, उसी प्रकार की छल कपटवाली वेश्याएं होती है, यह बात आज मैंने प्रत्यक्ष जानी.

स्त्री तो पाकी बोरडी, हांस सहुने थाय;
सौने लागे वाल ही, मूलगी नावे कांय.

इधर अवन्ती से जो पहले रवाना हुआ था वो भट्टमात्र मत्री घूमता हुआ यहां आ पहुँचा, और विक्रम राजा से मिला. राजाने रास्ते में दोनो कुड देखे, वह तथा पाच चोर मिले आदि वेश्या की सारी हकीकत अर्थात् अथेति अपना सारा ही वृत्तान्त सुना दिया. फिर दोनोने विचार करके कुछ तय किया, और वनम गये, वे दोनो कुन्डों से ठण्डा और गरम पानी लाये. राजा और भट्टमात्र दोनो प्रकार के पानी को साथ लेकर नगरमें आये. राजा उस वेश्या के घर गये. कामलता जब स्नान कर रही थी तब राजाने किसी प्रकार गुप्त रूप से उस पर उष्णजल

महाराजा विक्रम भट्टमात्र से अपना वृत्तान्त सुना रहे है चित्र न ३४

छींट दिया, जिस से वह उसी क्षण बन्दरी रूप बन गई. अपनी पुत्री को बन्दरी बनी हुई देख कर उस की अक्का जोर जोर से अपनी छाती पीट पीट कर रोने लगी, और करुण रुदन से अन्य लोगों को भी रुलाने लगी, फिर वैद्य, ज्योतिषी तथा मंत्र तंत्रादि जाननेवालों को बहुत धन देकर अपनी पुत्री को ठीक कराने का प्रयत्न करने लगी.

इधर भट्टमात्रने राजा विक्रमादित्य को मनोहर वेष युक्त योगी बना कर जंगल में भेज दिया, और स्वयं गणिका के घर गया. गणिकाने उन्हे देखकर समझा, 'ये कुछ मंत्र तंत्र जानते होगें' करुण स्वरसे उन से कहा, "मेरी पुत्री बन्दरी बन गई है.

अतः इस दुःख से मैं आत्महत्या कर के मरनेवाली हूँ. अगर इसे कोई ठीक करेगा तो मैं उसे मुह मांगा धन दूँगी."

भट्टमात्रने कहा, "मैंने उद्यान में एक योगी को देखा है वह सभी प्रकार की विद्याएं जानते है." तब वेश्या बोली, "यदि तुम उस योगी को मुझे दिखाओ तो मै तुम्हे अपनी आजीविका के लिये बहुत धन दुँगी."

तब भट्टमात्र वेश्या को जंगल में ले गया, और आसन पर बैठे हुए योगी को बताया, वेश्याने उन्हें प्रणाम किया. फिर ध्यान में मस्त योगी को वेश्याने विनयपूर्वक कहा, "हे परोपकारी! दया के सागर जगद्वन्द्य योगीराज! मुझ पर खुश हो कर जल्दि ही मेरी पुत्री को ठीक कर दीजिये. आप जो मागोगे वह मैं दूँगी. और इस कार्य का आप को बहुत पुन्य होगा."

क्षणभर ध्यान करने का नाटक कर के तथा क्षणभर मस्तक हिला कर योगीने कहा, "तुमने एक परदेशी पुरुष को ठगा हैं, और उस पाप से तुम्हारी पुत्री बन्दरी बन गई है, किया हुआ पाप इस भव या परभव में भुगना ही पडता है. इस परदेशी से तुमने जो खट्टिका और कन्था ली है. वह लाकर मेरे चरण में रख दो, तब मैं मंत्र के प्रभाव से तुम्हारी पुत्री को ठीक कर दूंगा यदि तुम मेरा कहना नहीं करोगी तो तुम्हारी पुत्री की मृत्यु हो जायगी."

योगी का वचन सुन कर अक्का मन में भयभीत हुई,

और शीघ्र ही जाकर उसने कन्था व खट्टिका आदि लाकर उस योगी के सामने रख दी. और वह बोली, "अब आप मेरी पुत्री को जल्दि ही अच्छी कर दीजिये."

योगीने शीतकुंड के पानी से मंत्रोच्चारपूर्वक उसे स्नान कराया, तब वह शीघ्र ही पुनः कामलता के रूप में-स्त्री बन गई. फिर योगीने कहा, "अब कभी किसी परदेशी को मत ठगना."

खान पान घृत पक्व विना हो, प्रियजन से रहना अति दूर;
दुष्टजनों की संगति हो तब, जानो पाप हुआ भरपूर.

घी विना का भोजन, प्रियजन का वियोग और अप्रियजनों का संयोग ये सब पाप के कारण है

राजा विक्रमादित्य वेश्या को किसी को ठगने का निषेध कर के भट्टमात्र के साथ अपनी नगरी अवन्ती के प्रति रवाना हुए. रास्ते में लोगों को तरह तरह के उपकार करते हुए, जाते जाते वे चारों वस्तु भी दान में दे दी, और स्वर्गपुरी समान अपने नगर में पहुँचे.

पाठकगण ! इस प्रकरण में आपने राजाकी चतुराई, साहस तथा बुद्धि, प्रतिभा की कथा पढी, आगे प्रकरण में शव की अद्‌भुत कथा राजा का साहस तथा उसके परिणामों को पढे

त्रेसठवाँ-प्रकरण

संकट साधु शिर पडे, लेश न भूले मान;
जिम जिम कंचन तापीए, तिम तिम वाधे वान.

एकदा महाराजा विक्रमादित्य मन्दिरपुर नगर में जा पहूँचे. वहा श्रीद नामक सेठका पुत्र मर चुका था. उसे स्मशान मे ले जाकर चिता पर रखा. ज्यों ही चिता मे अग्नि लगाई गई कि, वह मृत शरीर दिव्य प्रभाव से उस श्रेष्ठी के घर पहुँच गया. दूसरे दिन भी इसी तरह चिता मे डालने के बाद अग्नि लगाने पर पुन. सेठ के घर पहूँच गया. इस तरह उस को मरे आठ दिन हो गये. इस प्रकार होने से डरा हुआ सेठ उस नगर के महाराजा के पास गया, और अपने नगर की कल्याण कामना से सारी बातें कह सुनाई.

राजाने शव संबन्धि यह बात ज्योतिषी से पूछा, और राजा तथा सेठ दोनों के मन में नगर के भावि अनिष्ट की आशङ्का होने लगी. तब राजाने शहर में ढिंढोरा पिटवाया, 'इस शव को जो जलायेगा उसे मैं कोटि द्रव्य दूंगा, और उस का बडा सन्मान किया जायगा.' जब महाराजा विक्रमने जो वहा साधारण वेश में गये हुए थे. उन्होने ढिंढोरा सुना तो उस पटह का स्पर्श किया और राजा के पास पहूँचे. राजा से पूछ कर विक्रमने शव को खुद ले लिया, और रात के प्रथम प्रहर में स्मशान भूमि में पहुँचे. मध्यरात्रि में वहा रोती हुई एक स्त्री को देखा. राजा विक्रमने उस से रोने का

कारण पूछा, तब उस स्त्रीने कहा, " राजा के नौकरोंने आज मेरे पति को अपराध बिना ही शूली पर चढा दिया है. वह अभी जिन्दा है और मैं उसके लिये भोजन लाई हूँ, लेकिन शूली बहुत ऊँची होने से मैं पहूँच नहीं सकती; इस लिये मैं रो रही हूँ."

तब विक्रम राजाने उसे अपने कंधे पर चढ कर उसे भोजन देने को कहा, जिस से स्वस्थ होने पर उस का पति मर कर स्वर्ग में जाये. राजा के कधे पर चढ कर वह स्त्री खडी हो गई. और छुरी से अपने पति के शरीर में से मास काट काट कर खाने लगी, ऐसा करने से राजा के शरीर पर रक्त की बूँदे गिरने लगी, राजान उसे पानी की बूंदे समझा और मन में विचारने लगे, 'अभी बरसात कहा से आया ?' लेकिन तुरत ही ऊपर देख राजा सारी स्थिति समझ गय और यह डाकिनी है, ऐसा जान कर बडे जोर से उसे ललकारा. इस से राजा को छलना असभव जान कर तुरंत ही वह डाकिनी वहां से अदृश्य हो गई.

(राजान उसे कधे पर चडाई चित्र न. ३६)

दूसरे प्रहर में राजा वहां से कुछ दूर जंगल मे गये, और शव को पास में रख कर सुख से सो गये. तब कोई राक्षस आया और उस मुर्दे तथा राजा विक्रम दोनो को उठा कर वहां से किसी दूसरे जंगल में ले गया. वहा धधकती हुई आग पर एक बडी कडाही रखी थी, उस में कई राक्षस बहुत से लोगों को दूरसे ला लाकर डाल रहे थे.

वे लोग राजा विक्रम को उसमे डालने को तैयार हुए कि, एकदम राजा विक्रम उठ खडे हुए, और उन्हे मारने लगे. राजाने उन को दंड–लकडी और मुष्ठि के प्रहारों से ऐसा मारा कि वे राजा के पास आकर कहने लगे, "हम आप के दास हैं" तब राजाने उस को जीवदयामय 'अहिंसा परमो धर्म' समझाया और उन्हे अहिंसक बनाये.

रात्रि के तीसरे प्रहर में राजा एक बावडी के पास गये और वहां ठहरे. इतने में उन्होंने किसी स्त्री की रोने की आवाज सुनी, दूर से आती हुई आवाज को सुन कर राजा वहां गये, और उस से रोने का कारण पूछा, वह बोली, "मैं राजा भीम की पत्नी हूं,

(राक्षस कहता है. हम आपके दास हैं)
चित्र नं. ३७

और मेरा नाम मनोरमा है, मेरा शील भंग करने के लिये एक दुष्ट राक्षस मुझे हर कर यहा ले आया है. इस जगत में जगत का हित करनेवाला ऐसा कोई भी पुन्यशाली व्यक्ति मुझे नहीं दिखता जो मुझे अधम के पंजे मे से छुडाये" राजाने पूछा, "वह कहा है ?" तब उसने वन में दूर स्थित उस राक्षस को अपनी अंगुली के इसारे से बताया विक्रम राजा भी उस स्त्री की रक्षा करने की इच्छा से उस राक्षस की पास गये, और युद्ध कर के उस राक्षस को मार डाला, और उस नारी की रक्षा की.

चित्र नं ३९

रात्रि के चौथे प्रहर में महाराजाने उस शव से कहा, "हे शव ! उठ और, मेरे साथ जुआ खेल" तब शवने कहा, "यदि तुम हार गये तो कमलनाल की तरह पकड कर तेरे मस्तक को काट दूंगा." तब महाराजाने उस से कहा, "यदि तुम हार गये तो तुम्हे चिता में घास की तरह जलना पडेगा" इस प्रकार परस्पर शर्त पर वे दोनो जुआ खेलने लगे, और उस मे वह शव हार गया, तब चिता जला कर महाराजाने उसे जलाया, और वह जल्दि जल गया

उस नगर में जाकर विक्रम राजाने राजा से उस शव के

संबंध की सारी कथा आदि से अन्त तक कह सुनाई. जिसे सुन कर राजा बहुत खुश हुआ. और सेठ के पास से पूर्व कथित धन लेकर राजाने विक्रमादित्य को दिया. विक्रम-राजा ने भी दानेश्वरी कर्ण की तरह वह धन तुरंत वहीं गरीबों को बांट दिया.

स्त्रीराज्य में गमन

रूप देवकुमार सम, देखत मोहे नर नार;
सोही नर खिण एकमें, बल जल होवे छार.

एकदा महाराजा विक्रमादित्य पृथ्वी का भ्रमण करते करते बहुत दूर स्त्रीराज्य में पहुँचे. वहा बहुत ही सुन्दर सुन्दर स्त्रियां थी. प्रेमासक्त रति की तरह कांतिवाली शंखिनी व पद्मिनी जाति की कई सुंदर स्त्रिया अपने हावभावादि चेष्टाओं के द्वारा पुरुषों को मोहित करती थी. कहा है कि—

एक नूर आदमी, हजार नूर कपडां;
लाख नूर टापटीप, क्रोट नूर नखरां.

महाराजा विक्रम को मनोहर स्वरूपवान देख कर कई स्त्रियाँ उन से भोग-विलास के लिये प्रार्थना करने लगी. × तब महाराजा

× क्यों कि नारीयों के लिये कवियोने कहा है,

"उगाडा दीप रहे, पांग जिम जपलाय, तम स्त्रीना नेत्रमा पुरुष जन भरमाय. १ वादलना गर्जन थकी, भान हडवायुं वाय, तम स्त्रीना

विक्रमादित्यने कहा, "मैं प्राण जाने पर भी अपनी परिणित स्त्री के बिना अन्य स्त्री की इच्छा नहीं करता कहा है, 'सज्जन पुरुष अकार्य के लिये आलसी, प्राणीवध मे पंगु, पर निंदा सुनने में बहरे, और पर स्त्री को देखने के लिये जन्माध होते है.'' ×

विक्रमादित्य को सुशील और सदाचारी जान कर उन स्त्रियोंने महात्म्ययुक्त बहु मुल्यवान चौदह रत्न दिये.

चौदह रत्नोंका प्रभाव

उन रत्नों के अलग अलग गुण थे प्रथम रत्न से अग्नि उत्पन्न होकर स्तंभ बनता था दूसरे के प्रभाव से लक्ष्मी प्राप्त होती थी, तीसरे रत्न से पानी, तो चोथे रत्न से वाहन प्राप्त होता था, पांचवे रत्न के प्रभाव से शरीर पर किसी प्रकार का अस्त्र शस्त्र नहीं लगता था. छट्ठे रत्न के प्रभाव से स्त्री, मनुष्य और राजा वशो मे होते थे, सातवाँ रत्न मागने पर सुंदर रसवती भोजन सामग्री देता था, आठवे रत्न के प्रभाव से कुटुंब, धनधान्यादि मे वृद्धि होती थी. नव मे रत्न से समुद्र पार उतर सकते थे, दश मे रत्न से विद्या प्राप्त होती

टमकारथी, मुग्धजन भरमाय २ स्त्री तो पाकी धारकी, दास बहुने थाय, सौन लागे वाल ही, मूरखी नाव बांय ३ नारी वदन मेंहामणुं मीठी बोली नार, जे नर नारी वश पड्या लुंटया तम घरबार ४"

+ अगमा होइ अकज्जे पाणि वहे पंगु सया होइ ।
परतत्त सु अ बहिरो जच्चंधो परकलत्तेसु ॥ स ११/७२६ ॥

थी, ग्यारवां रत्नके प्रभाव से भूत प्रेतादि छल नहि कर सकते और वश में रखता, बारहवें रत्न के होने पर साप नहीं काटता था, तेरहवें रत्न शिबिर-सेना तैयार कर देता था, चौदहवें रत्न से सुखपूर्वक आकाशगमन हो सकता था.

महाराजा इन चौदह रत्नों को ले कर अपने नगर के प्रति रवाना हुए और रास्ते में हर्ष पूर्वक याचकों को वे रत्न दे दिये.

विक्रम महाराजा स्वोपार्जित धन को सात क्षेत्रों में व्यय कर अपने जन्म को सफल कर रहे थे. उस समय उस के पास शतमति, सहस्रमति, लक्षमति तथा कोटिमति नामक चार अंगरक्षक थे, वे चारों बडे शुरवीर व स्वामिभक्त थे.

रात्रि में सोये हुए महाराजा की रक्षा के लिये एक एक प्रहर में वे चारो बारी बारी पहरा देते थे, क्यों कि—

'हीन बुद्धिराजा सेवक आगे जाता है, खुशामदखोर रात मे जागता है लेकिन शुरवीर सेवक हाथ में तलवार ले कर दरवाजे पर खडा रहता-रक्षा करता है, अर्थात् सावधानी से पहरा देता है.'

एकदा महाराजा विक्रमादित्य शय्या में सो रहे थे, इतने में उन्होंने नगर के बाहर-दूर से किसी स्त्री के करुण रोने की आवाज सुनी, तब उन्होंने अंगरक्षक-शतमति से कहा, "हे शतमति, तुम नगर के बाहर जाओ, और रोती हुई स्त्री को

पूछो कि, वह क्यों रो रही है?" तब शतमति बोला, "हे राजन्! आप को अभी नींद आ जायगी, राजन्! आपके कई शत्रु हैं, अतः आप को छोड कर यहां से जाने की मेरी इच्छा नहीं होती है. कहा है, 'जिस महापुरुष पर सब कुछ-सारा कुल अवलंबित हो, उसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये. जैसे कि गाडेके चक्र में जिसमें आरे लगे होते हैं वह तूंबी के नाश होने पर उस आरे को कोई सहारा नहीं रहता. वह तूंबी नष्ट होने पर सारा चक्र, चक्र के आरे आदि कैसे टीक सकता है." तब राजा बोले, "मैं तब तक स्वस्थ होकर जागता रहता हूँ, तुम मेरी आज्ञा का पालन करो. पुनः जल्दि आओ क्यों कि, उद्यम करने पर दरिद्रता नहीं रहती, पढने से मूर्खता का नाश होता है, और मौन रहने से झगडा नहीं होता. उसी तरह जागनेवाले को कोई भय नहीं रहता"

शतमति के जाने के बाद राजा पान खा कर अपनी पत्नी के पास पहुँचे, और थोटी ही देर में वहां रानी के पास में ही शय्या में शान्त चित्त से सो गये.

शतमति भी राजा की आज्ञा पा कर वहां से रवाना हुआ, और नगर के बाहर रोनेवाली स्त्री के पास जा कर उसे रोने का कारण पूछा, तब वह स्त्री बोली, "मैं अवन्ती नगरी के राजा की राज्यलक्ष्मी की अधिष्ठायिका देवी हूँ. मैं हमेशा राजा पर आनेवाले विघ्नों को दूर करती हूँ. जहाँ राजा सो रहे हैं, उस मकान के छत में से एक काला भयंकर सर्प उतर

कर इस प्रहर के अंत में महाराजा को डस लेगा. अब मैं विघ्न का नाश करने में समर्थ नहीं रही, अतः हे धीर! मैं "वीर वीर" कर के उच्च स्वर से रो रही हूँ." तब शतमति बोला, "हे देवि! तुम शांत हो जाओ, मैं आप की इच्छानुसार सारा कार्य अच्छी तरह कर लूंगा." ऐसा कह कर शतमति शीघ्र ही राजमहेल में लौट आया. महाराजा को रानीवास में जा कर सोया हुआ देख कर उस ने मन में विचार किया, 'राजा को जगाने या उन के पास जाने का यह उचित अवसर नहीं है, अभी प्रहर पूरा होते ही देवी के कथनानुसार भयंकर सर्प अवश्य आयगा, इस में शंका नहीं.'

कुछ ही देर में तो जहा महाराजा सोये थे, वहा छत पर से एक काला भयंकर सर्प उतरने लगा, उसे देख कर शतमति तुरंत तैयार हुआ, और अपनी तलवार से उस के दो तीन टुकडे कर डाले, और उसे एक बर्तन में डाल दिया, लेकिन उस के जहर के कुछ बिंदु सोई हुई रानी की छाती पर गिर गये. विघ्न रूप जान कर उस को पोंछने के हेतु से शतमति

क्षण में (सर्प के टुकडे कर डाले. चित्र न ३९)

धीरे से उन जहर के बिन्दुओं को अपने हाथ से पोंछ रहा था, उसी समय एकाएक जागे हुए महाराजाने रानी की छाती पर शतमति के हाथ को देखा, और मन में शतमति के इस कार्य को अनुचित जान कर उस पर महाराजा क्रोधित हुए, और वे विचारने लगे, 'अब मैं इसे जल्दि ही मार डालूं.' फिर सोचा, 'मै खुद उसे कैसे मारूं ? इसे अन्य सेवक के हाथो से मरवा दूँगा.'

इस प्रकार के विचार से शतबुद्धि को मरवाने की इच्छा होने पर भी विक्रमराजाने अपने मुँह के भाव को उस से छिपाते हुए, उस का समय पूर्ण होने पर उसे घर जाने को छुट्टी दे दी, वह शतबुद्धि राजा का विघ्न हट जाने के कारण घर गया. और गानेवालों को बुलाया व महाराजा की शांति के लिये दान देने लगा. और नाटकादि से महोत्सव मनाने लगा.

दूसरे प्रहर मे महाराजाने अपनी रानी को रवाना कर द्वारपर से सहस्रबुद्धि अंगरक्षक को बुलाया, और कहा, "तुम जाओ, और शतमति को मार डालो." यह सुन कर सहस्रमति बोला, "हे स्वामिन्! आप को अभी नींद आयगी. पहले के कई अपराधी आप के शत्रु हैं, अतः मेरा यहां से दूर हटना उचित नहीं." इस पर महाराजाने कहा, "मैं स्वस्थतापूर्वक जाग रहा हूँ, और तुम जल्दि ही जाकर यह काम कर के मेरी आज्ञा का पालन करो, क्यों कि—

'उद्यमी को दरिद्रता नहीं सताती, जाप करते रहने से पाप नहीं होता, मेघ की वृष्टि होने पर दुष्काल नहीं पड़ता, इसी तरह जागनेवाले को कोई भय नहीं रहता."

महाराजा की आज्ञा से सहस्रमति चिन्ताकुल होता हुआ शतमति के घर गया, उस समय शतमति नाटक करवा रहा था. शतमति को हर्षित और दान देने मे तत्पर देख कर उसे लगा कि इस का कोई अपराध नहीं लगता, क्यों कि– 'दूसरों की विपत्ति में सज्जन पुरुष अधिक सौजन्य धारण करते हैं. जैसे उनाले में–वसंत ऋतु में वृक्षों की छाया अति कोमल पत्तों से युक्त होती है. बुरा काम करनेवाले, अन्य स्त्री में आसक्त पुरुष और चोर का मुख प्रसन्न नहीं रहता, क्यो कि उस का मन सदा भय से व्याप्त रहता है. महान पुरुषों के दूर रहते हुए भी सज्जन पुरुष खुश होते हैं, जैसे आकाश में चन्द्र के उदय होने से पृथ्वी पर रहा हुआ समुद्र उल्लास पाता है.

हर एक पर्वत में माणिक्य नहीं होते, न प्रत्येक हाथी के सिर में गजमुक्ता (मोती) ही होते हैं, इसी तरह सभी जगह साधु नहीं होते. हरएक जंगल में चंदन नहीं होता है, वह तो केवल मलयाचल पर होता है, वैसा ही सच्चे साधु बहुत कम स्थानों में होते हैं. ×

× शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ स. ११/८०० ॥

इस प्रकार के सुदर नृत्यादि कपट रहित धीर पुरुष ही हर्षपूर्वक करवा सकते है.'

सहस्रमति को आते देख कर शतमतिने उसे पूछा,- "हे मित्र! इस समय तुम महाराजा को अकेले छोडकर क्यो आये हो? राजा के कई शत्रु है, आज सचमुच ही राजा पर एक बडा सकट आया था, लेकिन लोगोंके और हमारे भग्य से ही वह सकट टल सका, अतः तुम अभी जल्दि वापस जाओ, तुम्हारे पहरे का समय बीत रहा है धीर वीर पुरुष हमेशा ही अगीकृत कार्य को अच्छी तरह पूर्ण करते है

मेरु हिमालय हिल सकता है, उदधि करे मर्यादा भग,
किन्तु सुजनने बात कहीजो, उस का होता कभी न भग

सभी पर्वत विचलित हो, समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लघन भले ही कर ले, लेकिन सज्जन पुरुषों की प्रतिज्ञा हमेशा अचल रहती है, जैसे सूर्य और दिनने एक दूसरे को अगीकार किया है, तो वे एक दूसरे को नहीं छोडते सूर्य के बिना दिन नही और दिन के बिना सूर्य नहीं सज्जन पुरुष आलस मे भी जो शब्द बोल देते है, वे पथ्थर पर के खुदे अक्षरो की तरह कभी अन्यथा नहीं होते."

शतमति के मुख के आकार, क्रिया तथा बातचीत से उसे निर्दोष जानकर सहस्रमति प्रगट रूप मे इस प्रकार बोला,

"तुम्हारे यहां गीत नृत्यादि का बडा उत्सव हो रहा था, उसे देखने के लिये मैं आया था, क्यों कि तापस भोजन से, मोर बादल की गर्जना से, साधु लोग दूसरे की सम्पति से और दुष्टजन दूसरे की विपत्ति मे खुश होता है." तब शतमतिने पान आदि देकर उस का सम्मान किया. सहस्रमति शीघ्र ही राजा की रक्षा के लिये पुनः स्वस्थान पर लौट आया. राजाने उस से पूछा, "तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया?" सहस्रमति मौन धारण कर खडा रहा. राजाने उसे चुपचाप खडा देख कर कहा, "तूं भी मेरे लिये शतमति की तरह हो गया है" तब राजा को शांत करने के लिये सहस्रमतिने कहा, "हे राजन्! कोई भी काम बिना विचार किये नहीं करना चाहिये. बिना विचारे किये गये कार्य से ब्राह्मणी की तरह बाद मे पश्चाताप करना पडता है. जैसे कि—

ब्राह्मणी और नोवले की कथा

श्रीपुर नामक एक नगर में कृष्ण नामक एक ब्राह्मण रहता था. उस के घर के पास ही एक समय नकुलीने एक बच्चे को जन्म दिया. उस ब्राह्मण की रूपवती नामक भार्या थी. वह उस नकुल के बच्चे का पुत्रवत् पालन करने लगी, कुछ समय पश्चात् उस ब्राह्मणी ने सुंदर स्वरूपवान् पुत्र को जन्म दिया जिस का नाम चंद्र रखा.

एक दिन वह ब्राह्मणी अपने छोटे बालक को घर में छोड कर पानी भरने जा रही थी, तब ब्राह्मणीने नकुल को

कहा, "मैं पानी भरने जाती हूं. तुम इस बालक की रक्षा करना.' ऐसा कह कर ब्राह्मणी पानी भरने के लिये गई, इसी बीच उस घर में एक काला सांप निकल आया. सर्प को देख कर नकुल उस के पास गया, और युद्ध करके उसे मार गिराया. उस सांप के टुकडे टुकडे कर के हर्षित होता हुआ वह नकुल खून से रंगे मुख यह समाचार प्रगट करने के लिये उस ब्राह्मणी के सामने दरवाजे पर गया. पाणी लेकर आती हुई, उसे इस हालत में देख कर ब्राह्मणीने समझा, 'निश्चय ही इसने मेरे पुत्र को मार डाला है.' ऐसा सोचकर ब्राह्मणीने क्रोध में उस नकुल को मार डाला. घर में आकर उसने अपने पुत्र को झूले में खेलता हुआ सुरक्षित देखा. और सर्प की दुर्दशा देख कर सारा मामला समझ गई. नोवले के प्रताप से ही अपना बालक बच गया था. बाद में उसे पश्चात्ताप हुआ.

अतः हे स्वामी! इस प्रकार पूर्ण विचार किये विना कोई भी काम करने से पश्चाताप करना पडता है, अतः अभी कुछ समय आप धैर्य धरें." सहस्रमति की बात सुन कर महाराजाने सोचा, "यह मेरी आज्ञा का पालन किये विना आया है, इस लिये यह भी शतमति के जैसा ही है."

द्वितीय प्रहर के बीत जाने पर महाराजाने उसे विदा किया लक्षमति नामक अंगरक्षक के पहरे पर आने पर उसे बुलाकर वही (शतमति को मारने का) कार्य सोंपा, महाराजा की आज्ञा

सुन कर लक्ष्मति बोला, "हे स्वामिन्! आप को कदाचित् निंद आयगी, पहले से ही आपके कई विरोधी शत्रु है, यहा से दूर जाने का मेरा मन नहीं होता"

राजाने कहा, "तुम शीघ्र ही जाओ, मे शातचित्त से अभी जागता रहूँगा, तुम मेरे आदेश का पालन कर के शीघ्र ही वापस आओ जागते हुए मनुष्य को किसी का भय नहीं होता जैसे रणागण में खड्गबद्ध तैयार राजा को किसी का भय नहीं होता है"

राजा की यह बात सुन कर लक्ष्मति को लगा, 'महाराजा को अवश्य ही कुछ बुद्धिभ्रम हुआ है अर्थात् कुछने कुछ शका हुई है नहीं तो एसी बाते वे नहीं कहते' अत वह बोला, "हे स्वामी! थोडी देर ठहरिये, मैं आपकी आज्ञा का पालन करुगा, लेकिन पहले मे एक कहानी कहना चाहता हूँ, वह आप ध्यान से सुनिये

श्रेष्टी पुत्र सुदर की कथा

लक्ष्मीपुर नामक नगर में एक भीम नामक सेठ था उस के रूप, लावण्य सौभाग्य तथा विनय आदि गुणो से युक्त एक सुदर नामक पुत्र था आगन मे खेलते हुए, घुटनो पर चलनेवाले अपने पुत्र को देख कर मातापिता और स्वजनो को महान् आनद होता है क्रमश बडा होनेपर पिताने पुत्र को पडितों के पास पढाया, और वह भी धर्म कर्म आदि

अनेक कलाओं मे निपुण हो गया क्योंकि सकल कलावान होवे भी जिस व्यक्ति मे धर्मकला–पुण्य उपार्जन करने की पुण्य कला नहीं, उस की सब कलायें भी निष्फल हैं, जैसे प्राणीओं को आख के सिवाय शरीर के सब अवयव सुदर `ने स क्या ? सब अवयव भी वृथा है +

वह सुदर माता पिता की इच्छानुसार ही हमेशा चलता , और सदा देवगुरु के चरणकमलों की सेवा करता है

जो हमेशा खुश होकर अपने माता पिता के आदेशा नुसार काम करता है वही हमेशा कीर्ति, प्रतिष्ठा और लक्ष्मी पाता हैं, जैसे एक ही चदन के वृक्ष से सारा जगल सुग धित हो उठता है, वैसे ही अच्छ गुणवान् एक ही पुत्र से चारों तरफ यश फेल जाता है एक बार वह सुदर पिता की आज्ञा प्राप्त कर के बहुत सा माल सामान लेकर जहाज भर कर समुद्र मार्ग से व्यापार के लिय गया, पवन के अनुकूल होने से उस का जहाज रत्नद्वीप क रमापुर शहर के पास जा पहुँचा वहा व्यापार म उसने बहुत सा धन उपार्जित किया.

उसी समय म रमापुर नगर से धन नामक एक श्रेष्ठी वहा पर पहले स आया हुआ था उस ने भी बहुत द्रव्य कमाया, अत अब धन श्रेष्ठी लक्ष्मीपुर जाने के लिये तैयार हुआ अपने ही नगर म उसे जाते देख कर सुदरने कहा,

+ सकलाऽपि कलावता कला विफला पुण्यकला विना किल;
सकलावयवा वृथा यथा तनुभाजामऽकनीनिक तनु ॥ स ११/८१ ॥

देने के लिये दिया था, लोभ से मैंने झूठ बोल कर उसे रख लिया है. अतः अब तुम मेरे साक्षी बन कर राजा के सामने यह कहना कि, इसने मेरे सामने भीम सेठ को बहु मूल्य रत्न दिया है, मेरा काम सिद्ध होने पर मैं तुम्हें और सोना-मोहरे दूंगा. इस से आगे भी हम दोनों की दोस्ती कायम रहेगी' श्रीधरने भी हाँ कहा और इस से धन श्रेष्ठी मन ही मन खुश हुआ.

श्रीधर के चले जाने पर धन श्रेष्ठी के पिताने उस से कहा, 'हे पुत्र! तुझे यह करना उचित नहीं है, क्यों कि पराया धन हरण करने से इह लोक और परलोक दोनो में दुःख ही होता है; इसी लिये कहा है, 'दुर्भाग्य, नौकरी, दासता, अंग का छेदन और दरिद्रता को चोरी का फल जान कर चोरी का त्याग करना चाहिये.' रास्ते में गिरा हुआ, भुला हुआ, खोया हुआ और अमानत रखा हुआ धन, बुद्धिमान पुरुष को कभी न लेना चाहिये. पराया धन हरनेवालों का यह लोक परलोक, धर्म, धैर्य, धृति और बुद्धि ये सभी नष्ट हो जाते हैं, अर्थात् दूसरे भव में वे नहीं मिलते.''

ऐसा कहने पर भी अपने पिता के शब्दों की अवगणना कर श्रीधर ब्राह्मण को बुलाकर सुंदर सहित महाराजा के पास पहुँचा. महाराजा के सामने सुंदर बोला, 'हे स्वामिन्! मैंने एक करोड मूल्य का रत्न अपने पिता को देने के लिये धन श्रेष्ठी को रमापुर में दिया था, लेकिन धन के लोभ से नष्ट बुद्धि-

वाले धन श्रेष्ठीने उसे रख लिया है.' इस तरह फरियाद पेश की, महाराजाने बुद्धि के निधान मतिसागर मंत्री को बुला कर कहा कि इन दोनो के झगडा का अपनी बुद्धि से तुम निपटारा करो, जैसी लक्ष्मी बिना व्यक्ति को प्रतिष्टा नहीं मिलती, वैसे ही बुद्धि के बिना भी व्यक्ति को प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती, कहा है कि-बुद्धि बिना की विद्या श्रेष्ठ नहीं होती, विद्या से बुद्धि ही उत्तम है, बुद्धिहीन होने से तीन पंडित सिंह जीवित करने से नष्ट हो गये. इस की कथा इस प्रकार है—

चार पंडितों की कथा

रमापुर नगर से चार पण्डित विदेश के लिये रवाना हुए. रास्ते मे जाते जाते उन से विवाद छिड गया, और उन मे तीन प्रगट रूप से कहने लगे, 'बुद्धि से विद्या बढ कर है. इस मे कोई संशय नहीं, क्यो कि विद्वान्, महाराजा तथा बडे बडे सेठ साहुकारों और सभी जगह से मान प्राप्त करते है, कहा है कि-विद्वता और राजापन ये दोनो कभी भी समान नहीं हो सकते. राजा तो केवल अपने देश मे पूजा जाता है, उसे बाहर कोई नहीं जानता, लेकिन विद्वान तो सभी जगह पूजा जाता है, अर्थात् वह जहा जाता है, वहीं लोग उस को विद्वान जान कर उस का आदरमान करते है.' लेकिन-चोथा अकेला बोला, 'विद्या से भी बुद्धि बडी होती है, जैसे कि किले में रहे हुए शूरवीर महाराजा भी बुद्धिमान् लोगो द्वारा बन्दी बनाये जाते है,

जिस के पास बुद्धि है वही बलवान है, बुद्धि हीन को बलवान् नहीं कह सकते. वन में रहने वाले मदोन्मत्त बलवान् सिंह को भी खरगोश ने अपनी बुद्धि से कुएँ में गिरा दिया. जैसे कि—

शशक और सिंह की कथा

मन्दराचल पर्वत पर एक सिंह रहता था. वह हमेशा अनेक पशुओं का वध करता था. तब वन के सब पशु मिल कर सिंह के पास गये, और कहने लगे, 'हे मृगेन्द्र! यदि आप की इच्छा हो तो हम सब में से एक एक पशु नित्य आप के पास उपस्थित हो जाय, जिस से आप को श्रम नहीं करना पडेगा' ऐसा सुन कर सिंहने उन सब की बात मंजूर की.

एक दिन वृद्ध खरगोश की बारी आई, तब उसने अपने प्राण बचाने के लिये, सिंह को मारने के लिये एक उपाय सोचा. वह उस दिन धीरे धीरे देर से सिंह के पास पहुँचा. तब सिंहने क्रोधित होकर पूछा, 'इतनी देर क्यों कि?' तब खरगोशने विनम्र स्वर से कहा, 'हे स्वामिन्! इस में मेरा कोई अपराध नहीं है. रास्ते में दूसरे सिंहने मुझे रोक लिया. अतः देर हो गई.' सिंहने कहा, 'वह कहाँ है?' तब वह खरगोश सिंह को लेकर एक कुएँ के काठे पर पहुँचा और कहा, 'वह सिंह इस में हैं.' तब सिंहने कुएँ के अंदर देखा और अपनी ही परछाई को अन्य सिंह समझ कर उसे मारने कुएँ में कूद पडा, और मर गया. इस लिये निर्बल होने पर भी

शशकने अपने बुद्धिबल से बलवान् सिंह को मार डाला. अतः बुद्धि ही बडी है.'

इस प्रकार वादविवाद करते हुए चारों पंडित जा रहे थे. रास्ते में मरने की तैयारीवाला सिंह को देखा. उन में से एक बोला, 'इसे मांस आदि-देकर-खिला कर जीवित कर दें.' क्यों कि ज्ञानदान से ज्ञानवान्, अभयदान से निर्भय, अन्नदान से सुखी और औषधदान से हमेशा जीव निरोगी रहता है.' तब बुद्धिमान् पंडित बोला, 'इस दुष्ट सिंह को अच्छा करने से सभी को महा अनर्थ होगा, अर्थात् शीघ्र ही मरणांत कष्ट होगा. कहा है कि, वेश्या, अक्का, राजा, चोर, पानी, बिल्ली और अन्य नख-दांतवाले जानवर सिंह आदि, अग्नि और सुनार का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये'

इस बुद्धिमान पंडित के मना करने पर भी जब उन तीनों पंडितोंने उसे मांस खिलाकर स्वस्थ किया, तब यह दूरदर्शी बुद्धिमान पंडित वहां से शीघ्र ही दूर जंगल में चला गया, इधर उस सिंहने स्वस्थ होने पर उन तीनों पंडितों को

(बिना विचारे कार्य का परिणाम)
चित्र नं ९०

अपने पंजे से मार कर खा गया. जिस प्रकार बुद्धिमान पंडितने अपनी बुद्धि से अपने प्राण बचाये, उसी तरह हे मंत्रिन्! तुम भी अपनी बुद्धि से इन का न्याय करो.'

तब मंत्रीने धन श्रेष्ठी को पूछा, 'रत्न देते समय तुम्हारा साक्षी कौन है?' धन सेठने कहा, 'यह यहां खडा हुआ श्रीधर ब्राह्मण मेरा साक्षी है.' बुद्धि के निधान मतिसागर मंत्रीने सच्ची बात निकालने के लिये श्रीधर से पूछा, 'हे श्रीधर! तुमने जो रत्न देते समय देखा था, वह रत्न प्रमाण में कितना बडा था?'

भोले-श्रीधरने मन में विचार किया, 'जब रत्न करोड रूपये के मूल्य का है, तो अवश्य घडा जितना बडा होगा ही इस में शंका नहीं है.' ऐसा सोच कर वह बोला, 'वह रत्न घडे जितना बडा था.' तब मंत्रीने पूछा, 'वह कहां बांधा जाता है?' ब्राह्मणने विचार कर कहा, 'वह कंठ में और कान में बांधा जाता हैं.'

मंत्रीने कहा, 'हे ब्राह्मण! तुमने सत्य नहीं कहा, क्यों कि घडे जितना बडा माणिक्य गले या कान में कभी नहीं बांधा जाता है. अतः तेरी साक्षी झूठा है.' तब महाराजाने ब्राह्मण को झूठा साक्षी जान कर उसे नौकर द्वारा चाबुक से मरवाया. इस प्रकार असत्य बोलने से वह जीवन भर दुःखी हुआ. क्यों कि-जैसे कुपथ्य करने से कई प्रकार के रोग उत्पन्न होते है, इसी प्रकार असत्य बोलने से शत्रुता,

विषाद, लोगो में अविश्वास आदि उत्पन्न होते हैं. मृषावाद के पाप से जीव निगोद तथा तिर्यंच योनि और नरक में जाता है, अतः भय से अथवा दूसरे के आग्रह से भी कभी झुठ नहीं बोलना चाहिये. इस से वह महाराज क्रुद्ध हुए और उसने धन श्रेष्ठी का सारा धन ले लिया, और उस में से क्रोड मूल्यवाला वह रत्न सुदर को दे दिया. वह धन वणिक भी मृत्यु पर्यंत गरीब और दुःखी बना रहा, अधिक में इज्जत खोई."

लक्षमति विक्रमादित्य महाराजा को रात में यह सारी कथा कह रहा था, उसने अंत मे कहा, "जो लोग बिना सोचे समझे कार्य करते हैं, वे बाद मे दुःखी होते हैं, इस में शंका नहीं हैं. अतः हे महाराजा! आप कुछ समय धीरज धरें, मैं अवश्य ही आप की आज्ञानुसार कार्य कर दूँगा."

महाराजाने अपने मन मे सोचा कि यह लक्षमति भी सहस्रमति के जैसा ही है. तीसरा प्रहर पूर्ण होने पर महाराजा को नमस्कार कर वह रवाना हुआ. पहरे पर कोटिबुद्धि, हाजर हुआ, उस को बुला कर महाराजाने उसे भी शवमति को मारने की आज्ञा फरमाई. कोटिमतिने महाराजा से कहा, "आपको अकेला छोड कर जाने के लिये मेरा मन जरा भी. तैयार नहीं होता."

महाराजा बोला, "मैं अभी स्वस्थचित्त होकर जागता।

ने तीन वर्ष निकाले. आखिर एक दिन वह चंडिकादेवी के मंदिर में आ पहुँचा. वहां वह एक बडा पथ्थर लेकर बार बार उस प्रकार कहने लगा, 'हे देवी! तू मुझे धन दे, नहीं तो मैं इस पथ्थर से तेरी मूर्ति के टुकडे टुकडे कर डालूंगा.'
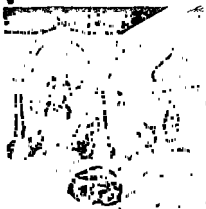
(देवी और कराल ब्रह्मण चित्र न. ४१)

इस से डर कर वह देवी उसे प्रत्यक्ष होकर कहने लगी, 'तेरे भाग्य में कुछ नहीं है, यदि तुझे धन दिया भी जाय तो उस मे से तेरे हाथ में कुछ नहीं रहेगा.' फिर भी वह बोला, 'मैं तुमसे यह बातें सुनना नहीं चाहता हुँ. तुम मुझे धन दो वरना मैं तुम्हारी मूर्ति के दो टुकडे कर डालूंगा.' तब डर कर उस देवीने करोड रूपये का मूल्यवान एक रत्न उसे दिया. वह भी उसे प्राप्त कर खुश होता हुआ समुद्र मार्ग से घर जाने के लिये जहाज में बैठ कर रवाना हुआ.

पुनम की रात में चंद्रमा की कांति देख उस तेजस्वी मणि को हाथ में ले कर वह ब्राह्मण कहने लगा, 'इस माणिक्य और चंद्रमा दोनो में से कौन अधिक तेजस्वी है?' इस

प्रकार वह ब्राह्मण उस जहाज पर खडा हुआ बार बार अपने हाथ मे रत्न को रख कर देख रहा था, इतने मे दुर्भाग्य-वश वह रत्न उस के हाथ से छूट कर समुद्र मे गिर पडा, तब वह ब्राह्मण बहुत पश्चाताप करने लगा.

चित्र न ४२

इस प्रकार जो लोग विना विचारे काम करते है वे अति दु खी होते है, इस में जरा भी सदेह नहीं अत हे स्वामिन्! आप कुछ प्रतीक्षा करे, मैं आप की आज्ञा का पालन करुगा." कोटिमति की बात सुन कर महाराजाने विचार किया, 'यह भी सहस्रमति और लक्षमति जैसा ही है' चोथे प्रहर क अत मे कोटिमति छूटी ले कर घर गया

कुछ समय बाद दिन उगने पर महाराजाने कोतवाल को बुलाया और उसे आज्ञा दी, "तुम शीघ्र ही शतमति को फासी पर चढा दो और साथ ही साथ इसी क्षण सहस्रमति, लक्षमति, कोटिमति को भी देशनिकाल की सजा दे दो."

यदि माता ही जहर खिला दे, पिता ही पुत्र को बेच दे अथवा यदि राजा सर्वस्व का हरण करे तो उस का दुःख क्या? अर्थात् उस का कोई इलाज नहीं है

उस नौकर को अतिथि व पति को बुलाने के लिये भेजा. जुआ खेलने मे मस्त उस जुगारी ने नौकर के साथ अतिथि को घर भेज दिया घर आये हुए उन अतिथि को देख कर उस जुगारी की स्त्री कामदेव के पांचो बाणो से पीडित हुई, अर्थात् उस के मन मे कामवासना व्याप्त हुई. कहा है कि–कामदेव के पुष्परूपी बाणों से घायल हुए हृदय के कारण विवेक पानी की तरह बह जाता है.

वह अतिथि अपने दोनो पैर धो कर खाने के लिये बैठा, तब उस स्त्रीने अतिथि को कि हुई श्रेष्ठ रसोई के साथ चावल, दाल, घी आदि परोसा, और इस प्रकार मन में सोचने लगी—

'यदि यह व्यक्ति मेरा पति बन जाय तो मैं गोत्रदेवी को अद्भुत बलिदान दुंगी' उस पुरुप को रूपवान देख कर उसी समय वह क्षत्रियपत्नी मोहरूपी पिशाच से ग्रस्त हो गई. कहा है कि–उल्लू दिन को नहीं देखता, कोआ रात को नहीं देखता लेकिन कामान्ध व्यक्ति ऐसा अद्भुत है जो न रात में देखता है न दिन मे देखता है. धतूरा खाया हुआ व्यक्ति सारे जगत को कंचनमय देखता है, उसी तरह कामि स्त्री सारे जगत को पुरुषमय देखती है, और कामी पुरुष सारे जगत को स्त्रीमय देखता है.

महाराजाने अपने मन को शुद्ध रखते हुए उस की मनोगत इच्छा को जान कर कहा, "हे स्त्री! शीलवान् स्त्री

को परपुरुष के सामने ऐसी चेष्टाएं नहीं करनी चाहिये. अतः मन के विकारों को शान्त करो." ऐसा सुनकर अपनी मनोकामना को पूर्ण न होती देख कर मन में उस स्त्रीने विचार किया, 'कहीं यह पुरुष बहार जाकर मुझे बदनाम न कर दे.' इस लिये वह जोर जोर से चिल्लाने लगी. उस की चिल्लाहट सुन कर घर आते हुए जुगारी को उस अतिथि के बारे में शंका उत्पन्न हुई, और वह खड्ग निकाल कर जलदी चलने लगा, पति को दूर से घर आता हुआ जान कर उस स्त्रीने विचार किया, 'यह अतिथि व्यर्था ही मारा जायगा, अतः इसे बचाना चाहिये' कहा है कि-मोह से व्यक्ति क्षण में आसक्तिवान्, क्षण में सुस्त, क्षण में कोपायमान और क्षण में क्षमावान् बनता है. मोह से व्यक्ति में बंदर की तरह चंचलता आ जाती है अतः मोह व्यक्ति को बन्दर की तरह नचाता है

(यद न होते तो सारा घर जल जाता.)
चित्र नं. ४१

अब उस स्त्रीने अतिथि को बचाने के लिये चुल्हे में से जलती हुई लकड़ी लेकर घर के छापरे में आग लगा दी, और शीघ्र ही चिल्लाने लगी, "दौड़ो, दौड़ो, मेरा घर जल रहा है." उस समय अतिथि को

जलते हुए घर को बचाने के लिये आग बुझाते हुए देख कर उस जुगारीने अपनी तलवार म्यान में डाल दी. तब उस स्त्रीने अपने पति को उच्च स्वर से कहा, "यदि ये महापुरुष यहां न होते, तो आज सारा ही घर जल जाता."

> रूपे देवकुमार सम देखत मोहे नरनार.
> सोही नर खिण एक मां बल जल होवे छार.

उस का ऐसा मायामय स्त्री चरित्र जान कर महाराजाने अपने नगर के प्रति चल दिया. अपने नगर में आ कर उस पंडित को जेल से बाहर निकलवा कर उस का सन्मान किया, और उसे कोषाध्यक्ष के पास एक करोड सोनामहोर-दिलवाई. विक्रमादित्य उस काव्यका स्मरण करते हुए लोगों को दान देते हुए अपना समय विताने लगे.

महाराजा विक्रम का स्वर्गगमन

> आता है जब काल का झोंका, प्राण-तैल तब देता धोका;
> सकता नहीं किसीका रोका, बार बार मिले न मौका.

प्रतिष्ठानपुर नगर में शालिवाहन नामक बलवान राजा था. उस के पास सुंदर हाथी, बलवान् घोडे आदि विशाल संख्या में थे. उस के पास शूद्रक नाम का खूब बलवान सेवक था, जो बावन हाथ की शिला को उठा सकता था. उस राजा के पास और भी अन्य उनपचास-४९ बलवान् शूरवीर सेवक थे.

एक समय शालिवाहन महाराजा विक्रमादित्य के कुछ गाँवों पर हमला कर के पुनः अपने नगर को गया. जब यह बात भट्टमात्र मंत्रीने जानी तब महाराजा से कहा, "हे स्वामी! शालिवाहन हमारे गाँवों पर इस तरह हमला कर जाय यह अच्छा नहीं है, अतः सेना लेकर शालिवाहन पर आक्रमण करके उसे जीतना चाहिये, क्यों कि सामर्थ्य होते हुए कौन व्यक्ति दूसरे का पराभव सहन करेगा. सिंह कभी दूसरे की गर्जना सहन नहीं कर सकता, केवल डरपोक तथा सियार ही दूसरे से किया गया तिरस्कार सहन करते है."

महाराजाने कहा, "हे मंत्रीवर! तुमने सत्य कहा है, राजा हमेशा चार नीति से काम लेते है. यदि साम से राजा का काम शीघ्र ही बन जाय तो जीव को कष्ट देनेवाले दाम की जरूरत नहीं, और यदि दाम से काम निकल जाय तो भेद की जरूरत नहीं, अगर भेद से काम बनता है तो दण्ड का क्या प्रयोजन?"

तब मंत्री बोला, "पहले शालिवाहन के पास चतुर दूत भेजे, यदि शालिवाहन दूत के वचनों को न माने तो बाद में उसे जीतने की तैयारी करे." तब मंत्री से परामर्श करके महाराजाने एक दूत भेजा. प्रतिष्ठानपुर में पहुँच कर दूत राजा शालिवाहन की सभा में गया. और विक्रमराजा द्वारा कथित सब बात को वह कहने लगा,

"हे शालिवाहन भूपति! आपने हमारे महाराजा विक्रमा-

दित्य के गाँवों पर अभी जो हमला किया था, वह अच्छा नहीं किया, अतः शीघ्र ही हमारे महाराजा विक्रमादित्य के पास जाकर उन से मिल कर अपराध की माफी माँगिये. यदि आप नहीं मानते तो महाराजा विक्रमादित्य अपनी सेना तैयार करके आप को जीतने के लिये आवेंगे."

यह सुन कर शालिवाहन राजाने क्रुद्ध होकर और भ्रकुटी चढा कर कहा, "हे दूत! हमारे सामने अब ज्यादह कहने की जरूरत नहीं तेरे स्वामी को कहना कि मैं युद्ध के लिये तैयार हूँ, और शीघ्र ही सेना लेकर रणांगण मे आता हूँ."

दूतने शीघ्र ही महाराजा विक्रमादित्य से जाकर कहा, "हे स्वामिन्! शालिवाहन तीनों जगत को तृण के समान गिनता है, और इस समय तो वह आप को तुच्छ समझता है, अतः आप शीघ्र ही सेना लेकर युद्ध के लिये प्रस्थान कीजिये"

यह सुन कर महाराजाने अपनी विशाल सेना तैयार की और प्रतिष्टानपुर की तरफ प्रयाण किया. उस समय महाराजा ने सैनिकों को खूब धन देकर संतुष्ट किया और इस प्रकार महाराजा से सन्मान प्राप्त कर के सेवकगण भी खुश खुश हुए. कहा है कि—

वीर लडाई, वैद्य बिमारी, विप्र मरण चाहे सब का;
सन्तपुरुष की अभिलाषा यह हो, सुख शुभ जगमें सब का.

अनेक मत्त हाथी, घोडे और सुभटों से सुशोभित दोनों

राजाओं की सेनाएँ मैदान में मिली. रथी रथवालों के साथ, घुडसवार घुडसवारो के साथ, पैदल सैनिक पैदल सैनिकों के साथ और हाथीवाले हाथीवालों के साथ लडने लगे. तलवारें तलवारों से भिड गई, भालेवाले भालेवालों से, बाणवाले बाणवालो से, अस्त्रवाले अस्त्रवालो के साथ, दडवाले दडेवालों से लडने लगे. इस तरह उन दोनो बलवान सेनाओं में घोर युद्ध हुआ. वह इतना भयकर था, आकाश में मानो कि देव भी उसे देखने के लिये आये

इसी तरह जब युद्ध हो रहा था, इतने मे विक्रम महाराजा की छाती में शालिवाहन राजा का छोडा हुआ तीर आकर लगा. उस समय सेना के बीच मे रहे हुए विक्रम महाराजा को अपने मत्री आदिने घेर लिये, और उपचार करने लगे, किन्तु स्थिति चिंताजनक रही तब भट्टमात्रादि मत्री इस प्रकार बोले, "हे स्वामी! आप जरा भी आर्तध्यान न करे, दूर्ध्यान से जीव दुर्गति में जाता है कहा है कि—

आर्तध्यान करने से जीव तिर्यचगति मे जाता है, और साथ ही राजन्! जिस प्रकार हम आज तक आपकी सेवा करते आ रहे है, उसी तरह हम विक्रमचरित्र—आपके पुत्र की सेवा हमेशा करेंगे, तब श्री विक्रमादित्यने शुभ ध्यान में मग्न होकर पचपरमेष्ठी को नमस्कार करते हुए स्वर्ग सुख को प्राप्त किया.

विक्रमादित्य महाराजा के स्वर्गवास का समाचार सुन कर सारी सेना में विषाद की गहरी छाया छा गई. विक्रम महा-

दित्य के गाँवों पर अभी जो हमला किया था, वह अच्छा नहीं किया, अतः शीघ्र ही हमारे महाराजा विक्रमादित्य के पास जाकर उन से मिल कर अपराध की माफी माँगिये. यदि आप नहीं मानते तो महाराजा विक्रमादित्य अपनी सेना तैयार करके आप को जीतने के लिये आएंगे."

यह सुन कर शालिवाहन राजाने क्रुद्ध होकर और भ्रकुटी चढा कर कहा, "हे दूत! हमारे सामने अब ज्यादह कहने की जरूरत नहीं तेरे स्वामी को कहना कि मैं युद्ध के लिये तैयार हूँ, और शीघ्र ही सेना लेकर रणांगण में आता हूँ."

दूतने शीघ्र ही महाराजा विक्रमादित्य से जाकर कहा, "हे स्वामिन्! शालिवाहन तीनों जगत को तृण के समान गिनता है, और इस समय तो वह आप को तुच्छ समझता है, अतः आप शीघ्र ही सेना लेकर युद्ध के लिये प्रस्थान कीजिये."

यह सुन कर महाराजाने अपनी विशाल सेना तैयार की और प्रतिष्ठानपुर की तरफ प्रयाण किया. उस समय महाराजा ने सैनिकों को खूब धन देकर संतुष्ट किया और इस प्रकार महाराजा से सन्मान प्राप्त कर के सेवकगण भी खुश खुश हुए कहा हैं कि—

वीर लडाई, वैद्य बिमारी, विप्र मरण चाहे सब का;
सन्तपुरुष की अभिलाषा यह हो, सुख शुभ जगमें सब का.

अनेक मत्त हाथी, घोडे और सुभटों से सुशोभित दोनों

है उसी का कीर्तिकारक, जन्म इस संसार में;
दे दिया सर्वस्व जिसने, और के उपकार में.

विक्रम महाराजा की मृत्यु के दूसरे दिन शालिवाहन राजा से युद्ध करने के लिये विक्रमादित्य का पुत्र विक्रमचरित्र आया. उसने थोडे ही समय में शालिवाहन राजा की सारी सेना को दशों दिशाओं में भगा दी. तब शालिवाहनने विक्रमचरित्र के साथ संधि की, और अपने नगर में गया. उधर विक्रमचरित्र भी अपने नगर में आया, किन्तु पिता के मृत्युजनित-शोक में रातदिन मग्न रहने लगा उस समय पू. आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी महाराज उस का शोक छुडाने के लिये वहां आये, विक्रमचरित्र को इस प्रकार उपदेश देकर शान्त किया. "हे राजन्! धर्म, शोक, भय, आहार, निद्रा, काम, कलि और क्रोध जितने प्रमाण में करे, उतने ही प्रमाण में

इस प्रकार पू. आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी-गुरुमुख से उपदेश को सुन कर अंत समय में महाराजाने धर्म की आराधना कर स्वर्ग में गये, तत्पश्चात् पू. आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी गुरुदेवने पिता के मृत्यु के शोक में डुबे हुए विक्रमचरित्र का शोक दूर करने के लिये धर्मोपदेश दिया. गुरुदेव के उपदेश को सुन कर विक्रमचरित्र का शोक कुछ हलका हुआ, और शोक छोड कर शीघ्र ही उस ने अपने पिता के मृत्युकार्य को संपन्न किया,

मूरख जाने मुझ बिना, चाले नहीं व्यवहार,
गये युधिष्ठिर राम-नल, फिर भी चले संसार.

राजा के विक्रमचरित्र को पिता के स्वर्गगमन से महान् आघात हुआ. दु खी मन से स्वर्गीय पिता के देह की अ तिम विधि बडे धूमधाम से कर अग्निसंस्कार किया. ×

× **मतान्तः**-विक्रम महाराजा की मृत्यु के बारे मे दूसरा हाल इस प्रकार मिलता है कि-एक समय विक्रम महाराजा और शालिवाहन राजा के बीच युद्ध हुआ. उस में विक्रम महाराजा घायल होकर अपने नगर में लौट आये, और खिन्न रहने लगे अति विषाद से इस प्रकार की उदर व्याधि-पेट की पीडा उत्पन्न हुई, कि उन्हे क्षणभर भी आराम नहीं मिला. उन्होंने अग्निवैताल का स्मरण किया पर वह भी उस समय उपस्थित नहीं हुआ.

राजवैद्य को दिखाने पर वैद्यने कहा कि, यदि आप कौए का मांस खाय तो जी सकते हैं. महाराजाने रोग शांति के लिये और जीने की इच्छा से काकमांस का भक्षण किया तब भी दुष्कर्म के उदय से राजा का रोग बढता ही गया और लोकोक्ति भी[1] है कि काकमांस खाया, व हस छोडा, आत्मा को दु खी किया लेकिन अमर न हो सका, अत हे विक्रम! तुम इस प्रकार जन्म हार गये. अन्त समय में आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वर-जी महाराज वहां आये, और उन्हे कहने लगे, 'हे राजन्! तुम खेद न करो, उत्तम जन आपत्ति में शोक नहीं करते धन, जीवितव्य, स्त्री, और आहार इन चारों से किसी को भी तृप्ति नहीं हुइ, सभी जीव इन से अतृप्त रहकर ही जगत छोड गये हैं, छोडते है, और छोडेंगे [2]

१ छड्डा कागो मुक्क' च माहसं, विनडिअं अप्पाणं,
अजरामर' न हुअ हा विक्कम! हारिओ जम्मो. स ११/१०२६॥

२ धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहार कर्मसु,
अतृप्ता: प्राणिनः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च. स. ११/१३१॥

तपागच्छीय-नानाग्रंथ रचयिता कृष्ण सरस्वती बिरुद्धारक-
परम पूज्य-आचार्यश्री मुनिसुंदरसूरीश्वर शिष्य पंडितवर्य
श्री शुभशीलगणि विरचिते विक्रमादित्य चरित्रे
श्री विक्रमादित्य स्वर्गगमनो
नामैकादशः सर्ग समाप्त

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट् श्रीमद् विजयनेमि
सूरीश्वर शिष्य कविरत्न शास्त्रविशारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य
श्रीमद् विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्य वैयावच्चकरणदक्ष
मुनिवर्य श्री खान्तिविजयस्तस्य शिष्य मुनि निरंजन-
विजयेन कृतो विक्रमचरित्रस्य हिन्दी भाषायां
भावानुवादःतस्य च एकादश सर्ग समाप्त

कर्म कभी नहीं छूपते हैं-

तारा की ज्योतमें चंद्र छूपे नहि, सूर्य छूपे नहि बादल छायो,
रण चडयो रजपूत छूपे नहि, दाता छूपे नहि घर मांगन आयो.
चच नारीको नैन छूपे नहि, प्रीत छूपे नहि पीठ देखायो;
कवि गंग कहे सुन शाह अकबर, कर्म छूपे नहि भभूत लगायो.

मानव! मानवता छोड नहीं

(ले. पं. प्रकाशचन्द्रजी कविरत्न)

मानव! मानवता छोड नहीं ! !
रवि की किरणें भूपर आती,
तेरे पद—रजको छू जाती;
हे मानव! तू जग में महान,
देवोंकी भी कर होड नहीं.
मानव ! मानवता छोड़ नहीं.
विज्ञान मुक्ति का कारण है,
क्यों! वेलि कपट विषकी बोई;
यदि श्रद्धा का मधु—मिश्रण है,
वैरी न यहां तेरा कोई,
तू बुद्धिवाद के पाहनसे से,
जिस में तेरी छवि अंकित है.
सहृदयताका घट फोड नहीं,
तू उस दर्पण को तोड नहीं
मानव ! मानवता छोड नहीं.
मानव ! मानवता छोड नहीं!!

(हिन्दी कल्याण—मानवता अंक में से साभार उद्धृत,)

श्री शेरीसा पार्श्वनाथाय नमोनमः

पैंसठवाँ-प्रकरण

(बारहवाँ-सर्ग का आरम)

जिस का कारज जो करे, दूसरे से नव होय;
दीपक प्रगटे क्रोड दश, रवि विण रात न जाय.

श्री विक्रमचरित्र का राज्यतिलक

महाराजा विक्रमादित्य की मृत्यु के बाद जब मंत्रियोंने पाटवी राजकुमार विक्रमचरित्र को सिंहासन पर बैठाना चाहा, तो सिंहासन की पुतलियाँ एकाएक इस प्रकार बोली—

"हे विक्रमचरित्र, आप इस सिंहासन पर नहीं बैठ सकते, क्यों कि विक्रमादित्य महाराजा के समान प्रथम योग्यता प्राप्त किजिये."

पुतलियो का यह वचन सुन कर मंत्रीगण आपस में इस प्रकार कहने लगे, "यह वचन सिंहासन की अधिष्ठायिका

देवियों के है" तब उन्होंने उस पुतलियों से पूछा, "हे पुतलियो! इस सिंहासन की इस्ट क्या व्यवस्था करनी चाहिये?' तब पुतलियोंने कहा, "अब इस सिंहासन को भूमि मे गाड दो" सिंहासन के अधिष्ठाता के वचन की महत्ता समझ कर उन मंत्रियोंने उस सिंहासन को पुतलियाँ सहित जमीन मे भूमिगृह-तलघर कर उस में गाड़ दिया

उस के बाद मंत्रियोंने राजा विक्रमचरित्र को अन्य बड़े मनोहर सिंहासन पर बिठाया, और सारे नगर मे बड़ा उत्सव मनाया नये महाराजा को नमस्कार कर के सभी नगरजन व मंत्रीगण आदि खुश हुए

उस समय विक्रमादित्य की बहनने आकर अपने भतिजा को अक्षत आदि सामग्री से वधाई देती हुई हर्षित हो कर इस प्रकार मंगल उच्चारण किया, 'हे विक्रमचरित्र! तुम धैर्य, उदारता, गंभिरता, शौर्य आदि उत्तम गुणों से महाराजा विक्रमादित्य के समान विभूषित हो कर चिरकाल तक राज्य करो"

उपरोक्त आशीर्वादात्मक मंगल शब्द सुन कर सिंहासन पर की चारों चामरधारिणी हँस पडी, तब विक्रमचरित्रने उन से पूछा, "तुम क्यों हँसती हो?" तब पहली चामरधारिणी बोली, "महाराजा विक्रमादित्य का एक एक जीवन प्रसंग इतना अद्भुत था कि उस का वर्णन करना भी शक्य नहीं है, तो आप उन के समान कैसे हो सकते है?" महाराजा

विक्रमचरित्रने अपने स्वर्गीय पिता के जीवन प्रसंग सुनाने के लिये कहा, तब प्रथम चामरधारिणी इस प्रकार बोली, "एक बार महाराजा विक्रमादित्य सभा मे बैठे थे. इतने
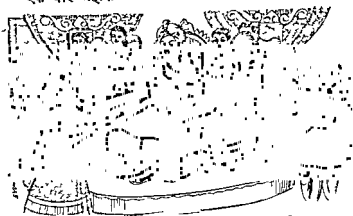
विक्रमचरित्र के ललाट में फूफा-भूआ तिलक कर रही है चित्र नं ४४

मे एक शुकयुगल आकर सभामडप के तोरण पर बैठा, तब शुकीने कहा, "हे स्वामी! यह नगरी बहुत ही सुदर है." तब वह तोता बोला, "हे प्रिये! हम जिस नगर मे जा रहे है, वहां एक विधवा का घर भी इस राजसभा से अच्छा है." यह कह कर तोते की जोडी वहा से उड गई. महाराजा यह वचन सुन कर उस नगर को देखने के लिये बहुत उत्सुक हुए. और अपने मंत्री भट्टमात्र तथा अग्निवैताल के सामने इस प्रकार बोले, "तुम दोनों तोते से कहे हुए नगर का पता लगा कर मुझे कहो." राजा की आज्ञा पा कर

अग्निवैताल तथा भट्टमात्र दूर दूर तक सब जगह घूमते घूमते तिलंग देश पहूँचे. उस देश के मुकुट समान सुंदर श्रीपुर नामक नगर मे साल महिने के बाद पहुँचे. उस नगर में भीम नामक बलवान् और न्यायी राजा था. उस की पद्मा नामक रानी और सुरसुंदरी नामक पुत्री थी. वह सुंदरी सर्वकलारूपी समुद्र की पारगामिनी, चतुर, शील से शोभित, सुंदर बुद्धिवाली, और रूप द्वारा देवांगनाओं को भी जीतनेवाली थी. उस स्वर्गसमान सुंदर नगर मे स्थान स्थान पर घूमते हुए तोरण पर बैठे हुए तोते के जोडे को उन्होंने देखा, उस समय तोतेने अपनी पत्नी –शुकी से कहा, "हे प्रिये! अवन्ती मे मैंने इस नगरी का
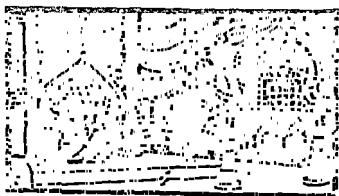
राजसभा में तोरण पर शुक और शुकी बैठी है. चित्र नं. ७५

वर्णन किया था, वही यह नगरी देव विमान से भी अति सुंदर है, देखो."

तोते के इस वचन को सुन कर भट्टमात्र और अग्नि-वैताल दोनों हर्षित हुए. शीघ्र ही वे उस नगर को देख कर चक्रेश्वरी देवी के स्थान मे गये. वहाँ थोडी ही देर बाद सुखासन-मेना मे बैठ कर सखियो सहित देवागना से भी सुंदर एक राजकन्या आई, वहाँ आकर देवी को प्रणाम किया जाते समय भट्टमात्र और अग्निवैताल को देख उन दोनो को परदेशी मान कर दासीद्वारा अपने महलपे बुलाये, और दोनो को दासी द्वारा स्नान करवा कर, आदरपूर्वक भोजन कराया

रात्रि मे अग्निवैताल और भट्टमात्र के साथ महल में अपने पास मे एक दीपक को रख कर सभी स वादो को-समस्या, वाद-विवाद और प्रश्नोत्तर के रहस्य को जाननेवाली वह सुर-सुदरी, तांबूल खाती हुई शय्या पर जा कर बैठ गई. अपनी शय्या के दोनो तरफ एक काष्ट का मनोहर बकरा व घोडा शोभा के लिये रखा, आगे चादी और सोने का एक मणिमय सिंहासन भी रखवाया उस समय द्वार पर स्थित भट्टमात्रने अग्निवैताल को कहा, 'अब अपना कार्य सिद्ध हो गया, अतः अब विक्रम महाराजा को यहाँ बुलाना चाहिये इस लिये तुम बुला लाओ, मैं यहा ठेरता हूँ. महाराजा को बुलाने के लिये वहाँसे अग्निवैताल रवाना हुआ. तब भट्टमात्र मन ही मन विचारने लगा, 'अब मैं अकेला हूँ क्या करुं?' इतने में वह बकरा बोल उठा, 'हे भट्टमात्र! तुम यहाँ क्यों आये हो? इस स्थान पर शक्ति बिना कोई नहीं आ सकता.'

काष्ठ के बकरे को बोलता हुआ देख आश्चर्य चकित

हो भट्टमात्र वकरे की ओर देख रहा, और कुछ भी उत्तर नहीं दिया, इतने में बकरेने उसे इतने जोर से लात मारी कि, वह सीधा उज्जयिनी नगर के दरवाजे के बाहर आकर गिरा, तब वह विचारने लगा, 'मैंने अग्निवैताल को भेज दिया सो मूर्खता की.' जब स्वस्थ होकर उसने अपने चारों तरफ देखा तो दरवाजे को देख कर उसने जाना, 'यह तो उज्जयिनी नगरी मालूम हो रही है' इस से वह मन ही मन चमत्कृत होकर विक्रम महाराजा के पास आया, और उसने वकरे आदि की सारी घटना कही, इतने में अग्निवैताल भी वहाँ आ पहुँचा

महाराजा विक्रमादित्यने विचार विनिमय कर के भट्टमात्र को नगर की रक्षा का कार्य सौंपा और स्वयं अग्निवैताल के साथ उस नगर में गया नगरी को देख कर अदृश्य रूप वाले अग्निवैताल के साथ चक्रेश्वरी देवी के स्थान पर गये, और उसे नमस्कार कर के कुछ देर के लिये वहीं ठहरे.

उस समय आकाश में काली छाया छाई हुई देख कर महाराजा विक्रमादित्य बोले, 'क्या अभी वर्षाकाल आ गया ? अतः शीघ्र स्वस्थान पर चलना चाहिये' तब वैताल बोला, 'वही कन्या सुरसुंदरी इधर आ रही है, वह पद्मिनी स्त्री है, उसके शरीर की सुगंध से आकर्षित होकर भवरों की पंक्ति एकत्रित हुई है, और इस से आकाश काला दिख रहा है, हे राजन् ! देखो वही सुरसुंदरी कस्तुरी और काजल से सुशोभित शरीरवाली आती प्रतीत हो रही है.' इतने ही में रूप की शोभा

में देवाङ्गना को भी जीतनेवाली वह कन्या पालखी मे बैठ-कर सखियों के सहित वहाँ आई. पालखी में से उतरते हुए उस कन्याने विक्रमादित्य महाराजा को देखा. उन के रूपसे मोहित-शून्यचित्ता बन गई, और उस के पैर विचलित हो गये. क्यों कि—

इन्द्रियों मे रसेन्द्रिय, कर्मों में मोहनीय कर्म, व्रतो में ब्रह्मचर्य और गुप्ति मे मनगुप्ति ये चारों दुःख से जीते जाते है.

विक्रमादित्य को देख कर वह सुरसुंदरी विचारने लगी, 'क्या यह इन्द्र है? या दैय? या नागेन्द्र है? या किन्नर है? अथवा कोई विद्याधर है?' शून्यचित्तसे मन्दिर में भक्ति-पूर्वक देवी को नमस्कार किये, और इस प्रकार बोली, 'हे देवी। यदि यह सुदर पुरुष मेरा पति हो जायगा तो मैं सवालाख सोनामोहरो की भेट आप के चरणो मे धरुगी.' इतना कह कर वह अपने महल गई

विक्रमादित्य महाराजा भी उसका सुदर रूप देख कर उसे प्राप्त करने की इच्छा से अत्यत आतुर हुए. वह वह शीघ्र ही देवमदिर मे गये, और भक्तिपूर्वक देवी को नमस्कार करके दो हाथ जोड कर बोले, 'हे देवी! यह कन्या मेरी प्रिया बनेगी तो मैं सवालाख सोनामोहरो से तेरी पूजा करुंगा.'

देवी को भक्तिपूर्वक नमस्कार करके [illegible] महल गई, और मोहित होने से उसने [illegible]

कर महाराजा को आदरपूर्वक अपने महल बुलाये. आने पर उसने महाराजा को सखियों द्वारा स्नान करवाया, और सुंदर अन्न-पानादि से राजा का सुंदर सत्कार किया.

कहा भी है कि-पानी का आनंद शीतलता मे है, दूसरे का अन्न खाने का आनंद उस के आदर में है, संसार में मनुष्य को अपनी स्त्री अनुकूल रहे तो आनंद मिलता है और मित्रों को परस्पर मीठे वार्तालाप में आनंद आता है, आदर सहित भूखा सुखा भोजन होवे तो भी वह अमृत तुल्य लगता है, और आदर रहित मिष्टान्न होवे तो भी वह झहर तुल्य लगता है. इस लिये एक कविने कहा है—

आव नहीं आदर नहीं, नहीं नयनो में नेह;
उस घर कबु न जायीए, कचन वरसे मेह. ×

वह कन्या विचारने लगी, 'इस मे सत्त्व और औदार्य आदि गुण किस प्रकार के हैं, उसकी परीक्षा कर के देखना चाहिये.' रात्रि में वह कन्या महल के अंदर कमरे मे अपनी शय्या पर बैठी और पास ही सुंदर दीपिका रखी. और उस शय्या के दोनों तरफ बकरा और घोडा रखवाया. उसके आगे एक मनोहर रत्नमय सिंहासन स्थापित करवाया. जब महाराजा विक्रम दरवाजे के पास आये तो बकरेने पूछा, 'तुम कौन हो? और यहाँ किसकी शक्ति से आये हो?'

× आव है, आदर है, और नयनों में है स्नेह;
उस घर सदा जायीए, यदि पथ्थर वरसे मेह.

अपने बाहुबल से भारतवर्ष को ऋणरहित करनेवाले संवत्प्रवर्तक

महाराजा विक्रमादित्य

(मु नि वि संयोजित विक्रमचरित्र तृतीय भाग)

चित्र न. ४६ पृष्ठ ६०२
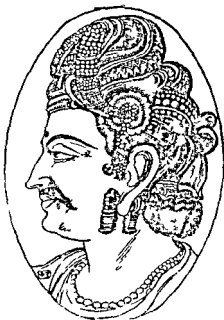
राजपुत्री सुरसुंदरी के आगे महाराजा विक्रमादित्य मणीमय सिंहासन पर बैठ कर कथा सुनाते है. ५०८ ६०२

(मु नि. वि संयोजित विक्रमचरित्र. तृतीय भाग चित्र. नं. ४७)

महाराजाने जवाब दिया, 'मैं स्वमल से यहाँ आया हूँ, तब वह बकरा बोला, 'यदि ऐसा है, तो मेरी स्वामिनी यह जो पलंग पर स्थित हुई है उसे जो बारबार बुलावेगा उस से वह शादी करेगी.'

तब महाराजाने अग्निवैताल से कहा, 'तुम्हे दीपक में अधिष्ठित होकर मैं जो वार्ता कहूँ उस का स्पष्ट प्रत्युत्तर देना.' तब अग्निवैताल दीपक में अधिष्ठित हो गया बादमें महाराजाने दीपक से कहा, 'दीपक! तुम मेरी बात का उत्तर दोगे?' तो दीपक बोला, 'मैं तुम्हारी बात में होंकारा दूँगा.' महाराजाने राजकुमारी को सुनाते हुए एक कहानी शुरू की—

'कौशांबी नगरी में 'वामन' नामक ब्राह्मण रहता था, उस को 'सावित्री.' नाम की पत्नी, 'नारायन' नामका पुत्र और 'गावित्री' नाम की पुत्री तथा 'अच्युत' नाम का एक मामा था, यह कन्या बडी हुई, और शादी करने लायक हो गई, यह जान कर उस के माता, पिता, मामा और भाई ये चारों व्यक्ति चारों दिशाओं में गये, और सुंदर वरों की शोध की. उस का वाग्दान संबन्ध तय कर के अपने घर आये. चारोंने परस्पर बात की. इस बातको सुनकर सब लोग आश्चर्यचकित हुए; और चिंता सागर में डूब गये. तय किये हुए मुहूर्त पर विवाह के लिये चारों वर अपने अपने स्वजनों को लेकर आ पहुँचे. जब वे चारों वर गावित्री से लग्न करने आये, तो क्रोधित होकर आपस में लडने लगे. एक ने कहा 'मैं इस कन्या से शादी करुंगा.' दूसरेने कहा, 'मैं करुंगा.' इस तरह

जब ये चारों लड रहे थे उसी समय एकाएक साप के काटने से वह कन्या क्षणभर में ही मर गई. इस से इस विवाद का अंत आया.

उन चारों में से एक वर उस के साथ चिता में जल कर मर गया, दूसरा शीघ्र ही उसकी हड्डियाँ को लेकर तीर्थ में डालने के लिये चला, तीसरा वर झोंपडी बांध कर वहीं स्मशान में रहने लगा, और भिक्षा लाकर उसे पिंड देकर उस बचे अन्न से निर्वाह करने लगा, चौथा वर पृथ्वी पर इधर उधर भटकने लगा, और घूमते घूमते वसंत नगर में आ पहुंचा.

वहाँ मुकुन्द नामक ब्राह्मण की पत्नीने उसे भोजन के लिये निमंत्रण दिया. जब वह भोजन करने लगा तो उस समय ब्राह्मणी का पुत्र रोने-चिल्लाने लगा, उसे भोजन परोसने में विघ्न टालते देखा. उस से माताने एकाएक उस पुत्र को अग्नि मे डाल कर उस ब्राह्मण को भोजन परोसा. यह देख कर उस ब्राह्मण वरने सोचा, 'पहले तो मुझे एक कन्या की हत्या लगी है, और अभी पुनः मेरे कारण से इस बालक की मृत्यु हुई, अर्थात् उसे बालहत्या निरर्थक ही लगी. निश्चय ही मेरी नरक गति होगी.

धिक्कार हो मेरे जीवन को, और पृथ्वी भ्रमण करने को भी धिक्कार हो, तथा बालहत्या द्वारा उदरपूर्ति करानेवाले इस भोजन को भी धिक्कार हो. स्वार्थी जीव इस लोक में

माता, पिता, पुत्री, पुत्र, मित्र आदि के वध आदि दुर्गति देनेवाले कौनसा पाप नहीं करते? कहा है कि दुःख से भरे जानेवाले इस पेट के लिये मैंने क्या क्या किया? किस किस की प्रार्थना न की, किसे किसे मस्तक नहीं नमाया? और क्या क्या योग्य या अयोग्य कार्य न किया?'

इस प्रकार खिन्न चित्तवाले उस ब्राह्मण को देख वह ब्राह्मणी बोली, 'हे अतिथि ब्राह्मण! आप भोजन कीजिये, मेरा पुत्र जिंदा है, निरर्थक चिंता न करें.' भोजन करने के बाद उस स्त्रीने घर में से कुछ चूर्ण लाकर अग्नि में डाल कर क्षणभर में पुत्र को जीवित किया, क्यों कि 'मंत्र तंत्र मणि-चूर्ण महौषधि आदि वस्तुओं का जगत में इष्टफल देनेवाला अपूर्व प्रभाव होता है. +

वह ब्राह्मण उस स्त्री के पास से थोडा चूर्ण माग कर ले आया, और जिस जगह कन्या को जलाया था, वहां की रक्षा लेकर उस में चूरण डाल कर उस गावित्री कन्या को जीवित किया, कन्या के साथ मरा हुआ ब्राह्मण भी उस के साथ जीवित हो गया, और इधर तीर्थस्थान पर गया हुआ ब्राह्मण भी एकाएक वहाँ आ गया उस समय रूपवती कन्या को जीवित देख कर पुनः इन चारों ने पूर्ववत् झगडा होने लगा.

तब विक्रम महाराजा बोले, 'हे दीप! तुम कहो कि

× मंत्रतंत्रमणिचूर्णमहौषध्यादिवस्तुन.
अचिन्त्यो विद्यते लोके प्रभावोऽभीष्टदायक. ॥ स. ११/७८ ॥

वह कन्या किसे वरण करेगी?' दीपक बोला, 'यह तो मैं नहीं जानता.' तब महाराजाने कहा, 'जो इस बात का उत्तर जानते हुए भी नहीं देगा. उसे सात गांव के जलाने का पाप लगेगा.'

हत्याजनित पाप के भय से शय्या पर स्थित वह राजकुमारी सुरसुंदरी शीघ्र ही इस प्रकार बोली, 'तीर्थ में अस्थि डालनेवाला पुत्र हुआ, जीवित करनेवाला पिता बना, जो साथ में उत्पन्न हुआ वह भाई बना, अतः पिंड देनेवाला ही उस का पति बनेगा.' इस प्रकार महाराजा विक्रमने उस राजकन्या को एकबार बुलाया. फिर महाराजाने अग्निवैताल को घोडे मे स्थापन होने के लिये कहा, और फिर पूछा, 'हे घोडे! अब तुम मुझे उत्तर दोगे?' घोडा बोला, 'मैं तुम्हारी बातों का जवाब दूँगा.' तब सुरसुंदरी के सुनते हुए महाराजाने दूसरी कथा शुरू की. घोडे में रहा हुआ अग्निवैताल होकारा देने लगा.

चार मित्रों की कथा

शंख नामक नगर मे सुथार, दोशीबनिया, सोनी और ब्राह्मण ये चार मित्र रहते थे. वे चारों परदेश जाने के लिये अपने नगर से रवाना हुए. चलते चलते वे एक अटवी में आ पहुँचे. सूर्यास्त हो जाने के कारण वहीं एक वृक्ष के नीचे रात्रि व्यतीत करने का उन सबने निश्चय किया. 'वन में जागते हुए व्यक्ति को कोई भय नहीं होता.' यह सोच कर वे चारों

प्रहर में अपनी अपनी वारी से एक एक प्रहर जागते रहने का निश्चय कर वहाँ ठहरे.

सुथार प्रथम प्रहर में पुतली को घड रहा है. चित्र नं. ४८

पहले प्रहर मे सुथार के जागने की वारी थी. उसने अपनी वारी के समय लकडी मे से सोलह वर्ष की एक सुन्दर कन्या की पुतली वनाई. दूसरे प्रहर मे दोशी वनिये की वारी आई, तव उसने उस काष्ठपुतली को सुन्दर वस्त्रों द्वारा सज्जित कर दी, तीसरे प्रहर में सोनीने उस पुतली को आभूषणों से सजाया,

चौथे प्रहर में उस ब्राह्मणने मंत्र से उस सुंदर रूपवाली पुतली को मंत्र द्वारा जीवित बना दिया. सुबह वे चारों उस सुंदर रूपवती कन्या से विवाह करने के लिये आपस में विवाद करते-लडने लगे.

कपडे का व्यापारी पुतली को सजा रहा है. चित्र नं. ४९

महाराजा विक्रम बोले, 'हे घोडा! यह स्त्री किस की होगी?' घोडा बोला, 'मैं नहीं जानता कि यह स्त्री किस की होगी?' पुनः महाराजा विक्रम बोले, 'यह जानते हुए

भी जो नहीं बोलेगा उसे सात गाँवों के जलने से होनेवाली हत्या का पाप लगेगा.'

हत्या के भय से शय्या में स्थित वह सुरसुंदरी बोली, 'जिसने पुतली का निर्माण किया वह उस कन्या का पिता हुआ, जिसने उसे कपडे आदि पहनाये वह मामा हुआ, और जिसने उसे जीवित किया वह उस का गुरु हुआ, अतः जिसने उसे आभूषण पहनाये वह उस का पति होगा.'

इस प्रकार दूसरी वार सुरसुंदरी के बोलने पर महाराजाने फिर उस अग्निवैताल को भद्रासन-सिंहासन में अधिष्ठित किया और कहा, 'हे भद्रासन ! मैं कथा कहता हूँ, तुम मुझे उत्तर-होंकारा दोगे ?' सिंहासनने उत्तर दिया, 'बोलने तो नहीं जानता हूँ, किन्तु मैं तुम्हारी बात में हाँकारा करुंगा.' तब महाराजाने सुरसुंदरी के सुनते हुए तीसरी कथा कही—

दो मित्र की कथा—

'प्राचीन काल में विक्रमपुर नगर में सोम और भीम नामके दो मित्र थे, उस सोम का विवाह श्वरापुर में हुआ था, अपनी प्रिया को ससुराल से लाने के लिये सोम कई बार श्वरापुर गया, लेकिन वह भोली-मुग्ध बुद्धिवाली स्त्री पीहर से घर नहीं आती थी. सच कहा है कि–'स्त्री को पीहर में, पुरुष को ससुराल में, और संयमी-चारित्रधारी को गृहस्थी लोग.

के साथ सहवास लंबे समय के लिये हो तो ये तीनों शोभा नहीं देते.'

इस तरह सोमने बहुत दिन तक मन ही मन दुःखी हो कर, अपने प्यारे मित्र भीम से कहा, 'मेरी पत्नी पीहर से मेरे घर नहीं आती है, अब मैं क्या करुं? कहा है कि मित्र परम विश्वास का एवं सलाह का स्थान है.

लेना देना पूछना, गुप्त बताना भेद;
खाना पीना परस्पर, मैत्री के है छः भेद.

भीमने सोम से कहा, 'एक बार और चलो, मैं साथ आकर भौजाई-भाभी को समझाने का प्रयास करुं नहीं तो और कोई उपाय करेंगे.'—अतः भीम स्वयं एक बार अपने मित्र की पत्नी को लाने के लिये सोम के साथ चला. रास्ते में भट्टारीका देवी का मन्दिर आया. भीम देवी को प्रणाम करने का बहाना करके मित्र सोम को रथमें ही छोडकर मन्दिर मे गया, नमस्कार कर देवी से इस प्रकार कहा, 'हे देवी! यदि मेरे वचनसे मेरे मित्र की पत्नी मित्र के घर आ जायगी, तो अपना शिर दे कर तेरी पूजा करुंगा.'

जब वे दोनों वहां गये तो उस की—सोम की पत्नी हर्षित हुई, और भीम के समझाने से उसने सोम के घर आना स्वीकार किया. सोम और भीम दोनों मित्र उसे लेकर लौटे. और दोनों खुशी से अपने नगर के प्रति शीघ्र रवाना हुए. रास्ते में देवीका मन्दिर आने पर देवी को नमस्कार करने के

वहाने से भीम रथ की डोरी अपने मित्र को सौंप कर देवी के मन्दिर में गया. और उसने अपने शिर को छेद कर देवी की पूजा की. सोमने मित्र के बहुत देर होने परभी न आनेके कारण रस्सी पत्नी के हाथों मे दी, और देवी के मन्दिर में गया. वहां मित्र का शिर कटा हुआ देख कर उसने भी अपना शिर काट डाला. दोनों के न आने से थोडी देर राह देख कर सोम की पत्नी भी वहां गई. वहां देवी के आगे पति और देवर के शिरों को कटे हुए देख कर वह चकित और आहत हुई, 'यह क्या और कैसे हुआ ?' सोम की पत्नीने विचार किया 'मरे हुए पति को छोड कर मैं ससुराल जाउंगी तो लोग कहेंगे कि पति और देवर को मार कर यह आई है, और पीहर जाउंगी तो भी लोग यही निन्दा करेंगे. अतः पति की तरह मेरी भी मृत्यु देवी के सामने ही हो यही अच्छा है.'

(भी देवी के मन्दिर जा रहा है)
चित्र नं. ५०

इस प्रकार विचार कर उसने पास ही पडी हुई छुरी ली, और अपने गले में मारने लगी, इतने में देवी प्रगट होकर बोली, 'हे स्त्री ! तुम साहस न करो.' देवी का वचन सुन कर बोली, 'तो तुम अपने दोनों सेवकों को जीवित करदो.'

तब भट्टारी का देवीने कहा, 'तुम इन दोनो के मस्तक उन के धड से मिला दो' यह सुन कर जलदी में अपने पति और देवर के मस्तको को उलटे लगा दिये, अर्थात् पति के धड़ पर देवर का मस्तक और देवर के धड पर पति का मस्तक जोड दिया, तब देवीने उन दोनो को शीघ्र सजीवन कर दिये

(देवी के मन्दिर में चित्र नं ४१)

इस प्रकार वार्ता कह कर महाराजा विक्रमने कहा, 'हे भद्रासन! तुम कहो वह पत्नी किस की होगी?' तब भद्रासनने कहा, 'मैं यह नहीं जानता, कि वह किस की पत्नी होगी?' तब महाराजा विक्रमने कहा, 'यहाँ पर यह बात जानता हो और फिर भी नहीं बोलेगा, उसे सात गाँव के जलाने की हत्या का पाप लगेगा.'

यह सुन कर हत्या के भय से शय्या में रही हुई उस सुरसुदरीने कहा, 'जिस के धड़ पर पति का मस्तक वही उस का पति होगा. क्यो कि शरीर में मस्तक की ही प्रधानता है.' इस प्रकार बुद्धिद्वारा विक्रमदित्य महाराजाने सुरसुदरी को तीसरी बार बुलाया.

इस के बाद अग्निवैताल के। शय्या में अधिष्ठित करके विक्रम महाराजा बोले, 'हे शय्या! तुम मेरी बात का जवाब दोगी?" तब वह शय्या बोली, 'मैं तुम्हारी बातका हुकारा रूपी जवाब दूंगी.' विक्रमादित्य महाराजा उस राजकुमारी के सुनते हुए, इस प्रकार की कथा कहने लगे.

विश्वरूप राजा की कथा

'चेन्नाट नगर में 'विश्वरूप' नामक एक राजा था, उस के सूर नाम का एक सेवक था, उस सेवक को शीलवती कमला नाम की पत्नी व वीरनारायण नाम का पुत्र था उस के भी पद्मावती नाम की विनयवती पत्नी थी वीरनारायण को विशिष्ट प्रकार का सेवक जान कर खुश होकर महाराजाने एक लाख की आयवाला एक नगर उसे दे दिया, और उसे अपना अंग-रक्षक बनाया. अतः वह रात को दरवाजे के बाहर तलवार लेकर महाराजा की रक्षा के लिये जागता रहता था. कहा है कि इशारे से तत्त्व को जाननेवाला, प्रिय वाणी बोलनेवाला, देखने मे प्रिय लगनेवाला, एक बार कहने से समझनेवाला चतुर प्रतिहारी प्रशंसनीय है,

एक वार रातमें महाराजाने करुण स्वर से रुदन करती हुई स्त्री की आवाज सुन कर वीरनारायण को कारण जानने के लिये भेजा. वीरनारायणने स्मशान मे जाकर रोती हुई स्त्रीको रोने का कारण पूछा, उस समय महाराजा भी कौतुक से उसके पीछे पीछे आये थे, वे भी छीपकर उन दोनों के संवादों को सुनने लगे. वीरनारायण के कारण पूछने पर उस स्त्री ने कहा, 'मैं

इस राज्य की अधिष्ठात्री देवी हूँ. आज ६४ योगिनियां अपनी तृप्ति के लिये यहां के महाराजा को लाकर अग्नि के जलते हुए कुंड मे डालनेवाली है. महाराजा के उसमें जलजाने पर राज्य सूना हो जायगा. अतः मैं निराधार और दुःखित बनूंगी. इस राजा के कोई साहसी सेवक नहीं है जो अपने शरीर का भोग देकर महाराजा की रक्षा करे.'

वीरनारायण बोला, 'मैं ही महाराजा के सेवकों मे मुख्य हूँ. हे देवी! मुझे महाराजा की रक्षा की विधि बतलाओ, जिस से मैं तुम्हारे कथनानुसार करूँ.'

देवी बोली, 'वह काम किसी से भी करना शक्य नहीं है,' तब वीर बोला, 'मुझे बताओ, शक्य अशक्य का क्या प्रयोजन है? क्यों कि—

नीच पुरुष विघ्न के भय से काम का प्रारंभ ही नहीं करते, मध्यम पुरुष कार्य प्रारंभ करके भी विघ्न आने से बीच मे ही रुक जाते है, लेकिन उत्तम पुरुष हजार प्रकार के विघ्न आने पर भी प्रारंभ किये हुए काम को नहीं छोडते.'

(वीरनारायण और देवी. चित्र. नं. ५२)

तब देवी बोली, 'हे वीर! बत्तीस लक्षणवाले पुरुष

बिना योगिनियों का कार्य सिद्ध नहीं हो सकता, राजा और तुम दोनों ही बत्तीस लक्षणवाले उत्तम पुरुष हो.' तब वीरनारायण बोला, 'महाराजा तो समस्त राज्य का आधारभूत है. कहा है कि—

जिस पुरुष द्वारा कुल का अथवा जगत का कल्याण हो या सब को सुख उत्पन्न हो, उस मनुष्य की अपने शरीर तथा द्रव्य से भी रक्षा करनी चाहिये, जैसे चक्र में मध्यभाग का तुम्बी टूट जाय तो उस पर आधार रखनेवाले आरे कभी नहीं रह सकते, इसी तरह कुल के अधिपति मुख्य मनुष्य बिना अन्य मनुष्य नहीं रह सकते.

आगम में भी कहा है—जिस पुरुष पर वंश आश्रित हो, उस पुरुष को आदरपूर्वक रक्षा करनी चाहिये. मैं उसी राजा का सेवक हूँ. और मेरे मरने से जगत को कुछ नुक्शान नहीं होगा, अतः हे देवी! कुछ देर ठहरो मैं अपने शरीर को अग्नि में डालता हूँ.'

इतना कह कर शीघ्र ही वह घर गया और अपने माता पिता को सारी हकीकत कह दी. और उन्होंने भी सहर्ष उसे अनुमति दे दी. अनुमति पाकर वह शीघ्र ही घर से रवाना होकर देवी के पास चला, और देवीके पास आकर पूछा, 'हे देवी! अब मैं क्या करूं?' देवीने कहा, 'स्नान करके इस अग्निकुंड में कुद पडो.' देवी के कथनानुसार उसने अपने शरीर को अग्नि में डाल दिया.

उसके माता पिताने पुत्र विना अपना जीवन निरर्थक है,' और उस की पत्नीने भी पति बिना जीवन निर्थक है, विचार करके जिस कुड मे वह गिरा था उसी कुड मे आकर स्वय भी कुद पडे

यह सब वृक्ष की आड मे छीपे हुए महाराजाने देखा तब उसने विचारा, 'उन चारो की मेरे निमित्त हत्या हुई है, मेरे जीन से क्या ?' अत वे भी अग्निकुड मे कूदने के लिये तत्पर हुए, तब देवीने प्रकट होकर महाराजा को दोनों हाथो से पकड कर रोका, महाराजान कहा, 'तुम कौन हो, जो मेरे इस कार्य मे अन्तराय करती हो' देवी वाली, 'मैं इस राज्य की अधिष्ठायिका हुँ'

'हे राजन्! कुड मे कूदने का साहस मत करो' महारजान कहा, 'हे देवी! यदि तुम इन मनुष्यो को जीवित करोगी तो ही म जीवित रहूँगा अन्यथा नही'

तब देवीने थोडा पानी छाटा और क्षण मात्र मे सब जीवित हो गये तब महाराजा बोला, 'हे देवा! तुमने खूब इन्द्रजाल फैलाया' तब देवी ने कहा, 'तुम्हारी तथा इन सब मनुष्यों की परीक्षा करने के लिये ही मैने यह जाल किया है' उस से चमत्कृत हुआ, महाराजा आदि सब लोग देवी को नमस्कार करके घर आये और गाँव नगर आदि देकर सेवक का महाराजाने अधिक आदर किया

महाराजा विक्रमादित्य बोले, 'हे राक्षस! उन महाराजा

आदि में सब गुणों में मुख्य साहस गुणवाला साहसिक कौन था?' शय्या बोली, 'हे राजन्! मैं नहीं जानती, कि इन में अधिक साहसी कौन है.' महाराजाने कहा, 'जो जानते हुए भी इसका जवाब न देगा, उसे सात गाँवों के जलाने का पाप लगेगा.'

उस समय हत्या के भय से शय्या में रही हुई उस राजकन्याने कहा, 'निश्चय ही महाराजा को इन चारों में अधिक सत्त्वशाली जानना चाहिये. क्यों कि महाराजा ही इन्हीं का आधार है, सेवक नहीं.'

रखी, फिर गुरु को नमस्कार और गुणगान कर के पत्नी सहित अपने स्थान पर गये, आनंदपूर्वक सब लोगोने भोजन किया.

सुरसुंदरी को लेकर विक्रमादित्य महाराजा अग्निवैताल के साथ महोत्सवपूर्वक अपने स्थान पर लौटे. उसके रहने के लिये एक बडा महल बनवाया. रातदिन न्यायमार्ग से राज्य करते हुए उनका सुखपूर्वक समय बीतने लगा.

इस प्रकार प्रथम चामरधारिणी स्त्रीने विक्रमादित्य महाराजा का रोमांचकारी वृत्तान्त कहा, फिर उसने विक्रमचरित्र को कहा, "हे राजन्! आप महाराजा विक्रमादित्य के समान कैसे हो सकते हो?"

पाठकगण! अपनी बुद्धि-चतुराई से राजपुत्री सुरसुंदरी को चार बार बुलवा कर उस से उत्साहपूर्वक विवाह किया. जब तक मनुष्य का पुण्य भंडार बलवान है, तब तक सर्वत्र उस को जय मिलता है. इस लिये हरेक प्राणियों को चाहिये की दया, परोपकार, प्रभुस्मरण, देवपूजा आदि मानवजीवन को सफल करनेवाले सद्कर्तव्य करते रहना, इस भव में और परभवमें वही पुण्य सदा सहाय करता है. बुद्धिमान मानव को अधिक कहने की क्या आवश्यकता.

सुत दारा और लक्ष्मी, पापी के भी घर होय;
सत समागम प्रभु-भजन, ए दो दुर्लभ होय.'

छासठवाँ–प्रकरण

सज्जन–दुर्जन जाणीए, जब मुख बोले वाणी;
सज्जन मुख अमृत झरे, दुर्जन विषकी खाणी.

रुक्मिणी का कंकण

अब विक्रमचरित्र महाराजा के सामने दूसरी चामरधारिणी ने सभा के समक्ष अमृततुल्यवाणी से विक्रमादित्य महाराजा के एक जीवन प्रसंग का वर्णन करना आरंभ किया.

"एक वार महाराजा विक्रमादित्य की राजसभा में कोई पंडित आया, और उसने यह अपूर्व कथा सुनाई.

'चम्पकपुर' नगर में 'चम्पक' राजा राज्य करता था. उस की स्त्रियों में उत्तम शीलवती 'चम्पका' नाम की पत्नी थी. उस नगर में 'देवशर्मा' नामका ब्राह्मण था. और उसकी 'प्रीतिमती' नामकी स्त्री थी. जिस प्रकार पूर्व दिशा में रोहिणी का जन्म होता है, उसी प्रकार उसने सुंदर रूपवाली कन्या को जन्म दिया. पति आदिने उसका 'रुक्मिणी' नाम रखा. वह धीरे धीरे बडी होने लगी, और उसके तुतलाते हुए शब्द माता पिता को आनंद देने लगे.

जब वह आठ वर्ष की हुई तो उस की माता प्रीतिमती दैवयोग से मृत्यु को प्राप्त हुई. देवशर्माने अपनी अपनी पत्नीका मृत्युकार्य सभी संबन्धियों को बुलाकर विधिपूर्वक किया.

क्रमशः रुक्मिणी बड़ी होने लगी, घरकार्य करके, हमेशां यथा समय अन्नादि जिमाने से तथा भक्ति और विनयादि गुणों के कारण पिता को अपनी पुत्री पर असीम स्नेह रहा.

देवशर्मा के पडोश में एक कमला नाम की विधवा ब्राह्मणी रहती थी, वह देवशर्मा को अपना पति करना चाहती थी. अत. उसे इस प्रकार कहने लगी, 'हे ब्राह्मण! तुम्हारी प्रिया मर गई है, और तुम्हें स्वादिष्ट भोजन करने को चाहिये, यह तुम्हारी पुत्री छोटी है, और अच्छी तरह रसोई करना नहीं जानती. अतः किसी दूसरी स्त्री से तुम शादी कर लो. नई पत्नी करने से तुम्हें सुख प्राप्त होगा, अभी तुम्हारी उम्र कम है. अतः कोई भी ब्राह्मण तुम्हें अपनी कन्या देगा. बुढापा आने पर तुम्हें कोई भी अपनी पुत्री नहीं देगा. जब तुम्हारी पुत्री युवावस्था को प्राप्त करेगी, और तुम किसी वर के साथ विवाह कर दोगे, और वह अपने ससुराल चली जायगी, तब तुम्हारी दशा क्या होगी? मेरे शब्द आगे जाकर अत्यंत सुखकारी होंगे यह तुम्हें स्पष्ट जान लेना. कहा भी है—

स्त्रियों का भी हित, मित, और सुखकर वचन ग्राह्य होता है, और भाइयों का भी दुःखप्रद वचन त्याज्य होता है. ×

× हितं मितं च सुखदं वचो ग्राह्यं स्त्रियामपि,
त्याज्यं दु:खप्रदं वाक्यं बान्धवानामपि ध्रुवम् ॥ स. १२/१५० ॥

यह सुन कर ब्राह्मणने कहा, 'मैं अब दूसरी पत्नी नहीं करना चाहता, क्यो कि कोई भी स्त्री पहले की प्रिया समान नहीं मिलेगी, फिर मेरी यह पुत्री भोजन आदि देकर मेरी भक्ति करती है, जिस से मैं अपनी पत्नी को भी भूल गया हूँ.'

कमल की कपटजाल

तब उस कमलाने सोचा, 'मैं कुछ ऐसा करु कि जिस से इस का पुत्री उपरसे प्रेम कम हो जाय'

अब वह कमला ब्राह्मणी कई वार मोका देख कर गुप्त-रूप से रुक्मिणी के न जानते हुए रसोई में अधिक नमक डाल जाती, और पुनः चुपचाप अपने घर चली जाती कभी कभी वह रसोई में कचरा भी डाल कर चली जाती, कडवी व खारी रसोई देख कर पिता पुत्री से कहता, 'हे पुत्री! तूने रसोई कडवी क्यों बनाई?' तब पुत्री उसे जवाब देती, 'पिताजी, मैंने रसोई कडवी नहीं बनाई' इस प्रकार वह ब्राह्मण हमेशा ऐसे भोजन से दुःखी होने लगा धीरे धीरे उस का पुत्री पर से स्नेह कम हो गया, फिर वह उस विधवा ब्राह्मणी के आगे जाकर कहने लगा, 'यह कन्या मुझे हमेशा कडवी रसोई खाने को देती है'

कमला बोली, 'मैंने तुम्हे पहले ही कहा था, पर तुमने माना नहीं' तब ब्राह्मणने उसे कहा, 'तू मेरे लिये दूसरी पत्नी ढूढ कर ले आ.' तब कमलाने अन्य कन्या के लिये

प्रयास किया लेकिन कहीं भी कोई ऐसी वडी कन्या न मिली, जिस से ब्राह्मण दु खी हुआ यह देख वह ब्राह्मणी बोली, 'जो तुम्हारी इच्छा हो तो मै तुम्हारी पत्नी वन जाऊँ' ब्राह्मण बोला, 'तू मेरी पत्नी वन जाय तो बहुत ही अच्छा हो, क्यो कि यदि रोगी की जो इच्छा हो और वही वैद्य खाने को दे, तो रोगी को बहुत आनद होता है'

तब ब्राह्मणने कमला को अपने घर में रख लिया उसने भी स्नान कराने और अन्नपानादि से ब्राह्मण को खुश खुश किया नीति में कहा भी है, हाथी एक वर्ष मे वशमें आता है, घोडा एक महिने मे, लेकिन स्त्री तो पुरुषको एक दिन मे ही वश मे कर लेती है'.

कमलाने एक दिन अपने पति से कहा, 'अन्य जनो के बालक गाये चराने के लिये हमेशा बाहर जाते है, पर अपनी पुत्री नहीं जाती' पत्नी के वचनों को मानकर देवशर्माने पुत्री को गाये चराने के लिये बाहर भेजा वह कमला रुक्मिणी को चाहे जैसा वैसा कुछ भोजन देने लगी और कठोर वचनो द्वारा उसे बहुत दु ख देने लगी इस प्रकार अपर माता कमला क दु खदायी वचनो को सहन करती हुई, और गायों को चराती हुई रुक्मिणी मन ही मन बहुत दु खी होने लगी. कहा है—

बालक के लिये माता का मरना, युवावस्था मे पत्नी का मरना और वृद्धावस्था मे पुत्र की मृत्यु तीनो बडे दु खदायी होते है इस प्रकार खिन्न मनवाली रुक्मिणी हमेशा गायो को चराती थी

एकदा वह इस प्रकार गायें चराती हुई वनमें करील वृक्ष के नीचे आराम कर रही थी. उधर स्वर्ग में इन्द्र के पुत्र मेघनाद की पत्नी मेघवतीने नारद के आने पर उनका आदर नहीं किया, अत. नारद उस से नाराज हुए और नारद मनमें विचार करने लगे, 'यह स्त्री बहुत गर्व रखती है, अत. बुद्धिपूर्वक इस के गर्व का खंडन करना चाहिये. जो व्यक्ति दुष्ट आचरणवाली और गर्विष्ट होती है, वे अपने ही किये कर्मों से महान् अनर्थ अथवा संकट में पडती है. इतना सोचते हुए नारद पृथ्वी पर आये, और उन्होंने रुक्मिणी को करील के पेड के नीचे बैठी हुई देखा. तब वे पुन स्वर्ग में गये और इन्द्र के पुत्र मेघनाद से कहने लगे, 'हे मेघनाद! पृथ्वीतल पर मैंने एक ब्राह्मण की पुत्रीको देखा है वह अतीव सुंदर स्वरूपवाली है, उस के समान सुंदर देवलोक में कोई देवांगना भी नहीं होगी, यदि वह तुम्हें पसंद हो तो हम दोनों वहां जायें' मेघनादने कहा, 'हम दोनों उस कन्या को लेने के लिये वहां जायें' इस प्रकार विचार कर मेघनाद नारद के साथ पृथ्वीतल पर आया. यहां उसने रुक्मिणी से गांधर्व विवाह

(रुक्मिणी और नारद चित्र ४३)

क्रिया, और उसे स्वर्गलोक मे ले जा कर अलग स्थान में रखा. मेघनादने नारद का बहुत सन्मान किया, उस के बाद नारद तप करने के लिये आकाश मार्ग से पृथ्वीतल पर आ उतरे.

अब मेघनाद उस रुक्मिणी के साथ दिनरात निरंतर सुखभोग करने लगा. और अपनी पहली प्रिया मेघवती को भूल ही गये.

उधर मेघवतीने जब देखा कि आज कल बहुत समय से मेघनाद नहीं आते तो उसने अपनी सखी से बात की, 'आजकल वे इधर कभी भी नहीं आते. अत कहां रहते है? तुम इस बात की जांच करो' तब सखीने मेघनाद की तलाश की, और उसे मनुष्य पत्नी के साथ देखा तो वह आ कर अपनी स्वामिनी से इस प्रकार बोली, 'हे स्वामिनी! तेरे पति विषयक्रीडा मे आसक्त हो कर मनुष्य स्त्री के साथ विमान में अन्यत्र रहते है' यह सुन कर मेघवतीने अपने पति को बुलवाये तब भी वे नहीं आये, तब वह सोचने लगी, 'निश्चय ही मुझ से नाराज हुए नारदने दूसरी स्त्री के साथ विवाह करवाया है सच ही शास्त्र म कहा है—

परस्पर कलह करवानेवाले, मनुष्यों को युद्ध आदि में मरवानेवाले और सावद्ययोग में प्रवृत्त होने पर भी नारद सिद्धपद को प्राप्त करते है, उस मे एक शील के पालन का ही महात्म्य है +

+ कलिकारओ वि जणमारओ वि सावज्जजोगनिरओ वि, जं नारओ वि सिज्झइ त खलु सीलस्स माहप्पं. ॥ स. १२/२२५ ॥

मैंने पहले एक समय आते हुए नारद का सन्मान नहीं किया था, अतः संभव है कि, उन्होंने मेरे लिये यह दुःखदायक अवसर उत्पन्न किया है. यदि मैं पुन नारद का सन्मान करूं तो वह भोले भाले ऋषि पुन. ठीक कर देंगे जिस से मेरे पति निरंतर मेरे ही वश में रहेंगे.'

कुछ समय बाद एकदा नारद ऋषि पुन स्वर्ग में आये, तब उसने आदर सहित स्वागत आदि करके उन्हें खुश किया, तब नारदने मेघवती से पूछा, 'पहले जब मैं आया था, तब तो तुमने मेरे सामने दृष्टिपात भी नहीं किया, लेकिन आज तुम किस कारण से इतना आदरसन्मान करती हो ?'

मेघवतीने कहा, 'उस समय किसी काम में लगे रहने के कारण मैंने आप का आदर नहीं किया होगा अत मेरा वह अपराध क्षमा करे और मुझ पर प्रसन्न हो' नारद बोले, 'पूज्यजनों की [illegible] उल्लंघन [illegible] इह लोक में परलोक में भी प्राणी दुखी होते है, कहा है, देवों की

(नारद और मेघवती चित्र नं. ५१)

प्रतिमा भंग करने से तथा गुरुजनों की अवहेलना करने से प्राणियों को दुर्गति तथा दुःख परंपरा प्राप्त होती है.'

मेघवती बोली, 'मैंने आपकी जो अवज्ञा की वह कृपा करके अब क्षमा करें.' अतः प्रसन्न हुए नारदने कहा, 'तुझे जो कुछ काम हो वह कहे, जिस से मैं वह शीघ्र ही कर दूँगा.' मेघवती बोली, 'मेरा पति मेरी सौत को शीघ्र ही छोड दें, ऐसा करें.' उसका ऐसा कहने पर 'तथास्तु' कहकर ऋषि मेघनाद के पास गये. और बोले, 'देवता लोगों को मनुष्य स्त्री के साथ भोग करना जरा भी योग्य नहीं है, उनके शरीर में रस, खून, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा आदि सात धातु होते हैं.' इत्यादि कई युक्तियों से नारदने-मेघनाद को रुक्मिणी से विमुख कर दिया. तब मेघनादने पूछा, 'इस स्त्री को कहाँ छोडना योग्य है?'

नारद बोले, 'इस स्त्री को जिस पेड के नीचे से लाये थे वहीं पर छोडना ठीक है.' नारद के ऐसा कहने पर मेघनादने उस स्त्री को शीघ्र ही उस पेड के नीचे ले जा कर आभूषणों सहित छोड दिया. फिर मेघनाद स्वर्ग में जा कर अपनी पूर्व प्रिया मेघवती के साथ रह कर सुखपूर्वक समय व्यतीत करने लगा.

मेघनाद रुक्मिणी को वहाँ छोड गया, उस के बाद वह वहाँसे उठ कर पिता के घरकी तरफ चली. रास्ते में अकस्मात् एक 'कंकण' कई पृथ्वी पर गिर पडा, अन्य सब दिव्य

आभूषणो सहित वह घर गई. तब उसे अपर माताने पूछा, 'हे पुत्री! तू इतने समय तक कहां रही?' पुत्रीने जवाब दिया, 'मैं स्थानका नाम आदि कुछ भी नहीं जानती, लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि जहाँ मैं रहती थी वह स्थान सूर्य के विमान सदृश तेजस्वी था. और मनको आनंद देनेवाला था, ऐसे घर में मे सुखपूर्वक अब तक रहती थी वहाँ दिव्य शरीर के रूप की शोभावाले, दोषरहित मनुष्य रहते हैं, और सुंदर वेशधारी तथा मनोहर हार तथा बाजुबंध आदि द्वारा शोभित हैं '

ब्राह्मणी भी आभूषणो के लोभसे बोली, 'हे पुत्री! तुम घर आई यह बहुत अच्छा किया, चिन्ता से कई स्थानो पर तेरी खोज का थी आज मेरे सद्भाग्य से तू यहाँ आ गई है,' उस ब्राह्मणीने विचार किया, 'मै अपनी पुत्री लक्ष्मी के लिये छल कपट से सभी आभूषण इस से ले लूंगी' थोडी देर के बाद कमला बोली, 'हे पुत्री! यदि तेरे यह आभूषण आदि राजा देखेगा तो ले लेगा, ऐसा कह कर उस दुष्ट बुद्धिवालीने उस के सब आभूषण उतार कर ले लिये. और अपनी पुत्री के लिये किसी गुप्त स्थान मे रख दिये.

एक बार वहाँ का राजा गाँव के बाहर सुंदर घोडों को लेकर क्रीडा करने गया था. वहाँ घोडे के पैर के खुर के आघात से रुक्मिणी का गिरा हुआ एक दिव्य कंकण प्रगट हुआ, और उसे राजाने देखा राजाने उसे ले लिया और अपनी पट्टरानी

को दिया. वह दिव्य कंकण देख के पटरानीने कहा, 'हे राजन्! ऐसा ही दूसरा कंकण मुझे ला कर दो.' राजा बोला, 'हे प्रिये! मुझे एक ही कंकण मिला है.'

तब पटरानी बोली, 'मुझे लगता है कि आपने दूसरा कंकण किसी दूसरी रानी को दिया है, अतः यदि आप अभी दूसरा कंकण ला कर दोगे तो ही मैं जीऊंगी नहीं तो अग्नि-प्रवेश करुंगी. कहा है कि—

'वज्रलेप, मूर्ख, स्त्री, बंदर, मछली, काले रंग का दाग और शराब पीनेवालों का कदाग्रह एकसा ही होता है, अर्थात् ये अपनी पकडी बात कभी नहीं छोडते.'

राजाने राजसभा में आ कर मंत्रियों से बातचीत की, मंत्रियोंने कहा, 'हे राजन्! ऐसा दिव्य कंकण इसी नगर में किसी के पास होना चाहिये.' यह अपनी प्रिया के कदाग्रह के कारण राजाने कंकण प्राप्त करने के लिये मंत्रियों के साथ मंत्रणा की और नगर में एक बडी भोजनशाला शुरू की, राजाने यह भी घोषणा करवाई, 'जो स्त्री पुरुष अपने अपने आभूषण पहन कर कुटुंब सहित इस भोजनशाला में भोजन करने आवेंगे, उन्हें राजा बहुत सा द्रव्य देकर सन्मान करेगा.' इस से कई लोग सुंदर वस्त्र आभूषण पहन कर भोजन करने आने लगे.

तब वह ब्राह्मणी भी अपनी पुत्री लक्ष्मी को रुक्मिणी के कंकणादि सब आभूषण पहना कर लोभ से शीघ्र ही उस

भोजनशाला में भोजन करने आयी. ब्राह्मणी की वह पुत्री कानी थी. अतः उसे देख कर मंत्रियोंने विचार किया कि, ये आभूषण इस के कदापि नहीं हो सकते.

यह सोच कर मंत्रियोंने आभूषण के बारे में उसे पूछा, परंतु उसने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया, तब चाबुक आदि द्वारा उसे शिक्षा दी और पूछा, 'यह आभूषण किस के हैं ? सत्य बताओ, यदि न बतावेगी तो तुझे खूब मार पडेगी.' इस से डर कर उसने कहा, 'यह मेरी बहन रुक्मिणी के आभूषण हैं.' तब राजाने उस रुक्मिणी को बुलवाया और उस को देख कर वह राजा उसके रूप पर मोहित हो गया. उस के पिता को सन्मानित करके उत्साहपूर्वक राजाने उस से विवाह कर लिया. राजा आनंदपूर्वक समय विताने लगा.

तत्पश्चात् राजाने छल से वह कंकण अपनी पटरानी से ले लिया और नई पत्नी को दे दिया. राजा उस में पूर्ण आसक्त हो गया. और अब वह पहली पत्नी का नाम भी नहीं लेता. जब पहली रानीने राजा से कंकण मँगवाया तो राजाने कहा, 'दूसरे कंकण विना तुम काष्ट भक्षण करेगी, अतः उस कंकण से तुम्हें क्या प्रयोजन है ?'

कंकण प्राप्त करना असंभव जान कर पहली रानीने काष्ठभक्षण का निर्णय शीघ्र छोड दिया.

इधर समय बीतने पर अच्छे सुंदर स्वप्न से सूचित रुक्मिणीने एक पुत्र को जन्म दिया. उस समय अपने स्वजनों का सन्मान कर के राजाने उस का बडा जन्मोत्सव मनाया.

उस ब्राह्मणीने अपने पति से कहा, 'अब हम अपनी पुत्री रुक्मिणी को घर लावे, क्यो कि पुत्री को पुत्र हुआ है, अत उसे कुछ समय के लिये पीहर लाना चाहिये. यदि पिता अपनी पुत्री को घर पर न लावे तो लोग हमेशा पिता पर आक्षेप करते हैं' अपनी पुत्री को बुलाने के लिये उसने अपने पति को राजा के पास भेजा वह राजा के पास जाकर स्पष्ट शब्दों मे इस प्रकार बोला. 'हे राजन्! आप मेरी पुत्री को पुत्र सहित मेरे घर भेजे.' परन्तु राजाने उसे भेजना अस्वीकार किया तब, वह ब्राह्मण आत्महत्या करने को तत्पर हुआ. ब्राह्मण को मरने के लिये तत्पर देखकर राजाने पत्नी को भेजा और ब्राह्मण पुत्री को लेकर अपने घर गया. तब वह सौतेली माता छलपूर्वक बोली, 'मैने पहेले किसी से सुना है कि, स्त्री प्रथमबार पुत्र या पुत्री जन्म देती है, वह एक बार जीर्ण वस्त्र पहन कर कुएँ के पानी में अपने प्रतिबिंब को देखती है, उसको पुनः संतान प्राप्ति होती है' कह कर कमला उसे जीर्ण वस्त्र पहना कर कुए के किनारे ले गई. जब रुक्मिणी कुएके जल मे देख रही थी तब कमलाने उसे धक्का मारकर कुए में गिरा

(कमलाने रुक्मिणी को कुएमे धक्का दिया)
चित्र न ४४

दिया, उस कुए में गिरती हुई रुक्मिणी को नागराज-तक्षकने पकड लिया.

भूगर्भ द्वारा तक्षक उसे अपने स्थान पर ले गया, उसे अपनी पत्नी बना लिया, और आनंद से रहने लगा उस के साथ कुए, तालाब तथा उपवनादि में क्रीडा करते समय बीतने लगा इधर उस क्रूर ब्राह्मण पत्नीने रुक्मिणी के सुंदर जवाहर अलंकार आदि अपनी पुत्री लक्ष्मी को पहनाये, और उसने

(राजा-रानी और करण पृष्ठ ६१८ में देखो)
चित्र नं ४६

रुक्मिणी के पुत्र को स्तनपान कराने के लिये एक धाव माता रखी, क्यों कि राजाओं की रानियाँ पुत्र का स्तनपान नहीं कराती हैं. फिर लक्ष्मीको ब्राह्मणीने राजा के महल में भेजा एक आखवाली लक्ष्मी को देख कर राजाने मन में विचारा 'यह किस प्रकार हुआ ?' राजा के पूछने पर वह बोली, 'हे स्वामी ! मैं विषम स्थान में यकायक गिर गई थी, उस से मेरी आख में फूला पड गया है.'

राजाने सोचा, 'निश्चय ही यह मेरी प्रिया नहीं है,

कोई मायाविनी है,' राजाने उसे पूछा, 'तुझे किसने भेजा है,' तब उसने कुछ जवाब नहीं दिया. राजाने उसे चाबुक आदि से खूब मारा तब उसने राजा के सामने अपनी माता का किया हुआ सब काम कह दिया.

अपनी प्रिया को कुएं में गिरी हुई जान कर राजाने कहा, 'मैं भी उसी कुएं मे गिरुंगा.' मन्त्रियोंने कहा, 'हे राजन्! आप छ महिने तक राह देखिये, उतावल नहीं कीजिये. धीरज से सब ठीक होगा.' फिर राजाने उस ब्राह्मणी को अपने देश से बाहर निकाल दिया, और उस के बाद अपने पुत्र का पुनः बडे धामधूम से जन्मोत्सव करवाया

अपने पुत्र के जन्मोत्सव का वृत्तान्त तक्षक के मुँह से सुन कर रुक्मिणीने कहा, 'हे कान्त! मैं अपने पुत्र को देखना चाहती हूँ.' तक्षक की आज्ञा लेकर वह रात में राजमहल में आई, और अपने पुत्र को स्तनपान करा कर उसने गुप्त रूप से पुत्र के लिये आभूषण आदि भी रखे, सुबह राजा ने पुत्र के पास सुंदर आभूषणादि देख अपनी पत्नी को आई हुई समझ कर प्रिया को पकडने के लिये दूसरे दिन रात्रि में सावधानी के साथ छिपकर खडा रहा.

रात्रि हुई और रुक्मिणी पुत्र को स्तनपान कराने के लिये आई, तब राजाने उसे पकडना चाहा पर पकड न सका, अतः दूसरे दिन राजा विशेष रूप से सावधान रहा, उसने अपनी

(राज और रुक्मिणी चित्र न ४३)

पत्नी को स्तनपान कराते हुए अच्छी तरह देखा. राजाने जाते समय अंचल को पकड लिया, और अपनी उस पत्नी के साथ शय्या पर लेट कर भोग सुख द्वारा आनन्दका अनुभव करने लगा.

तक्षकने जब रात को अपनी पत्नी को न देखा तो अवधिज्ञान के उपयोग से अपनी पत्नी को राजा के स्थान पर है वह जाना. तब वह उसे लेने के लिये वहाँ गया, और अपनी पत्नी के साथ राजा को देख क्रोध के कारण सर्प रूप धारण कर राजा की पीठ में डक मारा–लेकिन जब वह वापस जा रहा था, तब राजाने उसे दीवार के साथ पछाड कर मार डाला, राजा के शरीर में भी विष व्याप्त हो गया, जिस से वह भी उसी क्षण मर गया, रुक्मिणी अपने दोनों पतियों को मरा हुआ देख कर खूब दु.खित हुई.

सुबह होते होते सारे नगर में बात फैल गई, सब लोग चकित हो गये. अति दुःखी रुक्मिणी अपने दोनों पतिओं के शरीरों को लेकर काष्टभक्षण करने के लिये स्मशान में गई. उस समय अकस्मात् 'मेघनाद' देवलोक से यहां आ गया. उसने

मरने को तैयार हुई रुक्मिणी को कहा, 'हे पत्नी! तुम अपने पति के जीते हुए काष्ठभक्षण क्यों कर रही हो?' रुक्मिणी के पूछने पर मेघनादने उस के साथ का अपना सारा सम्बन्ध कह सुनाया. तब रुक्मिणीने कहा, 'यदि आप मेरे दोनो पतियों को जिलाओगे तो मैं जीती रहूँगी, अन्यथा मैं भी मर जाऊँगी.' कर्म की विचित्रता देखीये, रुक्मिणी को तीन पति हुए.

रुक्मिणी के कहने से मेघनादने शीघ्र अमृत छींट कर उन दोनों को जीवित किया. अब वे तीनो इकट्ठे हुए और तीनों पत्नी को ले जाने के लिये झगडने लगे.

इस प्रकार कथा कह कर, वह पंडित पूछने लगा, "हे सभासदों! बुद्धि से विचार कर कहिये कि, वह पत्नी किसकी होगी?" कोई भी इस प्रश्न का जवाब न दे सका. तब विक्रमराजाने कहा, "मनुष्य जाति की होने से वास्तव में वह राजा की पत्नी होगी."

इस प्रकार कथा सुन कर विक्रमादित्य महाराजाने उस पंडित शिरोमणि को दस करोड सोने की अशर्फियाँ दी. इसी प्रकार दूसरा भी कोई पंडित महाश्चर्यकारी अच्छी मनोरंजक वार्ता विक्रमादित्य महाराजा के सामने कहता तो महाराजा उसे एक करोड अशर्फियाँ दे देते.

इस तरह महाराजा विक्रमादित्य की उदारता बता कर उस चामरधारिणीने कहा, 'हे विक्रमचरित्र! आप इन जैसे किस प्रकार होंगे? आप में विक्रम महाराजा के समान बुद्धि

और उदारता कहीं देखने में नहीं आई, उसीसे मुझे हसी आई" यह विक्रमादित्य महाराजा का रोचक वृत्तान्त द्वितीय चामरधारिणीने विक्रमचरित्र और सभा के आगे कहा.

पाठकगण! देखीए, महाराजा विक्रमादित्य में उदारता एवं बुद्धि चातुर्य. पूर्व के पुण्योदय से मानव सब कुछ प्राप्त कर सकता है, आत्मा में अनंत शक्ति है, परोपकार करना, दया का पालन करना, दीन दुःखी मानवबन्धुओं को सहायक होकर उद्धार करना यही उन्हों का सर्वोत्तम श्रेष्ठ कार्य जीवनभर रहा, जिस से आज दो हजार और पंदर वर्ष बितने पर भी 'परदुःखभंजन' के नाम से सब कोई पुकारते हैं वाचक आप भी उपरोक्त गुणों में से एक दो गुण अपने में उतारने का प्रयत्न करें यही शुभेच्छा

ग्रंथ-पंथ सब जगत के, बात बतावत दोय;
सुख दीये सुख होत है, दुःख दीये दुःख होय.

सडसठवाँ–प्रकरण

जितने तारे गगन में, उतने वैरी होय;
पूरब पूण्य जो तपे, वाल न बांका होय.

विक्रमादित्य की सभा में जादुगर की इन्द्रजाल

राजा विक्रमचरित्र के आदेश से तीसरी चामरधारिणी सभा समक्ष सुललित संस्कृत भाषा में इस प्रकार कहने लगी–

वह स्त्री सचमुच हि लक्ष्मी समान है, जो सुधर्म में रक्त है विवेकसहित है, शान्त है, सती है, सरल है, प्रिय बोलनेवाली है, सब कार्यो मे निपुण है, अच्छे लक्षणवाली है, सद्गुणी है, सद् आचरणवाली है, गृहकार्य मे कुशल है, अच्छी मतिवाली है, सदा सतुष्ट है, विनययुक्त है और सौभाग्यवाली है +

कुछ पडितजन सरस्वती को भी साररूप मानते हैं, लेकिन यह बात मुझे जरा भी नहीं जचती है क्यो कि—

जैसे थोडी लक्ष्मीवाला मनुष्य स्वय शोभता है, अन्य को शोभाता है, किन्तु थोडी विद्यावाले मनुष्य को क्यो कोई सम्मान देता नहीं या गिनता नहीं, इस लिय जगत म लक्ष्मी को ही लोग मानत है

अपना हित चाहनवाले सत्पुरुषो का अन्य स्त्रिया पर कभी भी वासनायुक्त दृष्टि नहीं करना चाहिये, स थ ही विचक्षण पुरुषो को परस्त्री और पर द्रव्य के लेने का जरा भी

पात्रापात्रविचारभावविरहोयच्छ न्युदारात्मनाम्
मातर्लक्ष्मी! तव प्रसादवशतो दोषाअपि खु गुणा स १२/३१६

× सा सद्धर्मरता विवेककलिता शान्ता सती सार्जवा
सोत्साहा प्रियभाषिणी सुनिपुणा स्लक्षणा सद्गुणा ॥

सद्वृत्ता गृहनीतिविस्मितमुखी दानोन्मुखी सन्मति
सतुष्टा विनयान्विताऽतिसुभगा श्रीरेव सा स्त्रीन नु स १२/३१८॥

मन नहीं करना चाहिये, प्राणकंठ मे आ जावें तब भी परोपकार करना चाहिये. क्यों कि परोपकार करने से इस जन्म में और परलोक मे भी सुख प्राप्त होता है. कहा भी है—

विरल पुरुष ही गुणों को जानते हैं, विरल पुरुष ही निर्धन व्यक्ति से स्नेह रखते हैं, स्वाभाविक गुणयुक्त विरल-पुरुष ही इस प्रकार अपने दोषों को देखते हैं. सज्जन पुरुष अपने कार्यो से पराङ्गमुख होकर भी पराये कार्य में तत्पर रहते हैं, जैसे कि चंद्रमा अपने कलंक को दूर करने की चिन्ता छोड कर पृथ्वी को उज्वल करता रहता है.

आज देवता तथा दानवों का स्वर्ग में युद्ध होगा. मैं इन्द्र का नौकर हूँ, इस से वहां जाता हूँ, यह मेरी प्रिया स्वर्ग की युद्धभूमि में युद्ध करते समय निश्चय ही मुझे विघ्न रूप हो जाती है, अतः मैं अपनी पत्नी को अभी आप के पास छोडकर देवलोक मे इन्द्र के पास युद्ध के लिये जाता हूँ, जब तक मैं वापस न लौटुं तब तक आप उसे अपने अन्तः-पुर में रखकर यत्नपूर्वक इस की रक्षा करें.'

इस प्रकार कहकर सभी सभासदों के देखते हुए वह वैतालिक खड्ग लेकर देवलोक मे गया. कुछ ही क्षण बाद आकाश में युद्ध की ध्वनि सुनाई देने लगी. उसे सुन कर सभाजन आपस मे कहने लगे, 'अभी देवता तथा दानवों का युद्ध चल रहा है.' तत्पश्चात् उस वैतालिक के अंग-दो हाथ, दो पैर, मस्तक, शरीर आदि क्रमशः एकएक राजसभा

इस से सभी जनों के मन मे भी आश्चर्य हुआ. सन
मे रही हुई वैतालिक की पत्नीने अपने पतिके सब अवयवों
गिरा हुआ देख कर राजा से इस प्रकार कहा, 'हे
आप मेरे भाई हैं, मेरे पति स्वर्ग मे मर गये है.
आप ऐसी व्यवस्था करें कि जिस से मैं अपने पति
अवयवो के साथ अग्निप्रवेश करुं—काष्ठभक्षण करुं.'

महाराजाने कई हेतु और युक्तिपूर्वक उसे अग्नि में जलने से रोकना चाहा, लेकिन उसने नहीं माना, सभी लोक आश्चर्यसहित देख रहे थे, उसी समय वैतालिक की स्त्रीने अपने पति के अवयवो को लेकर नगर बाहर जा कर जल्दि से अग्निप्रवेश किया. इस से राजा शोकातुर हुआ. वह अभी सभा में आकर बैठा, उतने मे वैतालिक आकाश में से आकर महाराजा को इस प्रकार कहने लगा, 'आप के प्रसाद से मैंने क्षणमात्र मे स्वर्ग में विजय प्राप्त की है युद्ध के मैदान मे दानव हार गये हैं, और देव जीत गये हैं, इस से इन्द्रने मेरा बहुमान किया है, अब मैं अपनी पत्नी को लेकर अपने स्थान पर जाता हूँ, मेरी पत्नी मुझे दीजिये.'

यह सुन कर महाराजा विस्मय हुए, तथा विषाद से विवश और दीनभाव वाले महाराजाने उस को उस की पत्नी का अग्निप्रवेश आदि का हाल सुना दिया. यह सुन कर वैतालिक बोला, 'हे राजन्! आप झूंठ क्यों बोल रहे है? मेरी प्राणप्रिया पत्नी अभी आप के अंतःपुर में ही विद्यमान हैं.'

महाराजा और मंत्रियों सहित सभा मे वह वैतालिक महाराजा के अंतःपुर मे से उस स्त्री को लेकर आया और महाराजा के प्रति बोला, 'हे राजन्! मैंने पहले सुना था कि आप पर स्त्री से पराङ्मुख है, तो अब थोडे जीवन के लिये ऐसा काम क्यों किया?' यह सुन कर महाराजाने अपना मुंह नीचा कर लिया और दीनता धारण की, तब वैतालिकने शीघ्र ही उस स्त्री का संहरण कर लिया, और वह बोला, 'हे राजन्! मैंने आप के सामने यह सब इन्द्रजाल फेलाई थी, आप खेद न करें.'

इस से महाराजा उस वैतालिक पर प्रसन्न हुए. और पांडयदेश से आई हुई भेट उसे दिलवाई. वह भेट इस प्रकार थी—

आठ करोड सोनामोहरें, तिरानवें–९३ तोले मोती, मद की गंध से लुब्ध भ्रमरो के कारण मदोन्मत पचास हाथी, लावण्यवती तथा सुंदर दृष्टिवाली सौ वारागनाएं. यह सब पांडयदेश के राजाने दंड के रूप में जो महाराजा विक्रमादित्य को अर्पण किया था.

विक्रमादित्य का इस प्रकार वृत्तान्त कह कर तीसरी चामरधारिणीने विक्रमचरित्र से कहा, 'आप उन के तुल्य कैसे हो सकते है? सो कहिये.' इस प्रकार तीसरी चामरधारिणी का कहा हुआ वृत्तान्त समाप्त हुआ.

चौथी चामरधारिणी —

अब चौथी चामरधारिणीने नवीन राजा विक्रमचरित्र के आदेश से महाराजा विक्रमादित्य का एक जीवन प्रसंग कहा—

विक्रमादित्य एक बार अपनी सभा में बैठे थे. उस समय परदेश से कोई एक ब्राह्मण फिरता हुआ आया, राजाने उसे पूछा, 'क्या तुमने पृथ्वीतल पर कोई नवीन कौतुक देखा है ?"

वह ब्राह्मण बोला, 'श्रीगिरि में 'हर' नाम का एक योगीराज रहता है. वह परकाय प्रवेश की विद्या को जानता है, वह निर्मल आशयवाला है, मैंने भक्तिपूर्वक छै महिने तक उस की सतत सेवा की, तब भी उस योगीने मुझे अपनी विद्या नहीं दी. अतः आप मेरे साथ वहां आकर मुझे उस योगी के पास से वह विद्या दिलवाइये, क्यों कि जगत में फिरते मैंने सुना है कि 'आप सदा सब लोगों का उपकार करने में तत्पर रहते हैं'

ब्राह्मण के कहने पर उस पर कृपा करने विक्रमादित्य महाराजा उस के साथ साथ शीघ्र ही श्रीगिरि पर गये, और दोनोंने योगी को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया. महाराजा के विनयभक्ति से योगिराज सहज में खुश हुए और बोले, 'हे नरोत्तम! मेरे पास से परकाय प्रवेश विद्याको तुम ग्रहण करो.'

राजा बोले, 'हे योगीराज ! आप वह उत्तम विद्या इस ब्राह्मण को दीजिये, क्यों कि आप के चरण कमल के प्रतापसे मेरे पास सब कुछ है.'. यह सुन कर योगीराज महाराजाको एकान्त में ले जा कर बोला, 'यह ब्राह्मण इस विद्या के योग्य नहीं है, क्यों कि वह कृतघ्न और भविष्य में स्वामी को धोखा देने वाला है, अतः उसे विद्या देने से बहुत अनर्थ होगा. कहा है कि—

जैसे कोई थका हुआ और छाया की शोध करनेवाला हाथी वृक्ष के नीचे आश्रय लेता है, लेकिन आराम लेने के बाद वह हाथी उस पेड का नाश करता है, उसी तरह नीच व्यक्ति अपने आश्रयदाता का ही नाश करते हैं'

विक्रमादित्य महाराजा के अति आग्रह से उस योगीने महाराजा और ब्राह्मण को परकाय प्रवेश की विद्या दी, फिर वे दोनोने विद्या साध कर विद्या सिद्ध की बाद योगी को प्रणाम कर के वहां से रवाना हुए, फिरते फिरते अवन्ती नगरी के बाहर उद्यान में आये.

(योगी को महाराजा और ब्राह्मण नमस्कार करते है चित्र न ५८)

इधर महाराजा का पट्टहस्ती मर गया था, अत म त्री आदि व्यक्ति वहा बाहर के उद्यान म आकर एकत्र हुए, और उसे गाडने के लिये एक बडा खड्डा खुदवा रहे थे, यह जान विक्रमादित्यने उस ब्राह्मण से कहा, 'तुम मेरे शरीर की रक्षा करना, म इस हाथी को शीघ्र जिलाता हूँ'

महाराजाने अपना शरीर उस ब्राह्मण को सोपा, और हाथी के शरीर म प्रवश किया हाथी को उसी क्षण स जीवन किया, उस से लोगोंने नगरी में स्थान स्थान पर उत्सव किया-मनाया

उधर ब्राह्मणने अपनी देह को छोडकर जो राजा का शरीर था उस में प्रवेश किया और नगर म जाकर म त्रिया से मिला अन्त पुर-रानीवास म प्रवश कर सारा अन्त पुर देखा

म त्रियाने नव महार जा को आलसी सत्वरहित और विचित्र प्रकार से बोलते सुना तो वे परस्पर विचार करने लगे, 'यह किसी प्रकार भी विक्रमादित्य महाराजा नहीं लगते' इसी प्रकार पट्टरानी आदिने भी मन म य ही सोचा

इधर महाराजा हाथी को जीवित करने के बाद अपने शरीर को देखने के लिये गये वहा उन्होंने अपने शरीर को न देख कर और ब्राह्मण के शरीर को पक्षियो से भक्षण किया हुआ देख कर सोचने लगे, 'निश्चय ही वह ब्राह्मण कृतघ्न निकला, अत उसने मेरे शरीर में प्रवेश किया होगा शायद उसने मेरे राज्य को भी ले लिया होगा अब क्या होगा? यह सोचते हुआ महाराजा वन भ्रमण करने लगे

कहा है कि—

विषयी को दुःख होता है, धनिकों को होता है गर्व,
मन खंडित होता वामा से, राजा का प्रिय सदा न सर्व;
कौन मरण को प्राप्त करता, किस याचक का होता मान,
दुर्जन के चंगुल म पड कर, रहा कुशल से किसका प्राण.

तब गजरूपधारी वन में घूमते हुए राजाने एक मरे हुए तोते का शरीर देखा उन्होने तोते के शरीर में प्रवेश किया फिर वन में किसी पुरुष के हाथ पर बैठ कर उसे कहा, 'तुम मुझे शीघ्र ही उज्जयिनी नगरी ले जाओ वहा राजा के मकान के सामने मुझे बेचने के लिये तुम खडे रहना, और छसो मोहर लेकर पट्टरानी कमलादेवी के हाथ मे ही मुझे देना' यह मनुष्य उस तोते को लेकर वहाँ गया, और छसो मोहर
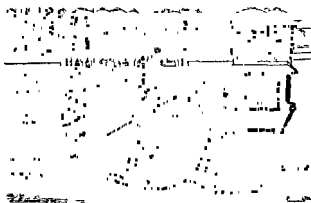
(कमलादेवी पट्टरानी पोपट-शुक खरीद रही है चित्र न ४९)

लेकर रानी को वह तोता दे दिया. रानी भी उसे प्राप्त कर के खुश हुई, कमलादेवी तोते से जो जो प्रश्न पूछे उन सभी प्रश्नों का उत्तर उसने यथोचित दिया. उस तोतेने मन मे विचार किया, 'यदि मैं अपने आपको प्रगट कर दूँगा तो विना विचारे यह पट्टरानी उस ब्राह्मण को मरवा डालेगी. या तो यदि यह राजा रूपधारी ब्राह्मण मुझे तोते के शरीर में जानेगा. तो मुझे मरवा डालेगा.'

अब वह सौभाग्यवान् तोता रानी द्वारा हमेशा अच्छा भोजन आदि प्राप्त करता है, और आनंद से समय बीताता हैं. महारानी को तोते विना क्षण भी चैन नहीं पडता. एक समय तोतेने पूछा, 'हे देवी! यदि मैं मर जाऊं तो क्या हो?' देवीने कहा, 'यदि तुम मर जाओगे तो मैं भी काष्ट-भक्षण करुंगी.'

एक बार इस तोतेने अकस्मात भीत्ती पर गो-गरोली को मरते देखा. राजा का जीव तोते मे से निकल कर उस में अधिष्ठित होकर दीवार पर रहा, रानीने जब तोते को मरा हुआ देखा तो उसने नकली राजा से कहा, 'मेरा इच्छित प्रिय तोता मर गया है, अब उस के बिना मै नहीं जी सकती मैं काष्टभक्षण करुंगी.' जब रानी काष्टभक्षण के लिये तैयार हो गई तब राजा शरीरधारी ब्राह्मणने रानी को प्रसन्न करने के हेतु कहा, 'मैं इस तोते को अभी जिलाता हूँ, इस मे क्या बडी बात है?'

जब ब्राह्मणने अपने जीव को उस तोते में डाल कर जीवित किया, उतने में वहां छिपकली-गिरोली के शरीर में रहे हुए विक्रमादित्य महाराजा के जीवने शीघ्र ही अपने शरीर में प्रवेश कर लिया. उस के सत्व, साहस, संकेत, बोलने और चलने आदि की सब क्रियाओं से मंत्री से लेकर सेवक तक सबने उन्हें विक्रमादित्य महाराजा के रूप में पहचाना. राजाने भी उन सब को अपना बना हुआ विस्तृत हाल सुनाया. यह सुन कर सब ताज्जुब हो गये.

फिर राजाने तोते का हाथ में लेकर कहा, 'हे पापी! दुष्ट आशयवाले, मैंने तुझे विद्यादान दिलाकर तेरे उपर उपकार किया, उस के बदले तुमने अपने स्वभाव अनुसार ही किया? अतः तुझे धिक्कार है, लेकिन मैं दयापूर्ण हृदय से तुझे मारता नहीं हूँ, मैं यहा से तुझे मुक्त करता हूँ, तुम अपने स्थान पर चले जाओ, और आजीविका उपार्जन करो.'

(तोता-शुक और महाराजा चित्र न. ६०)

इस प्रकार कह कर चौथी चामरधारिणी बोली, 'हे विक्रमचरित्र! तुम्हारे पिता इस प्रकार कृपा-दया के धारण

करनेवाले थे. लेकिन तुम में उन के जैसी अपूर्व दयालुता का अभाव होने से मैं उस समय हँसी थी."

अपने पिता विक्रमादित्य का चारों चामरधारिणी द्वारा इस प्रकार का रोमांचकारी चरित्र सुन कर विक्रमचरित्र खुब प्रसन्न हुआ. और हमेशा न्याय मार्ग द्वारा पृथ्वी का पालन करते हुए राज्य करने लगा.

श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी के पास में श्री जिनेश्वरदेव द्वारा प्रकाशित धर्म को सूनते महाराजा विक्रमचरित्र धर्मपरायण हुए.

श्री शत्रुंजय के उद्धारक जावडशाह —

प्रभु श्री ऋषभदेवजी के सुपुत्र सुराष्ट्र के नाम से सुप्रसिद्ध हुई भूमि सौराष्ट्र की गोद में सदैव शाश्वत तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय भव्य जीवों के अनंतकाल से आकर्षित कर रहा है.

वर्तमान चोवीसी में सबसे प्रथम महातीर्थ श्री शत्रुंजय पर भरत चक्रवर्तीने चतुर्विध संघ के साथ आरोहण किया था. जिस में अनेकानेक आत्मा इस पवित्रतम भूमिके प्रभाव से संसार समुद्र पार उतर गये, उस की कोई गिनती नहीं है.

श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से अवंतीपति विक्रमादित्य महाराज श्री चतुर्विध संघ के साथ महातीर्थपे जाकर श्री आदीश्वरजी से भेटे थे. और आत्मा को पावन किया था.

यही गौरव से पूर्ण सौराष्ट्र की भूमि में कापल्यपुर नामक नगर में श्रेष्ठी भावड अपना जीवनकाळ व्यतीत करते थे. भावडशाह विनयी, विवेकी थे और धर्मपरायण भी थे, धर्म ही प्राण हैं, यह सिद्धांत उनके लिये था. उन्हों की भाग्यवती पत्नी भावल भी पतिको अनुसरण करनेवाली, धर्मकार्य में सदा रत रहनेवाली थी.

धर्मिष्ट दंपती के जीवन में किसी कर्म के योग से परिवर्तन आया. सुखी सेठ धनहीन हो गये. सुखसागर में रहनेवाले सेठ दुःख के दावानल में जा पडे.

धनहीन होने पर भी वे दीन नहीं बने. धर्म उन के दुःख में साथी था. धन उन्हें को छोड कर गया था, किन्तु वे धर्म को नहीं छोडते थे. निर्धनता का तिमिर जीवन में छा चूका था उस में भी उन्होंने प्रकाश का किरण देखा, उद्यम, अविरत श्रम, उत्साह और धैर्य से वे आगे कदम भर रहे थे.

भाग्य के योग से एक तपस्वी मुनिराज उन्हें के घर गोचरी के लिये आये. *उन्होंने शुद्ध–निर्दोष आहार भावपूर्वक देकर निर्धन* स्थिति को नाश करने का उपाय पूछा. और मार्गदर्शन के लिये विज्ञप्ति की. ज्ञानी मुनिराजने धर्मिष्ठ श्रावक भावड से कहा, 'यहां पर कोई घोडी बेचने आवे तो उसको खरीद लेना. जिस से तुम्हारा भाग्योदय होगा. सुख–समृद्धि प्राप्त होगी; उसी धन द्वारा तुमारे पुत्र को श्री शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करने को मार्गदर्शन करायगा.'

गभीर वाणी से मुनि महाराज बोलते रहे जैसे निर्मल पवित्रगगा नदी का प्रवाह वह रहा हो, उन की वाणी मे सत्य था, ज्ञान की ज्योत थी, धर्मपरायणता की चिनगारी थी

पूज्य मुनि महाराज की वाणी सुनते ही दपती के हृदय मे आनद की लहेरो उठने लगी

कइ दिनो वित गये, एक दिन घोडे वेचनेवाला वहा आया, भावडने ज्यो त्यो कर के उस की पास से घोडी खरीदी घोडी घर मे आते ही आनद की वर्षा हुई थोडे ही दिनो के बाद घोडीने बचेरा को जन्म दिया उस बच्चे के जन्म से भावड के भाग्य मे यकायक परिवर्तन आया व्यापार बहुत बढ गया कीर्ति प्रतिष्टा उन को ढुढती हुई आई

इस वाल अश्व को कापिल्यपुरके राजा तपनरायने देखा उस का मन आकर्षित हुआ आखिर तीन लाख सोना महोर देकर उस को खरीदा

धन की अधिकता से व्यापार मे होते हुए लाभ से उन्होने वहुत से सुलक्षणवाले घोडे खरीदे, वेचे और धनोपार्जन किया. उन्होने एक ही रूप और रग के बहुत से घोडे इकट्ठे किये

भावड के भाग्य मे ये परिवर्तन आया था, उसी समय महाराजा विक्रमादित्य अवती में राज्य कर रहे थे उन की कीर्ति की सुवास, उदारता की बाते सुन कर महाराजा को घोडे भेट करने की इच्छा भावड को हुई वे अवती आये उन्हो-

ने एक रूप और एक ही रंग के कई घोडे महाराजा के चरणों में सादर अर्पण किये.

मालव का महाराजा-भारत का मुकुटमणि महाराजा विक्रमादित्य ऐसे कैसे भेट स्वीकार ले, महाराजाने किमत देने के लिये प्रयास किया किन्तु शेठने इनकार किया, तब उन्होंने मधुमती वगेरे बार गांव का भावड को अधिपति बनाया. वही मधुमती जो हाल सौराष्ट में महुवा के नाम से मशहुर है.

समय का प्रवाह आगे बढा. भावड श्रेष्ठी के वहां पुत्र का जन्म हुवा, माभोम को एक अणमोल रत्न अपनी छाती से लगाने का अवसर मिला.

भावडशाह के घर मे पुत्रजन्म से आनंद की घटा छा गई. हर्ष की वर्षा बरसने लगीं, विश्व के रंगमंच पे आया हुआ बालक का सत्कार किया गया. उस का नाम जावड रखा गया.

जावड दिनों के साथ बडा होने लगा. बाल्यकाल से विद्या संपादन करने लगा. जब वह युवावस्था में आया उसी समय जैन शासन के सूर्य जैनाचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी स्वर्गस्थ हुए.

आचार्यश्री की स्वर्गस्थ होने की व्यथा जैन भाईओं अनुभव रहे थे उसी समय कपर्दी यक्ष का निज परिवार के

साथ सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्वी होने का समाचार श्री संघ को उपलब्ध हुए.

कपर्दी यक्षने महातीर्थ श्री शत्रुंजय मे अनेक पाप प्रवृत्ति शरू की. इससे महातीर्थ की यात्रा दुर्लभ हो चूकी. गाँव गाँव के संघ चिन्तित होकर आने लगे. और 'अब करना क्या?' यह सोचने लगे. इस तरह दिन बितने लगे. कई वर्षो बित गये. महातीर्थ की आशातना टालने का कोई उपाय हाथ न लगा.

कपर्दी यक्ष की पाप प्रवृत्ति को रोकने का विचार युग-प्रधान श्री वज्रस्वामीजी और अनेक आचार्य तथा मुनिवरोंने किया. आशातना को दूर करने के अनेकानेक पुरुषार्थ किये गये, किन्तु सब मे निष्फलता प्राप्त हुई.

कपर्दी यक्ष की प्रवृत्ति आगे बढ रही थी, उसी समय जावडशा के मातापिता का देहान्त हुआ जावडशा पे दु ख का पहाड तूटा. यह दुःखके साथ और भी अकस्मात एक दुःख आ पडा मधुमती–जावडशा के गाँव में म्लेच्छों ने आक्रमण किया. घोर हत्या की. जावडशा इस म्लेच्छों के हाथ मे फँस गये. म्लेच्छोंने उनकों अपने साथ अपने देश ले गये, किन्तु जावडशाने अपनी बुद्धिबल से म्लेच्छों के अधिपति को खुश कर दिया, जिससे वे अपना धर्मपालन अच्छी रीत से कर सकें, जावडशा जब मुक्त हुए, तब वहां आग्रह से म्लेच्छों के

देश में श्री जैन मदिर बनवाया, और धर्मध्यान करते वहीं समय पसार करने लगे

एक दिन कोई ज्ञानी मुनि भगवंत विहार करते वहां पधारे धर्मदेशना देते हुए ज्ञानी गुरुदेवने कहा, "जावडशा के हाथसे तीर्थाधिराज का जीर्णोद्धार होगा" यह सुन कर जावडशाने पूछा, "वे जावडशा कौन हैं ?" तब ज्ञानी गुरुदेवने पुन कहा, "वे जावडशा तुम तुम"

× × ×

जावडशा को उस ज्ञानी मुनि महाराजने शाश्वत श्री शत्रुंजय तीर्थ को दुर्दशा सुनाई और गुरुदे की आज्ञानुसार जावडशाने इस कार्य की सिद्धि के लिये चक्रेश्वरी देवी का आराधन किया देवी प्रसन्न हुई उनके आदेशानुसार 'तक्षशिला' नगरी से राजा 'जगन्मल्ल' द्वारा धर्मचक्र के पास से श्री ऋषभदेवजी की प्रतिमा ले कर वो पुन अपनी मधुमती में आये

जावडशा म्लेच्छों के हाथ म फँस गये थे उसी समय के पूर्व उन्होंने चीन आदि देशा में माल बेचने को बहुत से वहाण भेजे थे पुण्य योग से वह आ गये, इस समाचार से जावडशा का हृदय आनद से भर गया उसी समय आनद में श्री वज्रस्वामीजी के पधारने के समाचार से अधिकता हुई, जावडशा श्री वज्रस्वामीजी को वदना करने गये, श्री वज्रस्वामी जीने देशना दी ये देशना से सारे गाव में उत्साह छा गया.

एक दिन व्याख्यान देते हुए गुरुदेवने महातीर्थ श्री शत्रुंजय का अच्छा सुंदर वर्णन किया.

इस बिच में एक दिव्य कान्तिवाली अपरिचित कोई व्यक्तिने आकर गुरुदेवके चरणों मे नमस्कार करके कहा, "हे गुरुदेव! आपके प्रताप से देवलोक मे मैं कदर्पि यक्ष के रूप मे उत्पन्न हुआ हूँ, लाख देवों का मे स्वामी हूँ, मेरे योग्य कार्यसेवा फरमाईये ' गुरुदेवने उसके साथ कुछ विचारणा की ओर रवाना किया.

सूरीश्वरजी जावडशा से सब बात सविस्तर कहीं गुरुदेव के शब्दों से जावडशा का हृदय आनंद का अनुभव करने लगा. उन्होंने श्रीशत्रुंजय तीर्थ का संघ ले जाने की तैयारी की, तैयार हो जाने के बाद श्री वज्रस्वामीजी की निश्रा मे बडी धामधूम से संघने प्रयाण किया

रास्ते मे जो भी उपद्रव होते थे वे सब श्री वज्रस्वामीजी निवारण करते थे. आखिर वे तीर्थाधिराज शत्रुंजय जा पहूँचे वहां बहुतसी अपवित्र वस्तुए पडी हुई थी, मंदिरो मे घांस दिखाई रही थी, जावडशाने शीघ्र ही वहा स्वच्छ करवाया, शत्रुंजी नदी के निर्मल जल से पवित्र कर के मुख्य मंदिरमें प्रतिमा को बिराजमान की. इस मंगल समये-प्रतिष्ठा निमिते जावडशाने बहुतसा द्रव्य का सद्व्यय किया. श्री वज्रस्वामीजीने तीर्थ पर के उपद्रवों का निवारण किया.

आनन्द से भरा हुआ जावडशाने श्री शत्रुंजय महातीर्थ का उद्धार कर सदा के लिये रक्षण की व्यवस्था करने का मन से निर्णय किया किन्तु कुदरतने और ही सोचा था, अपना निर्णय पूर्ण करने की तैयारी करे उसके पहले ही हर्षावेश म वहीं पर जावडशाह और उनकी पत्नी का यकायक देहान्त हुआ

तीर्थ का पुनरुद्धार करने से उनकी कीर्ति पुष्प की सुगंध की तरह चोदिश प्रसर गई उन्होंने परलोक के लिये बहोतसा पुण्य इकट्ठा कर परलोक प्रयाण किया

सुनने मे आता है कि, यह तीर्थोद्धार के समय म महाराजा विक्रमचरित्र वहा हाजर थे, उन्होने भी तीर्थोद्धार के शुभ कार्य म सहयोग और धन व्यय ठीक किया था और गुरुदेवो के मुखसे श्री जिनेश्वर भगवान द्वारा कथित धर्म को सुन कर विक्रमचरित्र भी धर्म म प्रवृत्त उद्यत हुआ और शत्रुंजय महातीर्थ में श्री विक्रमादित्य महाराजा द्वारा कराये हुए श्री युगाधिश के मंदिर म जाकर जिर्णोद्धार कराया और श्री ऋषभदेव भगवानको भक्तिपूर्वक नमस्कार करके पुन अपने नगर में आये

तत्पश्चात् न्याय के मंदिर समान राज्य का चिरकाल पालन किया और अंत म आयु पूर्ण कर देवलोक मे गये

इस प्रकार जो मनुष्य शुद्ध भाव से दान देते हैं वे जगह जगह सर्वत्र शाश्वत सुख की परंपरा को प्राप्त करते हैं

ग्रंथकारकी भिन्न भिन्न प्रकार की प्रशस्तियाः—

(१)

लघु पोषध शाला के भूषणरूप अद्‌भुत भाग्यशाली श्री मुनि सुंदरसूरीश्वरजी हुए, उन सूरी के शिष्य शुभशील नामक साधुने विक्रमादित्य राजाके चरित्र विक्रमराजा के चलाये गये संवत् १४९९ वर्ष बाद रचना की. ×

(२)

* तपगच्छ के भूषण स्वरूप बारह वर्ष पर्यंत आयंबिल

× श्लोक संख्या सर्ग १२=३९५-३९६-३९७

* ससत्क्रियावारिविशिष्टसाधु मणि तपागच्छमहाम्बुराशिम्,
श्रीमान् जगच्चन्द्रगुरुर्नवीनो, निशाकरोऽजीजनदत्र वर्यं ॥ १ ॥
चक्र इदं शत्रुदर्पाणि यनाचाम्ललयाऽन्वहम
जगच्चन्द्रगुरुः सोऽस्तु तपगच्छश्रियः ॥ २ ॥
तत्पट्टेऽजनि देवेन्द्रसूरिरद्भुतचित्रकृत्,
चरकी कविससेव्योऽतिचार रहितः सदा ॥ ३ ॥
सत्तरद्वाग्वण्डलाराद्रिशृङ्गे, श्रीमान् विद्यानन्दसूरिर्दिनेशः,
पादप्रान्तः प्रत्सयन् गोविलासै-रासीन् प्राणिप्रान्तभूमितलरम् ॥४॥
तत्पट्टपूर्वपायोदमार्गे, तेजोराशिः ध्वस्तदोषाकरश्री,
आसीत् श्रीमान् धर्मघोषाद्यसूरि-श्चन्द्रोनव्या भ्रान्तिरिक्ताऽक्षयी च ॥ ५ ॥
तत्पट्टेऽजनि सर्वशास्त्रविद् श्रीसोमप्रभसूरिशेखरः,
भव्याम्भोजवनं विबोधयन् गोभिर्भूरितान्वनीतले ॥ ६ ॥
तत्पट्टगगनतरणि., श्री सोमतिलकगुरुरजनि महिमनिधि,
यनानेके भव्या. प्रबोधिताः सदुपदेशेन ॥ ७ ॥

की तपश्चर्या करने वाले महान् तपस्वी श्रीमान् जगच्चन्द्रसूरीश्वरजी के पट्टधर शिष्य विशुद्ध चारित्रशील कवि लोगों से सन्मानित आचार्य श्री विद्यानंदसूरीश्वरजी के शिष्य परमप्रतापी श्री धर्मघोषसूरीश्वरजी हुए, उनके बाद उनके पट्टशिष्य सर्वशास्त्र में पारगत श्री सोमप्रभसूरीश्वरजी नामक आचार्य हुए जिन्होंने पृथ्वी तल पर अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध किया उनके पट्टधर शिष्य आचार्य श्री सोमतिलकसूरीश्वरजी हुए और उनके शिष्य महान प्रभावशील आचार्य सोमसुंदरसूरीश्वरजी के शिष्य अनेक ग्रन्थ प्रणेता आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरीश्वरजी के शिष्य पंडित श्री शुभशीलगणिने इस विक्रमचरित्र की रचना की है.

तत्पट्टपूर्व वसुधाधरतुङ्गशृङ्गं श्रीदेवसुंदरगुरुर्गरिमाभिरामं,
सूर्यायमानवदनो नवकायकान्ति गोभिः प्रबाधितजनाऽज्ञदन्तरालः ॥ ८ ॥

तत्पट्टवासवककुब्गिरिभूषणाऽभूत श्रीसोमसुंदरगुरुस्तरणि प्रतापी,
तारङ्गशैलशिखरे जिनतीर्थनाथम्, प्रातिष्ठपत् वरतमोत्सवपूर्वकं य ॥९॥

तस्याद्योऽजनिशिष्य श्रीमुनिसुंदरसूरिरमलमतिविभव,
येनानेके ग्रन्था गुर्वावल्यादयो विहिता ॥ १० ॥

कृष्णसरस्वतीत्येव दधानो विरुदं भुवि,
तच्छिष्योऽभूत् द्वितीयश्च जयचन्द्राभिधोगुरु ॥ ११ ॥

मुनिसुंदरसूरीशविनेय शुभशीलभाक्
चकार विक्रमादित्यचरित्रं मन्दधारपि ॥ १२ ॥

प्रसाद विबुधं कृत्वा ममोपरि निरन्तरम्,
यत्नेन शोधनीयोऽयं ग्रन्थ वृद्धोपसारत ॥ १३ ॥

(३)

+ ग्रंथकर्ता लिखते है कि परमाराध्य गुरुदेव श्री मुनिसुंदरसूरीश्वरजी महाराजा की कृपा से अल्प बुद्धिवाले मैंने इस ग्रंथ की रचना की है जिसे विद्वजनोंने मेरे पर कृपा कर शुद्ध किया है.

संवत् प्रवर्तक महाराजा विक्रम द्वारा स्थापित संवत १४९९ मे वर्ष के महाशुक्ला चतुर्दशी रवि पुष्य आदि शुभ योगसमन्वित मुहूर्त मे स्तंभनतीर्थ में शुभशील गणि (मैंने) विक्रमराजा का चरित्र लिखा है

जब तक पर्वत सागर, सूर्य चंद्र, आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र एवं धर्माधर्म का विचार करने में निपुण महान् पुरुषों से युक्त यह संसार शोभेगा, तब तक महाराजा की कीर्ति से युक्त यह ग्रंथ जैन शासन मे सज्जन पुरुषों के चित्त को आनंद देगा

एक हस्तलिखित पुस्तकमें निम्नलिखित विशेष पाठ उपलब्ध है:—

× तेषां पादप्रसादेन मया स्वल्प निर्मित ग्रंथो विद्वज्जनै शोधय कृपां कृत्वा मनागपि। श्रीमद्विक्रमकालाच्च ग्रनिधिरत्न संख्यके वर्षे मार्ग-सिते पक्षे शुक्ल चतुर्दशीदिने। पुष्य रवौ स्तम्भनीर्थे शुभशीलन पंडिता (साधुना) विदधे चरित ह्यनद् विक्रमार्कस्य भूपत ॥ यावद् भूधरसागरा रविशशी ख भूभूरस्तारका धर्माधर्मविचारणैकनिपुण-यावद् जगद् राजते। तावद् विक्रमभूपराजविलसत्कीतिप्रभामिश्रितो ग्रथोऽय जिनशासने सुहृदयां (दा) चित्त चिरं नन्दतात्॥

तपागच्छीय-नानाग्रंथ रचयिता कृष्ण सरस्वती विरुद्धारक-
परम पूज्य-आचार्यश्री मुनिसुंदरसूरीश्वर शिष्य पंडितवर्य
श्री शुभशीलगणि विरचिते विक्रमादित्य चरित्रे
चतुश्चामरधारिणो वर्णन श्री विक्रमचरित्र
राज्योपवेशन यात्राकरण स्वर्गगमनो
द्वादश सर्ग समाप्त

नानातीर्थोद्धारक-आबालब्रह्मचारि-शासनसम्राट् श्रीमद् विजयनेमि
सूरीश्वर शिष्य कविरत्न शास्त्रविशारद-पीयूषपाणि-जैनाचार्य
श्रीमद् विजयामृतसूरीश्वरस्य तृतीयशिष्य वैयावच्चकरणदक्ष
मुनिवर्य श्री खान्तिविजयस्तस्य शिष्य मुनि निरंजन-
विजयेन कृतो विक्रमचरितस्य हिन्दी भाषाया
भावानुवाद तस्य च द्वादश सर्ग समाप्त

संवत प्रवर्तक महाराजा विक्रम भाग २–३ समाप्त

पूज्य पंडित श्री शुभशीलगणिवर्य रचित यह विक्रमचरित्र में गंभीर अर्थ वाले श्लोक और प्राकृत गाथायें हैं जिस के अनेक अर्थ होते होंगे किन्तु मैंने अपनी अल्प बुद्धि अनुसार जो जो अर्थ निर्णय कर लिखा उस में कोई क्षति साक्षरों को दिखाई देवे तो उसमे सुधारा करें यही मेरी सज्जनो के प्रति नम्र विनति है. सुज्ञेषु किं बहुना.

—संयोजक

जैन साहित्य और विक्रमादित्य

ये कहेने की आवश्यक्ता नहीं है कि जैन मुनिवरोंने साहित्य का रक्षण किया है. उन्होंने समय समय पर पूर्व इतिहास का अवलंबन करके नूतन साहित्य का सर्जन किया है, इसी से राष्ट्रका इतिहास जैन साहित्योमें से ही उपलब्ध होता है.

महाराजा विक्रमादित्य का साहित्य जैन साहित्य में जितना उपलब्ध होता है, इतना साहित्य और कीसी के पास नहीं है और यह साहित्य महाराजा विक्रम जैन धर्मावलंबी था वह भी सिद्ध करता है.

महाराजा विक्रम के नवरत्नों में जैन साधु भी थे. और ... विक्रम के प्रति जैन मुनिवरों का भाव भी विशेष था.

आचार्य श्री सिद्धसेनदिवाकरसूरीश्वरजी के सदुपदेश से महाराजा विक्रम संघपति होकर शत्रुंजय गये थे. वहाँ जीर्णोद्धार भी किये थे.

पंद्रहवी सदी मे कासद्रहगच्छ के श्री देवचंद्रसूरिजी के शिष्य श्री देवमूर्तिजी उपाध्यायने विक्रमचरित्र नामक ग्रंथ लिखा था. जिसका चौद सर्ग थे. इस ग्रंथ में महाराजा विक्रम का जन्म, उनका राजगद्दी पर बैठना, सुवर्ण पुरुषका लाभ, पंचदंड छत्र प्राप्ति, विक्रम प्रतिबोध, जिनधर्म प्रभाव, नमस्कार प्रभाव, दानधर्मप्रभाव और बत्रीस पूतलियाँ की कथा आदि विषय का समावेश किया गया है.

यह बता रहा है कि जैन साहित्य में महाराजा विक्रम के लिये विद्वानोने कलम चलाई है, संस्कृत, गुजराती, उर्दु साहित्य मे महाराजा विक्रम के लिये इतना साहित्य आज तक कोई संप्रदाय में उपलब्ध नहीं है.

संस्कृत साहित्य में श्री सोमदेवभट्टने इ. स. १०७० मे 'कथा सरित्सागर' लिखा, जिसमे महाराजा विक्रम के संबंध मे भी लिखा गया है.

काश्मीर के महाकवि श्री क्षेमेन्द्र कृत 'वृहत्कथामंजरी' में भी महाराजा विक्रम के लिये लिखा गया है.

वि. सं. १५१७ में श्रीरत्नमंडनगणिने 'उपदेशतरंगिणी' की रचना की. उस ग्रंथ मे कहीं कहीं विक्रमादित्य के लिये लिखा गया हैं.

श्री मेरुतुंगाचार्यने भी प्रबंधचिंतामणि ग्रंथ में श्री महाराजा विक्रमादित्य के लिये लिखा गया है.

महाराजा विक्रम के लिये लिखे गये कई पुस्तकें कहांसे उपलब्ध हो सकते हैं, और प्रकाशक कौन है यह भी यहां देखे.

१२९० से १२९४ के करीब लिखा गया ग्रंथ पंचदंडात्मक विक्रमचरित्र अज्ञात कृत हिरालाल हंसराज जामनगर, सिंहासन द्वात्रिंशिका क्षेमंकर कृत लाहौर के सूचिपत्रमे विक्रमचरित्र उ. देवमूर्ति कृत लीमडी भंडार से.

साधुपूर्णिमा रामचंद्रसूरिकृत विक्रमचरित्र दानसागर भंडार विकानेर, और उ. जै. सा. सं. ई.

श्री शुभशील कृत विक्रमचरित्र प्र. हेमचंद्राचार्य सभा अमदावाद. और दुसरी आवृति पंडित भगवानदास हरखचंद अमदावाद.

श्री राजवल्लभ कृत सिंहासन द्वात्रिंशिका गोविंद पुस्तकालय विकानेर श्री राजमेरु श्री इन्द्रसूरि. श्री पूर्णचंद्र कृत विक्रमचरित्र, विक्रमचरित्र पंचदंड प्रबंध उ. जैन ग्रंथावली.

इस प्रकार महाराजा विक्रमके संबंध में जैन श्वेतांबर साहित्य में ५५ जितने पुस्तकों दिखाई देते हैं.

जैन दिगम्बर साहित्य में भी श्री श्रुतसागर कृत विक्रमचरित्र एक ही पुस्तक दिखाई देता हैं.

निम्नलिखित ग्रंथोमे गुजराती मे महाराजा विक्रमादित्य का जीवन उपलब्ध होता है.

वि. सं. १४९९ मे विक्रमचरित्र कुमार रास लिखा गया.

उपाध्याय श्री राजशीलने वि. सं. १५६३ में विक्रमादित्य खापरा रास निर्माण किया.

श्री उदयभानुने वि. सं. १५६५ में विक्रमसेन रास की रचना की.
वि. सं. १५९६ में श्री धर्मसिंहजीने विक्रम रास लिखा.
श्री जिनहर्षने १५९९ में विक्रम पंचदंड रास लिखा.
श्री मानविजयजीने वि. सं. १७२२-२३ में विक्रमादित्य चरित्र लिखा
श्री अभयसोमजीने वि. सं. १७२७ के करीब विक्रमचरित्र खापरा चोपाई की रचना की.

श्री लाभवर्धनजीने विक्रम चोपाई की रचना वि. सं. १७२७ में की
श्री परमसागरजीने विक्रमादित्य रास वि. स. १७२४ में लिखा
श्री अभयसोमजीने विक्रमचरित्र-लीलावती चोपाई वि. सं. १७२ में निर्माण की.

श्री मानसागरजीने विक्रमसेन रास वि. स. १७२४ में लिखा.
श्री लक्ष्मीवल्लभजीने विक्रमादित्य पंचदंड रास वि.सं. १७२७ में लिखा
श्री धर्मवर्धने वि. सं. १७३६ के करीब शनिश्चर विक्रम चोपाई की रचना की.

श्री कान्तिविमलजीने वि. सं. १७६७ में विक्रम कनकावती रास लिखा और श्री भाणविजयजीने विक्रम पंचदंड रास वि. स १८३० में लिखा. विक्रमकी अद्‌भुत बातें श्री रुपमुनिजीने लिखी

महाराजा विक्रमादित्य के जीवनसंबंधक यह ग्रंथ आज भी साहित्यकी दुनिया के अणमोल रत्न है, और जैन ग्रंथभंडारो मे रत्न ही समजकर आजदिन पर्यंत सुरक्षित रख्खे हैं, ऐसा विश्वविख्यात इतिहासकार साक्षर श्री राहुलजी कहते है.

—जैन साक्षरोंके लेखोंके आधारसे

ખુશ ખબર

પર્વના શુભ દિવસોમાં ધર્મપ્રચાર અને જ્ઞાનભક્તિ કરવા ઇચ્છનાર ભાઈઓને

સદ્‌બોધની ભાવનાથી સુંદર આકર્ષક ચિત્રો સહિત કથાઓ ધાર્મિક પર્વોમાં અગર પોતાના ઉપકારી અગર વડીલની સ્મૃતિ નિમિત્તે એવા કોઈ શુભ પ્રસગે પ્રભાવના કરી શકાય તેવી રીતે તૈયાર કરી છે નાના મોટા સૌને હોશે હોશે વાચવા ગમે તેવા સુંદર નીચેના પ્રકાશનો જરૂર મગાવો સયોજક અને સપાદક પૂજ્ય સાહિત્યપ્રેમી **મુનિશ્રી નિરજનવિજયજી મહારાજ.**

પ્રભાવના શ્રેણી:– ૧. પર્વાધિરાજ શ્રી પર્યુષણાપર્વ મહિમા. ૨ અઠ્ઠમ તપનો મહિમા યાને નાગકેતુ ૩. મેઘકુમાર ૪ શેઠ નાગદત્ત ૫. સતિ પ્રભજના અને રોહિણી ૬ ચૈત્રીપુનમનો મહિમા. ૭ અભયદાનનો મહિમા યાને રાણી રૂપવતી ૮ શિયળનો મહિમા યાને સતી હેમવતી ૯ ભાવનો મહિમા યાને મહારાજા શિવ ૧૦ તપનો મહિમા યાને રાજકુમાર તેજપુજ.

(૧૦૦ નકલના રૂપિયા બાર (૧૨) પોસ્ટ ખર્ચ અલગ)

છૂટક એક નકલના ત્રણ આના

પ્રાપ્તિસ્થાન —

(૧) જૈન પ્રકાશન મદિર, ૩૦૯/૪ દોશીવાડાની પોળ, અમદાવાદ
(૨) પં. ભુરાલાલ કાલિદાસ. ઠે હાથીખાના રતનપોળ, અમદાવાદ.
(૩) મેઘરાજ જૈન પુસ્તક ભંડાર, પાયધુની ગોડીજીની ચાલી, પહેલે માળે કીકા સ્ટ્રીટ, મુબઈ-૨.
(૪) સોમચદ ડી. શાહ. પાલીતાણા (સૌરાષ્ટ્ર)

—સસ્તામાના સર્વોપયોગી પ્રકાશન

વર્ષમાં બે વખત આયંબીલની ઓળી પ્રસંગે ખાસ ઉપયોગી

શ્રી સિદ્ધચક્ર-નવપદ આરાધન વિધિ-(સચિત્ર)

નવપદ સ્વરૂપ-લેખક પૂ. પં. શ્રી ધુરંધરવિજયજીગણિવર્ય અને સંપાદક :-સાહિત્યપ્રેમી મુનિ શ્રી નિરંજનવિજયજી મ.

અત્યાર સુધીમાં બહાર પડેલ આ વિષયના પુસ્તકોમાં આ પુસ્તક જુદી જ ભાત પાડે છે જેમાં નવે પદોનું સુંદર વિવેચન પૂર્વક વ્યાખ્યાનો અને દરેક પદોના ભાવને સૂચવતા ખાસ તૈયાર કરાવેલ ભાવવાહી દશ ચિત્રો, ઓળીની વિધિના દીવસોનો કાર્યક્રમ બહુ જ સરલ રીતે મુકવામાં આવ્યો છે. ચોસઠ પ્રકારી પૂજા, શ્રી નવપદજીની બન્ને પૂજાઓ, સત્તરભેદી પૂજા, પ્રભુ સન્મુખ બોલવા યોગ્ય સ્તુતિઓ, નવપદના ચૈત્યવંદનો અને સ્તવનો, નવપદની થોયો, સજ્ઝાયો, શ્રી સિદ્ધચક્રજીના યંત્રોદ્ધાર પૂજન વિધાનની સમજ વિગેરે વિગેરે સિદ્ધચક્ર આરાધન યોગ્ય સુંદર સરળ રીતે વિપુલ સામગ્રી સહિત આ પુસ્તકથી ગામડા વિગેરેમાં પણ ઓળી કરનારને ઘણી જ સુગમતા જણાશે કારણ કે ઉપયોગી દરેક બાબતોનો સમાવેશ આમાં કરાયેલ છે. પૃષ્ઠ ૨૮૮ પાકું બાઈન્ડીંગ છતાં પ્રચાર માટે કિં. ૨-૮-૦

પ્રાપ્તિસ્થાન —

(૧) જૈન પ્રકાશન મંદિર. ૩૦૯/૪ ડોશીવાડાની પોળ અમદાવાદ

(૨) બાલુભાઈ રૂઘનાથ શાહ. અનાજના વડ પાસે ભાવનગર.

(૩) પં. ભુરાલાલ કાલિદાસ. ઠે. હાથીખાના, રતનપોળ અમદાવાદ.

તે સિવાય મુંબઈ-પાલીતાણા વગેરે પ્રસિદ્ધ જૈન બુકસેલરોને ત્યાંથી પણ મળશે